छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण

(प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा)

•

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्
उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध प्रबंध

•

शोध - निर्देशक
डॉ० जगदीश गुप्त

•

प्रस्तुतकर्ता
प्रमोद कुमार सिनहा एम० ए०

१९६६

विषय-सूची

प्राक्कथन

छायावाद काव्य में मेरी प्रारम्भ से ही रुचि थी । एम०ए० करने के अनन्तर जब मैंने डॉ० जगदीश गुप्त से इस विषय में शोध करने की इच्छा व्यक्त की तो वे बड़े प्रसन्न हुए । ऐसा नहीं था कि छायावाद पर लिखने वालों की उपलब्धि नगण्य रही हो, फिर भी कला और भाव पक्ष पर काफी लिखे जाने के बाद भी छायावादी कवियों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का कार्य लगभग अधूरा ही था । इसलिए उन्होंने कृपा पूर्वक प्रस्तुत विषय दिया । श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी विषय से अपनी सम्मति जतायी । व्यस्त जीवन में भी डॉ० जगदीश गुप्त ने प्रस्तुत प्रबन्ध के निर्देशन एवं संशोधन के लिए जो अपना अमूल्य समय दिया वह मेरे प्रति आशीर्वाद का ही द्योतक है । न केवल शोध वरन् जीवन की अन्य दिशाओं में उनसे आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली, मैं इस गुरु-ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता ।

छायावादी कवियों की विचारधारा को समझाने में श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री सुमित्रानन्दन पंत, श्रीमती महादेवी वर्मा और डॉ० रामकुमार वर्मा ने व्यक्तिगत अभिरुचि लेते हुए पर्याप्त सहायता दी, जिसके लिए वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं ।

डॉ० केशरीनारायण शुक्ल और डॉ० शम्भुनाथ सिंह की पुस्तकों से भी शोध कार्य में नई दिशा मिली । साथ ही डॉ० सावित्री सिनहा का भी आभारी हूँ जिनके विचार 'भारती हिन्दी परिषद्' के कुरुक्षेत्र अधिवेशन और 'स्नातकोत्तर हिन्दी शिक्षण शिविर' में सुनने को मिले, जिससे आधुनिक काव्य को समझने में सही दृष्टि मिली । इसलिए उपर्युक्त आलोचकों के प्रति हृदय से आभारी हूँ । साथ ही उन सभी लेखकों एवं आलोचकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना भी कर्तव्य समझता हूँ जिनकी पुस्तकों का उपयोग कर सका ।

यदि हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय में चलने वाली हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सायंकालीन हिन्दी शिक्षण योजना में अध्यापन कार्य न मिल गया होता तो कदाचित मुझ साधनहीन के लिए शोध पूरा कर उसे परीक्षा हेतु प्रस्तुत कर सकना कठिन ही था । इस दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा और श्री विद्याभास्कर का भी आभारी हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरी सहायता कर सतत् आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया ।

विश्वविद्यालय प्रयाग पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, भारती भवन पुस्तकालय और पब्लिक लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करना कर्तव्य समझता हूँ, जिनसे पर्याप्त सहायता मिली । टंकण कार्य के लिए मैं श्री मेवालाल मिश्र का आभारी हूँ जिनकी सजगता से टंकण की त्रुटियाँ कम हुई हैं । टंकण के अनन्तर प्रतिलिपि मिलान के लिए शोधछात्र श्री विद्याधर श्री गर्जेन्द्रकान्त और साथ ही श्री महावीर सिंह सोलंकी को धन्यवाद देना चाहूँगा जिनके सहयोग से मेरा बहुत-सा कार्य हल्का हो गया । संभव है सावधानी बरतने के बावजूद कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों, इसके लिए मैं विद्वत्जनों से क्षमा-प्रार्थी हूँ । शोधकार्य को प्रस्तुत करने में अम्मा और पिताजी की प्रेरणा सदा साथ रही जिनके आशीर्वाद से मैं इस प्रयास में अग्रसर हो सका हूँ ।

अन्त में इस शोध प्रबन्ध को आप विद्वतजनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

प्रमोद कुमार सिनहा

(प्रमोद कुमार सिनहा)

भूमिका

छायावाद से पूर्व की सांस्कृतिक पीठिका

भूमिका

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छायावाद युग का अध्ययन नहीं है, वरन् छायावादी कवियों के उत्तरोत्तर परिवर्तित और विकसित होने वाली सांस्कृतिक विचारधारा का अध्ययन है जिसका मूल रूप छायावाद युग में ही निर्धारित हो चुका था। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि परवर्ती आन्दोलनों के फलस्वरूप जो नया दृष्टिकोण और बौद्धिक जागरण उत्पन्न हुआ उसने छायावादी कवियों की विश्वव्यापी जीवन दृष्टि को प्रभावित किया। पर यह प्रभाव स्थायी नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि उनके मौलिक आदर्शों को विनष्ट नहीं किया। फलत: वैचारिक संघर्ष और परिवर्तन के आग्रह के बाद भी छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण बहुत कुछ अक्षुण्ण बना रहा।

आलोच्य विषय के कवियों के पूरे काव्य साहित्य के अनुशीलन में भी केन्द्रीय दृष्टि छायावादी कवियों के युग पर ही रखी गयी पर विचारधारा के निर्माण की भूमिका से लेकर विकास की रेखा को स्पष्ट करने के लिए उनके पूरे साहित्य को अपने शोध-प्रबन्ध की परिधि में समाहित किया गया। ऐसा करने में भी यथासंभव काव्य साहित्य का उपयोग उनके कालक्रम के अनुसार ही किया गया है ताकि वैचारिक विकास की सही स्थिति प्रदर्शित हो और रचना पक्ष और विचार पक्ष में संगति स्पष्ट हो सके।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावादी कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने जीवन के बदलते मूल्यों की दिशा निर्धारित की, उसे एक प्रवैगिक रूप दिया, लोक चेतना में उन्मेष की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति दी, साथ ही प्रकृति से तादात्म्य कर उसे जीवन सहचरी के रूप में ग्रहण किया, वर्ण और जाति व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप की सारहीनता बताते हुए मानवधर्म से पुष्ट नव मानवतावाद की स्थापना की, नयी वस्तु, नयी दृष्टि, नयी अभिव्यक्ति के माध्यम से

नया युगबोध दिया, साथ ही कला के प्रति नवीन जीवन दृष्टि और व्यक्ति स्वातंत्र्य की दिशा में वैचारिक उपलब्धि के रूप में जिस जीवन दर्शन की स्थापना की उसे साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

साहित्यिक विचारधारा की प्रतिष्ठा होते ही उसकी तटस्थ आलोचना नहीं शुरू हो जाती। छायावाद के लिए भी यही सत्य है। कदाचित यही कारण था कि आलोचना पक्ष का संस्कार भी छायावादी कवियों को स्वयं करना पड़ा। इस दृष्टि से जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा के गद्य साहित्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पर कवियों के अतिरिक्त जिन आलोचकों ने छायावाद युग में सरस्वती, विशाल भारत, माधुरी, इन्दु, चाँद, हंस, सम्मेलन पत्रिका आदि में समालोचना पद्धति के आधार पर छायावाद की प्रारंभिक समीक्षा कर उसे वादगत मान्यता प्रदान की उनमें सर्वश्री गुलाबराय नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, ठाकुरप्रसाद वर्मा, गंगाप्रसाद पाण्डेय, जानकीवल्लभ शास्त्री, रामनाथ सुमन, कृष्णलाल शरसौंदे हंस, बालकृष्ण श्रीवास्तव, इलाचन्द्र जोशी, चन्द्रकला, रामविलास शर्मा, मुकुटधर पाण्डेय, रामसुन्दरलाल चोरड़या, रामचरित उपाध्याय, देवीप्रसाद त्रिवेदी, मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, जनार्दन प्रसाद झा द्विज और पं० रामचन्द्र शुक्ल का नाम लिया जाता है। पर छायावादोत्तर काल में छायावाद के आलोचकों में सर्व श्री केशरीनारायण शुक्ल, शम्भुनाथ सिंह, `क्षेम`, प्रेमशंकर, नगेन्द्र, जयकिशनप्रसाद, सहगम, विजेन्द्रस्नातक, केदारनाथ सिंह, राजेश्वर दयाल सक्सेना, शचीरानी गुर्टू, सत्यपाल, सुरेशचन्द्र गुप्त, ठाकुरप्रसाद शर्मा, जगदीश गुप्त, रघुवंश, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, नामवर, बच्चन सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, और भारत भूषण अग्रवाल का नाम लिया जा सकता है। उपर्युक्त आलोचकों ने छायावादी कवियों पर विभिन्न दृष्टिकोण से विचार किया जिसका भिन्न भिन्न रूप से अपना महत्व है।

आलोच्य छायावादी कवियों में अधिकतर कवि रूप प्रमुख मिलता है तथापि उनके काव्येतर साहित्य के वैचारिक महत्व को भी उपेक्षित नहीं किया गया । क्योंकि वह उनके व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग रहा है । यही कारण है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में एक ओर जहाँ उनके काव्य साहित्य की विचारधारा का संश्लेषण-विश्लेषण किया गया है वहां दूसरी ओर उन्हीं छायावादी कवियों के गद्य साहित्य में कहानी, उपन्यास नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण और लेखों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से व्यक्त की गयी उनकी विचारधारा का भी अनुशीलन किया गया है । उनका गद्य साहित्य उनकी काव्यगत विचारधारा की पुष्टि में सहायक है । ~~अत: काव्य और गद्य साहित्य से पुष्टि प्राप्त जीवन के सर्वांग में सहायक है ।~~ अत: काव्य और गद्य साहित्य से पुष्टि प्राप्त जीवन के सर्वांग से सम्बन्धित विचारधारा ही छायावादी कवियों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को व्यक्त करने में समर्थ होगी । जिससे उस युग ~~का~~ विशेष के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित उन समस्त मान्यताओं पर भी प्रकाश पड़ेगा जो किसी एकांगी दृष्टिकोण से साहित्यिक मान्यताओं पर प्रतिपादित होने के कारण भ्रान्तिपूर्ण विचारधारा के द्योतक हैं । मुख्य रूप से धर्म, दर्शन, कला , जाति--वर्ण-व्यवस्था, राष्ट्रीयता, प्रकृति, मानवता, व्यक्ति और समाज आदि के विषय में तत्संबन्धित कवियों की काव्यगत अभिव्यक्ति और उसकी पुष्टि के लिए उनके द्वारा गद्य साहित्य से भी सहायता ली गयी है ।

आलोचना एक वैयक्तिक विषय है । प्राय: आलोचकों ने अपने मत को आरोपित करते हुए छायावादी काव्य का मूल्यांकन किया है,जिससे अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गईं साथ ही परस्पर विरोधी मत भी सम्मुख आये । ऐसा करने में भी निश्चय ही उन आलोचकों ने आलोच्य विषय के छायावादी कवियों द्वारा अपने ~~अपने~~ काव्य साहित्य में प्रयुक्त दृष्टिकोण को गौण रूप में ही ग्रहण किया । यही कारण है कि छायावादी कवियों या छायावाद युग पर होने वाली अपरिपक्व,अव्यवस्थित अथवा सामान्य रूप से व्यक्त

की गई आलोचनाओं का उल्लेख नहीं मिलता किया गया है । वरन् प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में शोधकर्ता कवियों के दृष्टिकोण को ही प्रमुखता दी है ।

साहित्यकार ने जब साहित्य की विविध विधाओं का स्पर्श किया हो तो मात्र उसकी एक विधा के संश्लेषण-विश्लेषण पद्धति के आधार पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण नहीं प्रतिपादित किया जा सकता । हिन्दी में जब किसी युग विशेष को केन्द्र में रखते हुए उसके कवियों के काव्य तथा गद्य साहित्य के आधार पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण का अध्ययन प्रकाश में नहीं आया तब प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की मौलिकता निर्विवाद ही है । यद्यपि सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन छायावादी कवियों के साहित्य के आधार पर किया गया है पर उसके विवेचन-विश्लेषण और प्रतिपादन का ढंग शोधकर्ता का अपना है ।

छायावाद के सम्बन्ध में अभी तक जो भी अध्ययन हो चुका है, महत्वपूर्ण धारणाएं व्यक्त की गई हैं उन्हें मूल्यांकन वाले अंतिम अंश में संदर्भित किया गया है । शेष समस्त अध्ययन शोधकी वास्तविक प्रवृत्ति को पूर्वाग्रहों से मुक्त रखकर किया गया है । परन्तु समस्या विशेष पर आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों के विचारों को एक साथ समान परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने का ऐसा प्रयत्न शोधक की दृष्टि में इसके पूर्व नहीं किया गया । छायावादी कवियों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण का आकलन प्रस्तुत प्रबन्ध में विशेष सजगता के साथ किया गया है । साथ ही सांस्कृतिक दृष्टि की सत्-असत् दोनों पक्ष पर तटस्थ रूप से देखने का प्रयास किया गया है । अतः यह मौलिक शोध-प्रबन्ध है ।

छायावाद के पूर्व की सांस्कृतिक पीठिका

छायावादी कवियों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को विश्लेषित करने के पूर्व हमें उसकी पीठिका के उन सांस्कृतिक तत्वों पर दृष्टिपात करना चाहिए जिनके प्रभाव से क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में नवीन काव्यधारा का निर्माण होता है। छायावाद की पीठिका के रूप में द्विवेदी युग आधुनिक हिन्दी काव्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि परिस्थितिगत परिवर्तित मनस्थिति की प्रेरणा से ही युग के नवीन जीवन दर्शन के कारण उसके अनुकूल छायावादी काव्य का सृजन हुआ। पर साहित्यगत सामाजिक राष्ट्रीय मनोवृत्ति के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु युग की पीठिका पर भी एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी।

छायावाद की पीठका के रूप में द्विवेदी-युग पर यदि एक सम्यक दृष्टि डाली जाय तो पता चलता है कि उसकी राजनीतिक स्थिति पहले से अधिक गंभीरतर होती जा रही थी। भारतेन्दुकाल के पूर्व लोगों में अंग्रेजी राज्य के प्रति पर्याप्त आस्था थी, क्योंकि सत्ता के प्रति विश्वास, सौम्यता तथा स्नेह और आदर की भावना पर्याप्त रूप में दिखाई पड़ती है। पर कालान्तर में द्विवेदी-युग में विभिन्न परिस्थितियों की प्रेरणा से उसका स्थान क्रमश: तीव्र सन्देह, मतभेद, वैमनस्य और कटुता में ग्रहण कर लिया, दूसरे शब्दों में कहें तो "बीसवीं शताब्दी के शुरू के पन्द्रह वर्षों में भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों की परिस्थितियों के विकसित और परिवर्द्धित रूप में ही दिखाई पड़ती हैं। इसलिए इस काल की काव्यधारा भी संक्रान्तियुग की भारतेन्दुयुगीन काव्य धारा से बहुत भिन्न नहीं है। अन्तर इतना ही है कि इस युग में पिछले युग की अपेक्षा पुनरुत्थान की प्रवृत्ति और भी बढ़ गई।[१] राष्ट्रीय दृष्टिकोण से जनता में मानसिक परिष्कार हो रहा था। नैतिकता अधिक

बौद्धिक दृष्टिकोण की ओर अग्रसर हो रही थी । सामाजिक जन-चेतना में राष्ट्रीयता आने के कारण सामान्यत: शोषित वर्ग में विदेशी सत्ता के प्रति एक विद्रोह की चिनगारी दीख पड़ती है । साहित्य में रूमानी वातावरण और कल्पना प्रधान सौन्दर्य दृष्टि इस युग के काव्य साहित्य में बहुत कुछ कम हो गई थी, क्योंकि राष्ट्रीयता और विशुद्ध बौद्धिकता के वातावरण की ओर सतत-अग्रसर होती हुई दृष्टि उसे यथार्थ के धरातल पर आने को बाध्य कर रही थी । पराधीनता की कटुता और उसके यथार्थ से परिचित होने पर काव्य में भी परिवर्तन अपेक्षित था क्योंकि अब कल्पना की गोद में क्रीड़ा करने का युग समाप्त हो गया था ।

यद्यपि भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग में काव्य के दृष्टिकोण में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था, तथापि जीवन के प्रति विकसित दृष्टि-कोण से काव्य साहित्य को नवीन दृष्टि मिली ही । अब जीवन का हर अंग काव्य का विषय हो सकता था । अत: काव्य विस्तार के साथ विषय विस्तार भी इस युग में पर्याप्त मात्रा में हुआ । काव्य की भाषा रीतिकाल और भार-तेन्दु युग की तरह ब्रजभाषा नहीं थी । द्विवेदी युग में खड़ीबोली काव्य भाषा के रूप में प्रयुक्त हुई । जिसमें उपदेशात्मकता, मातृप्रेम, जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण, परिस्थितिगत यथार्थ आदि बातें उन्मुक्त रूप से काव्य के विषय बनते जा रहे थे । सच तो यह है कि भारतेन्दु-युग में अंकुरित होने लाली आने वाली राष्ट्रीय कविता द्विवेदी-युग में विकसित होकर लहलहा उठी । यही कारण है कि भारतीय बौद्धिक आस्था नैतिकता और आदर्शवादिता का जितना स्पष्ट चित्रण इस युग में हुआ उतना इससे पिछले युग में नहीं । भारतेन्दु युगीन कथा और काव्य शिल्प में राष्ट्रीयता की छूटती प्रेरणा अपने उभार में आकर प्रेम-चन्द , मैथिलीशरण गुप्त, "हरिऔध", जयशंकर प्रसाद आदि में राष्ट्रीयता परक रचनाओं में पूर्ण रूप से प्रकट होने लगी । इससे युग के यथार्थ चित्रण को प्रकट करने में अन्य साहित्यकारों को भी पर्याप्त प्रेरणा मिली । अत: इस युग का साहित्य तत्कालीन ईमानदार लेखन प्रवृत्ति का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है ।

" द्विवेदी-युग सूक्ष्म भावनाओं के लिए स्थूल आधार ढूंढ़ रहा था। उसकी सूक्ष्म भावनाएं प्राचीन संस्कारों में भक्तिमूलक थी, इन्हीं की अभिव्यक्ति के लिए उसे कोई प्रत्यक्ष दृश्यपट दरकार था। जब तक राष्ट्रीय आन्दोलन सामने नहीं आया तब तक उसकी भावनाएं ईशस्तुति और प्रभुवंदना में ही संतोष ग्रहण करती रहीं। उस आस्तिक वस्तुवाद के लिए गांधीवाद एक वरदान मिल गया।[२] यही कारण है कि प्रत्यक्ष रूप से भी द्विवेदीयुगीन साहित्य पर गांधी और उनकी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। अपनी मर्यादित व्यवस्था में गद्य की भांति द्विवेदी जी ने पद्य-प्रवाह की गति भी बदल डाली। उन्होंने सबसे बड़ी बात यह की कि संस्कृत छन्द शैली और भाव-प्रदर्शन की सीधी छाया हिन्दी गद्य पर डाली। पुरानी धारा के हिन्दी कवियों की दृष्टि प्राकृत, अपभ्रंश और रीति की जिन शैलियों पर थी, द्विवेदी जी की पद्धति उनसे पृथक थी। इससे हिन्दी में परम्परा से व्यवहृत छंदों के स्थान में संस्कृत के वृत्तों का हिन्दी में चलन हो गया।[३] राष्ट्रीय-काव्य के सम्बन्ध में भारतेन्दु-युग की अपेक्षा द्विवेदी-युग में अधिक विकास देखने को मिलता है। आर्य समाज एवं इंडियन नेशनल कांग्रेस ने सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को प्रगति देने में मानवीय सुप्त चेतना में एक क्रांति उपस्थित कर दी। किन्तु सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भारतेन्दु-युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में किसी प्रकार का विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता है। देश की आर्थिक प्रगति पहले की ही तरह असन्तोषजनक थी। देश में अकाल और भुखमरी के कारण आर्थिक-व्यवस्था जर्जरित हो गई थी। किसान और दस्तकारी से सम्बन्धित व्यक्तियों की दशा दिनों-दिन गिरती जा रही थी। स्वार्थान्ध अंग्रेजी-सरकार यहां की स्थिति को सुधारने में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही थी। वस्तुत: देश की दयनीय दशा में सुधार न होने का सबसे बड़ा कारण यही था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनता में आत्मचेतना का विकास होने लगा था। इसका एक कारण १८६९ ई० में स्वेज नहर का खुलना भी था

क्योंकि स्वेज नहर खुलते ही भारत के कच्चे माल का निर्यात पर्याप्त मात्रा में होने लगा था । अतः पाश्चात्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध इस चेतना के विकास में सहायक था । साथ ही भारतीय जनता विदेशी शासन द्वारा शोषित होने के कारण उस पर से विश्वास और आस्था खोती जा रही थी । भारतीयों की स्थिति के सुधार के लिए ऐसे तो सन् १८८५ (सं०१९४२) में ही इंडियन नेशनल-कांग्रेस की स्थापना हुई । प्रारंभ में इसका कार्य मात्र सरकार को स्मृति पत्र (Memorandum) देकर, उसका ध्यान जनता की ओर आकृष्ट करना था, किन्तु कालान्तर में इसका रुख विदेशी भावना से विरत होकर स्वदेशी भावना से प्रभावित हुआ । फलस्वरूप विदेशी सरकार इसे संदेह की दृष्टि से देखने लगी ।

औद्योगिक दृष्टिकोण से देखें तो १८९६ ई० के बाद पाश्चात्य देशों में पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल का निर्यात होने लगा था । इसी समय रानीगंज के लोहे और बंगाल के कोयले की खुदाई और विकास का काम शुरू हुआ और लगभग १९०० ई० तक तो उत्पादन और व्यापारिक क्षेत्र में क्रांति सी हो गई । यद्यपि अन्य देशों में हुए व्यापारिक विकास की दृष्टि से भारत का यह विकास अधिक तीव्र नहीं था फिर भी रेलों के विकास और प्राकृतिक अवरोधों (अकाल, महामारी) के न होने के कारण शासकों द्वारा सहायता न देने और दिलचस्पी न लेने पर भी स्थिति में पर्याप्त अन्तर आ गया था । पहले की अपेक्षा आर्थिक प्रगति के विकास को विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना और उनके उत्पादन से पर्याप्त सहायता मिली । इधर राजनीतिक जागरण के कारण शासन और जनता में तनाव बढ़ता जा रहा था । इसका युगान्तरकारी रूप तब देखने को मिला जब तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने १९०४ में बंगाल को दो टुकड़ों में विभाजित कर दिया। इससे बंगाल ही नहीं समस्त भारतीय जनता अंग्रेजी राज्य के प्रति विद्रोही हो गई क्योंकि इस विभाजन में उसे शासन के निरंकुश स्वेच्छाचारिता का ही रूप समझा । यही कारण था कि यह विभाजन समस्त भारतीय जनता के लिए एक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था जिसका विकसित

रूप कालान्तर में स्वदेशी आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ ।

सन् १६०४ के रूस-जापान युद्ध में जापान ऐसे छोटे देश से रूस ऐसे बड़े देश की हार ने समस्त भारतीयों के मन में एक अदम्य सुसंगठित राष्ट्रीयता की भावना के लिए प्रेरणा के बीज का काम किया । इन्हें यह ज्ञात हो गया कि राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित एक छोटा सुसंगठित राष्ट्र भी बड़े साम्राज्य से टक्कर ले सकता है । जापान की इस जीत ने भारत ही नहीं एशिया के समस्त पराधीन राष्ट्रों में स्वतंत्रता की लहर दौड़ा दी । अब स्वतंत्रता का मूल्य भारतीयों की समझ में आ गया । इस भावना ने ही भारतीयों में स्वतंत्रता की अदम्य भावना भर दी थी । राष्ट्रीयता की सीमा अब जाति , धर्म और प्रान्तीयता से दूर देश की पृष्टभूमि में आंकी जाने लगी । कांग्रेस भी अंग्रेजी राज्य के प्रति नम्रता और विनय की नीति छोड़कर उग्रता की नीति की ओर अग्रसर हुई ।

ऐसे तो लगभग १६०७ ई० जमशेदपुर में टाटा कम्पनी की स्थापना हुई और उसी समय दियासलाई चीनी, आटा, सीमेन्ट, चावल, साबुन, कागज, कपड़ा और पानी से बिजली बनाने के कारखाने देश भर में खुले । जिससे औद्योगिक विकास और उत्पादनवृद्धि में पर्याप्त सहायता मिली । ये मिल अधिकांशत: भारतीयों द्वारा ही खोले गए थे । लेकिन अंग्रेजों के स्वतंत्र बाजार की नीति बरतने , आयात-कर लगाने और मिलों के कपड़ों पर टैक्स लगा देने के कारण भारत में १६१७ ई० तक तेजी से औद्योगिक विकास न हो सका । यद्यपि जूट के औद्योगिक विकास में भारत की ही प्रमुखता रही, कारण विदेशों में इसके मजदूर भारतीय मजदूरों की अपेक्षा महंगे थे , फिर भी भारत कृषि प्रधान देश ही रहा । गृह-उद्योग-धन्धों का तीव्र गति से विनाश ही हो रहा था । आर्थिक व्यवस्था दरिद्रता से दबती जा रही थी । मालगुजारी, लगान में वृद्धि, अधिकतर मजदूरों का कृषि पर आश्रित होना, कर्ज का बढ़ता बोझ और अधिक सूद के कारण अंत में जमीन का महाजन का हो जाना आदि बातें कृषक जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध हुईं । साथ ही

१६०० ई० तक यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज भारत का औद्योगिक विकास करने की इच्छा नहीं रखते । यही कारण है कि उद्योगपतियों ने उनका विरोध करने के लिए ही कांग्रेस का साथ देना शुरू किया । अफ्रिका के बोअर युद्ध (Boer war) और तुर्कों द्वारा यूनानियों की पराजय तथा पूर्वी देशों में ईसाइयों की हत्या से भारतीयों के हीन मन में भी एक राष्ट्रीयता की लहर फैल गई । फलस्वरूप लोग खुले आम राजनीति में शरीक होने लगे ।

देश की संक्षिप्त औद्योगिक व्यवस्था पर दृष्टिपात करते हुए छायावादी विचार धारा की साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में यदि भारतेन्दु द्विवेदीयुग की परिस्थितियों को विभिन्न विदेशी शासकों और तत्कालीन स्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया के सम्पर्क सूत्र में यदि देखें तो अधिक युक्ति-संगत होगा । इस दृष्टि से लार्ड एल्गिन द्वितीय (१८६४-६६) के शासन-काल में अकाल और महामारी महत्वपूर्ण दु:खद घटना थी । जो शासन की अव्यवस्था की द्योतक है । लार्ड कर्जन (१८६६ से १६०५) के शासन-काल में यद्यपि रेल, रक्षा, कृषि आदि के विकास की व्यवस्था हुई पर उसकी निरंकुश नीति ने भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार, जातीयता, पक्षपात आदि की भावना ने यहाँ की जनता के मन में उसके प्रति घृणा भर दी थी । यही कारण था कि भारतीय राजनीतिक प्रतिक्रिया में वृद्धि हुई, क्योंकि इस बीच कर्जन ने बंगाल का दो भागों में विभाजन (१६०४) कर दिया था । इसकी प प्रतिक्रिया में देशव्यापी आन्दोलन हुआ । १६०५ में बनारस कांग्रेस के सभापति गोपालकृष्ण गोखले ने सरकार की कटु निंदा की । साथ ही इसी कांग्रेस में बंग-भंग के विरोध में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का भी प्रस्ताव पास हुआ । लगभग १६०५ ई० में भारतीय राजनीतिक गतिविधि में महान् अन्तर आ गया । कांग्रेस अपनी नरम नीति का त्याग करने लगी । लार्ड कर्जन के त्यागपत्र देकर चले जाने के बाद लगभग १६०५ में लार्ड मिन्टो वायसराय बन कर आये । पर बंगभंग आन्दोलन को रोकने में इन्हें भी सफलता नहीं मिली । देश की जन-चेतना में प्रगति हो रही थी । दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ता

कांग्रेस (१६०६) में 'स्वराज्य जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा लगाया गया। इसी अधिवेशन में ही विपिनचन्द्र पाल और बालगंगाधर तिलक ने स्वदेशी सरकार का भी प्रस्ताव रक्खा जिससे कांग्रेस के गरम और नरमदल में काफी मतभेद हो गया फिर भी स्वराज्य ही कांग्रेस का लक्ष्य चुना गया जिसका सर्व सम्मति से समर्थन हुआ। अब स्वदेशी और स्वराज्य भारत के राष्ट्रीयता प्रतीक बन गये। और राष्ट्रीयता की इस भावना को जन-मानस से सम्बन्धित कर धर्म के माध्यम से इसे उभारने में अरविन्द घोष, लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्रपाल आदि ने बहुत सहायता दी। जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीयता की चेतना का प्रसार हुआ।

इसी बीच लार्ड एडवर्ड द्वितीय (१६१० ई०) की मृत्यु हो गई और पंचम जार्ज गद्दी पर बैठे। इनके शासन काल में भारत से सम्बन्धित दो बहुत ही महत्वपूर्ण बातें हुई। बंगभंग आन्दोलन को रोकने के लिए पंचम जार्ज द्वारा पश्चिम और पूर्वी बंगाल को एक में मिला दिया गया। साथ ही देश की राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली हस्तान्तरित कर दिया गया।

प्रयाग अधिवेशन में लार्ड हार्डिंग अपने समझौतावादी दृष्टिकोण को लेकर आए। हार्डिंग की नीति भारतवासियों को खुश करने की थी। एक ओर जहाँ बंगाल का एकीकरण हुआ, दूसरी ओर मुसलमानों को भी अलग मताधिकार दिया गया। साथ ही १६१३ ई० में अफ्रीका के प्रवासी-भारतीय माँगों का भी समर्थन करते हुए अपनी सहानुभूति व्यक्त की। यह हार्डिंग्ज के समझौतावादी दृष्टिकोण का ही परिणाम था कि उस समय कांग्रेस और सरकार की कटुता कम हो गई थी। अंग्रेज नहीं चाहते थे कि हिन्दू-मुसलमान में समझौता हो तथापि कांग्रेस के उदारतावादी अंग्रेज सभापति सर विलियम वेडरबर्न ने हिन्दू-मुसलमान, नरम-गरमदल, भारत और ब्रिटेन के परस्पर विरोधी तत्वों के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न के फलस्वरूप १६१६ ई० में लखनऊ कांग्रेस में हिन्दू-मुसलमान दोनों दल में समझौता हुआ और कांग्रेस की फूट भी बहुत हद तक दूर हो गई। इस प्रकार १६११ ई० से १६१६ ई० तक भारत में शान्ति का वातावरण

रहा फिर भी भीतर ही भीतर क्रांति की विचारधारा सुलगती रही जिसकी छाया द्विवेदी युगीन साहित्य में देखी जा सकती है ।

सन् १९१४-१८ में यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध आरंभ हो गया था । इस युद्ध में भारत ने अंग्रेजी सरकार की मदद की । सहायता का हर संभव प्रयत्न उपलब्ध किया, लेकिन युद्ध की समाप्ति और मित्र राष्ट्रों की जीत पर भी देश को उसकी सेवाओं का उचित पुरस्कार नहीं मिला, न मिलने की संभावना ही थी । इन्हीं दिनों (१९१९) रूसी-क्रान्ति सफल हो गई । जापान द्वारा हराये गए इतने बड़े देश की दुर्दशा के अनन्तर भी जन-चेतना की रगों में क्रांति का नया रक्त बहने लगा । नई चेतना आई । जन-मानस पुन: सचेत हुआ और साहित्य संस्कृति की राष्ट्रीय परक विचार-धारा को प्राथमिकता दिया जाने लगा ।

इसी समय रौलेट एक्ट पास हुआ जिसमें अपराधी राजद्रोहियों को दमन के अधिकार निहित थे । देश भर में इसका घोर विरोध हुआ, फल-स्वरूप ३० मार्च १९१९ को दिल्ली और ६ अप्रैल को पूरे देश में हड़ताल रही । इसी समय मुसलमानों ने टर्की की सहानुभूति में 'खिलाफत आन्दोलन' चलाया । यह आन्दोलन भी अंग्रेजों के विरोध में था । 'रौलट-एक्ट' के अधिकार मिलने पर जनरल डायर ने १३ अप्रैल १९१९ को पंजाब के जलियाना वाला-बाग में नागरिकों की एक शांतिपूर्ण सभा पर गोलीकाण्ड करवा दिया । कई सौ व्यक्ति मारे गये । फलस्वरूप सितम्बर १९२० में गांधी जी की सहायता से कलकत्ता कांग्रेस में असहयोग आन्दोलन की योजना बनी और दिसम्बर १९२० ई० में गांधी जी की सहायता से नागपुर अधिवेशन में शांति-पूर्ण और अहिंसात्मक उपायों से स्वराज्य के लक्ष्य को निश्चित कर आन्दोलन निश्चित हो गया, जिससे पूरे देश में उपाधि-त्याग, सरकारी उत्सव, स्कूल, कौंसिल-निर्वाचन आदि आन्दोलन के असहयोग के प्रति धूम मच गई । चर्खा और खद्दर राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गया । इसका खूब प्रचार हुआ

और हिन्दू मुसलिम आन्दोलन भी बहुत सफलता पूर्वक चला ।

भारतीय समाज जातिगत वर्गीकरण में मुख्यत: हिन्दू और मुसलमान दो वर्गों में विभक्त था । हिन्दू समाज में भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र आदि विभिन्न सामाजिक वर्ग थे लेकिन अब सामाजिक संकीर्णता जातीयता पर आश्रित न रहकर समाज का राष्ट्रीयता की दृष्टि से मुल्यांकन किया जाने लगा । अरविन्द घोष ने तो राष्ट्रीयताकी ही परिभाषा बदल दी । उनके अनुसार जीवन का लक्ष्य हर क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्त करना है । राष्ट्रीयता ईश्वरीय वस्तु है । वह स्वयं ईश्वर है । इस तरह राष्ट्रीयता को भी आध्यात्मिक रूप दिया जाने लगा । गीता और वेदान्त के प्रभाव के कारण अरविन्द ने सन्यास में भी राष्ट्रीयता का नया दृष्टिकोण रक्खा तो धर्म और आध्यात्म का समन्वय कर लोकमान्य तिलक ने पंजाब और महाराष्ट्र में जन-चेतना फैलाई । गणपति उत्सव, गोरक्षा सभा, शिवाजी की जयन्ती आदि के माध्यम से राष्ट्रीयता का बीज बोया । गीता रहस्य की रचनाकर गीता के कर्मयोग की नई व्याख्या प्रस्तुत की । लाला लाजपतराय और श्रद्धानन्द आर्य समाज से ही कांग्रेस में आये थे, इसलिए आर्य समाज द्वारा भी राष्ट्रीयता के प्रचार प्रसार में पर्याप्त सहायता मिली । पंजाब के स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिका में वेदान्त का प्रचार किया । थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी हिन्दू-नवजागरण में पर्याप्त योगदान दिया । लेकिन अब भी अंग्रेजों की फूट डालने की नीति काम कर रही थी । वे नहीं चाहते थे कि कांग्रेस की शक्ति में विकास हो । यही कारण था कि उन्होंने धर्म की भावना से फूट डालने का प्रयत्न करते हुए सर सैयद अहमद खाँ को अपना अस्त्र बनाया । इसी समय मौलाना हाली ने एक 'मुसद्दस' की रचना की जिसमें मुस्लिम संस्कृति के उत्थान का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है । इससे मुस्लिम संस्कृति को अलग समझने की प्रवृत्ति बढ़ी । लोग भूल गए कि धर्म स्वयं संस्कृति न होकर उसका एक अंग होता है । संस्कृति के प्रति भ्रान्तिपूर्ण धारणा के कारण द्विवेदी युग में संस्कृति के स्वाभाविक विकास में अवरोध आ गया ।

ऐतिहासिक भावना से प्रेरित होकर १८७५ में भारत सरकार ने पुरातत्व विभाग की स्थापना की जिसने देश के ध्वंसावशेषों के अतिरिक्त मूर्तिकला, वास्तुकला के ऐतिहासिक स्थलों को संरक्षित और संगृहित बनाया। ऐसे तो सर विलियम जोन्स के प्रयत्न से १७७४ ई० में ही बंगाल में ऐशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हो चुकी थी। पर कालान्तर में इसने प्राचीन ग्रन्थों की खोज और भाषा लिपि के अध्ययन के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। मैक्समूलर, शापेनहार, श्लीगेल आदि जर्मन विद्वानों ने वैदिक संस्कृति पाली, प्राकृत के साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। इनके अध्ययन से नये तथ्यों का उद्घाटन हुआ। भारतीय अतीत संस्कृति में ऐसे समृद्ध भांडार को पाकर भारतीयों के मन से हीन भावना का बहुत कुछ अन्त हो गया।

संस्कृति में कला का भी अपना महत्व है। इस दृष्टि से भारत खण्डे और विष्णु दिगम्बर ने संगीत की संगीतकारों ने सहयोग दिया। अवनीन्द्र ठाकुर ने चित्रकला का पुनरुत्थान किया और आचार्य द्विवेदी ने राजा रविवर्मा के चित्रों पर काव्य की सृष्टि की करवा चित्रकला को भी प्रोत्साहित किया।

सामाजिक दृष्टि से मध्य और निम्न वर्ग की दशा और भी गिरी हुई थी। बालविवाह, मनमेल विवाह, पर्दाप्रथा, जाति प्रथा, दहेज प्रथा, आदि धार्मिक संकीर्णताओं में समाज की जड़ को खोखला कर दिया था। कारण समाज में अशिक्षा थी। स्त्री शिक्षा का नितान्त अभाव था। जीवनगत दृष्टिकोण की संकीर्णता के कारण देश में नाना कुरीतियां फैली थी।

हिन्दी साहित्य के संक्रान्ति युग में भारतेन्दुकालीन साहित्यकार पाश्चात्य शिक्षा, कला और विभिन्न उद्योग धन्धों के उपयोग और उसके प्रचार प्रसार के भी पक्षपाती थे। कारण उनकी दृष्टि में ऐसा करने से

भारत के पिछड़े आर्थिक विकास को प्रगति मिलती । इस काल में साहित्य की बहुत सी शैलियाँ—जैसे निबंध कहानी, पत्रकारिता, उपन्यास आदि विधाओं— को ग्रहण कर उन्हें अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण से हिन्दी में इस भाषा के अनुरूप ढाला गया । पुनरुत्थान युग में इस प्रवृत्ति का और भी विकास हुआ । कारण उद्योग धन्धों एवं मिलों से उत्पादन वृद्धि के कारण भारत में उन्हीं परिस्थितियों की बहुत कुछ पुनरावृत्ति हो रही थी जो ब्रिटेन में थी ।

साहित्य क्षेत्र में ब्रजभाषा धीरे-धीरे मंद होती जा रही थी और गद्य-पद्य दोनों ही क्षेत्रों में उसका स्थान खड़ी बोली ले रही थी । पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के माध्यम से खड़ी बोली के आन्दोलन को आगे बढ़ाया । साहित्य में छंद और शैली की दृष्टि से नये प्रयोग किये जाने लगे । अंग्रेजी और संस्कृत का भी पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया गया । उसका बहुत अध्ययन किया जाने लगा । श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद भी प्रस्तुत किया । आचार्य द्विवेदी कालिदास से प्रभावित थे उन्होंने संस्कृत की अलंकार विधान, शैली, छंद विधान , प्रकृति चित्रण , संस्कृत पदावली को हिन्दी में प्रोत्साहित किया । पाश्चात्य साहित्य और विचारधारा के सम्पर्क में आने और देश के राष्ट्रीय जागरण के प्रभाव के कारण लोगों में धर्म की अंध दासता और अंध विश्वास की जगह दार्शनिकता और कलात्मकता बढ़ती जा रही थी । जीवन के प्रति एक बौद्धिक दृष्टिकोण होता जा रहा था । अत: समग्र दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए यह कहें कि यद्यपि ~~पाठक~~ काव्य के भाव और विषय को भारतेन्दु ने बदला पर उसके भाषा और छंद आदि को बदलने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को ही है ~~कहा जाय~~ तो अत्युक्ति न होगी ।

प्रबन्ध और गीत काव्यों का एक प्रकार से नितान्त अभाव था । बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस-पच्चीस वर्षों में महाकाव्य , खण्डकाव्य, आख्यानक काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य और गीतिकाव्य की रचना हुई और

शब्द भाण्डार, भाव प्रकाशन शैली आदि की दृष्टि से खड़ी बोली का नवीन विकास और उत्कर्ष उपस्थित हुआ फिर भी प्रधानता इतिवृत्त काव्य की रही किन्तु उसके भावपूर्ण कविता की ओर अलंकार, रस, गुण आदि से मानव जीवन की उच्च वृत्तियों और भावनाओं की प्रकृति वर्णन में मन: कल्पित दृश्यों की व्यंजना की ओर विकसित हुआ ।[४]

द्विवेदी युग की कविता को आदर्शवादी की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है किन्तु यह आदर्शवाद पूंजीवादी सभ्यता से प्रभावित है और न सामंतवाद से ही वरन् वैचारिक दृष्टिकोण से दोनों का समन्वय दीख पड़ता है । कारण इस युग के कवि" अतीतोन्मुख होते हुए भी वर्तमान से न अनभिज्ञ है न विमुख । ".... इन कवियों ने बड़ी उत्सुकता से तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक आन्दोलनों का स्वागत किया और समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया ।[५] कवियों ने अपने सुधार की मनोवृत्ति के कारण ही उपदेश के साथ खंडन-मंडन की शैली अपनाई, साथ ही सौन्दर्य और प्रेम आदि विषयों पर काव्य की सृष्टि करते हुए भी बहुत हद तक सतर्कता बरती कि इस युग का काव्य लोक जीवन और स्वाभाविकता से दूर वर्णनात्मकता के साथ स्थूलता मिश्रित नीरस मनोभाव का प्रतीक बन गया । यद्यपि कवि अपने कर्तव्य के प्रति सचेत थे, उन्होंने सामाजिक , आर्थिक दशा सुधारने के दृष्टिकोण से ही काव्य रचना की, उनकी लेखनी से संस्कृति की रक्षा, देश-जाति के अभ्युदय का स्वर फूटा तथापि आने वाली पीढ़ी के कवियों ने उनके मार्ग का अनुसरण नहीं किया । कदाचित आगामी पीढ़ी का मन द्विवेदी-युग के स्थूल इतिवृत्तात्मक काव्य के नीरस, थोथे आदर्श के प्रति विद्रोह से भर उठा था । अब उनका हृदय बन्धनों से मुक्त हो कर स्वच्छन्द रूप से आत्म-

---

४. हिन्दी साहित्य कोश, भाग१, पृ० ३८०

५. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० १६५

दर्शन और अपनी अनुभूतिमय अभिव्यक्ति को प्रकट करना चाहता था । अत: उपर्युक्त दोनों युग की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसने छायावाद की पृष्ठ-भूमि तैयार की । जिसमें रीतिकाल के सामन्ती सभी प्रवृत्तियों का बहिष्कार कर, जीवन के प्रति काव्यात्मक यथार्थ की सृष्टि कर महान् सरस और सुन्दर काव्य का सृजन किया । यद्यपि रीतिकाल की शैली के आधार पर रचनाएं अब भी की जाती रहीं पर उनका कोई महत्व नहीं था । क्योंकि उन कवियों की दृष्टि भी नये युग और उसकी प्रवृत्तियों से प्रभावित होती जा रही थी ।

खण्ड १

अध्याय १—संस्कृति

संस्कृति

सम्यक् दृष्टिकोण से यदि विश्व की 'संस्कृति' का मूल स्रोत ढूंढ़ा जाय तो कदाचित हमें धरा की उत्पत्ति के अनन्तर मनुष्य की उत्पत्ति से अधुनातन विकास तक एक निश्चित रेखा खींचनी होगी जिसमें अरबों वर्ष का इतिहास समाहित होगा। पर यदि अर्थगत दृष्टिकोण से संस्कृति पर दृष्टिपात किया गया तो कहा जा सकता है कि इसको विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया । कतिपय कवियों और कलाकारों ने सौन्दर्य चेतना को संस्कृति का अनिवार्य चिह्न माना। इसके विपरीत नीति शास्त्रज्ञों ने सदाचार एवं सद्व्यवहार को उसके लक्षणों के रूप में प्रधानता दी।[1] इस प्रकार युग के अनुरूप संस्कृति के अर्थगत प्रयोग में क्रमश: अर्थ विस्तार और अर्थ संकुचन होता गया। इसे यदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर देखें तो वाजसनेही संहिता में संस्कृति[2] सम्पूर्णता (Perfection) तैयार होना (Making ready, preparation) एतरेय ब्राह्मण में निर्माण (formation) भागवत पुराण में पवित्रता (Hallowing, consecration) के अर्थ में प्रयोग किया है तो वैजयन्ति (Vaijayanti) में —

" समान: प्राणभेदे त्रिष्वेकं समरसाधुषु ।
संकारो न संस्कृति स्त्री संकल्पप्रतिपत्त्ययो: । [3]

कहा गया है। यजुर्वेद में —

" संस्क्रियते मानव: अनया इति संस्कृति : [4]

---

१. मानव और संस्कृति, पृ० १६६

२. ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ११२१

३. वैजयन्ति त्रिस्त्रितायां ~~वैजयन्त्या~~ ...., ~~अथैदशकाण्डे नानालिंगा-ध्याय~~, पृ० २६४

सदाचार के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। पर संस्कृति के स्वतंत्र रूप की अपेक्षा इसे आलोच्य छायावादी कवियों के साहित्य के आधार पर ही विवेचन करना अधिक युक्तिसंगत होगा।

प्रसाद--

जयशंकर प्रसाद के अनुसार "संस्कृति सौन्दर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।"[५] यह मानते हुए कि ज्ञानबोध विश्वव्यापी वस्तु है, इनके केन्द्र देश, काल और परिस्थितियों से तथा प्रधानत: संस्कृति के कारण भिन्न भिन्न अस्तित्व रखते हैं।[६] "भौगोलिक परिस्थितियाँ और काल की दीर्घता तथा उसके द्वारा होने वाला सौन्दर्य-सम्बन्धी विचारों का सतत अभ्यास एक विशेष ढंग की रुचि उत्पन्न करता है और वही रुचि सौन्दर्य-अनुभूति की तुला बन जाती है, इसी से हमारे सजातीय विचार बनते हैं और उन्हें स्निग्धता मिलती है। इसी के द्वारा हम अपने रहन-सहन, अपनी अभिव्यक्ति का सामूहिक रूप से संस्कृति रूप में प्रदर्शन कर सकते हैं। यह संस्कृति विश्ववाद की विरोधिनी नहीं क्योंकि इसका उपयोग तो मानव-समाज में आरम्भिक प्राणित्व-धर्म में सीमित मनोभावों को सदा प्रशस्त और विकासोन्मुख बनाने के लिए होता है। धर्मों पर भी इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है।"[७]

प्रसाद : निष्कर्ष--

१. सौन्दर्य बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।
२. कोई संस्कृति विश्ववाद की विरोधिनी नहीं।
३. सीमित मनोभावों को प्रशस्त करती है।

---

५. काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ६८
६. ,, ,, पृ० ६८
७. ,, ,, पृ० ६८

पंत--

पंत के शब्दों में कहा जा सकता है कि "संस्कृति मानव चेतना का सार पदार्थ है, जिसमें मानव जीवन के विकास का समस्त संघर्ष, नाम, रूप गुणों के रूप में संचित है, जिसमें हमारी ऊर्ध्वगामी चेतना या भावनाओं का प्रकाश तथा समतल जीवन और मानसिक उपत्यकाओं की छायाएं गुम्फित हैं, जिसमें हमें सूक्ष्म और स्थूल दोनों धरातलों के सत्यों का समन्वय मिलता है। संस्कृति में हमारी धार्मिक नैतिक तथा रहस्यात्मक अनुभूतियों का ही सार - भाग नहीं रहता, इसमें हमारे सामाजिक जीवन में बरते जाने वाले आचार-विचार एवं व्यवहारों के भी सौन्दर्य का समावेश रहता है।"[८]

पंत : निष्कर्ष--

१. मानव की चेतना का सार रूप है।

महादेवी--

महादेवी के शब्दों में -- "संस्कृति शब्द से हमें जिसका बोध होता है, वह वस्तुत: ऐसी जीवन-पद्धति है, जो एक विशेष प्राकृतिक परिवेश में मानव निर्मित परिवेश संभव कर देती है और फिर दोनों परिवेशों की संगति में निरन्तर स्वयं आविष्कृत होती रहती है। यह जीवन पद्धति न केवल बाह्य, स्थूल और पार्थिव है और न मात्र आन्तरिक, सूक्ष्म और अपार्थिव वस्तुत: उसकी ऐसी दोहरी स्थिति है, जिसमें मनुष्य के सूक्ष्म विचार, कल्पना भावना आदि का संस्कार उसकी चेष्टा, आचरण कर्म आदि के परिष्कार में व्यक्त होता है और फिर चेष्टा, आचरण आदि बाह्याचार की परि-

---

८. प- शिल्प और दर्शन, पृ० २०१

ष्कृति उसके अन्तर्गत पर प्रभाव डालती है।[९]

महादेवी : निष्कर्ष--

१. जीवन पद्धति है।
२. यह प्राकृतिक परिवेश में मानव परिवेश की संगति बैठाती है।
३. बाह्याचार की परिष्कृति एवं अन्तर्जगत पर प्रभाव से सम्बन्धित है।

निराला--

निराला ने प्रत्यक्ष रूप से संस्कृति की परिभाषा नहीं की, पर अपने साहित्य में जिस तरह संस्कृति शब्द का प्रयोग किया है उससे इसका अर्थ स्पष्ट होता है। उन्होंने तुलसीदास कालीन भारतीय संस्कृति व के विषय में कहा कि --

भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे--तमस्तूर्य दिङ्मण्डल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान ,[१०]

अर्थात् मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दू संस्कृति का जो ह्रास हो गया है, उसी का यहां वर्णन है।[११]

---

९. हिमालय, भूमिका, पृ० ११
१०. तुलसीदास, पृ० ११
११. ,, , टिप्पणी, पृ० ६३

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो मुसलमानों के द्वारा विजित किये जाने पर हिन्दुओं के जातीय संस्कारों का ह्रास हुआ । अतः कहा जा सकता है कि निराला जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं ।

निराला : निष्कर्ष–

१. जातीय संस्कार ही संस्कृति है ।

रामकुमार–

रामकुमार वर्मा ने संस्कृति की परिभाषा नहीं की । पर उन्होंने जिस "मानव संस्कृति" का उल्लेख किया है उससे उसका दृष्टिकोण स्पष्ट होता है । उनके अनुसार "मानव संस्कृति का विकास शताब्दियों से दो शक्तियों से प्रेरित होता रहा है । बुद्धि तत्व और भावना तत्व ।"[१२] साथ ही "भावना तत्व ने मानव को सहृदयता प्रदान की । इस सहृदयता से उसने काव्य, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र और मूर्ति तथा अनेकानेक भावना-प्रवण शिल्पों का निर्माण किया ।"[१३]

अंततः डा० वर्मा ने संस्कृति में जातीय संस्कार की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है ।[१४]

रामकुमार : निष्कर्ष–

१. संस्कृति के विकास में बुद्धि और भाव तत्व आवश्यक है ।

२. जातीय संस्कार की महत्ता स्वीकार की ।

---

१२. साहित्य चिन्तन, पृ० २४

१३. ,, ,, पृ० २६

१४. ,, ,, पृ० ८४

समग्र निष्कर्ष--

अत: उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने संस्कृति को सम्पूर्ण मानव चेतना के सार-रूप में ग्रहण किया। यह एक जीवन पद्धति है जिसके आधार पर सौन्दर्य बोध के दृष्टिकोण में विस्तार होता है। सौन्दर्य बोध के विस्तार में भी जातीय संस्कारों का बड़ा महत्व है। [१५] इन संस्कारों में मानव जीवन के संघर्ष, नाम, रूप, गुण तथा सामाजिक, धार्मिक, नैतिक आचार-विचार आदि सब कुछ आ जाता है।

वर्गीकरण के दृष्टिकोण से संस्कृति के वाह्य और आन्तरिक दो भागों में बांटा जा सकता है। पर आंतरिक विचार ही वाह्य आचार को प्रभावित करते हैं। बुद्धि पक्ष से सांस्कृतिक तत्व के चिन्तन एवं दार्शनिक पक्ष का (इसका) सुदृढ़ रूप (होता) है दूसरी ओर उसके भाव पक्ष के अन्तर्गत काव्य, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र, मूर्ति आदि कलाओं का सांस्कृतिक सम्पन्नता के लिए महत्वपूर्ण स्थान है। एक देश की संस्कृति का दूसरे देश की संस्कृति से

---

१५. संस्कार का पर्याप्त महत्व + प्राचीन ग्रन्थों में भी देखने को मिलता है।

छान्दोग्योपनिषद् (४-१६-१, २) में तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति के पूर्व ब्रह्मा वाचा..... मिलता है। प्रयोग बहुलता की दृष्टि से जैमिनी के सूत्रों (३. १३, ३, २, १५ व १७, ३. ८. १, ६.४२. ४४, ६. ३. २५, ६. ४, ३३, ६. ४. ५० व ५४, १०. १. २ व ११) में संस्कार का उल्लेख अधिक मिलता है जिसमें उसका आशय यज्ञ की उस क्रिया से है जिससे मनुष्य की शुद्धि होती है। शबर स्वामी ने भी अपने भाष्य में संस्कारों नाम स भवति यस्मिन्जाते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य (शबर भाष्य पृ० ६६०) (~~शबर स्वामी ने भी अपने भाष्य में~~) कहा है अर्थात् संस्कार से वस्तु या व्यक्ति किसी के योग्य बनता है तो यंत्र वर्तिककार कुमारिल की धारणा है कि --

" योग्यतां चादधाना: क्रिया: संकार इत्युत्यन्ते (यंत्रवर्तिक,

जातीय गुणों में अलग होने के कारणों पर भी छायावादी कवियों ने प्रकाश डाला उनकी दृष्टि में इसका कारण भौगोलिक परिस्थितियाँ और देश-काल गत अन्तर ही है जिनसे सजातीय विचारों की उद्भावना होती है। कदाचित यही कारण है कि सांस्कृतिक तत्व की एकता रहने पर भी विश्व में नाना संस्कृतियों का उद्भव और विकास संभव हो सका।

पिछले पृष्ठ का शेष--

पृ० १०७८) शंकराचार्य का कथन है कि--

" संस्कारोहि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयेनन वा"
(वेदान्त सूत्र शंकर १. १. ४) महाकवि कालिदास ने भी कुमार संभव के सर्ग १:२८ , सर्ग ७: ६ और रघुवंश के १५।३१ और २५:७१ तथा अभिज्ञान-शाकुन्तलम् के अंक ६ श्लोक में संस्कार को अधिक स्पष्ट रूप से प्रयोग किया जिसका अर्थ रमणीयता,शुद्धता और पवित्रता है। श्री काणे ने संस्कार को नए गुणों का उत्पादन कहा है जिससे दोष, पाप, अपराध आदि का निवारण होता है। धर्मशास्त्र का इतिहास अध्याय ६, पृ० १६१) कोशगत अर्थ में इसे -- शोधनं , परिष्कार: करणं, परिमार्जन, (आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश: रामस्वरूप शास्त्री) के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है।

अत: स्पष्ट है कि उपर्युक्त विवेचना में संस्कार (हरीत ने संस्कार को ब्रह्म संस्कार और दैव संस्कार दो भागों में विभाजित किया है। गौतम ने संस्कारों की संख्या ४० बताई है और अंगिरस ने मात्र २४ ही। ऐसे मुख्य १६ संस्कार हैं) के विभिन्न अर्थगत दृष्टिकोण भी संस्कृति में समाहित हैं क्योंकि संस्कारों की समष्टि ही संस्कृति है।

खण्ड १

अध्याय २— मानवता

मानवतावाद

आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने संस्कृति और मानवता को अनिवार्य रूप से सम्बन्धित किया। इसे संस्कृति का अनिवार्य एवं आवश्यक तत्त्व बताया और इसी भावना से प्रेरित होकर अपने काव्य और काव्येतर साहित्य में मानवता के विकास में बाधक सभी अमानवीय प्रवृत्तियों का घोर विरोध किया।

छायावादी कवियों के समक्ष मानवतावादी विचारधारा के रूप में `अतिमानव` (अरविन्द), `विश्वबन्धुत्व` (रवीन्द्र), आदर्श सामाजिक व्यवस्था (मार्क्स) से भी पूर्व पाश्चात्य विचारधारा के रूप में एक लम्बी परम्परा मिलती है। इस विचारधारा में मानवता शब्द का प्रथम प्रयोग सोलहवीं शताब्दी के रेनेसां काल के विचारकों द्वारा हुआ। बीसवीं शताब्दी में यह मानव प्राणी के भलाई के निमित्त विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। लेमान्ट ने मानवता के जिन मूलभूत दस तत्वों की चर्चा की है वे मानवता सम्बन्धी पाश्चात्य धारणा के अर्थ-विस्तार के परिचायक हैं।[१]

आधुनिक मानवतावादी पृष्ठभूमि में विभिन्न प्रतिक्रियाएं एवं प्रभाव दीख पड़ते हैं। नितान्त भाग्यवादी ईश्वरवादी दृष्टि की प्रतिक्रिया, विभिन्न धर्मों की आदर्श सौन्दर्य-वादी दृष्टि, प्रकृतिवादी विचारधारा, विज्ञान और उसकी उपलब्धियां, प्रजातांत्रिक विचारधारा और सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूकता, भौतिकवादी जीवन दृष्टि, पुनर्जागरण काल की मानवतावादी दृष्टि व्यक्ति की कार्यक्षमता उपलब्धियों पर दृढ़ आस्था और कला और साहित्य के विशाल परिप्रेक्ष्य में समन्वय से निर्मित इसका जन्म नवमानवतावादी विचारधारा के रूप में विकसित हुआ।

अपने पूर्व निर्मित स्वरूप में मानवतावाद -- रेनेसां का मानवतावाद, कैथोलिक या अन्तर्योजित मानवतावाद, व्यक्तिपरक मानवतावाद या प्रकृतिवादी मानवतावाद[२] की तत्सम्बन्धी विचारधारा से छायावादी मानवतावाद में पर्याप्त अन्तर दीख पड़ता है

१- The Philosophy of Humanism, Page 9.10.11

२- आलोचना का आलोचन शेषांक, पृ० ९८

क्योंकि छायावादी कवियों ने मानवतावाद को मात्र भौतिक स्तर पर ही नहीं स्वीकार किया और न 'विश्वबन्धुत्व'[3] को साधारण भाई-चारे के ही सीमित अर्थ में ग्रहण किया है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य विचारकों ने भौतिक दृष्टिकोण से प्रेरित हो मानव को केन्द्र में रख सारी प्रक्रिया, शोध, उत्पादन, सत्य तथा न्याय का मापदण्ड निर्धारित किया[4] था, जिसमें छायावादी कवियों की तरह आध्यात्मिकता का अंश नहीं देखने को मिलता क्योंकि उन्होंने आलोच्य कवियों की तरह मानवेतर सत्ता को स्वीकार नहीं किया था। पर अमानवीय यांत्रिकता का विरोध दोनों में देखने को मिलता है।

साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो मध्यकाल में समस्त सामाजिक व्यवस्था के धर्म से ~~अबूझ~~ आवृत होने के कारण मूल्य सम्बन्धी मापदण्ड दिव्य शक्तियों से संबंधित थे। उसमें उलझा मानव एक निरीह प्राणी था। कालान्तर में भी भारतेन्दु युग में साहित्यकारों ~~का~~ द्वारा मानवता संबंधी प्रश्न नहीं उठाया गया क्योंकि वह आधुनिक युग का संक्रान्ति काल है। द्विवेदी युग में मात्र इस विचारधारा की पीठिका का निर्माण हो रहा था। वर्ण, जाति, लिंग, भाषा, धर्म और राष्ट्रीयता के सीमित दायरे में ही परस्पर एकदूसरे के बीच शताब्दियों से खुदी खाइयों को भरने का जाने या अनजाने प्रयत्न हो रहा था। कालान्तर में यह विचारधारा विस्तार पाती गई। मानवीय सद्प्रवृत्तियों का विकास, व्यक्ति और समाज का दृष्टिकोण और एकदूसरे की सापेक्षिकता को मूल्यांकित करने पर धर्म,जाति ही नहीं, राष्ट्रीयता की भी सीमाएं और तत्सम्बन्धित सारे विवाद निरर्थक सिद्ध हो गए। इसी वैचारिक उपलब्धि के विकास क्रम में छायावादी कवियों द्वारा मानवतावादी विचारधारा का निर्माण हुआ। वैचारिक विकास की दृष्टिसे मानवतावादी विचारधारा की यह रूपरेखा प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार में देखने को मिलती है। अत: विश्लेषण की दृष्टि से आलोच्य कवियों को क्रमश: ही देखना अभीष्ट होगा।

३- Encyclopedia of religion and ethics, part 5, p, 727

४- The world book Encyclopedia, part H, P. 385

प्रसाद

जयशंकर प्रसाद के काव्य साहित्य में वैचारिक स्तर पर सर्वप्रथम कामायनी में ही सम्बन्धी विचारधारा की अभिव्यक्ति दीख पड़ती है। उन्होंने विश्वमानवता मानवता के निमित्त आनन्द को ही शिव रूप माना जो कि उनकी दृष्टि में मानवता का सर्वोच्च प्राप्य है। कदाचित् इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने मानव की उद्-भावना की जोकि कामायनी में भावी मानवता के अभ्युदय और विकास का प्रतीक है। कवि की धारणा है कि मानवता की समृद्धि के लिए विधाता की यह कल्याणी सृष्टि भूतल पर पूर्ण रूप से सफल हो, "[५] उसकी कीर्ति अनिल, भू, जल में भी विस्तार पाती जाय।"[६] इस लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त "अस्त व्यस्त शक्ति के विद्युत-कण का समन्वय कर समस्त मानवता विजयिनी हो जाय।"[७] इसीलिए श्रद्धा मनु को निर्भय होने का संदेश देती, "[८] साथ ही "अपने सुख को विस्तृत कर सबको सुखी बनाने"[९] की प्रेरणा देती है। यहां यह भी स्पष्ट है कि नितान्त व्यक्तिवादी विचारधारा पर आधारित कोई विकास नहीं कर सकता क्योंकि वैसी स्थिति में एकांगी स्वार्थ से प्रेरित होकर मानवता का लक्ष्य पाना तो दूर [१०] स्वयं वह अपना ही नाश आमंत्रित करेगा।

वैदिक परम्परा के अनुरूप सृष्टि के पीछे चैतन्य तत्व को निहित मान यहां मान-वता के गौरवपूर्ण भविष्य की धारणा मनु को अमृत-पुत्र मानकर की गई है किन्तु आधुनिक "नव मानवतावादी" [११] दृष्टि इससे कुछ भिन्न है। वह मनुष्य को निश्चित रूप से किसी अविनश्वर (अमृत) चिन्मय तत्व से ही उत्पन्न नहीं मानती वरन् प्रकृति और जड़ पदार्थ की परिणति के रूप में उसकी व्याख्या करने की चेष्टा करती है। कवि का दैव सृष्टि की ओर भी आकर्षण नहीं दीख पड़ता क्योंकि कामायनी चिन्ता सर्ग में विनाशमय प्रवृत्तियों [१२] के कारण ही उसका अन्त दिखाया गया है।

उनके नाटकों से भी मानवतावादी विचारधारा की पुष्टि होती है। इससे पता चलता है कि काव्य के अतिरिक्त नाटक साहित्य में भी नवमानवता का स्वरूप वैचारिक

५- कामायनी, पृ० ६८
६- वही, पृ० ६८
७- वही, पृ० ६९
८-कामायनी, पृ० ६८
९-वही, पृ० १५२
१०-वही, पृ० १५३
११-कामायनी, पृ० १५०
१२-वही, पृ०१८, १९, २०, २३

उपलब्धि के रूप में अभिव्यक्ति पाने लगा था। इसे विशाख के संवाद में भी देखा जा सकता है जोकि मनुष्य को मनुष्य के स्तर पर देखना चाहता है। साथ ही वह दीनता, अपमान, विकार और पशुता से व्यक्ति को ऊपर उठने का संदेश देता है।[१३] दूसरी ओर मातृगुप्त के माध्यम से स्कन्दगुप्त में भी यह कथन कि 'मनुष्य! तुझे हिंसा का उतना ही लोभ है, जितना एक भूखे भेड़िये को! तब भी तेरे पास उससे कुछ विशेष साधन है -- छल-कपट, विश्वासघात, कृतघ्नता और पैने अस्त्र इनसे भी बढ़कर प्राण लेने की कला कुशलता।'[१४] ----- मानवता की लक्ष्य प्राप्ति के निमित्त मनुष्य को इन सबका त्याग करना होगा।

प्रसाद ने मानव और मानवता की चरम उपलब्धि को किसी भी वस्तु से ऊँचा माना इसका प्रभाव पद्मा के संवाद में भी देखा जा सकता है कि -- 'मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।[१५] समस्त मानवी सृष्टि करुणा के लिए है[१६] और उपकार, करुणा, समवेदन और पवित्रता मानव हृदय के लिए ही बने हैं।'[१७]

उक्त उद्धरणों में प्रसाद की मानवतावादी दृष्टि का आन्तरिक स्वरूप स्पष्ट होता है और उसके स्रोत का भी संकेत मिलता है। अहिंसा, करुणा बौद्ध मत की ओर संकेत करती हैं और उपकार, पवित्रता, समवेदना आदि वैदिक जीवन के आदर्शों की ओर। प्रसाद ने अपनी सार-ग्राहिणी दृष्टि से मानवता के केन्द्रीय रूप को लक्षित किया था। स्वाभिमान की चेतना और पशुता के स्तर से ऊपर उठने की स्वाभाविक वृत्ति को उनके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण स्थान देखने को मिलता है।

तितली, कंकाल और इरावती में भी कुछ ऐसे स्थल हैं जिनसे उनकी इस विचारधारा की पुष्टि होती है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मानवता की प्राप्ति है। यह तभी संभव है जब मनुष्य अपनी सीमित परिधि से निकल कर संपूर्ण समाज की 'कल्याण-कामना में[१८] लगे। पर जब जीवन के केवल एक पार्श्व-चित्र से उपस्थित होकर मनुष्य, दुर्बलता को उसकी अन्य संभावनाओं से ऊपर कर लेता है तब उसकी स्वाभाविक गति जकड़ी-सी बन जाती है।[१९] इसलिए श्रेणीवाद, धार्मिक पवित्रतावाद, आभिजात्यवाद इत्यादि अनेक

१३- विशाख, पृ० २१   १६- अजातशत्रु, पृ० २४   १९- इरावती, पृ० १०२

१४- स्कन्दगुप्त, पृ० ८५   १७- वही, पृ० ६५

१५- अजातशत्रु, पृ० २५   १८- तितली, पृ० १२६

रूपों में फैले हुए सब देशों के भिन्न-भिन्न प्रकार के जातिवाद [20] को दूर कर मानवता के नाम पर सबको गले [21] लगाने की आवश्यकता है ।

प्रसाद : निष्कर्ष

१- आनन्द ही मानवता का सर्वोच्च प्राप्य है ।

२- मानवता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए `मानव` की उद्भावना की गयी । यह भावी मानवता का प्रतीक है ।

३- मानवता का लक्ष्य सुख के असीम विस्तार में सबको सुखी बनाते हुए अपने को सुखी बनाने में है ।

४- नितान्त व्यक्तिवादी विचारधारा मानवता के विकास में बाधक है । इसके लिए आवश्यक यह है कि मनुष्य पशुता से विरत होकर मनुष्यता के स्तर पर जीवन व्यतीत करे । यह आग्रह देवत्व की ओर नहीं है क्योंकि प्रसाद ने मानव सृष्टि के चरम विकास में ही देव सृष्टि की अपूर्णताओं के पूर्ण होने की कल्पना की है ।

५- मानव, श्रद्धा, विशाख, मातृगुप्त और पद्मा प्रसाद की मानवतावादी विचारधारा के स्पष्टीकरण में सहायक हैं । इन्हें इस विचारधारा के प्रतीक रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है ।

पंत

मानवतावादी विचारधारा का जन्म तत्कालीन समाज के अमानवीय तत्वों के विरोध में हुआ । कवि समाज से संतुष्ट नहीं था । यही कारण है कि उसने जिस त्रसित युग-मानव को प्रतिनिधि रूप में चित्रित किया है वह भूख से त्रसित जीर्ण-शीर्ण इतना दुर्बल है कि अपने पैरों पर ठीक से चल सकने में भी असमर्थ है । [22] कवि की विचारधारा ऐसे मानव को देख आक्रान्त हो उठती है । समाज में इस दयनीय स्थिति के कारण स्वयं उसके सदस्य हैं । मानव ही मानव का सर्वाधिक भक्षक है । उसकी

२०- कंकाल, पृ० २३५

२१- वही, पृ० २३५

२२- ग्राम्या, पृ० ३०

बुद्धि भौतिक मद से भ्रान्त हो गई है। यही कारण है कि वह दानव बनकर अंधाधुन्ध आत्मघात करने का प्रयत्न कर रहा है। शोषक-शोषित में युग विभक्त होकर विभिन्न जाति-पांति, वर्ग-श्रेणी में शतशः खण्डित हो गया है।[२३] जीवन-रस और एकता खो गई है। अनेकता व्याप्त है। जन अशांत है।[२४] पर प्रवंचना यह है कि यहां मूढ़, असभ्य, उपेक्षित और दूषित जन ही उपकारक हैं। दानी, धार्मिक, पंडित, उपदेशक लोकप्रतारक हैं, यही कारण है कि इस देश में प्रकृति, धाम, तृण-तृण, कण-कण प्रफुल्लित और जीवित रहने के बावजूद भी अकेला मानव ही चिर विषण्ण जीवन-मृत सा प्रतीत होता है।[२५] देश-काल पर जय पाकर भी स्वयं वह हृदय से मानव नहीं रह गया है[२६] क्योंकि उसने युगों से अपने पशु-तन को विभिन्न नैतिक कहे जाने वाले बंधनों से जकड़ रक्खा है। पर अब पशु-नर भी युगों के गर्हित जीवन से विद्रोह कर उठा है कि वह मानव जीवन का लांछन, रीति नीतियों का निर्मम और अनुचित शासन नहीं सहन करेगा।[२७] यह विद्रोह नवयुग का सूचक है।[२८]

मनुष्य भौतिक वैज्ञानिक उपलब्धियों पर गर्व करता है। पर इन उपलब्धियों से क्या लाभ यदि वह त्रिशंकु और संपाति सा ही बना रहे, आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सके, धरा के प्रति अपना दायित्व न निभा सके और ग्रहों पर प्रभुत्व की महत्वाकांक्षा रखे? दूसरी ओर आणविक युग के सैनिक अस्त्र-शस्त्र, घृणा, स्पर्धा, हिंसा के बीज लिए मानवता को केतु की तरह लीलने को अग्रसर हो लोग प्रलयकारी प्रक्षेपास्त्रों की रचना कर रहे हैं।[२९] युवकों का मन द्वेष दग्ध कुंठित है। वे आत्मस्वाभिमान से रिक्त, पराजित, हताश, अहमन्यता के पीछे पागल हैं।[३०] इसलिए विश्व मानवता की शक्तियों को खो कर ह्रास और विघटन की ओर अग्रसर हो रहा है, मानव मन अणु-ध्वंस प्राय युग से गुजर रहा है।[३१] पंत के अनुसार मानवतावादी विचारधारा के निर्माण हेतु उपर्युक्त सभी अमानवीय विसंगतियों को हटाना होगा।

२३- शिल्पी, पृ० ६३
२४- स्वर्णकिरण, पृ० ८२
२५- चिदंबरा, पृ० ६७
२६- चिदंबरा, पृ० ६८
२७- वही, पृ० ५४
२८- वही, पृ० ४६
२९- लोकायतन, पृ० ३७०
३०- वही, पृ० ३६
३१- वही, पृ० ६४१

यदि उनके साहित्य के आधार पर मानवतावादी विचारधारा का विश्लेषण करें तो उच्छ्वास, ग्रन्थि, वीणा, पल्लव और गुंजन में यह विचारधारा नहीं देखने को मिलती । सर्वप्रथम मानवतावादी विचारधारा युगान्त में मिलती है और बाद की रचनाओं में यह क्रमश: विस्तार पाती गई ।

पंत के अनुसार सभी आदर्श की सीमाएं हैं, पर जीवन सीमाविहीन है । मनुष्य में कमी स्वाभाविक है । पर उसमें दोष के अतिरिक्त गुण भी हैं । जहां तक मनुष्यत्व का प्रश्न है जीवों के प्रति आत्मबोध ही मनुष्य की परिणति है ।[३२] विद्या, वैभव, गुण विशिष्टता मानव के भूषण हैं किन्तु बिना जीव प्रेम के ये सब व्यर्थ हैं ।[३३] युग के मनुष्य ने मानवता की कोमल पहचानी और जाति, वर्ग, श्रेणी वर्ग की दुर्धर भित्तियों को तोड़ कर वह बाहर निकला ।[३४] जीवन की समस्त क्षुद्रता मानव जीवन से मिट गई ।[३५] अब कवि नव जीवन की नव इन्द्रिय मांग करता है जिससे वह नव मानवता का अनुभव कर सके ।[३६] चेतन उपचेतन मन पर विजय पा सके[३७] और जीवन निर्माण कार्य में सतत रत मंगलमय स्वर्ग रच सके । जिससे मनुष्य जीवन में मानव ईश्वर के रूप में अवतरित होकर धरा पर स्वर्णयुग का सृजन कर सके ।[३८]

मानवता की पहली शर्त एकता और इसके विपरीत भिन्नता दानवता की निशानी है ।[३९] यह एकता, जाति, वर्ण, धर्म एवं विभिन्न संकुचित दायरों को मिटाती है । युग मानव को मृत योनि के संघर्षों से मुक्त करती है ।[४०] उसकी दृष्टि में जाति, वर्ण, और धर्म के लिए रक्त बहाना बर्बरता है, कितना अच्छा हो यदि हम हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई कहलाना छोड़ दें और केवल मानव जाति के रूप में धरा पर निवास करें ।[४१] क्योंकि मानव का परिचय केवल उसकी मानवता है,[४२] जिसे कवि ने प्रकृति, विहग, सुमन से भी सुन्दरतम संबोधित किया है ।[४३]

३२- युगवाणी, पृ० ३०
३३- वही, पृ० ३०
३४- ग्राम्या, पृ० १२
३५- वही, पृ० १२
३६- वही, पृ० १०१
३७- ग्राम्या, पृ० १०८
३८- स्वर्णकिरण, पृ० ८२
३९- स्वर्णधूलि, पृ० १८
४०- वही, पृ० २७
४१- वही, पृ० ३१
४२- युगपथ, पृ० १३
४३- वही, पृ० ५०

सम्पूर्ण सृष्टि की उपलब्धि के रूप में मानवता एक स्थायी मूल्य है ।[४४] उत्तरा तक आते-आते स्वाधीन देश की गौरव-गाथा गाता [४५] कवि यह भी प्रचारित करता है कि भारत सकल मानवों का घर भी हो,[४६] जिसके निवासियों का अन्तर करुणा की धारा से उर्वर हो ।[४७]

पंत की नवमानवता के मन:शास्त्र का एक सामाजिक पक्ष भी है । भविष्य में जिन मूल्यों पर मनुज के रागात्मक सम्बन्ध निर्धारित होंगे उसमें अवचेतन की संकीर्णताओं के और रूढ़िरीतियों के बंधन कुल जाएंगे[४८] क्योंकि परिस्थितियों की ही संगठित चेतना पर जीवन मूल्य अब अवलंबित हैं । सौंदर्य कला मानव के अन्तर में विभिन्न आदर्शों का रूप ग्रहण कर संयोजित होती है ।[४९]

नव मानवता को इस धरा पर लाने में कलाकार का भी बहुत बड़ा हाथ है, इसलिए उसे लोक-नियति निर्माण करने वाला जागृत कलाकार बन दरिद्रता को पृथ्वी से निर्वासित करना है । कला-चेतना इस लोक-जागरण की प्रतीक्षा कर रही है । कलाकार को भी आदर्शवादी मानव जीवन की रूपरेखा खींच उसे भू-पर व्यापक रूप देना है । इस रूप की पूर्णता में कवि विश्वयुद्ध से होने वाले विघटन की कल्पना को भी वर्जित करता है ।[५०] उसकी दृष्टि में यदि युद्ध है तो वह नये और पुराने मूल्यों के संबंध में मानव के भीतर और बाहर चल रहा है ।[५१]

कवि का विश्वास है कि सत्य, अहिंसा से मानव-मन अवलोकित होगा, अमर प्रेम के मधुर स्वर्ग की प्राप्ति होगी[५२] और राष्ट्र जाति धर्म की सीमाओं से ऊपर जग में लोकोत्तर मानवता का निर्माण[५३] कर सकेगा । वह गाँधीवाद का आभारी है क्योंकि उसने युग को मानवता का नव मान[५४] दिया है, जिसे लेकर नैतिकता पर जय पाना बाकी है ।[५५] कदाचित् इसीलिए कवि स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार करता है कि 'मुझे

४४-युगपथ, पृ० १३६ ४८-रजत शिखर, पृ० २१ ५२-चिदंबरा, पृ० ३७
४५-उत्तरा, पृ० ६ ४९-शिल्पी, पृ० ३२ ५३-वही, पृ० ४३,५६
४६-वही, पृ० १७ ५०-वही, पृ० ३२ ५४-वही, पृ० ५०
४७-वही, पृ० ७८ ५१-वही, पृ० ५६ ५५-वही, पृ० ८४

उस पार बड़ी मानवता के लिए सत्य का बोहित्थ खेना है।[५६] वह नव मानवता को धरा पर स्थापित करे[५७] उसकी नूतन भूमिका रचने[५८] की प्रेरणा देता है जिससे वह आत्मजयी हो।[५९] आज युग के समक्ष श्रेय और प्रेय का गुरु प्रश्न उपस्थित है और समस्त व्यक्तियों का नये रूप में सानुलिककरण अपेक्षित[६०] हो गया है। जिससे जन-जीवन के प्रति अनन्य आकर्षण के साथ मानवता प्रेमी और मंगलकामी कर्म की चेतना के प्रति सजग हो सकें।[६१] पर यह तभी संभव है जब मनुष्य के अन्दर सहृदयता का सौन्दर्य जो, क्षमा, करुणा, समता, त्याग और इन सबसे सर्वोपरि ईश्वर प्रेम[६२] और मानव एक परिवार के रूप में कल्पित हो[६३] जिससे सभी परिस्थितियों की सीमाओं को पार कर पृथ्वी की दूरी देश काल के पाश से मुक्त हो एक-दूसरे के पास आयें[६४] क्योंकि आधुनिक युग में सारे सामाजिक संबंध, आस्था, विश्वास, नये मूल्यों के स्वर्ण-प्ररोह के रूप में बदल रहे हैं।[६५] समाज को मानवता का यह रूप प्राप्त करना है, इसी में भू-जीवन का श्रेय है।[६६] समुन्नत मनुष्यत्व के ध्येय के अनुसार वर्ग विहीन समाज की रचना करनी होगी।[६७] नवीन जीवन पद्धति का विकास करना होगा,[६८] तभी समस्त श्रमरचना विकास को एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ाने में समर्थ होगी।[६९] ऐसी अवस्था में आर्थिक स्पर्धायें भी सामाजिक चेतना में लय हो भू-जीवन के विकास में सहायक होंगी, भेद, भाव, भय, राग, द्वेष का क्षय होगा[७०] और वर्ग सभ्यता जीवन मृत हो जायेगी[७१] कवि की सतत विकसित हो रही मानवीय पृष्ठभूमि पर दृढ़ आस्था है[७२] क्योंकि उसका विश्वास है कि अतिमानव की लक्ष्यप्राप्ति हेतु नव-मानवता जन्म ~~स~~ ले चुकी है।[७३] यद्यपि विभिन्न परिस्थितियों के कारण परम्परागत मानव अपनी समष्टिगत पूर्णता में सभी गुणों का नितान्त उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सका[७४] पर कवि की दृष्टि में यह संदेह

५६-कला और बूढ़ा चांद, पृ० २०
५७-लोकायतन, पृ० १५
५८-वही, पृ० १६
५९-वही, पृ० १७८
६०-वही, पृ० २३८
६१-वही, पृ० २४४
६२-वही, पृ० २७७
६३-लोकायतन, पृ० ३००
६४-वही, पृ० ३७३
६५-वही, पृ० ३७८
६६-वही, पृ० ३८०
६७-वही, पृ० ४०१
६८-वही, पृ० ४५५
६९-लोकायतन, पृ० ५४१
७०-वही, पृ० ५७६
७१-वही, पृ० ६५३
७२-वही, पृ० ~~६४५~~ ६६५
७३-वही, पृ० ~~५०१~~ ६७५
७४-वही, पृ० ५०१

नहीं किया जा सकता कि इस नव मानव को शान्ति मृत्यु और अमरता से परे है।[75]समस्त भू-मानस इस नवमानवता का स्वागत करता है, क्योंकि उनकी दृष्टि में स्वयं शाश्वत ईश्वर ही अब इस रूप में अभ्यागत बन कर आ गया है।[76] इसलिए कवि जगत के सारे विषाद को प्रेम देवता के चरणों में अर्पित कर देता है,[77] यह कवि की वैचारिक उच्च उपलब्धि कही जाएगी।

पंत : निष्कर्ष

१-मानव ही मानव का भक्षण कर, अब शोषक, शोषित में वर्ग विभाजन कर रहा है। देशकाल पर जय पाकर भी वह स्वयं हृदयहीन हो गया है। यह हृदयहीन मानव ही अपने खोखले जीवन मूल्यों से सचेत होकर अपने में विसंगति का अनुभव करता पुराने रूढ़िगत मूल्यों से संघर्षशील है।

२-मानवतावादी विश्व विचारधारा का जन्म समाज में अमानवीय तत्वों के विरोध में हुआ। इस विचारधारा में जीवों के प्रति एकता के स्तर पर आत्मबोध ही मनुष्यत्व की सर्वश्रेष्ठ परिणति है।

३-इसका लक्ष्य प्राणि के जाति, धर्म के बंधन को तोड़ केवल उसे मानवता के स्तर पर मूल्यांकित करना है। मानव का परिचय केवल मानवपन है जो कि मानवीय सद्वृत्तियों की अन्विति कही जा सकती है। यह सृष्टि के विकास की सर्वोच्च स्थिति है, साथ ही संश्लेषण-विश्लेषण दोनों ही पद्धतियों के आधार पर प्रकृति की सुन्दरतम उपलब्धि भी है।

४-विश्वास है कि जगत में लोकोत्तर मानवता का निर्माण होगा। अरविन्द और गाँधी इस लक्ष्य प्राप्ति की एक दिशा हैं।

५-विश्वबन्धुत्व के आधार पर समस्त भू-मानव एक परिवार के रूप में परिकल्पित हैं जिसमें अन्तत: समस्त भेद, भाव, भय, राग, द्वेष का क्षय होगा।

६-नवमानवता जन्म ले चुकी है और उत्तरोत्तर विकास के स्तर उद्घाटित होते जा रहे हैं।

७५- लोकायतन, पृ० ६७८

७६- वही, पृ० ६४७

७७- वही, पृ० ६८०

निराला

निराला काव्य साहित्य में यदि मानवता सम्बन्धी धारणा को विश्लेषित किया जाय तो पता चलता है कि मानव समाज में फैली हुई दुर्व्यवस्था के प्रति कवि को क्षोभ था क्योंकि जन सामान्य भिक्षुक[78] की निःसहाय अवस्था के कारण मानवीय मूल्यों की प्राप्ति में असमर्थ दीख पड़ता है। व्यक्ति समाज में साधनहीन, मानवीय प्रवृत्तियों से च्युत मात्र दूसरों के दान[79] पर जीता है। धार्मिक कहे जाने वाले शिव की बारहोंमास पूजा करने वाले, रामायण का पारायण कर 'श्रीमन्नारायण' कहने वाले व्यक्ति भी बंदरों को मालपुए खिलाकर भूखे भिक्षुक की तृष्णा शान्त करने के उद्देश्य से आगे बढ़ते हुए देखकर उसे घृणा से भगा कर देते हैं।[80] कदाचित् मनुष्य में आ गयी ऐसी अमानवीय प्रवृत्तियों के कारण स्वयं कवि अपने को इतना असहाय पाता है कि 'हो गया व्यर्थ जीवन मैं रण में गया हार' कहकर भाग्यवाद से अपने को सम्बन्धित करता है कि सभी अपने भाग्य की रचना पर ही चल रहे हैं।[81] अर्थात् जो कुछ हो रहा है वह नियति के कारण ही, फिर भी वह अमानवीय प्रवृत्तियों से संघर्षरत रहता है, अन्त में उसे विपरीत परिस्थितियों के कारण असफलता ही प्राप्त होती है।[82] मानवता के विकास की यही बाधक स्थिति है जिसके सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि शत्-शत् वर्षों के बाद भी देश मानवता की उपलब्धि में कुछ भी सार्थकता न प्राप्त कर सका। व्यक्ति व्यक्ति में परस्पर भेद के कारण दानवता का अंधकार ही बढ़ा।[83]

मानवता के खंडहर आज भी अतीत की स्मृतियों में खड़े[84] अपने मृत्यु पर अपनी संतानों से बूंद भर पानी को तरसते हुए आँसू बहा रहे ~~हैं-जिसे~~।[85] पर युग की दानवता को भी अपने मानवीय मूल्यों पर गर्व है जिसे हम मानवता का एक पक्ष मानते हैं, वही सभ्यता वैज्ञानिक जड़ विकास पर ही गर्व करती हुई नष्ट होने की ओर अग्रसर है। मानव का लक्ष्य केवल पैसा है। स्थल, जल, अम्बर को रेल-तार बिजली जहाज नभयानों से भर मानव व्यर्थ ही दर्प कर रहा है। वर्ग से वर्ग और राष्ट्र से राष्ट्र अपने विचक्षण स्वार्थ

७८- परिमल, पृ० १३३
७९- अनामिका, पृ० २४
८०- वही, पृ० २५
८१- अनामिका, पृ० ८४
८२- वही, पृ० ११८
८३- गीतिका, पृ० ८१
८४- अपरा, पृ० १५१
८५- वही, पृ० १५२

के निमित्त लड़ रहे हैं ।[८६] कुकुरमुत्ता से कवि की इस विचारधारा की पुष्टि होती है कि समाज में एक ऐसा वर्ग भी है जो अपनी इच्छाओं को दूसरे पर लादना चाहता है । जीवन मूल्य यहीं त्रसित होते हैं और इसी त्रास के कारण सत्य का पक्ष रखते भी उससे 'मुआफ करें हुजूर'[८७] जैसे शब्दों का व्यवहार करना पड़ता है । वह हवा, पानी और रौशनी जैसी प्राकृतिक वस्तुओं पर भी पहले अपना अधिकार समझता है ।[८८]

उपर्युक्त नकारात्मक दृष्टिकोण के विपरीत स्वीकारात्मक रूप से मानवता के विधायक तत्वों की ओर दृष्टिपात करते हुए मानवता विषयक उनकी धारणा परिमल की ध्वनि शीर्षक कविता से स्पष्ट होने लगती है जिसमें उन्होंने विश्वास व्यक्त किया है कि मानवता का अंत नहीं होगा । इसी आस्था एवं विश्वास के शब्दों में 'अभी न होगा मेरा अन्त'[८९] कह कर अपनी सैद्धान्तिक एवं वैचारिक दृढ़ता प्रकट की है । उसके अनुसार मानवीय मूल्यों के स्थापनार्थ 'दो टूक कलेजे के करता पछताता'[९०] जैसी स्थिति से सामान्य जन को उबारना होगा । अन्यथा जिस समाज में मुट्ठी भर दाने के लिए भूख मिटाने के निमित्त फटी पुरानी झोली फैलाए लोग होंगे उस समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना किस प्रकार स्थापित हो सकेगी ।

कवि जन-जीवन को संबोधित करता है कि दासता की बेड़ियाँ कट गयीं । रात बीत गई । दिन आया इसलिए जागो फिर एक बार ।[९१] पर यह जागरण मात्र निष्क्रिय जागरण न हो जैसा कि सेवा प्रारंभ से भली भाँति स्पष्ट होता है । उपर्युक्त मूल्यों के स्थापनार्थ समाज में निःस्वार्थ सेवा की भी नितान्त आवश्यकता है ।[९२] तभी व्यक्ति जग की अपार सुन्दरता का सौंदर्य लाभ कर सकेगा ।[९३]

पर कालान्तर में कवि की विचारधारा अमानवीय मूल्यों का उग्र विरोध न कर संघर्षरत जीवन से त्रस्त हो आत्मसमर्पण की भावना लिए हुए दीख पड़ती है । कदाचित् इसीलिए वह 'उन चरणों में मुझे दो शरण, करूं लोक-आलोक सन्तरण'[९४] और दलित जन पर करो करुणा[९५] के शब्दों में आर्तनाद करता है । जिससे त्रस्त मानव समुदाय

८६- अपरा, पृ० १८१
८७- कुकुरमुत्ता, पृ० २४
८८- नये पत्ते, पृ० २०
८९- परिमल, पृ० १२०
९०- परिमल, पृ० १३२
९१- वही, पृ० २०१
९२- अनामिका, पृ० १८२
९३- गीतिका, पृ० १३
९४- अणिमा, पृ० १२
९५- वही, पृ० १४

मानव मूल्यों की प्राप्ति में समर्थ हो सके और 'घोड़े के पेट में बकुलों को आना पड़ा'[९६] जैसी परिस्थिति समाप्त हो जाय। कवि के अनुसार वाल्मीकि ने मंत्रों को छोड़ मानव को मान दिया,[९७] कृष्ण ने जमीं पकड़ी, इन्द्र की पूजा की जगह गोवर्धन को पुजवाया, मानव और पशु को मान दिया, हल को बलदेव ने हथियार बनाया, कन्धे पर डाला हरी-भरी को,[९८] पर इतना कह कर वह इस बात का भी स्पष्टीकरण कर देता है कि वे प्रेरणा के प्रतीक थे। यहाँ तक पहुँचने में अभी दुनिया को देर है।[९९] आराधना तक मानवीय मूल्यों की खोज त्रस्त हो चुकी थी, उसकी वेदना 'मरा हूँ हजार मरण पाई तब चरण शरण'[१००] तथा भौतिक मूल्यों से 'हार गया ज्यों मैं उस पार गया'[१०१] का भाव मिलता है। मानवीय मूल्यों की खोज और उपलब्धि के प्रति एक निराश भाव ग्रहण कर 'काम रूप हरो काम, जपूँ नाम, राम, राम'[१०२] राम के हुए तो बने काम, संवरे सारे धन, धान, धाम'[१०३] 'विपदा हरण हार हरि हे करो पार,'[१०४] 'दुख हर दे जल शीतल सर दे! वर दे! पावन द उर को कर दे'[१०५] 'मन का समाहार करो विश्वाधार'[१०६] और 'हरि भजन करो भू-भार हरो'[१०७] के शब्दों में अज्ञात सत्ता के प्रति गहरी आस्था की अभिव्यक्ति की गई है।

समाज में परिवर्तन के निमित्त अर्चना तक आते-आते वह जिन मानवीय मूल्यों के लिए एक संघर्ष लेकर चला था उसकी उपलब्धि खोज-खोज कर मानव हारा[१०८] के रूप में उपस्थित हुई, कदाचित् समाज के विरोधी तत्वों से सतत् संघर्ष करने की प्रवृत्ति के कारण ही, 'दुखता रहता है अब जीवन'[१०९] कह कर कवि संतोष करता है फिर भी उसमें मानवीय मूल्यों के निमित्त अनास्था नहीं दीख पड़ती।

निराला के उपन्यास साहित्य में मानवतावादी विचारधारा से प्रेरित होकर वर्णित सामाजिक अव्यवस्था के प्रति अपनी असहमति ही व्यक्त की गई है।[११०] इस विषय में

९६-नये पत्ते, पृ० २३
९७- वही, पृ० ३१
९८- वही, पृ० ३१
९९- वही, पृ० ३२
१००-आराधना, पृ० ६
१०१- वही, पृ० १५
१०२-आराधना, पृ० १४
१०३- वही, पृ० २०
१०४- वही, पृ० २१
१०५- वही, पृ० २८
१०६- वही, पृ० ४६
१०७- वही, पृ० ५१
१०८-आराधना, पृ० ४
१०९- वही, पृ० २२
११०- निरुपमा, पृ० ६

प्रत्यक्ष रूप से उनके कहानी साहित्य में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उनके पात्र जाति की संकीर्णता से लड़ते हैं।[१११] विधवा नारी पर किए गए अत्याचार का विरोध करते हैं[११२] दूसरों के जीवन को सुखी बनाने के लिए अट्ठारह हजार खर्च कर देते हैं।[११३] नारियां भी धर्म पहचानती हैं।[११४] व्यक्ति अपने धर्म को ही सर्वोपरि समझ कर समाज के धर्म संबंधी झूठे मूल्यों को नकारता है।[११५] पगली को भी मरने से बचाता है।[११६] अमीर द्वारा गरीब पर किए गए अत्याचार का प्रतिकार करता है।[११७] दूसरों की भलाई करता है। स्वयं स्वयं कष्ट सह कर भी दूसरों की मदद करता है।[११८] कुल्ली भाट का कुल्ली और 'मैं' भी अन्य किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा प्रेम की भावना को अधिक महत्व देते हैं।[११९] यह मानवता का ही एक अंग है। बिल्लेसुर बकरिहा में तो कर्म ही मानवता की सबसे बड़ी कसौटी माना गया। पर यहां प्रगतिवाद से प्रभावित होने के विपरीत आध्यात्मिक भावना की उपेक्षा की गई है।

निराला : निष्कर्ष

१- प्रेम और श्रम के आधार पर स्थापित सामाजिक व्यवस्था मानवता की खरी कसौटी है, क्योंकि इसमें शासक-शासित, शोषक-शोषित का भेदभाव नहीं रहेगा।

२- समाज की दुर्व्यवस्था से असंतुष्टि है, क्योंकि वह मानवता के विकास में बाधक है। दु:ख है कि सत्-सत् वर्षों के विकास-क्रम में भी देश मानवता को उपलब्धि न कर सका। आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियां सभ्यता के लिए गर्व की वस्तु हो सकती हैं पर इनमें आत्मिक जीवन के विकास के संबंध में अधिक संगति नहीं दीख पड़ती।

३- मानवीय तत्त्व अमानवीय प्रवृत्तियों से सतत् संघर्षशील है यह सृष्टि के विकास का क्रम है।

४- मानवता को समाज के नकारात्मक परिप्रेक्ष्य में ही विश्लेषित किया गया है। इसकी उपलब्धि के लिए नि:स्वार्थ सेवा की भावना आवश्यक है।

१११- लिली, पृ० २१ | ११४-लिली, पृ० ५६ | ११७-देवी, पृ० ५६
११२- वही, पृ० २५ | ११५- वही, पृ० ८३ | ११८-वही, पृ० १३१
११३- वही, पृ० ३७ | ११६- देवी, पृ० ८ | ११९-कुल्ली भाट, पृ० ८६

५- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी स्मरण दिलाया गया है । विश्वास है कि मानवता का अन्त नहीं होगा, पर कालान्तर में यह विश्वास त्रस्त दीख पड़ता है और पुरुषार्थ ईश्वर के समक्ष कातरता में परिणत हो गया है ।

महादेवी

महादेवी वर्मा के काव्य साहित्य में तो नहीं पर उनके गद्य साहित्य में मानवीय प्रवृत्तियों के विकास में बाधक शक्तियों पर पर्याप्त रूप से प्रकाश पड़ता है । उनके अनुसार परिवार में व्यक्ति जब एक दूसरे से जलने लगता है तो यह अमानवीय प्रवृत्ति का द्योतक कहा जा सकता है । इसी प्रवृत्ति से वशीभूत भक्तिन के 'जेठ जिठौत'[१२०] उसकी संपत्ति पर अनायास ही आँख गड़ाए हैं ।[१२१] आर्थिक दृष्टि से भी सभी इतने कमजोर हो जा चुके हैं कि पौष्टिक भोजन न मिलने से नाना व्याधियों ने उन पर अपना अधिकार कर लिया है ।[१२२] पति अपनी पत्नी पर अत्याचार करता है । बिबिया[१२३] के रहते दूसरी पत्नी लाता है और पति और सौत दोनों का भारवहन बिचारी बिबिया को ही करना पड़ता है । ऐसी ही अमानवीय अत्याचारों को न सहन कर सकने में असमर्थ 'वह' रान द्रौपदीघाट पर आत्महत्या के लिए गई । यह मानवता के नाम पर कलंक ही कहा जाएगा ।[१२४] मारवाड़ी विधवा बहू[१२५] बिन्दा[१२६] सबिया[१२७] बिट्टो[१२८] अट्ठारहवर्षीय लड़की और बारह दिन का नाती[१२९] पत्नीत्व की चोरी करने वाली अबोध स्त्री[१३०] पर समाज की ओर से होने वाले अत्याचार को मानवता का समर्थन अभी भी नहीं प्राप्त हो सकता ।

यह भी स्थिति की विडम्बना ही है कि यदि दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिंदूर धुल गया तो उसके लिए संसार ही नष्ट हो गया । यह ऐसा अपराध है जिसके कारण उसे मृत्यु-दण्ड से भी भीषणतर दण्ड भोगते हुए तिल-तिल घुल कर जीवन के शेष युग बन जाने वाले क्षण व्यतीत करने होते हैं ।'[१३१] नारी जीवन की इस करुण कहानी का इससे

१२०-स्मृति की रेखाएं, पृ० ६
१२१- वही, पृ० ७
१२२- वही, पृ० ५५
१२३- वही, पृ० १०८
१२४-स्मृति की रेखाएं, पृ० १२५
१२५-अतीत के चलचित्र, पृ० २०
१२६- वही, पृ० ३५
१२७- वही, पृ० ४४
१२८-अतीत के चलचित्र, पृ० ५७
१२९-वही, पृ० ६८
१३०-वही, पृ० ८६
१३१-शृंखला की कड़ियाँ, पृ० ३८

नोरतर उपसंहार और क्या हो सकता है। बलात् अपहरण किए जाने पर भी खोज के लिए विशेष प्रयत्न नहीं होता।[१३२] समाज के स्वार्थी होने के कारण 'किसी स्त्री के विधवा होते ही प्रश्न उठता है उसका भरण-पोषण और उसकी रक्षा कौन करेगा।[१३३] कदाचित् इस विधान ने ही विधवा की दयनीय स्थिति को और भी दयनीय कर दिया है।[१३४] दूसरी ओर विधुर को 'दर्जनों विवाह योग्य कन्याओं के पिता उन्हें घेरे रहते हैं तथा अधिक से अधिक धन देकर, अधिक से अधिक खुशामद करके अपनी रूपसी, गुणवती और शिक्षित पुत्रियों को दान देकर कृतार्थ हो जाना चाहते हैं। ऐसा विवाह... स्त्रीत्व का कलंक[१३५] ही नहीं, अमानवीय भी समझा जायेगा क्योंकि जिस दावाग्नि में उन्हें जलना पड़ता है उसमें वे हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएं कुचल-कुचल कर निर्मूल कर देती हैं, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती हैं।'[१३६] यह पुरुष की ओर से अमानवीय अत्याचार का ही द्योतक है।

जहाँ तक मानवता के संबंध में प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति का प्रश्न है काव्य साहित्य में ऐसे स्थल कहीं दीख पड़ते हैं जहां उसका 'स्व' विस्तार पा गया है। यथा-- 'मेरे हँसते हुए अधर नहीं, जग की आँसू की लड़ियाँ देखो'[१३७] और 'सब आँखों के आँसू उजले सबके आँखों में सत्य पला।'[१३८] यहाँ संकेत और उसका महत्व व्यक्ति और पद का नहीं उसमें निहित जीव तत्व का है जिस पर चोट पड़ने से अन्तरात्मा दु:खी होती है। कदाचित् गद्य साहित्य में इसी भावना से प्रेरित होकर लेखिका कपड़े की आवश्यकता न होते हुए भी विदेशी कपड़े के थान के थान खरीद लेती है जबकि वह स्वयं खद्दर का व्यवहार करती हैं। पर वह समझती है कि कपड़े खरीद लेने से उसकी आय से 'वह जन्म का दुखियारा मातृ-पितृहीन, बहिन से बिछुड़ा हुआ चीनी अपने समस्त स्नेह के एकमात्र आधार चीन में (पहुँचकर)[१३९] आत्मतोष कर सकेगा।

हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह दूसरों को ऊंचा उठने में मदद दे। इसके लिए वह जरायम पेशा वाले ग्राम में जाकर गरीब बच्चों को पढ़ाने का काम करती है।[१४०]

१३२-शृंखला की कड़ियाँ,पृ०३६
१३३-वही, पृ० ८०
१३४-वही, पृ० १३८
१३५-शृंखला की कड़ियां,पृ०८१
१३६- वही, पृ०१४७
१३७- यामा, पृ० १५०
१३८-दीपशिखा, पृ० २७
१३९-स्मृति की रेखाएं,पृ०३०
१४०- वही, पृ० ७०

शहराती बरेठिन भी अपने पति देव के कुकर्मों को क्षमा करती है ।[१४१] उसकी सहनशीलता और क्षमाशीलता दूसरों को भी सामान्य स्तर से ऊंचा उठने की प्रेरणा देती है ।

महादेवी के अनुसार परोपकार की भावना मानवता का प्रथम कर्तव्य है ।[१४२] उसके अनन्तर त्याग और बलिदान की भावना को वे पुरुष की अपेक्षा नारी में अधिक मानती हैं क्योंकि "ऐसा कोई त्याग या बलिदान नहीं जिसका उद्गम नारीत्व न रहा हो ।[१४३] वह अपनी कोमल भावनाओं को जीवित रख कर भी कठिन से कठिन उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकती है, दुर्वह से दुर्वह कर्तव्य का पालन कर सकती है और दुर्गम से दुर्गम कर्म-क्षेत्र में खरा ठहर सकती है ।[१४४] मानवता की पूर्णता पाने में भी स्त्री का सहयोग एक आवश्यक अंग की पूर्ति करता है ।[१४५] महादेवी ने अतिमानस की भी कल्पना की है[१४६] यह सर्वांगीण विकास, मनुष्य के जीवन को दु:ख दैन्य-रहित गरिमा, शिवता और सौंदर्य बोध ही व्यक्ति के विकास का लक्ष्य है ।"[१४७]

महादेवी : निष्कर्ष

१- काव्य साहित्य में अमानवीय प्रवृत्ति के प्रति कोई संकेत नहीं मिलता पर गद्य साहित्य में मानवीय मूल्यों के स्थापनार्थ अमानवीय प्रवृत्तियों का घोर विरोध किया गया है ।

२- ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, दुर्भावना, स्पर्धा एवं अत्याचार मानवता के विकास में बाधक है ।

३- सापेक्षिक दृष्टि से स्त्री समाज में अमानवीय यंत्रणाएं सहकर भी मानवीय मूल्यों के सुरक्षित रखने में समर्थ है ।

४- मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए वह अमानवीय मूल्यों से सतत् संघर्षशील है ।

५- आत्महत्या की स्थिति मानवता के लिए अभिशाप है ।

६- त्याग, परोपकार, सहनशीलता, शिवता और सौंदर्यबोध मानवता के अंग हैं ।

१४१- स्मृति की रेखाएं, पृ० १०६
१४२- वही, पृ० १२७
१४३- शृंखला की कड़ियां, पृ० ५१
१४४- वही, पृ० ६०
१४५- शृंखला की कड़ियां, पृ० ७१
१४६- सप्तपर्णा, पृ० २४
१४७- साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० २८

रामकुमार

आलोच्य विषय के सभी कवियों की तरह रामकुमार वर्मा के साहित्य में भी मानवीय मूल्यों के स्थापनार्थ अमानवीय प्रवृत्तियों के प्रति एक विद्रोह दीख पड़ता है। कवि इस बात से संतुष्ट नहीं है कि मानवीय कार्य शिक्षा के बदले दक्षिणा रूप में द्रोण द्वारा एकलव्य का अंगूठा ले लिया जाय। कदाचित् इसीलिए एकलव्य की माँ द्वारा मर्यादित रोष प्रकट करने पर आचार्य द्रोण जैसे व्यक्तित्व को भी निरुत्तर कर दिया।[१४८]

मानवता सत् पक्ष को ग्रहण करती है। वह अपने कर्तव्य को सर्वोपरि समझती है। कवि ने एकलव्य को मानवता का प्रतीक माना है जिसके दाहिने अंगुष्ठ को दक्षिणा रूप में लिए जाने पर भी गुरु के प्रति भूलकर भी कोई दुर्भावना उसके मन में नहीं आती। वह गुरुदेव को सविनय प्रणाम करता हुआ अपनी वन खंड सीमा तक उन्हें पहुंचाने भी जाता है। एकलव्य की यह गुरु भक्ति सद्प्रवृत्ति का ही एक अंग है।[१४९]

राजनीति मानवता से अलग अपना ~~व्यक्तित्व~~ अस्तित्व नहीं रखती, यह प्रस्तुत कथन से स्पष्ट है कि --"शत्रुओं के देश की स्त्रियों का भी किसी तरह भी अपमान नहीं होना चाहिए, उन्हें माँ और बहनों की तरह आदरणीय और पूज्य समझ कर उनकी इज्जत करनी चाहिए --बच्चों को कभी उनके माँ-बाप से जुदा मत करो -- गाय मत पकड़ो और ब्राह्मणों के ऊपर अत्याचार मत करो... कुरान की उतनी ही इज्जत होनी चाहिए जितनी भवानी की पूजा की या समर्थ गुरु रामदास की वाणी की -- मसजिद का दरवाजा उतना ही पवित्र है जितना तुम्हारे मन्दिर का कलश,... इस्लाम धर्म उतना ही पूज्य है जितना हिन्दू धर्म, धर्म के ख्याल से हिंदू और मुसलमान में कोई फर्क नहीं है।"[१५०]

शिवाजी के उपर्युक्त कथन से रामकुमार वर्मा की भी पर्याप्त सहानुभूति दीख पड़ती है। राजनीति की उपयोगिता समाज में मानवीय अधिकारों की रक्षा है। कदाचित् इसीलिए विक्रमादित्य को सत्य का ही पक्ष लेकर[१५१] उसकी विजय दिलायी गयी।

१४८- एकलव्य, पृ० ३०३

१४९- वही, पृ० ३०५

१५०- शिवाजी, पृ० ८९

१५१- चार ऐतिहासिक एकांकी, पृ० ७४

औरंगजेब से भी लेखक ने इसी आशय के संवाद कहलाए कि "हम इस दुनिया में आए ही क्यों? क्या (जब) हमसे किसी की भलाई नहीं हो सकी।"[१५२]

पाप[१५३] और पलायन अमानवीय प्रवृत्ति के ही द्योतक हैं। भीरु व्यक्ति इसी मनोवृत्ति का शिकार होता है। इसके बिना जीवन का रास्ता सीधा और सुखमय होता।[१५४]

मानवता का एक पक्ष 'सत्' है। इस सत् के निमित्त रामकुमार वर्मा ने एक छोटे लड़के कलकरण के समक्ष क्रूर तैमूर को भी हार,[१५५] निष्काम भाव से सेवा,[१५६] अत्याचारी राजा को अधिकारच्युत कर,[१५७] हर व्यक्ति को जीने का अधिकार दिया,[१५८] साथ ही पन्नाधाय की त्याग की महत्ता को सर्वोपरि समझा,[१५९] और पाप के प्रायश्चित्त के अनन्तर मानव हत्या के विरोध में अशोक का हृदय परिवर्तन भी कराया है।[१६०] उपर्युक्त बातें रामकुमार वर्मा के दृष्टिकोण से मानवतावाद का ही समर्थन करती हैं।

रामकुमार : निष्कर्ष

१- मानवता के विकास में बाधक सभी प्रवृत्तियों का विरोध किया गया।

२- धर्मभीरुता के कारण अमानवीय प्रवृत्तियों को पाप की संज्ञा से अभिहित किया गया।

३- मानवता सत् पक्ष को ग्राह्य करती है असत् पाप है। व्यक्ति मानवता की भावभूमि को पूर्णत: प्राप्त करने में समर्थ होगा।

४- राजनीति की उपयोगिता मानवता की रक्षा में है।

५- मानवता धर्म और जातीयता की परिधि से ऊपर की वस्तु है। दोनों ही उसके लक्ष्य प्राप्ति के साधन मात्र हैं।

१५२- सप्त किरण, पृ० ४०
१५३- पृथ्वीराज की आँखें, पृ० ६५
१५४- सप्त किरण, पृ० ५६
१५५- रजतरश्मि, पृ० ७१
१५६- ऋतुराज, पृ० ३७
१५७- ऋतुराज, पृ० ७१
१५८- ऋतुराज, पृ० १२०
१५९- दीपदान, पृ० ६२
१६०- वही, पृ० १५३

समग्र निष्कर्ष

आलोच्य विषय के कवियों के विश्लेषण के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों की मानवता विषयक दृष्टि अतिमानव, विश्वबंधुत्व, आदर्श सामाजिक व्यवस्था की विचारधारा लिए हुए भी रेनेसां का मानवतावाद, कैथोलिक या अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावाद, व्यक्तिपरक अथवा प्रकृतिवादी मानवतावाद की विचारधाराओं से पर्याप्त भिन्न दीख पड़ती है। उन्होंने मानवता को कभी रूढ़िगत सीमित अर्थ में नहीं ग्रहण किया है। कदाचित् इसी भावना से प्रेरित होकर कतिपय छायावादी कवियों ने इसे नवमानवतावाद की भी संज्ञा से अभिहित किया है क्योंकि तथाकथित मानवतावाद का स्फुरण रेनेसां के समय मध्ययुग की ईसाई धर्म की परलोकवादी दृष्टि के विरुद्ध हुआ था। व्यष्टि के अमरत्व के स्थान पर भौतिक जीवन को आश्रय मिला, साधक के स्थान पर सामान्य मानव जीवन को सत्य, शोध, न्याय, उत्पादन एवं तत्सम्बन्धित सारे क्रियाकलाप का मानदण्ड स्थापित किया गया। वहाँ दूसरी ओर छायावादी कवियों की दृष्टि मनुष्य में निहित सारे अमानवीय मूल्यों का विरोध करती है क्योंकि वे मानवीय मूल्यों के विकास में बाधक हैं। ये धरा पर ही स्वर्ग की सृष्टि का समर्थन करते हुए भी अध्यात्म से विमुख नहीं हैं क्योंकि अपनी कविताओं में नियति, धर्म चेतना, जीवन-बोध-संभाव्य सत्य, शिव एवं मनुयोजित शक्तियों के विकास रूप में सुन्दर की कल्पना आध्यात्मिक मूल्यों से ही सम्बन्धित होकर करते हैं। मध्यकालीन परलोक दृष्टि के स्थान पर लोक दृष्टि की स्थापना करते हुए उसके हित में अध्यात्म की सार्थकता खोजने का प्रयत्न छायावाद युग की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। परवर्ती विकास इसी दिशा में गतिशील हुआ। भौतिक सुख भी सुरक्षा के निमित्त आवश्यक है पर पाप की अपेक्षा पुण्य तथा नितान्त भौतिक सुख की अपेक्षा, प्रेम, त्याग और अन्य सद्वृत्तियों से प्राप्त आध्यात्मिक आनन्द की ओर वे अधिक उन्मुख हैं। उन्होंने अपनी विचारधारा में मनुष्य से मनुष्य के बीच की दूरी को मिटाने के लिए वास्तविक तथ्य का अनुसंधान किया है। उनकी धारणा है कि पौर्वात्य या पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्य परस्पर प्रतिद्वन्दी न बनकर सामंजस्य के रूप में नये मानवतावाद की स्थापना करेंगे। यह नवमानवतावाद अब तक की मानवीय विचारधारा का उत्कर्ष रूप होगा, जिसमें संस्कृति, देश, काल, धर्म, दर्शन तथा रंगभेदगत सीमाएं मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर-महाद्वीपीय और अन्तर-साम्प्रदायिक विचारकों को

उपलब्धि के रूप में परस्पर बढ़ती हुई एकता की वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण करेगी।

उपर्युक्त मानवता सम्बन्धी विचारधारा भारतीय संस्कृति के लिए सर्वथा नई वस्तु नहीं। उसका मूल स्त्रोत अपने सीमित अर्थों में धर्म और काव्य से संबंधित कहा जा सकता है क्योंकि धर्म की जो धारणा मनीषियों ने की उसमें इस लोक की उन्नति का निषेध नहीं रहा और न लोक और परलोक का विरोध ही अनिवार्य था। वैदिक काल में देवताओं से भौतिक रूप में भी लोक की उन्नति की प्रार्थनाएं की जाती थीं। मध्यकाल में इसे अवश्य हेय और त्याज्य कहा गया। परन्तु लोकहित की भावना का त्याग उसमें भी नहीं हुआ। पर इसी विस्तार में इसका प्रयोग यहां उन्नीसवीं शताब्दी में ही हुआ जब भारतीय संस्कृति, साहित्य, धर्म और दर्शन की मान्यताएं पाश्चात्य संस्कृतियों की तद्-विषयक मान्यताएं परस्पर निकट संपर्क में आयीं। इस दिशा में रवीन्द्र के विश्वबंधुत्व की भावना से प्रेरित विश्वमानव और अरविन्द के अतिमानव के साथ गांधीवाद के सिद्धांत ने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छायावादी कवियों की विचारधारा को प्रभावित किया। उपर्युक्त भावना का जन्म भारतेन्दु युग में नहीं हुआ क्योंकि युग की सारी चेतना राष्ट्रीय भावना को जन्म देने के लिए विकल थी। मात्र इस बात का एहसास हो गया था कि विदेशी सत्ता ही देश की गिरी स्थिति की जिम्मेदार है। देशवासियों के नैतिक, मानसिक एवं पूर्ण स्वस्थ विकास के निमित्त इस स्थिति का प्रतिकार करना होगा। द्विवेदी युग में उपर्युक्त विचारधारा का ही विकासक्रम देखने को मिलता है। उस समय समाज, साहित्य, धर्म और कला संबंधी मूल्यांकन समाज और राष्ट्र सम्बन्धी विचारधारा को केन्द्र बिन्दु में रख कर ही रहा था। पर कालान्तर में इस बात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि समाज के हर परिष्कार को व्यक्ति और समाज को केन्द्र बिन्दु में रख कर ही शुरू करना होगा। धर्म जाति-पांति, प्रान्तीयता और राष्ट्रीयता की सीमाएं जिनके आधार पर खड़ी की गई हैं जो मनुष्य के बीच कृत्रिम विभाजन का काम करती है। अतः इन सबसे ऊपर उठकर विश्वबंधुत्व के स्तर पर नवमानवतावाद की स्थापना ही छायावादी कवियों की विचारधारा का लक्ष्य है।

छायावादी कवियों की दृष्टि में आनन्द ही मानवता का सर्वोच्च प्राप्य है। पर मानवतावाद की इस उपलब्धि में इस आनन्द की प्राप्ति सबको सुखी बनाते हुए अपने को सुखी बनाने में है क्योंकि पहले अपने को सुखी बनाने में कदाचित् दूसरों को संतुष्ट करना

होगा । यहाँ सुख शब्द अर्थ-विस्तार में प्रयुक्त है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्र समाहित हो जाते हैं । नितांत व्यक्तिवादी विचारधारा इस लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक है क्योंकि उसमें पाशविक वृत्तियाँ घर कर लेंगी । इसलिए पशुता की सब वृत्तियों को छोड़कर ही मानव सृष्टि के विकास क्रम में सर्वोच्च मानवता के लक्ष्य की प्राप्ति होगी । यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि छायावादी कवियों ने नवमानवता को दैवत्व के अर्थ में नहीं प्रयुक्त किया है, बल्कि देव सृष्टि की भी अपूर्णताओं को इस भू-सृष्टि में पूरा करने का वैचारिक संकल्प रखा है ।

उनकी धारणा है कि प्राय: सभी धर्मों ने अपने अनुयायियों में मानवीय गुणों को भरने का प्रयास किया । पर इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि धर्मगत भिन्नता के कारण ही रक्तपात बढ़ा, युद्ध हुए और आपस में वैमनस्य का वातावरण उत्पन्न हुआ । अब धर्ममूल अर्थ में अंधकार से प्रकाश, मृत्यु से अमरता के लिए प्रयुक्त न होकर रूढ़िगत अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है । यही मूल्यहीन संघर्ष धर्म के अतिरिक्त दर्शन, वर्ण, रंग और राष्ट्रीयता के लिए भी कहा जा सकता है । अत: उपर्युक्त त्रुटियों से बचने के लिए नव-मानवतावाद की स्थापना की गयी जिसमें धर्मरहित मानवता विश्व में स्थापित होगी, सभी आत्मबोध को प्राप्त करेंगे क्योंकि सभी जीवों में आत्मबोध ही मनुष्यत्व की परिणति है ।

नवमानवतावाद की स्थापना समाज में सारे अमानवीय तत्वों के विरोध में हुई, क्योंकि आधुनिक विज्ञान के विकसित साधनों से जब सारी मानवता, देश, कालगत परि-प्रेक्ष्य में इकाई बनती जा रही है, ऐसे समय में यह आवश्यक है कि जाति, रंग, भाषा, धर्म और राष्ट्रीयता के सीमित दायरों को तोड़ सभी एक विश्व परिवार के रूप में निवास करें । शोषक-शोषित, रक्षक-भक्षक एवं अन्य किसी भी आधार पर मनुष्य में अन्तर करना संपूर्ण मानव जीवन के प्रति अभिशाप कहा जा सकता है । साथ ही इस एकता से मनुष्य में सारे सत् पक्ष -- करुणा, दया, क्षमा, सद्भाव, आत्मीयता, पुरुषार्थ, अन्तर्दृष्टि, बन्धुत्व, पवित्रता जैसी भावना का विकास होगा । इन्हीं सद्-प्रवृत्तियों के आधार पर निर्मित सृष्टि संश्लेषण और विश्लेषण दोनों ही दृष्टियों से प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि होगी ।

सबसे प्रेम ही मानवता की कसौटी है । इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मानवता विश्व की सारी जर्जरित रूढ़ियों से संघर्षशील है क्योंकि छायावादी कवियों की यह दृढ़ आस्था है कि इसी नींव पर लोक में लोकोत्तर मानवता का निर्माण होगा । इसी आस्था से आलोच्य विषय के कवियों ने निःस्वार्थ सेवा भावना से प्रेरित होकर कर्म के प्रति जागरूकता प्रदर्शित करते हुए जागो फिर एक बार का संदेश दिया है ।

अतः उपर्युक्त विवेचना को संश्लेषित रूप में कहें तो महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा की मानवता विषयक दृष्टि मनुष्य में मात्र, उसकी सद्वृत्तियों के विकास तक ही सीमित है जबकि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' इन सद्वृत्तियों के विकास के लिए समाज में व्यावहारिक रूप से भी प्रयत्नशील हैं । इस लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त उन्होंने विकास में बाधक अमानवीय प्रवृत्तियों से संघर्ष भी किया । पर निराला की बाद की कविताओं को देखने से लगता है कि उनका संघर्षशील व्यक्तित्व कालान्तर में प्रार्थनापरक गीतों में बदल गया है । कदाचित् यह मानवतावाद की व्यावहारिक जीवनगत दृष्टिकोण की असफलता कही जाएगी । जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानन्दन पंत ने तथाकथित मानवतावादी विचार-धारा को सीमित एवं परम्परागत अर्थ में स्वीकार न कर मानवतावाद की स्थापना की जिसमें विश्व के समस्त प्राणियों को एकमानव परिवार के रूप में कल्पित किया गया । इसे उन्होंने परवर्ती साहित्य में अनेक रूपों में स्थापित किया और ऐसे भू-मानव की कल्पना की जिसने आध्यात्मिक एवं भौतिक शक्ति की उपलब्धि की है । उन्होंने इस भू को ही स्वर्ग बनाने का संकल्प रखा । मानवतावाद के अविस्तार में नवमानवतावाद की स्थापना आध्यात्मिक चेतना से युक्त सहज मानवीय प्रवृत्तियों के विकास और प्रकाशन के अतिरिक्त विशाल परिप्रेक्ष्य में विश्वमानव परिवार की योजना छायावादी कवियों की ही वैचारिक उपलब्धि कही जाएगी, जिसके लिए वे पूर्ण रूप से सजग और आस्थावान दीख पड़ते हैं ।

o

खण्ड १

अध्याय ३ — वर्णव्यवस्था

वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भारत में वर्ण व्यवस्था की प्रथा बहुत ही प्राचीन है और इतनी शोध हो जाने के बाद भी इसका मूल स्रोत पूर्णतया ज्ञात नहीं है। पर यह भारतीय सांस्कृतिक एवं उसकी धार्मिक सामाजिक व्यवस्था का एक प्रधान अंग है। काव्यगत विषय के दृष्टिकोण से छायावादी कवियों ने वर्ण और जाति व्यवस्था के सामाजिक पक्ष पर बल नहीं दिया, पर इन्हीं कवियों ने कालान्तर में प्रगतिवाद की विचारधारा से प्रभावित होकर वर्ण व्यवस्था को असहमति और विरोध की भावना से काव्य विषय बनाया।

छायावादी कवियों की काव्यात्मक प्रेरणा लौकिक जीवन की अपेक्षा प्रकृति और परोक्ष सत्ता, अलौकिक और अज्ञात सत्ता से प्रेरित रही। पर इनमें से कुछ कवियों ने जब प्रगतिवादी विचार धारा ग्रहण की तो उन्होंने अपने काव्य या काव्येतर साहित्य में वर्ण और जाति व्यवस्था पर भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रकाश डाला। छायावादी कवियों की विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम वर्ण और जाति व्यवस्था का विभेद स्पष्ट किया जाए, क्योंकि कतिपय स्थलों पर कवियों ने वर्ण और जाति व्यवस्था को अभिन्न विशेषता के साथ वर्गीकरण में वैज्ञानिकता नहीं बरती है। इन कवियों ने जिस रूप में वर्ण और जाति व्यवस्था का संदर्भ दिया है उससे यह प्रकट नहीं होता कि वे इनके विशिष्ट और वैज्ञानिक अभिभेद के प्रति सजग थे। वर्ण और जाति को मनुष्य के अवांछित विभाजन के रूप में प्राय: समान स्तर पर ले लिया गया है। पर ऐसा सर्वत्र नहीं है। इस विषय में सामान्यत: उनकी धारणा स्पष्ट है।

वर्ण और जाति में अन्तर है। वर्ण का सामान्य अर्थ रंग भी है जो तिरोहित हो गया। यह अर्थ भी प्राचीनकाल में कदाचित् मनुष्य के वर्गीकरण के आधार रूप में ही प्रयुक्त किया जाता था। वर्ण चार हैं और प्रत्येक वर्ण के अन्दर विभिन्न जातियां हैं। अत: इन्हें दूसरे अर्थ में वर्णों का उपविभाग भी कहा जा सकता है। पर कतिपय ऐसी भी जातियां हैं जिन्हें वर्ण विशेष से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता,[१] दूसरी और

१- आंधी -- में मुसहर जाति का उल्लेख इसी प्रकार का है। पृ० ६।

कुछ ऐसे भी वर्णों का उल्लेख मिलता है, जो कालान्तर में दूसरे वर्ण में परिणत हो गए । यही बात कुछ अन्य जातियों के विषय में भी कही जा सकती है । फिर भी आलोच्य विषय के कवियों के समक्ष वर्ण और जाति व्यवस्था के वर्गीकरण की यह समस्या महत्वपूर्ण नहीं दीख पड़ती ।

वर्ण व्यवस्था अपनी प्रारम्भिक स्थिति में जन्मगत न होकर कर्मगत अर्थात् कार्य-विभाजन के आधार पर थी । गीता में इसे गुणकर्मविभागशः[२] माना गया है । बौद्धों ने जन्मगत वर्ण व्यवस्था का कट्टर विरोध किया । जातकों में ऐसी अनेक कथाएं हैं[3]। वर्णों में परस्पर आदर, सम्मान एवं सहयोग की भावना थी । पर कालान्तर में इसका प्रचलन जन्मगत व्यवस्था से होने लगा, और एक-एक वर्ण के अन्दर विभिन्न जातियों और उपजातियों का विभाजन एवं समावेश किया जाने लगा । आलोच्य विषय के छायावादी कवियों के काव्य से सामान्यतः वर्ण और जाति व्यवस्था का समर्थन नहीं मिलता । इसका कारण यह भी है कि छायावादी कवि धर्म के ब्राह्मणवादी कट्टर रूप की अपेक्षा उसके वेदान्त और भावना परक रूप से आकृष्ट थे, क्योंकि उनके समय के विचारकों ने धर्म की ऐसी ही व्याख्याएं की थीं जिससे उसकी मूल भावना प्रकट होती थी। इसी के साथ-साथ बौद्ध धर्म की महत्ता और उसके प्रति आत्मीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के भाव के कारण भी उनकी दृष्टि वर्णव्यवस्था की ब्राह्मणवादी संकीर्ण विचारधारा को ग्रहण नहीं कर सकी । वह युग समग्र मध्यकालीन संकीर्णता का विरोधी था और यह विरोध उसके भावस्तर तक व्याप्त हो गया था । जैसे --

'सब आंखों के आँसू उजले, सबके नयनों में सत्य पला ।'[४] (महादेवी)

छायावादी कवियों ने समाज की संगठनात्मक व्यवस्था को अपने काव्य का प्रत्यक्ष विषय नहीं बनाया परोक्ष रूप से भले ही कहीं उसका आभास पा लिया जाय । वस्तुतः यह बात काव्य साहित्य को देखते हुए जितनी-- प्रसाद, निराला के लिए सत्य है उतनी

२- गीता- ४-१३

3- विशेष के लिए -- जातक कालीन भारतीय संस्कृति

४- प्रसाद निराला पंत महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएं -- पृ० २०९

को पंत, महादेवी और रामकुमार वर्मा के लिए भी ।' पर उपर्युक्त कवियों के काव्येतर साहित्य में वर्ण व्यवस्था के जो स्पष्ट संकेत प्राप्त हैं उन्हीं के आधार पर उनका सम्यक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जा सकता है ।

प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने समस्त काव्य साहित्य में मात्र कामायनी में एक ही स्थान पर वर्ण व्यवस्था का संकेत दिया है । उनके अनुसार शास्त्र वर्णित वर्ण व्यवस्था में चार वर्णों के वर्गीकरण का आधार मात्र श्रमविभाजन है --

'चार वर्ण बन गये, बंटा श्रम उनका अपना ।'[५]

इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटक और कहानी साहित्य को वर्ण व्यवस्था की समस्याओं से अछूता ही रक्खा । पर अपने कंकाल शीर्षक उपन्यास में प्रसाद ने निरंजन के माध्यम के माध्यम से श्रमविभाजन के आधार पर व्यवस्थित जिस सामाजिक व्यवस्था का चित्र खींचा है वह वर्ण व्यवस्था में आ गई कालान्तर में रूढ़ियों के कारण ही है । अच्छी से अच्छी सामाजिक व्यवस्था भी रूढ़ियों से दूषित हो जाती है । इसका प्रमाण स्वयं उन्हीं के शब्दों में --- 'अत्यन्त प्राचीनकाल में भी इस वर्ण विद्वेष का -- ब्रह्म क्षात्र का साक्षी रामायण है -- इस वर्ण भेद के भयानक संघर्ष का इतिहास जानकर भी, नित्य पाठ करके भी, भला हमारा देश कुछ समझता है ? ...... वर्ण भेद, सामाजिक जीवन का क्रियात्मक विभाग है । यह जनता के कल्याण के लिए बना है, परन्तु द्वेष की सृष्टि में, दम्भ का मिथ्या गर्व उत्पन्न करने में, वह अधिक सहायक हुआ है । जिस कल्याण बुद्धि से इसका आरम्भ हुआ, वह न रहा, गुण कर्मानुसार वर्णों की स्थिति नष्ट होकर आभिजात्य के अभिमान में परिणत हो गई, उसका व्यक्तिगत परीक्षात्मक निर्वाचन के लिए, वर्णों के शुद्ध वर्गीकरण के लिए वर्तमान अतिवाद को गिराना होगा[६] किन्तु आज स्थिति यह है कि 'स्वार्थियों को भगवान पर भी अपना अधिकार जमाये देखता हूं, तब मुझे हंसी आती है-- और भी हंसी आती है -- जब उस अधिकार को

५- कामायनी, पृ० २०८ (संघर्ष)   ६- कंकाल, पृ० २६०

घोषणा करके दूसरों को वे छोटा, नीच और पतित ठहराते हैं।[7] कदाचित् इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर ही यमुना नामक दासी को देवगृह में जाने से रोक दिया गया था।[8] यह श्रम विभाजन के आधार पर "चातुर्वर्ण्यंमया सृष्टं गुणकर्मविभागश:" द्वारा स्थापित वर्ण व्यवस्था में निम्न कहे जाने वाले वर्ग के प्रति अत्याचार ही था। कदाचित यही कारण था कि इस समस्या के प्रतिकार रूप में आदर्श सामाजिक व्यवस्था के रूप में जिस 'भारत संघ' का निर्माण हुआ, उसमें तथाकथित वर्ण व्यवस्था मूलक वर्गीकरण को हटा दिया गया, क्योंकि उनकी धारणा है कि "हिन्दू-धर्म" का सर्वसाधारण के लिए खुला द्वार इन कृत्रिम वर्गीकरण की आख्याओं से दूषित हो जायेगा।[9] इसलिए उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों से (जो किसी विशेष कुल में जन्म लेने के कारण संसार में सबसे अलग रहकर, निःसार महत्ता में फंसे हैं) भिन्न एक नवीन हिन्दू जाति का संगठन कराने वाला सुदृढ़ केन्द्र[10] की स्थापना की जिसमें न केवल वर्ण व्यवस्था वरन् वेणीवाद, धार्मिक पवित्रतावाद, आभिजात्यवाद, इत्यादि अनेक रूपों में फैले हुए सब देशों के भिन्न-भिन्न प्रकारों के जातिवाद की[11] भी अन्यान्य उपेक्षा[12] की गई।

: निष्कर्ष

१- वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन के आधार पर थी।

२- कालान्तर में इसमें रूढ़ियों का प्रवेश हुआ और समाज में अब ये रूढ़ियां दूषित मनोवृत्ति की परिचायक हैं।

३- वर्ण व्यवस्था अब कर्मगत न होकर जन्मगत है।

४- वर्तमान वर्णव्यवस्था की दशा के प्रति घोर असंतोष प्रकट किया गया है। कदाचित् इसी प्रेरणा से वर्ण रहित आदर्श सामाजिक व्यवस्था के रूप में "भारत संघ"

७- कंकाल, पृ० २६१
८- वही, पृ० २६८
९- वही, पृ० २३५
१०- कंकाल, पृ० २३५
११- वही, पृ० २३५
१२- वही, पृ० २३५

की स्थापना की गई जिसमें वर्ण व्यवस्था की नहीं रंग, जाति वर्ण, गोत्र, धर्म और आभिजात्य कही जाने वाली संकीर्ण रूढ़िग्रस्त मान्यताएं लीन हो गई हैं ।

निराला

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की विचारधारा ने भी वर्ण व्यवस्था को प्राचीन रूढ़िगत अर्थ में स्वीकार नहीं किया, क्योंकि समाज के ये कृत्रिम वर्गीकरण मानवता की एकता को खंडित करते हैं ।[13] कदाचित् यही कारण है कि ब्राह्मण होते हुए भी 'कान्यकुब्ज' को उन्होंने कुलंगार की संज्ञा से अभिहित किया ।[14] साथ ही वर्ण व्यवस्था पर विश्वास न कर उसकी उपेक्षा करने की मनोवृत्ति के कारण ही 'गर्म पकौड़ा'[15] में उन्होंने वर्ण व्यवस्था की आधारशिला खान-पान, छुआ-छूत जैसी कालान्तर में आ गई घृणित मनोवृत्तियों की उपेक्षा की, और 'बम्हन की पकाई घी की कचौड़ी' को भी तिरस्कृत कर दूसरे वर्ण का तेल की भुनी, नमक मिर्च की मिला गर्म पकौड़ी को स्वीकार किया । यहां गर्म पकौड़ी नई विचारधारा की द्योतक है, जिसमें प्राचीन घी की कचौड़ी से अपेक्षाकृत ठोस धारणाएं संचित की गई हैं । कवि में वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा नहीं थी, न ही निराला के व्यक्तित्व ने किसी संकीर्ण परिधि को ही स्वीकार किया । इस कथन की पुष्टि 'प्रेम संगीत'[16] से भी होती है, जिसमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि ब्राह्मण वर्ण का होकर भी वे शूद्र वर्ण की कन्या से प्यार करते हैं ।

काव्य के अतिरिक्त निराला ने कहानी साहित्य में भी वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी समस्या को उठाया । इस दृष्टिकोण से 'चतुरी चमार' शीर्षक कहानी विशेष उल्लेखनीय है । चतुरी को शूद्र वर्ण में जन्म लेने के कारण ही नाना त्रासों को सहना पड़ता है, और समाज उसे घृणित समझता है । पर लेखक को उसके साथ पूरी सहानुभूति है । इसीलिए वह वर्ण व्यवस्था में फैले छुआ-छूत के विचारों को उपेक्षित कर

१३- अनामिका, पृ० ८

१४- वही, पृ० १२६

१५- नये पत्ते, पृ० ३८

१६- वही, पृ० ३६

अर्जुनवा को पढ़ाता है और उसको हर तरह से मदद करता है। भले ही उसके लिए उसे अपने पुत्र तक का सामना करना पड़ता है।[१७] कुल्ली भाट के सम्बन्ध में भी निराला की धारणा थी कि 'कुल्ली जाति-वर्ग को अपेक्षा सबसे पहले मनुष्य थे[१८] ऐसे मनुष्य जिनका मनुष्य की दृष्टि में बराबर आदर रहेगा।

निराला के समस्त उपन्यास साहित्य में 'काले कारनामे' ही एक मात्र उपन्यास है जिसमें वर्ण व्यवस्था की समस्या पर प्रकाश पड़ता है। वर्ण के सम्बन्ध में उपन्यास का नायक मनोहर विचारधारा के ~~सम्बन्ध में~~ संदर्भ में निराला का प्रतिनिधित्व करता है। इससे वर्ण सम्बन्धी तत्कालीन धारणा भी स्पष्ट हो जाती है कि -- 'ब्राह्मणत्व पर भी तरह-तरह से नोचा देखने की नौबत आती है।[१६].... समाज में ब्राह्मण के लिए हुई मान्यता उसके पुरोहित के हक में गई.... । हम जैसे ब्राह्मण हीन रहे हों।'[२०] और कालान्तर में वही पात्र विचारों की प्रौढ़ता आते ही 'घिसी पिटी वर्ण व्यवस्था को छोड़ काशी के धनिक वैश्यों को जो ब्राह्मणत्व के अधिकारी थे उन्हें शिक्षित करता है ताकि समय आने पर इन लोगों को शूद्रत्व के आवरण से पृथक कर देने में प्रमाण-प्रयोगों द्वारा समर्थ हो जाय।'[२१] गांव में शूद्रों को भी मनोहर पर गर्व है। वे उसके पिताजी को भेंट स्वरूप सिंघाड़ा केवल इसीलिए देते हैं, क्योंकि उनका पुत्र उन लोगों को ऊपर उठाता है तथाकथित ब्राह्मणों की तरह सर नहीं फोड़ता।'[२२]

निराला की दृष्टि में श्रम विभाजन के आधार पर वर्गीकृत सामाजिक व्यवस्था का कोई रूढ़िगत अर्थ नहीं होना चाहिए, कदाचित् यही कारण है कि बिल्लेसुर ~~बकरिहा~~ ब्राह्मण होने पर भी कलकत्ता में छोटा से छोटा कार्य करता है और पुन: ग्राम लौट कर वैश्यकर्म अपनाकर एक अच्छा गृहस्थ बन जाता है।[२३] यह सारे ग्राम के लिए अनुकरणीय है। प्रस्तुत संदर्भ श्रम को महत्ता प्रदर्शित करता हुआ प्राचीन रूढ़िगत धारणाओं का भी खंडन करता है।

१७- चतुरी चमार, पृ० १४
१८- कुल्ली भाट (भूमिका)
१६- काले कारनामे, पृ० १२
२०- वही, पृ० १२
२१- काले कारनामे, पृ० ६४
२२- वही, पृ० ७६
२३- पर यहां यह भी स्पष्ट है कि बिल्लेसुर बकरिहा प्रगतिशील साहित्य का नमूना है 'भूमिका'

प्रबन्ध प्रतिमा के लेखों से तो वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी विचारधारा कुछ और स्पष्ट हो जाती है। इसका कारण यह है कि उन लेखों में निराला ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से भी वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी बदलते मूल्य पर एक संतुलित दृष्टि रखी है। उन्होंने समाज में ऋग्वेद मंडल १० अध्याय ७ सूक्त ६० श्लोक १२ [२४] से चली चारों वर्ण के विभाजन के रूप में आ गए प्रामाणिकता के प्रति भ्रान्ति धारणा का निराकरण करते हुए कहा कि 'अगर कोई पूछे कि ब्राह्मण को परमात्मा का सिर और बढ़ई (शूद्र) को पैर क्यों समझते हो -- फिर तो समझ में यही आ गया, इसका उत्तर यह है कि दर्शनशास्त्र में सिर और पैर का भेद ही नहीं माना गया।'[२५] उनकी धारणा है कि वर्ण व्यवस्था में अधिकारवाद भारत में महाभारत के समय से ही प्रबल होने लगा था, और भारत के वर्णाश्रम धर्म के भीतरी अधिकार भी तभी से और अधिक दृढ़ होकर वर्णाधिकारों के शासन में जड़ जमा रहे थे। बौद्ध-युग इन्हीं भावनाओं का विरोध काल है। पर जब तक चूंकि देश का शासन देश ही में था, इसलिए कर्मकांड के अधिकारी शासक तत्कालीन वर्ण व्यवस्था की रक्षा के लिए तत्पर रहे थे, हम पहले लिख चुके हैं, संस्कृत-साहित्य में पुराण युग का प्राबल्य इसका फल है -- व्यास कालिदास और श्री हर्ष तक इसी वर्णाश्रम धारा को पुष्टि मिलती है। पर अब वह समय नहीं रहा। अब प्रकृति ने वर्णाश्रम धर्म के सुविशाल स्तम्भों को तोड़ते-तोड़ते पूर्ण रूप से चूर्ण कर दिया है। हज़ार वर्ष के दूसरी जातियों और दूसरे धर्मवालों के शासन से इतने संस्कार-दोष, संस्पर्श-कल्मष इस वर्णाश्रम धर्म के भीतर प्रविष्ट हो गए हैं कि अब कोई भी इसका अस्तित्व स्वीकार करेगा। जहां शिक्षा, शासन, व्यवसाय, व्यवस्था, कहीं भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शक्तियों का परिचय न हो, केवल पर-संस्कृति-ग्रस्त अधीन राज्यों का अपने घरों में सोते हुओं के स्वप्नों के सदृश वर्णा-

---

२५- ब्राह्मणो स्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः
अरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।२।। अर्थात् इनका मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, जंघाएं वैश्य और चरण शूद्र हुए।

२५- प्रबन्ध प्रतिमा, पृष्ठ २३ (चरखा)

भ्रम-धर्म पहले की जागृति के संस्कार-रूप, शायादेश मात्र रह गया हो, वहां दूसरी जागृति में वह भ्रम ही साबित होगा, वहां उस समय उसका अस्तित्व नहीं। इस पर भी यदि कोई इसे स्वीकार न करे, तो यह बुद्धि-दोष के सिवा और क्या है ?[26] अधिकार-भोग पर मनुष्य-मात्र का बराबर दावा है। जो यह समझता है, हम बड़े हैं, हम छोटे न होंगे, उसे मनुष्य कहलाने में बड़ी देर है। जो यह समझता है, बड़ा छोटा है और बड़ा छोटा हो सकता है, उसे यह मानने में भी कोई आपत्ति न होगी कि शूद्र भी कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन सकते हैं।"[27]

वर्तमान युग में हम सभी सदियों की रूढ़ियों से इस तरह चिपके हैं कि विचारधारा का संतुलन खो गया है। यही कारण है कि -- "न वैश्य अपनी आंशिक का त्याग कर सकते हैं (हम धनी मात्र को वैश्य शक्ति में लेते हैं) न क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण ही अपनी सामाजिक मर्यादा छोड़ सकते हैं। अधिकारवान की इसी पतित दशा में इस समय भारत है।"[28]

'वर्णाश्रम-धर्म एक ऐसी सामाजिक स्थिति है, जो चिरंतन है। स्वाधीन समाज की इससे अच्छी वर्णना हो नहीं सकती। कोई समाज इस धर्म को मानता भले ही न हो, किन्तु वह संगठित इसी रूप से होगा। पर यह निश्चय ही है कि यह अधिकार सार्वभौमिक है, एकदेशिक, जातिगत या व्यक्तिगत नहीं।[29] यही कारण है कि अपनी दृष्टि के विस्तार में जब निराला पूरब और पश्चिम को अच्छी तरह पहचानते हैं तब वही ब्राह्मण और शूद्र का[30] वर्गीकरण वर्तमान रूढ़िगत अर्थों में नहीं मानते। समाज में सब अर्थों का समान स्थान है। यदि उसे यह नहीं मिलता तो "शूद्रों के प्रति केवल सहानुभूति प्रदर्शन कर देने से ब्राह्मण धर्म की कर्तव्य परता समाप्त नहीं हो जाती।[31]

आधुनिक शिक्षा से भी प्राचीन रूढ़िगत वर्ण व्यवस्था पर कुठाराघात हुआ, क्योंकि हिन्दुस्तान पर अंग्रेजों का शासन सुदृढ़ हो गया, विज्ञान ने भौतिक करामात दिखाने आरंभ कर दिये -- उस समय ब्राह्मण शक्ति तो पराभूत हो ही चुकी थी किन्तु

२६- प्रबंध प्रतिमा, पृ० ७७

२७- वही, पृ० ७७

२८- वही, पृ० ७८

२९- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ७७

३०- वही, पृ० ७७

३१- चाबुक, पृ० ७५

क्षत्रिय और वैश्य शक्ति भी पूर्णतः विजित हो गई। शिल्प जो भी वह अंग्रेज़ों के हाथ में गई, अस्त्र विद्या अंग्रेज़ों के अधिकार में रही (अस्त्र ही छीन लिए गए, तब यह विद्या कहाँ रह जाती है और वह क्षात्रियत्व भी विलीन हो गया) व्यवसाय कौशल भी अंग्रेज़ों के हाथ में है। यहाँ भी ब्राह्मण वृत्ति में शूद्रत्व, क्षत्रिय कर्म में शूद्रत्व और व्यवसायी भी जो विदेशों का माल बेचने वाले हैं कुछ और बढ़कर शूद्रत्व अख्तियार कर रहे हैं, अदालत में ब्राह्मण और चाण्डाल को एक ही हैसियत, एक ही स्थान, एक ही निर्णय। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने घर में ऐंठने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य रह गए। बाहरी प्रतिघातों ने भारतवर्ष के उस समाज-शरीर को, उसके उस व्यक्तित्व को समूल नष्ट कर दिया। इस दृष्टि से उसका अस्तित्व ही न रह गया। भारतवर्ष की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण-काल शूद्रों और अंत्यजों के उठने का प्रभातकाल है। प्रकृति की कैसी विचित्र क्रिया है। जिसने युगों तक शूद्रों से अपर तीन वर्णों की सेवा कराई और इस तरह उनमें एक अदम्य शक्ति का प्रभाव भरा और अब अनेकानेक विवर्तनों से गुजरती हुई, उठने के लिए उन्हें एक विचित्र मौका दिया है। भारतवर्ष का यह युग शूद्र-शक्ति के उत्थान का युग है और देश का पुनरुद्धार उन्हीं के जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है।"[32] दूसरी ओर यदि सच पूछा जाय तो "इस समय भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं नहीं रहे -- न इस अवस्था में रह सकते हैं।"[33]

निराला : निष्कर्ष

१- वर्ण व्यवस्था के मूल रूप का समर्थन किया गया। इसे सबसे अच्छी सामाजिक व्यवस्था बताया गया। वर्तमान समाज में आ गई वर्ण व्यवस्था संबंधी कुरीतियों का विरोध करना उचित है, क्योंकि कालान्तर में इसमें संस्कार-दोष और संस्पर्श-कल्मष आ गये कि इस अवस्था में इसे कोई नहीं स्वीकार कर सकता।

२- श्रम की महत्ता स्वीकार्य है। श्रम विभाजन पर आधारित वर्ण व्यवस्था के आधार पर ही समाज की उन्नति हो सकती है। पर इसमें कुरीतियों के आने से समाज का पतन भी होता है।

32- चाबुक, पृ० ८१ 33- चाबुक, पृ० ८५

३- ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य में स्थान कीदृष्टि से किसी को ऊंचा किसी को नीचा नहीं कह सकते, क्योंकि दार्शनिक दृष्टि से विभाजन में किसी को प्राथमिकता का प्रश्न नहीं था । मूलत: सभी वर्ण समान महत्व के माने जाते थे ।

४- वर्ण व्यवस्था कर्मगत है, जातिगत नहीं ।

५- रूढ़िगत कुण्ठित सामाजिक व्यवस्था के बन्धन को तोड़ने की कोशिश की गई ।

६- आधुनिक शिक्षा पद्धति के कारण वर्ण व्यवस्था स्वत: मिटने की ओर अग्रसर है ।

पंत
--

सुमित्रानन्दन पंत साहित्य में वर्ण व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण न उनके निबंध साहित्य में मिलता है और न कहानी साहित्य में ही । पर काव्य साहित्य में कतिपय ऐसे अंश मिलते हैं जिनसे उनकी वर्ण व्यवस्था संबंधी विचारधारा का पता चलता है ।

युगवाणी के आम्र विहग में पंत ने अपनी स्पष्ट धारणा व्यक्त की कि विभिन्न वर्ण भेद की संकीर्णताओं से निकल कर मानव समूह एक व्यूह हों और उस एक में ही सारे भेदभाव लय हो जायें ।[३४] इसका कारण यह है कि वर्ण व्यवस्था की वर्तमान दूषित अवस्था समाज के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है ।[३५] ब्राह्मण,[३६] क्षत्रिय, शूद्र या वैश्य सभी एक ही मानव वर्ण के होकर इस तरह कृत्रिम संकीर्ण चहारदीवारियों से घिरे हैं कि सिवा दो वर्णों के मध्य कृत्रिम दूरियां सृजित करने के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी शेष नहीं रह गया है । 'बाम्हन ठाकुर पर हंसता है'[३७] और शूद्र वैश्य पर । दो वर्णों के बीच खान-पान छुआ-छूत, शादी-ब्याह और त्योहार जैसी वस्तुएं भी एक सीमित परिधि में सिकुड़ती जा रही हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि मानवता श्रेणी वर्ग में नहीं विभाजित की जा सकती ।[३८]

३४- युगवाणी, पृ० ६७
३५- वही, पृ० १२
३६- ग्राम्या, पृ० २२
३७- ग्राम्या, पृ० ४५
३८- चिदंबरा, पृ० ३८

जब तक मनुष्य ऊँच नीच वर्ण में विभक्त होंगे तथा पर्तों, धर्मों में नहीं विदीर्ण स्वार्थगत स्पर्धा के बीच[39] नीचले मूल्यों को स्वीकार करते रहेंगे, तब तक समाज की उन्नति नहीं हो सकती ।

"भेड़ों, कीड़ों से पुंजित नत शीश भग्न रीढ़ों पर लघु राग द्वेष भय वंचित"[40] सी स्थिति समाज में वर्ण व्यवस्था की हो रही है । कृत्रिम स्वार्थों के चंगुल में फंसा संपूर्ण धरा के जीवन को वंचित[41] मानवता का वर्गगत बंधन खोलना है । प्राचीन गलित रूढ़ियों को उपेक्षा कर समाज में हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करना है जिसमें मानव एक हो[42] और बहु उर में पुनः मानवता का एक मापदण्ड स्थापित हो सके ।[43] कवि की उपर्युक्त विचारधारा का समर्थन उसके ज्योत्स्ना शीर्षक नाटक से भी होता है कि -- वर्तमान युग की बौद्धिकता में वे संकीर्ण परिधि स्थिर नहीं रह सकती, क्योंकि वैज्ञानिक युग की मानवता स्वयं ही सचेत हो उठी है जिससे "मानव-प्रेम के नवीन प्रकाश में राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, जाति और वर्ण के भूत-प्रेत सदैव के लिए तिरोहित[44] हो रहे हैं"।

पंत : निष्कर्ष

१- वर्ण व्यवस्था की संकीर्ण परिधि को स्वीकार नहीं किया गया ।

२- वर्ण व्यवस्था से मनुष्य में परस्पर भेद, ईर्ष्या, द्वेष और घृणा का भाव पैदा होता है, छुआ-छूत और ऊँच-नीच की भावना जन्म लेती है ।

३- इस व्यवस्था को तोड़ कर ही मानवता अपना विकास कर सकती है ।

४- इस दूषित ढांचे पर आधारित सामाजिक व्यवस्था आज के युग में अधिक नहीं चल सकती । आधुनिक वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता अधिक सचेत होकर वर्ण-व्यवस्था द्वारा सृजित नाना संकीर्णताओं से ऊपर उठने का प्रयास कर रही रही है ।

३९- लोकायतन, पृ० ४२३

४०- वही, पृ० १५२

४१- वही, पृ० ६२३

४२- लोकायतन, पृ० ३८०

४३- वही, पृ० ४३८

४४- ज्योत्स्ना, पृ० ७३

रामकुमार

रामकुमार वर्मा के काव्य साहित्य में वर्ण सम्बन्धी कोई समस्या ही नहीं उठाई गई है और न वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी किसी सामाजिक समस्या का समाधान ही किया गया है। पर मात्र एकलव्य इस कथन का अपवाद कहा जा सकता है, क्योंकि नायक एकलव्य को शूद्र जाति का चुन कर कवि ने महाभारतकालीन पृष्ठभूमि के द्वारा समाज में वर्ण व्यवस्था संबंधी समस्या को उठाकर तत्कालीन समाज और परोक्ष रूप से अपनी धारणा को अभिव्यक्ति का अवसर पा लिया है।

शूद्र होने के कारण 'निषाद पुत्र, नीच, वर्ण संस्कारहीन संज्ञा से लांछित थे, उन्हें समाज में उच्च वर्ण की तरह कोई अधिकार न था,[५५] क्योंकि द्रोण ने इसी विचारधारा से प्रेरित होकर एकलव्य को विद्यादान का निषेध किया।[५६] एकलव्य के मन में आधुनिक वर्ण व्यवस्था की तरह ही असंतोष है। यहां एकलव्य का प्रस्तुत कथन कदाचित् वर्तमान समाज में तथाकथित निम्न कहे जाने वाले वर्ण का प्रतिनिधित्व करता है। उसके अनुसार, 'उन्होंने अपने को आर्य कह कर हिंसा से हमें शूद्र कहा।[५७] सदा पैरों तले मर्दित किया। सेवक हमें किस अधिकार से बनाया। इसलिए कि शक्ति में उन्हें यश प्राप्त है, और वे उच्च वर्ण होने का गौरव अनुभव करते हैं।'[५८] 'यदि हम निम्न वर्ग के अछूत हैं तो छू दिए जाने से आर्यों के सु-अंग क्या कु-अंग बन जायेंगे?'[५९] चाहिए तो यह था कि हम ~~अवबकबकिम~~ आततायियों को ही शूद्र मान, अपने को आर्य कहते? यह शूद्र और ब्राह्मणों में भेद कैसा है जबकि मानवता के हम सब अंग हैं। केवल सेवा भाव से प्रेरित होकर ही हम सब शूद्र कहलाने लगे, किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो तो निषिद्ध व्यक्ति क्या क्रान्तिकारी नहीं बन जाएगा?[५०] उपर्युक्त कथन उपेक्षित शूद्र वर्ण की सामाजिक वस्तु-स्थिति ही नहीं वरन उसकी मानसिक स्थिति का भी स्पष्टीकरण करता है। एकलव्य की मां की दृष्टि में भी निम्न कहे जाने वाले वर्ण के प्रति यह व्यवहार

५५- एकलव्य, पृ० ५
५६- वही, पृ० ६
५७- वही, पृ० १९७
५८- एकलव्य, पृ० १९८
५९- वही, पृ० १९८
५०- वही, पृ० १९८

अनाचार है ।[५१] द्रोण ने तुम्हें विद्या का निषेध केवल इसलिए किया कि तुम शूद्र वर्ण निषाद हो और वे राजपुत्र (क्षत्रिय) सर्वश्रेष्ठ मानव हैं । शायद तुमने नहीं कहा कि एक शूद्र ने ही समस्त क्षत्रियों को ज्ञान दी [५२] थी । एकलव्य के अतिरिक्त उसकी माँ भी इस वर्ण व्यवस्था से असंतुष्ट दीख पड़ती है । उपर्युक्त कथन इस बात का साक्षी है कि इस व्यवस्था की सर्वांगीन जड़ता का मूल कारण राजनीति है जिसकी विषबेलि से यह वर्जित सीमा रेखा खींच दी गई कि शूद्र विद्वान न हों ।[५३] अतः एकलव्य में एक तद्गत स्थिति का साक्षात्कार किया गया है कि हीन वर्ण उठता है उच्च वर्ण नीच हो सकता है ।[५४] यदि यह कर्मगत व्यवस्था है तो इसके रूढ़िगत अर्थ में जन्मगत क्यों माना जाए । इसलिए निषाद पुत्र को नीच वर्ण संस्कारहीन कह कर लांछित करने का किसी को भी कोई अधिकार नहीं है । [५५]

रामकुमार : निष्कर्ष

१- वर्ण व्यवस्था की आड़ में कुचले गए हीन वर्ण के लोगों के मन में एक स्वाभाविक क्रान्ति है ।

२- सामाजिक व्यवस्था में ऊँच-नीच, शासक, शासित का भेद एक राजनीतिक चाल है । वस्तुत: सभी मानवता के अंग हैं इसलिए अस्पृश्यता का प्रश्न नहीं उठता ।

३- वर्ण व्यवस्था कर्मगत है, जन्मगत या जातिगत नहीं ।

महादेवी

प्रसाद, निराला, पंत और रामकुमार वर्मा के विपरीत महादेवी वर्मा के काव्य या गद्य साहित्य में वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं मिलता जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वर्ण व्यवस्था या कालान्तर में आनेवाली रूढ़ियों के कारण उसमें आ जाने वाले परिवर्तनों के प्रति कोई मत दिया जा सके । संभव है उनकी दृष्टि में

५१-एकलव्य, पृ० २२२ ५४-साहित्य चिंतन, पृ० ११९ (रेडियो वार्ता)

५२-साहित्य चिंतन,पृ०११९ ५५- वही, पृ० ११६

५३- एकलव्य, पृ० १९८

वर्तमान समाज में रूढ़िगत वर्ण व्यवस्था की गिरती हुई नकीरों के कारण उसकी कोई समस्या ही नहीं रही थी। पर अपने संस्मरण साहित्य में उन्होंने निम्न वर्गों के प्रति जो विशेष सहानुभूति प्रदर्शित की है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण और जाति की रूढ़ि में उनकी कोई आस्था नहीं है।[५६]

महादेवी : निष्कर्ष

१- करुणा के स्तर पर सब मनुष्य समान हैं, उनमें विभेद करना अशास्त्रीय और असत्य है।

समग्र निष्कर्ष

आलोच्य कवियों के अनुसार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्ण-व्यवस्था का आधार श्रम विभाजन है। इसके आधार पर वर्गीकरण के कारण समाज को एक निश्चित रूपरेखा मिल सकी जिसमें सभी वर्णों को अपने क्षेत्र में कार्य-कुशलता का चरम उत्कर्ष पाने का अधिकार था। पर जैसे जैसे कार्य-कुशलता की यह दिशा आगे की ओर बढ़ती गई वैसे-वैसे इनमें अनेक जातियों के लिए विविध क्षेत्र उद्घाटित होते गए जिनमें विशेषज्ञता की ओर ध्यान हुई। इस विशेष ज्ञान और कार्य-कुशलता के लिए बहुधा पैतृक आधार भी ग्रहण किया गया। जातियों का विभाजन और संख्या विस्तार मुख्यत: इसी आधार पर होता गया। उनकी तुलना में वर्ण व्यवस्था प्राय: एक जैसी रही। चार वर्णों के बाद किसी पांचवें वर्ण के विकास की आवश्यकता नहीं हुई और प्रत्येक वर्ण की विशेषताएं उत्तरोत्तर स्थिर ही नहीं रूढ़ भी होती गयीं। विकासमूलक वर्णान्तर प्राय: असम्भव सा हो गया। वर्ण व्यवस्था ह्रासोन्मुखी हो गई। व्यवहार में भी वर्ण की निश्चित सीमाएं हो गयीं। वे क्रमश: उच्च, मध्य, निम्न और निम्नतर श्रेणी में विभाजित हुई और यहीं से दूषित रूढ़ियां घर करने लगीं। यह रूढ़ियां खान-पान, छुआ-छूत, वैवाहिक संबंध और उत्सव तथा पर्व (त्योहार) तक में स्थान लेती गईं। कालान्तर में कर्मगत वर्ण व्यवस्था कर्मगत न होकर जन्मगत हो गयी।

५६- अतीत के चलचित्र, पृ० ४३, ८८; स्मृति की रेखाएं, पृ० ५८, १११, १४१

मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन को निर्गुण-सगुण दोनों धारा के कवियों ने शक्ति के साथ उन्मुक्त भाव से जाति और वर्ण-व्यवस्था की भर्त्सना की और भक्ति को ही सर्वोपरि मूल्य माना । छायावादी कवियों ने भी दूषित मनोवृत्ति का परिचायक वर्ण व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को सामाजिक व्यवस्था के लिए स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसका कर्मगत रूप जन्मगत हो गया था और कर्म का महत्त्व घट गया था । वही उपयोगी व्यवस्था कालान्तर में अस्पृश्यता के विस्तार में सहायक हो गई थी । जयशंकर प्रसाद ने पुन: तथाकथित वर्ण-व्यवस्था को कर्मगत माना, किन्तु यह एक संशोधन मात्र था । पर इसे अधिक व्यावहारिक न देख कर उसके विपरीत वर्ण व्यवस्था को जड़मूल से हटा कर राष्ट्रीयता के आधार पर किसी भव्य सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की वह उस युग की महान् सैद्धान्तिक उपलब्धि कही जाएगी । इसमें वर्ण व्यवस्था की नाना संकीर्णताएं -- श्रेणीवाद, धार्मिक पवित्रतावाद, आभिजात्यवाद, जातिवाद आदि जैसी चीजों के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता । सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी वर्ण-व्यवस्था में आ गई कुरीतियों का डट कर विरोध करना उचित समझा । उन्होंने भी श्रम की महत्ता स्वीकार की । स्तर की दृष्टि से उच्च, मध्य, गौण, ऊंच-नीच की भावना और अस्पृश्य जैसी मान्यताओं की उपेक्षा की । वर्ण व्यवस्था में आ गयी कुरीतियों को गर्हित, घृणित बताया । इन बंधनों को तोड़ने में सक्रियता दिखाई । सुमित्रानन्दन पंत ने समस्त सामाजिक प्राणियों को वर्ण व्यवस्था संबंधी छोटे-छोटे व्यूह से निकालने का संदेश दिया, क्योंकि इन संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर ही वह अपने विकास में तत्पर हो सकेगा । ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, ऊंच-नीच जैसी चीज़ों के आपसी भेद को मिटाने में समर्थ होगा । रामकुमार वर्मा ने तो तथाकथित निम्न वर्ण की अधिकार वंचित स्थिति को राजनीति के नाम पर शासक वर्ग की स्वार्थ नीति से संबंधित किया । साथ ही दलित वर्ण के मन में उठने वाली सहज स्वाभाविक क्रान्ति का परिचय भी कराया । पर महादेवी वर्मा ने तो समाज के इस अव्यवस्थित रूप की प्रत्यक्षत: उपेक्षा कर दी । यह उपेक्षा व्यक्ति परक काव्य की सीमा के कारण है, वास्तविक नहीं । क्योंकि जहां तक दृष्टिकोण का प्रश्न है उनके काव्य और काव्येतर साहित्य में वही दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है जो रूढ़ि विरोधी है और जिसके आधार पर अन्य छायावादी कवियों ने वर्ण और जाति का स्पष्ट विरोध किया ।

भले ही अपनी प्रारंभिक स्थिति में वर्ण-व्यवस्था समाज के लिए हितकर रही हो पर वर्तमान स्थिति में उसका संकीर्ण रूप मानवता के विकास में घातक है, साथ ही उसकी प्रगति में बाधक भी । उपर्युक्त सभी प्रतिष्ठित छायावादी कवियों ने वर्ण व्यवस्था की उपेक्षा की, और उससे उत्पन्न संकीर्णताओं से ऊपर मानवता के स्तर पर राष्ट्रीय नई सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की । यह छायावादी कवियों की एक बहुत बड़ी वैचारिक उपलब्धि कही जाएगी । जिसने उनके काव्य को प्रेरक बनाया और मानव के नव-विकास का मार्ग प्रशस्त किया । जो भी अनेकों विषमताओं से युक्त समाज में उन्हें प्रतीत हुआ उसको उन्होंने व्यक्तिगत आधार पर वेदना के रूप में व्यक्त किया । ऊपर से भले ही उनमें सीधा संबंध न दिखाई दे किन्तु काव्यगत भावनाओं तथा अनेक रूप में अभिव्यक्त विचारों का संगति खोजने के क्रम में दोनों का संबंध देख लेना कठिन नहीं है । निराला की रचनाओं में तो यह कहीं कहीं स्पष्टत: देखा जा सकता है ।

छायावादी कवि समाज की उन्नति के लिए वर्ण व्यवस्था की इस अवस्था को स्वीकार नहीं करते । इसका कारण यह है कि वे आज के युग में इन संकीर्णताओं को मानवता के विकास में बाधक मानते हैं । वर्ण व्यवस्था अपनी प्रारंभिक स्थिति में समाज के लिए हितकर भ रही हो पर इस युग तक आते-आते उसमें इतनी संकीर्णताएं प्रवेश कर गईं और रूढ़ियों के कारण वह इतनी दूषित हो गई कि सभी छायावादी कवियों ने उसका न होना ही समाज के लिए हितकर बताया ।

o

खण्ड १

अध्याय ५–जातिव्यवस्था

जाति व्यवस्था

श्रम विभाजन पर आधारित वर्ण व्यवस्था की तरह जाति व्यवस्था भी समाज को एक निश्चित रूपरेखा देने के लिए बनी। यह जाति व्यवस्था उसकी पुष्टि करने में सहायक सिद्ध हुई क्योंकि जाति व्यवस्था एक प्रकार से वर्ण व्यवस्था का ही उप-विभाग कही जा सकती है। जातियों के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन करने वालों में उसकी उत्पत्ति विभिन्न कारणों से मानी है, जिनमें देश, स्थानान्तरण, भौगोलिक सीमा, विदेशियों का संपर्क, संप्रदाय, वंश, शिल्प कौशल[1], रंग[2], रूपिकरण[3] और वंशानुगत कार्य-व्यावसायिकता[4] का उल्लेख किया जा सकता है। कतिपय राजनैतिक कारणों से भी जातियों, प्रजातियों की उत्पत्ति हुई[5] एवं उसका स्तर निर्धारण हुआ।[6] पर ये सभी कारण वही नहीं हैं जिनसे वर्ण व्यवस्था बनी। कतिपय भिन्न कारणों से उत्पन्न होने तथा संख्या विशेष तक सीमित न होने के कारण जाति व्यवस्था अधिक प्रचलित हुई। पर कालान्तर में कहीं-कहीं वर्णबोध, जातिबोध से अप्रधान होता गया। उपविभाजन, विभाजन से अधिक महत्वपूर्ण होते गए, यहाँ तक कि वे स्वतंत्र हो गए। ऐसी अनेक जातियाँ हैं जिन्हें वर्ण विशेष में रखना संभव नहीं। मानव समानता के इस युग में अंगित दृष्टिकोण से जातिव्यवस्था अपने प्रारंभिक रूप में ही स्थापित नहीं है, न ही उसका वही संकुचन अपने मूल की तरह है। समाज के बदलते मूल्यमान के साथ इसमें भी पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। जहाँ तक आलोच्य विषय के कवियों में जाति व्यवस्था विषयक दृष्टि का प्रश्न है उन्हें क्रमशः देखना भी अभीष्ट होगा।

प्रसाद

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति और उपयोगिता के संदर्भ में उपर्युक्त कथन की पुष्टि जयशंकर 'प्रसाद' की धारणा से भी होती है क्योंकि कामायनी के संघर्ष सर्ग में मनु ने

१- मानव धर्मशास्त्रस्य (मनुस्मृते) मानवार्थ भाष्यं, प्रथम् काण्डम्, पृ० १०१।
२- पातंजलि महाभाष्य, सूत्र २-२-६
३- ब्रह्मवैवर्त पुराण, पृ० १०-१११
४- कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया - पृ० १४५, ११६
५- विष्णु पुराण, ४-३-- ४२ से ४६
६- युनाइटेड प्राविंसेज़ सेन्सस रिपोर्ट, १९०१ ई०, पृ० २४८

प्रसाद : निष्कर्ष

१- जाति व्यवस्था वर्ण व्यवस्था का कृत्रिम विभाग मात्र है जिसकी सामाजिक व्यवस्था मनु द्वारा शुरू हुई ।

२- यद्यपि अन्य देशों में भी जाति व्यवस्था है पर भारतीय समाज की जाति प्रथा में रूढ़िवादिता के कारण समाज विरोधी तत्व आ गए ।

३- `जाति` को अर्थ विस्तार में प्रयोग कर संपूर्ण देशवासियों को ही एक जाति का माना गया और अंत में सहज रूप में जातिहीन समाज की सृष्टि के निमित्त भारत संघ की स्थापना की गई ।

निराला

जाति व्यवस्था के संबंध में निराला की धारणा को स्पष्ट करने के लिए उनकी रचनाओं पर दृष्टिपात किया जाय तो उनके काव्य साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान समाज में फैली हुई जाति व्यवस्था की संकीर्णता के प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी । इस बात का सर्व प्रथम उल्लेख उन्होंने अनामिका की `प्रेयसी` में किया कि `भिन्न जाति रूप और धर्म भाव के`[११] होते हुए भी हम दो मानवता के स्तर पर एक हैं । जातियों में फैले हुए खान-पान छुआ-छूत के संकीर्ण बंधनों को तोड़ने के कारण ही छूत-पाक के विचार को उपेक्षित कर `बम्हन की पकाई घी की पकौड़ी को छोड़ किसी दूसरी जाति द्वारा तैयार की गई तेल की पकौड़ी को स्वीकार करते हैं ।`[१२] प्रेम संगीत में उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि `बम्हन का लड़का होते हुए भी वे जाति की कहारिन घर की पनिहारिन के पीछे मरते हैं ।[१३] उनकी धारणा थी कि समाज में भिन्न जातियों के लोग भी एक परिवार के रूप में रह सकते हैं । उदाहरणार्थ — खानसामा, बावर्ची, चोबदार, सिपाही, सईस, भिश्ती, घुड़सवार, देशी कहार, नाई, धोबी, तेली, तम्बोली, कुम्हार, फीलवान, ऊंटवान , गाड़ीवान एक अच्छा खासा हिन्दी-मुस्लिम खानदान के रूप में बिना किसी जाति व्यवस्था के भेदभाव के कुकुरमुत्ता के नवाबके यहाँ रहते हैं ।[१४] यहाँ जिन नवाब का प्रसंग है कवि

---

११. अनामिका, पृ० ८   १३. नये पत्ते, पृ० ३९

उनके प्रति कोई धारणा नहीं रखता परन्तु उनके साथ जो निम्न वर्ग के नाते एक साथ झुकने के रूप में रहते हैं, उनके प्रति उसकी सहानुभूति प्रकट होती है।

अपने कथात्मक साहित्य में तो निराला ने जातिप्रथा की संकीर्ण सीमाओं को एकदम तोड़ते हुए हिन्दू और मुसलमान से भी शादी कराई।[15] दूसरी ओर बंकिम ब्राह्मण ने भी लोध जाति की कन्या श्यामा से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया[16] क्योंकि उन्होंने देख लिया कि समाज में सचुआ की नाक तक को भी स्वयं उसकी बिरादरी वालों ने उपेक्षित कर दिया था।[17]

यों तो निराला के उपन्यास साहित्य में 'प्रभावती'[18] और 'चोटी की पकड़'[19] में भी जाति व्यवस्था सम्बन्धी मात्र कुछ संकेत देखे जा सकते हैं, पर 'काले कारनामें' में एक दो वाक्य ऐसे भी हैं जिनसे स्थिति और भी स्पष्ट होती है। जैसे -- 'जाति की आँखों में जातिगत अभिमान नहीं रहा।'[20] इसका कारण है जातिगत रूढ़िवादिता खोखली हो गई है। इसी कारण मनोहर ने कुछ काल बाद नाना जातियों को बंधुत्व रूप में समझा, फिर से ब्राह्मण से भी उच्च।[21] साथ ही ब्राह्मण होते हुए भी उसने एक-दूसरी जाति के बीच खान-पान और छुआ-छूत के बंधनों को भी तोड़ा।[22] इससे निराला के इस उपन्यास के नायक का जातिगत विद्रोह प्रकट होता है जो कि प्रकारांतर से निराला की ही विचारधारा का पोषण करता है।

निराला की जाति व्यवस्था सम्बन्धी विचारधारा उनकी कविता, कहानी, उपन्यास से भी निबंध साहित्य में अधिक स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत जाति व्यवस्था बुरी नहीं, पर आज जिस रूप में उसमें नाना कुरीतियाँ आ गई हैं उससे पूरी सामाजिक व्यवस्था ही दूषित हो गई है। निराला मूलतः नकारात्मक (निगेटिव) विचारधारा के नहीं यही कारण है कि जातिविहीन समाज की सृष्टि न कर स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि 'जाति-पाँति

१५- सुकुल की बीबी, पृ० २१
१६- लिली, पृ० ८१
१७- वही, पृ० ९१
१८- प्रभावती, पृ० १३४
१९- चोटी की पकड़, पृ० ५१
२०- काले कारनामें, पृ० ६२
२१- काले कारनामें, पृ० ६२
२२- वही, पृ० ६२

पंत : निष्कर्ष

१- जातियों का वर्गीकरण कर्म के आधार पर था, पर कालान्तर में वह जन्मगत हो गया ।

२- कुल, जाति और धर्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था पर आस्था नहीं दीख पड़ती ।

३- दृढ़ विश्वास है कि कृत्रिम बर्बरता जाति व्यवस्था के नष्ट होने का कारण है

४- समाज में जाति व्यवस्था, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त जीवन का मापदण्ड केवल मनुष्यता होगा ।

महादेवी

महादेवी के काव्य साहित्य में जाति व्यवस्था संबंधी कोई उल्लेख नहीं मिलता । उनके निबंध साहित्य में ~~जाति व्यवस्था संबंधी~~ भी इस समस्या को नहीं उठाया गया है । संभव है कि मानवता के स्तर पर जन्मगत श्रेष्ठता से संबंधित इस जाति व्यवस्था के प्रति उनकी कोई सहानुभूति न हो । पर उनके रेखाचित्रों में [illegible] से जरायम पेशा लोगों के प्रति उनके मनों का चित्रण, हीन आर्थिक दशा और समाज में सम्मान रहित निम्न जातियों का उल्लेख है[५६] उससे महादेवी जी की उनके प्रति सहानुभूति दीख पड़ती है । [illegible] सबेराती अहेरिन से संसार में भी कहीं आ सकती है । उसका पति दूसरी औरत लेकर भाग जाता है और पुन: उसे जाति में मिलाने के लिए सबेराती को अपनी दयनीय स्थिति में भी हर तरह के कष्ट उठा जाति भोज की व्यवस्था करनी पड़ती है ।[५७] उपर्युक्त संदर्भों से प्रकट होने वाली स्थिति के विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि तथाकथित निम्न-जातियां की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक स्थिति के पतन से वह असंतुष्ट है । प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने जरायम पेशा वाली जातियों में शिक्षा प्रसार का भी कार्य शुरू किया जो कि इस दिशा में सुधार का एक महत्त्वपूर्ण कदम है कहा जा सकता है ।

महादेवी : निष्कर्ष

१- उपेक्षित जातियों की दयनीय स्थिति के कारण पर्याप्त सहानुभूति दिखाई देती है

२- उनमें शिक्षा का ही प्रसार उनकी उन्नति का एकमात्र उपाय है ।

५६- स्मृति की रेखाएं, पृ० ७०   ५७- स्मृति की रेखाएं, पृ० १०४

रामकुमार

रामकुमार वर्मा ने काव्य साहित्य में नायक एकलव्य में भी अपनी जाति व्यवस्था सम्बन्धी धारणा को व्यक्त किया है। नायक एकलव्य से सहानुभूति होने के कारण एकलव्य की विचारधारा को कवि का समर्थन प्राप्त कहा जा सकता है।

जातिगत अधिकार के संबंध में एकलव्य की धारणा है कि क्षत्रिय जाति ही धनुर्वेद में प्रवीण रहे, बाण या तूणीर उनकी का पृष्ठभाग रहे, धन्वा उनकी की शक्ति के समक्ष झुके और बाण उनकी के करों में फुंकारित नाग हों।[४८] ऐसा कोई कारण नहीं दीख पड़ता। जहां तक शिक्षा प्राप्ति का सम्बन्ध है, जाति-भेद नहीं वर्ण, वंश भेद भी नहीं, शिक्षा प्राप्त करने के तो सभी अधिकारी हैं।[४९] इससे जाति के आधार पर तथाकथित निम्न कही जाने वाली जातियों पर शिक्षा संबंधी लगाई गई वर्जनाओं का विरोध किया गया है। इनके नाटक 'ध्रुवतारिका' से भी 'जाति और वर्ण का भेद नहीं है।[५०] इसके विपरीत एक स्थान पर वे जाति व्यवस्था के कारण व्यक्ति में आ जाने वाले संस्कार का भी समर्थन करते हैं।[५१] पर इससे समाज के लिए उद्दिष्ट जाति व्यवस्था की उपयोगिता के विषय में कोई समर्थन नहीं मिलता।

रामकुमार : निष्कर्ष

१- निम्न वर्ग में जातिगत उपेक्षा के कारण विद्रोह की भावना का समर्थन किया गया है।

२- जातीय संस्कारों का महत्व दिया गया है।

३- शिक्षा का समान अधिकार सभी जातियों को है।

समग्र निष्कर्ष

छायावादी कवियों के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया और अपनी वैचारिक उपलब्धि के रूप में जाति हीन सामाजिक रचना पर बल दिया। इसका कारण यह था

४८- एकलव्य, पृ० १७ ५०-ध्रुवतारिका, पृ० ५१

४९- वही, पृ० २२२ ५१-दीपदान, पृ० ५१

कि समाज को जाति सम्बन्धी व्यवस्था को व्यावहारिक स्तर पर दूषित प्रवृत्ति[५२] का ही द्योतक बताया । तथाकथित नीची कही जाने वाली जातियों की अधिकारहीनता, ऊँची कही जाने वाली,जातियों का जन्मगत अधिकार, अस्पृश्यता, तत्सम्बन्धित कठोर आचारशास्त्र[५३] और परम्परा के बोझ को बलात् ढोने की प्रवृत्ति से छायावादी कवियों ने अपनी वैचारिक असहमति प्रकट की ।

ऐसा नहीं है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में जाति व्यवस्था को तोड़ने का आलोच्य विषय के छायावादी कवियों का यह प्रथम प्रयास था क्योंकि इसके पूर्व कबीर ही ने नहीं मध्यकाल के भक्त कवियों ने भी प्रवैगिक दृष्टिकोण से जातिवाद का खंडन किया था । पर यह खंडन मूलत: पूजा और भक्ति के अधिकारों से ही सम्बन्धित रहा । इसके बाद जाति संबंधी समस्या कुछ समय के लिए नहीं उभर सकी पर आधुनिक काल में जाति का अर्थविस्तार दीख पड़ता है । भारतेन्दु और द्विवेदी में जाति शब्द धर्म का भी बोधक कहा जा सकता है किन्तु प्रकारान्तर से यह भी जातिगत-अर्थ की संकीर्णता का ही बोध कराता है ।

मानवतावादी धरातल के विशाल परिप्रेक्ष्य में[५४] छायावादी कवियों ने रूढ़िगत जाति व्यवस्था को समाज का कृत्रिम वर्गीकरण माना । उनकी दृष्टि में वर्ण व्यवस्था की तरह जाति व्यवस्था भी मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है आरंभिक रूप में जाति-व्यवस्था समाज के संगठनात्मक तत्व के लिए उपयोगी रही हो पर कालान्तर में इसमें रूढ़ियां घर कर गयीं । इसलिए आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने उसकी उपयोगिता पर संदेह प्रकट किया क्योंकि रूढ़िवादिता के कारण जातीय विचार धारा में समाज के संगठनात्मक तत्व की दृष्टि से नाना संकीर्णताएं आ गई थीं जिन्हें समाज विरोधी तत्व भी कहा जा सकता है ।

कवियों ने जातीयता के कारण समाज में खान-पान, छुआ-छूत जैसी घृणित बंधनों की उपेक्षा की । कुल, जाति, धर्म पर आधारित व्यवस्था को नष्ट होने की कामना

५२- "जाति विच्छेद", पृ० २१ भारतवर्ष में जाति भेद, पृ० ५४,६६

५३- "जाति विच्छेद, पृ० ३१

५४- "जाति सिद्धान्त एक अनुसंधान द्वारा प्राप्त निष्पत्ति", पृ० ७, १३

की । निम्न जातियों में पनपी असंतोष भावना के परिष्कार हेतु जातिगत व्यवस्था के रूप में भारत-संघ की स्थापना की । उनकी शिक्षा पर अधिक बल दिया गया क्योंकि इससे जाति-व्यवस्था की वास्तविक स्थिति से परिचित होकर उपेक्षित जातियाँ अवास्तविक स्थिति का प्रतिकार कर सकेंगी ।

जाति-हीन राष्ट्र की कल्पना छायावाद की ही व्यावहारिक उपलब्धि कही जायेगी क्योंकि जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा ने इस बात में अपनी पूरी आस्था व्यक्त की कि इस जीवन का मापदंड जातीयता से मुक्त केवल मनुष्यता से संबंधित होगा । जिन कतिपय कवियों ने जातीयता का समर्थन भी किया है उन्होंने जाति का अर्थ वर्ण के उपविभाग के रूप में न लेकर इसका प्रयोग सम्पूर्ण मनुष्य-जाति के अर्थ में किया है । अतः जाति व्यवस्था की संकीर्णता से ऊपर उठकर छायावादी कवियों ने अपनी पूरी सहानुभूति मानव-जाति के संदर्भ में अर्पित की है ।

०

खण्ड १

अध्याय ५- राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता

शब्दगत अर्थ की दृष्टि से 'राष्ट्रीयता' में युगानुकूल अर्थ—संकुचन और विस्तार हुआ किन्तु किसी युग के साहित्य में राष्ट्रीयता परक भावनाओं का नितान्त अभाव रहा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता । लेकिन छायावादी कवियों में मुख्यत: प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी और रामकुमार वर्मा के साहित्य में, प्रचलित अर्थ में राष्ट्रीय भावना का अभाव माना गया । साथ ही आलोचकों ने इस बात का आक्षेप भी लगाया कि इनमें समाज के राष्ट्रीय जीवन के प्रति कोई अभिरुचि देखने को नहीं मिलती । इस बात की पुष्टि साहित्य की एक विधा के एकांगी दृष्टिकोण से भले ही जाय पर यह एकांगी दृष्टिकोण उनकी समस्त विचारधारा का द्योतक नहीं हो सकता ।

सच तो यह है कि उपर्युक्त कवियों के कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध साहित्य के साथ छायावादी काव्य में भी राष्ट्रीयता परक विचारधारा का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मिलता है । उसे विश्लेषण के अनन्तर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि जिन कतिपय कवियों ने कालान्तर में प्रगतिवादी विचारधारा ग्रहण की उनकी राष्ट्रीयता का बीज रूप इन कवियों के साहित्य में ही अन्तर्व्याप्त है । "छायावाद के कवियों ने देशभक्ति को एक सांस्कृतिक आवरण से मंडित किया है । उसमें केवल आवेग ही नहीं किन्तु एक अधिक स्थायी ताप है ।"[१] अत: आलोच्य विषय के कवियों की राष्ट्रीयता विषयक धारणा को उन्हीं क्रम से ही देखना अधिक उपर्युक्त होगा ।

प्रसाद

प्रसाद साहित्य में राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण किया जाय तो देश की जातीय विशेषताओं, उसके रागात्मक स्वरूप और उत्थान पतन की स्थिति में राष्ट्रीय भावना का एक क्रमिक विकास देखने को मिलता है । इस संदर्भ में 'कानन कुसुम' में 'कुरुक्षेत्र'[२] शीर्षक कविता राष्ट्रीयता संबंधी विचारधारा की

१- हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ७०९

२- कानन कुसुम, पृ० ११२

की द्योतक है, जिसमें उन्होंने महाभारत कालीन स्थिति में धर्ममूलक राष्ट्रीय विचार-धारा का वर्णन किया है। 'महाराणा का महत्व' के मूल में भी राष्ट्रीय प्रेरणा ही है जिसमें उन्होंने प्रताप की वीरता का प्रदर्शन किया है। यहाँ प्रसाद ने राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा को धर्मगत सीमित परिप्रेक्ष्य में ही ग्रहण किया और इसी के आधार पर उनके पराक्रम, देशभक्ति, त्याग से प्रभावित हो ~~अकबर~~ अकबर की अपेक्षा राणा की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। पर कालान्तर में प्रसाद की राष्ट्रीय भावना के परिवेश में एक व्यापकता मिलने लगती है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी विचारधारा में जातिगत परिवेश के अतिरिक्त राष्ट्र के स्तर पर परतंत्र देश में जागरण की राष्ट्रीय भावना प्रबल होने लगी थी। कदाचित् प्रसाद की यह धारणा रही हो कि अशोक की चिन्ता[3], शेरसिंह का शस्त्र समर्पण[4], पेशोला की प्रतिध्वनि[5] तथा प्रलय की छाया[6] से देश में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार-प्रसार हो सकेगा और लोग अतीत की उस गौरवशाली परम्परा से परिचित होंगे, जिससे राष्ट्रीय भावना का विस्तार हो सकेगा। यही कारण है कि कवि ने बलिदान की गाथा नारी पराक्रम के साथ अशोक और महाराणा की विजय गाथा गाई।

पर काव्यगत प्रौढ़ता के आधार पर कामायनी में प्रसाद की विचारधारा कुछ अधिक स्पष्टता से उभर सकी है। इसके संबंध में भी यह कहा जा सकता है कि प्रसाद ने राष्ट्रीय भावना से ही प्रेरित होकर श्रद्धा द्वारा कुटीर बनाकर तकली कातने और ऊन की पट्टियाँ बुनने का उल्लेख किया।[7] जिससे अपने अभाव की जड़ता में पशु सा निर्वसन नग्न[8] रहने की समस्या हल हो जायगी और देश वस्त्र की दृष्टि से स्वावलंबी हो सकेगा। दूसरे दृष्टिकोण में यह गांधी की तत्कालीन राष्ट्रीयता संबंधी जागरण के संदेश का प्रभाव भी कहा जा सकता है। तकली चरखा से सूत कात, करघा से बुनना

३- लहर, पृ० ४२

४- वही, पृ० ५१

५- वही, पृ० ५६

६- वही, पृ० ५९

७- कामायनी, पृ० १५४, १५७ (ईर्ष्या), १६२

८- वही, पृ० १५४ (ईर्ष्या)

स्वावलम्बन का द्योतक है। कामायनी का रचनाकाल परतंत्रता का युग रहा है। अंग्रेज़ों के अत्याचार से भारतवासी त्रसित रहे। कदाचित् समसामयिक परिस्थिति से प्रभावित होकर ही प्रतिनिधि शासक के अत्याचार के प्रतिवाद रूप में 'शासक बन फैलाओं न भीति'[९] और निर्वाधित अधिकार आतंक फिसने भोगा'[१०] के अनन्तर उन्होंने जन-क्रान्ति भी करवा दी। जनता में शासक वर्ग की ओर से होने वाले अत्याचार और अत्याचार के विरुद्ध असंतोष प्रकट करते हुए उठ खड़े होने की भावना प्रसाद के समकालीन वातावरण में फैली हुई राष्ट्रीय चेतना से कुछ साम्य अवश्य रखती हुई दिखाई देती है। मनु सारस्वत प्रदेश में बाहर से आए हुए थे अतः प्रजा का उनके प्रति विद्रोह विदेशी शक्ति के प्रति विद्रोह कहा जा सकता है। यह दूसरी बात है कि प्रजा ने इड़ा के प्रति विद्रोह नहीं किया। अतएव उसके विद्रोह को एकतंत्र के प्रति विद्रोह नहीं कहा जा सकता।

इनके उपन्यास में भी राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा की रूपरेखा कंकाल के 'भारत संघ' की स्थापना से स्पष्ट हो जाती है। जिसमें राम, कृष्ण और बुद्ध को आर्य संस्कृति की संपूर्ण देश की जागृति के समक्ष आदर्श रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इसमें श्रेणी, धर्म और जातिवाद की उपेक्षा की गई,[११] और धर्मनीति और समाज की संकीर्णताओं का तिरस्कार किया गया।[१२] इंगलैंड से लौटने के बाद इन्द्रदेव राष्ट्रीय विचारधारा से ही प्रभावित हो समाज सुधार करने की सोचते हैं[१३] और उसे कुछ हद तक क्रियान्वित भी करते हैं।

प्रसाद की प्रसिद्ध कहानी आकाशदीप में भी राष्ट्रीय विचारधारा का द्योतन मिलता है। बुद्धगुप्त के प्रस्तुत कथन से उपर्युक्त धारणा की पुष्टि होती है-- 'चलोगी चम्पा ? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी सी जन्मभूमि के अंक में ? आज हमारा परिणय हो, कल ही हमलोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक

९-कामायनी, पृ० २५३ (दर्शन)

१०- वही, पृ० २०५ (संघर्ष)

११- कंकाल, पृ० २३६

१२- वही, पृ० २३७

१३- तितली, पृ० ११०

चन्द्रगुप्त को आज्ञा सिन्धु को नम्र मानती है। वे स्वर्ग उस पीन पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुंचा देंगे।"[१४]

चन्द्रगुप्त के देश के प्रति पवित्र भावना से अभिभूत होकर चम्पा से स्वदेश चलने का प्रस्ताव रखता है। इससे उसके हृदय में निहित जन्मभूमि के प्रति आत्मीयता का भाव प्रकट होता है। 'पुरस्कार' की मधुलिका भी राष्ट्रीय भावना के कारण ही श्रावस्ती दुर्ग को दस्यु के हाथ जाने से बचा लेती है, यद्यपि इसके लिए उसे स्वयं को भी बलिदान के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है।[१५] वह राष्ट्रप्रेम के निमित्त अरुण को राजदंड के समक्ष समर्पित कर अपना कर्तव्य पूरा करती है। पर इसके ठीक बाद ही अरुण और अपने सम्बन्ध की स्थिति पर विचार करती हुई स्वयं को भी बलिदान के लिए प्रस्तुत करती है। अतः इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुरस्कार कहानी में राष्ट्रप्रेम सर्वोपरि और व्यक्तिगत प्रेम गौण चित्रित किया गया है।

पर उनके नाटक साहित्य में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप मिलता है उसमें "देश-द्रोह के लिए आत्मवध"[१६] ही अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है। इसी कारण जयचन्द्र के प्रायश्चित स्वरूप में स्वयं उसके द्वारा ही आत्महत्या करवा दी गई। साथ ही राष्ट्रीयता की प्रेरणा से प्रभावित होकर सुएनच्वांग से -- "भारत से जो मैंने सीखा है वह जाकर अपने देश में सुनाऊंगा"[१७] कहकर अन्य देशवासियों द्वारा अपने देश के प्रति आभार प्रकट कराया गया है। उनकी दृष्टि में देश की शान्ति भंग करना और निरपराधों को दुःख देना[१८] भी राष्ट्रीयता की भावना के प्रति विद्रोह है। ऐसी ही परिस्थिति में "छाया! देश को दरिद्रता से प्रताड़ित और अपने कुकर्मों से निर्वासित साहसी! तू राजा बनना चाहता है?"[१९] कहकर विलास को अराष्ट्रीय गतिविधियों की भर्त्सना करती है। स्कन्दगुप्त में भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होने

१४-आकाशदीप, पृ० १५

१५-आंधी (पुरस्कार), पृ० १७६

१६-चित्राधार (प्रायश्चित), पृ० ६०

१७- राज्यश्री, चतुर्थ अंक, पृ० ७६

१८- विशाख, तृतीय अंक, पृ० ७१

१९- कामना, अंक १, दृश्य ३, पृ० १३

के कारण गणदेव अन्न प्रजा की रक्षा...... सतीत्व के सम्मान...... देवता, ब्राह्मण और गौ की मर्यादा में विश्वास, आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिए[20] स्कन्दगुप्त को उसके अधिकार के प्रति सजग होने की प्रेरणा देता है। एक साधारण सैनिक भी राष्ट्र के आपत्ति काल में विलासी लोगों को 'देश का शत्रु' कहकर भटार्क ऐसे महाबलाधिकृत तक की भर्त्सना करता है।[21] देवसेना भी 'देश की दुर्दशा निहारोगे'[22] शोकांक गीत में जागरण का संदेश देती है, क्योंकि देश की पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है।'[23]

प्रसाद के नाटकों में हो अरुण 'यह मधुमय देश हमारा'[24] हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार[25] और हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती'[26] -- की राष्ट्रीय विचारधारा की द्योतक कविताओं के अतिरिक्त इन्हें 'अमर राष्ट्र-गीत'[27] की भी संज्ञा से अभिहित किया गया है।

प्रसाद : निष्कर्ष

१- अराष्ट्रीय भावनाओं की भर्त्सना की गयी।

२- प्रारंभिक रचनाओं में धर्मोद्भूत राष्ट्रीयता का स्वरूप मिलता है। साथ ही तत्कालीन पराधीन भारतियों मातृभूमि को पुन: स्वतंत्र करने के निमित्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उन वीरों का विजयगान किया जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपना बलिदान किया था।

३- कुछ नाटकों के कुछ अन्य गीत इनकी राष्ट्रीय भावना को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं।

४- विदेशियों से भी अपने देश का गुणगान कराने की प्रवृत्ति स्पष्ट है।

२०- स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक, पृ० १०
२१- वही, तृतीय अंक, पृ० ६१
२२- वही, अंक ५
२३- चन्द्रगुप्त, अंक २, पृ० ७
२४- चन्द्रगुप्त, अंक २ दृश्य १
२५- स्कन्दगुप्त, अंक ५, दृश्य ५
२६- चन्द्रगुप्त, अंक ४, दृश्य ६
२७- साहित्य चिन्तन, पृ० २५८

५- नाटकों में राष्ट्रद्रोह के लिए आत्मवध को उपयुक्त समझा गया ।

६- राष्ट्र और राष्ट्रीयता सम्बन्धी भावना को सर्वोपरि माना । व्यक्तिगत प्रेम से राष्ट्र-प्रेम अधिक ऊंचा साबित किया । आत्म बलिदान करने वाले पात्रों में कहीं-कहीं राष्ट्रीय चेतना विशेष रूप से लक्षित होती है ।

७- उपन्यास साहित्य में कुछ ऐसे पात्रों (चन्द्रदेव आदि) की सृष्टि की इसलिए की गयी कि वे राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा के प्रचार-प्रसार में सहायक हों, यही बात उनके कहानी साहित्य के संबंध में भी कही जा सकती है ।

८- लेखक द्वारा पराधीन राष्ट्र के नागरिकों को बंधन-मुक्ति का संदेश देकर अत्याचार के प्रतिकार रूप में विप्लव की भावना उभारी गयी ।

९- गांधीवाद के प्रभाव में कातने-बुनने की प्रेरणा दी जिससे वस्त्र के मामले में पूरा राष्ट्र स्वावलम्बी हो । उन दिनों देशी सूती वस्त्र उद्योग के विकास की संभावना मर गयी थी । इंगलैंड की मिलों से कपड़ा आता था । वहां का पूरा वस्त्र उद्योग भारतीय मुनाफे में चल रहा था । देशी मुद्रा विदेश में चली जा रही थी । देश निर्धन होता जा रहा था । कवि ने देश के आर्थिक पक्ष को भी बड़े संतुलित ढंग से व्यक्त किया है ।

निराला

निराला ने काव्य साहित्य में राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा को बड़े ही स्पष्ट और सशक्त ढंग से व्यक्त किया है । तत्कालीन देश की पराधीनता से निराला असंतुष्ट थे । यही कारण है कि उन्होंने राष्ट्रीयता परक भावना से प्रेरित होकर देशवासियों को 'जागो फिर एक बार'[२८] का संदेश दिया है । अब 'पराधीनता की रात व्यतीत हो गई, स्वतंत्रता के दिन आए ।'[२९] घोर दुःख दारुण परतंत्रता की याद दिला स्वतंत्रता अपना मंत्र स्वयं फूंक रही है ।[30] देश रक्षा का दृढ़ संकल्प है[३१] क्योंकि शत्रुओं के खून से भी यदि परतंत्रता का दाग धुल सका[३२] तो देशवासियों

२८-परिमल, पृ० २०१

२९- वही, पृ० २०१

३०- वही, (महाराज शिवाजी का पत्र),पृ० २२२

की महान उपलब्धि होगी । पर व्यक्तिगत भेद ने हमारी शक्ति छीन ली [३३] है । यहाँ तक तो निराला ने प्रस्तुत कविता में राष्ट्रीयता परक भावना को उभारा है, पर जब वे राष्ट्रीयता में मात्र जातिगत भावना का सन्निवेश कर देते हैं तो यह आज की अंगिन राष्ट्रीयता परक भावना के प्रति एक संकीर्ण दृष्टि हो जाती है । कदाचित् इसका यह कारण रहा हो कि कवि की राष्ट्रीय भावना शिवाजी काल के परिप्रेक्ष्य में देखी गई है पर जब वे देश में किसी बाहरी हस्तक्षेप को देख एक बार पूरे आत्म-विश्वास के साथ 'शेरों की मांद में आया है आज स्यार' [३४] और 'सिंही की गोद से छीनता रे शिशु कौन' [३५] की घोषणा करते हैं, तो यह उनकी अविस्तार गत राष्ट्रीयता की भी परिचायक कही जायेगी, क्योंकि यह बात कदाचित् सभी आक्रामक जातियों के संदर्भ में उठाई जा सकती है । कवि की दिल्ली पर इसलिए गर्व है कि वह देश की राजधानी है और भारत की सांस्कृतिक परम्परा की कड़ियों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है ।[३६] जननि जनक-जननि, जननि जन्मभूमि भाषे [३७] में भी कवि ने जन्म-भूमि की वंदना की और इसी भावना से प्रेरित होकर भारत की तत्कालीन पराधीनता को दूर करने की कामना की गई है ।[३८]

'नये पत्ते' में तो कवि की राष्ट्रीयता आदर्श परक भावना से यथार्थ परक भाव-भूमि पर उतर आई है । 'घोड़ों के पेट में बछड़ों को आना पड़ा' [३९] जैसी अराष्ट्रीय मनोवृत्ति से वे नफरत करते हैं । सन् ४६ के विद्यार्थियों के देशप्रेम के सम्मान में 'खून की होली' [४०] से देश प्रेम की ही भावना व्यक्त की गई है । इसका व्यापक रूप महंगू महंगा रहा में अधिक स्पष्ट हो सका है । एक ओर प्रकृति भी विद्यार्थियों की राष्ट्रीय भावना को स्वीकार करती दिखाई गई है, दूसरी ओर कवि ने देश के फर्जी नेताओं

३३-परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र), पृ० २३३
३४- वही (जागो फिर एक बार), पृ० २०३
३५- वही ,, , पृ० २०३
३६- अनामिका 'दिल्ली', पृ० ५८
३७- अपरा (वन्दूँ पद सुन्दर तव), पृ० २७
३८- वही, (जागो जीवन धनिके),पृ० २८
३९- नये पत्ते, पृ० २३
४०- वही, पृ० ४७

के कार्यों की भर्त्सना करके राष्ट्रीयता की भी अभिव्यक्ति की है । समाज इन कुछ नेताओं के भुलावे में आकर भी उन्नति नहीं कर पाता । "५१ छल-छल वचनों का मग हुआ पार देश का"५२ और वह फिर भी आगे न बढ़ सका । यह स्थिति की विडम्बना ही कही जायेगी ।

प्रारम्भ से ही कवि की देश की राष्ट्रीय विचारधारा में निराशा का शैथिल्य नहीं आने पाया है । उसे विश्वास है, पराधीनता की बेड़ी कट गई है,[५३] और कटे भी क्यों न जब वह जननी जन्मभूमि की वेदी पर " नर जीवन के सकल स्वार्थ और श्रम सिंचित सारे फल न्योछावर करता है ।"[५४] 'भारती जय-विजय करे' गीत में भी कवि की राष्ट्रीयता एक व्यापक एवं उच्च भावभूमि पर व्यक्त हुई है जिसमें जाति-पांति या धर्म की संकीर्णता नहीं है । कवि पूरे राष्ट्र के विशाल परिप्रेक्ष्य में भारत मां की वंदना करता है, और यहीं निराला की राष्ट्रीय भावना जाति-धर्म निरपेक्ष एक व्यापक स्तर पर प्रकट हुई है ।

निराला के कहानी साहित्य से उनकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता पर इसके विपरीत उनके उपन्यास साहित्य से राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा का आभास मिलता है । उनकी धारणा है कि देश की स्वतंत्रता एक मिश्र विषय है, केवल राजनीतिक प्रगति नहीं ।[५५] अपनी राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित होकर ही परतंत्र के नागरिक स्वतंत्रता के निमित्त विद्रोह करते हैं । दूसरी ओर उपरोक्त राष्ट्र की कमियों को दूर करने के निमित्त देश का सच्चा रूप प्रस्तुत किया जाय तो कदाचित् यह भी राष्ट्रीयता का ही एक पक्ष कहा जायेगा । इसी विचारधारा से प्रभावित होकर बेकारी के शिकार लंदन के डी० लिट् कृष्णकुमार को चित्रित किया गया है जिसे अपनी आजीविका के लिए जूता-पालिश भी करना पड़ता

५१- नये पत्ते, पृ० १०३

५२- गीतिका, पृ० ८१

५३- वही, पृ० २०

५४- वही, पृ० २२

५५- अलका, पृ० ४४

है। यहाँ देश में योग्य व्यक्ति पर किए जाने वाले अन्याचार का विरोध प्रदर्शित किया गया है,[५६] क्योंकि योग्य व्यक्ति को उपयुक्त साधन न मिलने पर राष्ट्रीय क्षति की होती है।

निराला के निबंधों में अन्तर्राष्ट्रीय भावना के अन्तर्गत भी राष्ट्रीय भावना की खोज की जा सकती है क्योंकि उनके जीवन का उद्देश्य वेदान्त से निर्धारित हुआ है, जिसमें कोई सीमा मान्य नहीं है। इसलिए यह स्वाभाविक भी है कि राष्ट्रीयता तक उनकी भावना जाकर रुक नहीं गयी। तत्वत: समस्त भारतीय चिन्तन सार्वभौमिक चेतना पर आधारित है और निराला ने इसी आदर्श को अपनाया है। उन्होंने लिखा भी है --- "साहित्य नवीन काय नई स्फूर्ति भरने वाला, नया जीवन फूंकने वाला है। साहित्य में बहिर्जीवन सम्बन्धी इतना बड़ा भावना भरनी चाहिए जिसके ~~प्रसर~~ प्रसार में केवल मक्का और जरुसलम ही नहीं, किन्तु संपूर्ण पृथ्वी आ जाय।"[५७] पर संपूर्ण पृथ्वी के अलग-अलग देशों की राष्ट्रीयता अपने आप में एक दूसरे के प्रति विचारों में बाधक नहीं होगी ऐसा आभासित होता है। अत: कहा जा सकता है कि यहाँ राष्ट्रीयता की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वरूप ही अधिक विशाल परिप्रेक्ष्य में स्थापित हुआ है।

निराला : निष्कर्ष

१- भारत की पराधीनता में देशवासियों को प्राचीन गौरवशाली सांस्कृतिक संदर्भ का ध्यान दिलाते हुए जागो फिर एक बार का संदेश मिलता है।

२- सार्वभौमिक दृष्टि से राष्ट्रीयता धर्म, ~~अम~~ वर्ण, जाति या विभिन्नताओं के बावजूद भी एक दूसरे देश के विकास में बाधक नहीं है। वह धर्मभेद और जाति-पांति से सर्वोपरि है।

३- राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को उचित आजीविका व्यवस्था राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायक है। ऐसा न होने पर वह व्यक्ति राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट रहेगा। यहाँ अराष्ट्रीय भावना का जन्म होगा।

५६- निरुपमा, पृ० १०५

५७- प्रबंध-पद्म (हमारे साहित्य का ध्येय), पृ० १४९

४- साहित्य का उद्देश्य राष्ट्रीय भावना से सम्बन्धित है । वह राष्ट्र के जीवन में नयी स्फूर्ति भरने के लिए है ।

५- कवि ने संपूर्ण विश्व को एक इकाई के रूप में माना है और इसी के आधार पर उसके द्वारा नवमानवतावादी मूल्यों का समर्थन किया है ।

पंत

पंत के काव्य-साहित्य का विश्लेषण किया जाय तो राष्ट्रीयता सम्बन्धी उनकी विचारधारा स्पष्ट करने के लिए सर्वप्रथम उनकी `भारतमाता` शीर्षक कविता का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने सारे देश की आत्मा का ग्राम में ही निवास बताया है ।[48] उनके राष्ट्रगान[49] भी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने में समर्थ हैं । कवि ने ऐसे ही भारत की वंदना की है जिसमें जाति, धर्म, वर्ग, श्रेणी का स्वत्व समाप्त हो गया है और मानवता का सम्पूर्ण रूप उसमें अवतरित हो रहा है । कदाचित् इसीलिए राष्ट्रीय स्तर पर `जय भारत है, जाग्रत भारत है`[50] का उल्लेख किया गया है ।

राष्ट्रीय जीवन की स्थिरता के निमित्त `अहिंसा`[51] आज सर्वत्र ग्राह्य है क्योंकि बिना इसके मानवता अपनी संपूर्णता में अवतरित नहीं हो सकती । पंत की धारणा है कि `भारत ऐसा देश है जहां सभ्यता अपने तेजोन्मेष रूप में उत्पन्न हुई है ।`[52] यह कवि का राष्ट्रप्रेम ही था कि उसने समस्त विश्व में अपने देश की ही सभ्यता पर गर्व किया । वह मातृभूमि की वंदना करता हुआ यह शुभकामना प्रकट करता है कि इसकी सारी दिशाएं श्रम से हर्षित हों, भू संस्कृति में देश गुम्फित हो और जात मानवोचित सम्पन्न हो ।[53]

राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होने के कारण १५ अगस्त १९४७ की कविता में कवि ने यह उद्गार प्रकट किया है कि आज के पुण्य दिवस को चिर प्रणाम है ।

४८- वाणी, पृ० १८७

४९- ग्राम्या, पृ० ५४

५०- वही, पृ० ६६

५१-ग्राम्या, पृ० ८६

५२-स्वर्णकिरण, पृ० ३५

५३-वही, पृ० ११२

भू-पर नूतन चेतना अवतरित हुई है। देश के नभ को ओर अरुणिमा उदित हुई है। दासता की बेड़ियां कट गईं। इस उपलक्ष्य में वह मुक्ति दिवस मना जन मंगल गान गाने का संदेश दे अपने को धन्य मानता है।[५४] राष्ट्र-ध्वजा वंदन करता है। जग में लोक क्रान्ति हो: इससे आत्मशक्ति के प्रकाश को कामना करता है ताकि देशवासी सत्य का प्रकाश पा सकें।[५५] भारतगीत[५६] से भी कवि की राष्ट्रीयता परक दृष्टि स्पष्ट होती है। कवि को गर्वोन्नत हिमालय पर गर्व है। गंगा जैसी पवित्र नदी उसके देश में बहती है। आम्र बौर, मलय पवन, पिक कूजन मात्र उसके देश की ही विशेषता है। उसे अपने देश के हरे भरे खेतों, उर्वर भूमि और उन कोटिशः विनम्र कर्म निरत तत्पर देशवासियों पर गर्व है,[५७] जिन्होंने सर्वप्रथम विश्व में सभ्यता का प्रचार किया, सामवेद की ऋचाएं ध्वनित की और सत्य, अहिंसा जैसे जीवन्त मूल्य प्रदान किए।[५८] आज इनकी शक्तिशाली भुजाओं में धर्मचक्र रंजित तिरंगा ध्वज, आशान्वित फहर रहा है, जोकि अभय, विजय और त्याग के निवारण का प्रतीक है।[५९]

कवि देश के मुक्ति दिवस[६०] पर कवि विजयध्वज फहराने, वंदनवार बांधकर अपना हर्ष प्रदर्शन करने के लिए सम्पूर्ण देशवासियों को आमंत्रित करता है। यह स्वाधीन देश[६१] मात्र उसका नहीं वरन् उन सबका है जो इस देश में रहते हैं। जिनके लिए युगों की पराधीनता की ग्लानि और निराशा मिट गई है। आशा अभिलाषा का नया संचार हुआ है।[६२] आज वही स्वाधीन चेतना[६३] संपूर्ण राष्ट्र में सत्य की भेरी बजाने को प्रस्तुत है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-मुक्ति, आत्मा-अमरत्व के सम्बन्ध में झूठे मूल्य, काल देश से करते युगों के बंधन के साथ अपना मूल्य खो देंगे। उसका विश्वास है कि भारत की स्वाधीन चेतना पुनः जन मन को ज्योति जगाने में समर्थ होगी।[६४]

५४- स्वर्णधूलि, पृ० १०९

५५- वही, पृ० १११

५६- युगपथ, पृष्ठ ८७

५७- वही, पृ० ८८

५८- वही, पृ० ९०

६०- युगपथ, पृ० ९१

६१- युगपथ; पृ० ९३

६२- युगपथ, पृ० ९५

६३- युगपथ, पृ० ९५

६४- युगपथ, पृ० ९७

कवि देशवासियों को जीवन के उर्वर भूमि को नरक बनने की प्रेरणा देता है । जिसमें हम मानवता का निर्माण कर सकें और वह अन्य राष्ट्रों के लिए भी अनुकरण की वस्तु बने ।

पर राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा के दृष्टिकोण से आदर्शवादिता की अपेक्षा कालान्तर में यथार्थ परक भावभूमि देखने को मिलती है । उनकी धारणा है कि देश की स्वतंत्रता उसकी राष्ट्रीय भावनाओं के विकास के लिए आवश्यक है । यद्यपि हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है फिर भी लोक-राष्ट्र-रचना-शिल्प के निमित्त आत्मविस्मृत हम देशवासी अपने प्रिय राष्ट्र पिता के दायित्व को नहीं निभा पाये हैं ।[65] अब भी ग्रामों का यह देश उन्नति नहीं कर पाता है । वे मृत शव[66] को नरक या देश के शरीर पर व्रण की तरह हैं । कदाचित इसीलिए उन्होंने 'धरा का युग कुत्सा' है तथा कुत्सित गर्हित जन जीवन का प्रतीक कहा है जिसके निवासी शुष्क उदर, नग्न तन, अकाल वृद्ध युवक कीड़ों से रेंगते अपना जीवन-यापन कर रहे हैं ।[67] इसका कारण यह है कि जनसेवक अब शासक बन सुख पूर्वक नगरों के सौधों के में सुरक्षित जीवन व्यतीत कर रहे हैं । प्रजा का दु:ख दूर करने के संबंध में उनका कोई दायित्व नहीं है ? उन्होंने जन हित द्वारा क्या भोगी, कदाचित इसी के निमित्त वे भारत मां का जर्जर तन दांतों, पंजों से पकड़े उससे कर वसूल कर रहे हैं ।[68] देशाभिमान से वंचित हम कैसे एक राष्ट्र या राष्ट्रीय भावनाओं का निर्माण कर सकेंगे हताश कवि को यहां राष्ट्रीय एकता संभव नहीं दीख पड़ती । अब कालान्तर में भू-जन के पर संस्कृति में परिष्कृत होने के कारण ही उसकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी आदर्श कल्याण कामना से 'कवि-विरत'[69] सा हो गया है ।

किसी राष्ट्र के लिए भाषा न केवल शब्द संग्रह भर है बल्कि वह राष्ट्रीय आत्मा का दर्पण है ।[70] इसके द्वारा ही विभिन्न प्रान्तों और विचारधाराओं

६५- लोकायतन, पृ० १६०
६६- वही, पृ० ४८२
६७- ग्राम्या, पृ० १३
६८- लोकायतन, पृ० १६०
६९- वही, पृ० १६४
७०- वही, पृ० १६४

से सम्बन्धित होने पर भी लोग एक राष्ट्रीय विचारधारा में बंधते हैं। पर भाषा की एकता के पथ में धार्मिक संघर्षण, विद्रोह, मोह, प्रांतीयता, अन्याय अवसरप्रिय शासन और मध्ययुगों के भ्रामक बौद्धिक कल्पनांकन अब भी देश के संस्कृत जन-मानस को दीन भावना से पीड़ित कर रहे हैं।'[११] अंग्रेजी आकाशबेल की तरह जन मन पादप पर छायी हुई है। इससे देश का विकास-क्रम कुंठित हो रहा है। कवि चिन्ताग्रस्त है कि इस पीढ़ी के मस्तक से यह लांछन कब छूटेगा ? अन्यथा इतिहास नेतागण को हीं जन घातक की संज्ञा से विभूषित करेगा।'[१२] उनकी अराष्ट्रीय वृत्ति की निन्दा करेगा तब कदाचित् जागरूकता के इस स्तर पर देश का कल्याण हो सके।

पंत : निष्कर्ष

१- राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचार व्यक्त करने में गावों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है क्योंकि देश की आत्मा का निवास गांवों में है। पर साथ ही उनकी दृष्टि में भारत का वर्तमान ग्राम जीवन उसके सांस्कृतिक ह्रास का भी द्योतक भी है। उन्हें ग्राम, भारत देश के शरीर पर व्रण की तरह दिखाई देते हैं। उन्होंने ग्राम जीवन को अपने काव्य में गौरवपूर्ण नहीं माना है क्योंकि उनकी दृष्टि आभिजात्य संस्कारों से युक्त रही है।

२- उन्होंने जाति - धर्म - वर्ग - श्रेणी रहित राष्ट्रीयता का सार्वभौमिक स्वरूप प्रस्तुत किया, यह द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता से नितान्त भिन्न दीख पड़ता है।

३- पूरा राष्ट्र श्रम की महत्ता समझे तभी सच्चे अर्थों में राष्ट्रीयता का उदय हो सकेगा।

४- वर्ण, जाति, रंग एवं धर्म की संकीर्ण परिधि को तोड़नेकर के कारण राष्ट्रीयता मानवता के लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन है।

५- राष्ट्रीयता का आदर्श रूप चित्रित है। पर कालान्तर में वर्तमान राष्ट्रीयता की यथार्थ परक स्थिति में उसकी असंतुष्टता प्रकट होती है। कवि राष्ट्र के यथार्थ जीवन से असंतुष्ट दिखायी देता है।

११- लोकायतन, पृ० १६५

१२- वही, पृ० १६६

६- भावात्मक एकता बनाए रखने में भाषा का अपना महत्त्व है । अंग्रेजी का प्रभाव भारतीयों के मन में भारतीयता उत्पन्न करने में बाधक है ।

७- ज्योत्स्ना से लोकायतन तक कवि ने अनेक प्रकार से भावी मानवता सम्बन्धी अपने स्वप्न को पूर्ण करने की चेष्टा की है और उसके विपरीत दिशा में जाने वाली प्रवृत्तियों के प्रति गहरा क्षोभ व्यक्त किया है । उसने भू-जीवन को दिव्य जीवन का एक सोपान माना है । फलत: उसकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी भावना मानवता की व्यापक केन्द्रीय दृष्टि को व्यक्त करती है ।

रामकुमार वर्मा

बापू के प्रभाव में आकर रामकुमार वर्मा राष्ट्रीय कविताएं लिखने लगे थे । पर इसके पूर्व के काव्य साहित्य में भी राष्ट्रीय विचारधारा का स्वरूप मिलता है । `जौहर`, `वीर हम्मीर` और `चित्तौड़ की चिता` को राष्ट्रीय परक रचनाओं में ही लिया जाएगा पर इसके सीमित अर्थ में राष्ट्रीयता परक उनकी विचारों की पुष्टि होती है जैसी कि इनके ऐतिहासिक नाटकों में मिलती है । जब ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर राष्ट्रीय विचारधारा व्यक्त की जायेगी तो वह तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में ही अपने अर्थ विस्तार को व्यक्त करेगी । यही कारण है कि प्राचीन जाति और धर्म के आधार पर राष्ट्र और राष्ट्रीयता के अर्थ संकुचन में ही उपर्युक्त तीनों काव्य रचनाओं का प्रणयन किया गया है ।

देश की आजादी के एक दिन पूर्व `१४ अगस्त की रात्रि में`[93] शीर्षक कविता देश प्रेम की ऐसी व्यापक भरी स्वतंत्रता की भावना को व्यक्त करती है जिसे वह सैकड़ों वर्षों के परतंत्रता के बाद प्राप्त करता है । कदाचित् ऐसा इसलिए भी है कि राष्ट्रीयता के विशाल परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण देश लम्बे अरसे के बाद एक हुआ । कवि को गर्व है कि `संस्कृति का केन्द्र`[94] यह देश उसका है । यहां अशोक, शिवाजी, लक्ष्मीबाई और बापू जैसे महान लोग अवतरित हुए । पर कवि को उससे भी अधिक इस बात की प्रसन्नता है कि विदेशी दासता से `आज वह स्वतंत्र`[95] है । आल्हाद

93- आकाशगंगा, पृ० ८९ 95- आकाशगंगा, पृ० ९०

94- वही, पृ० ८८

की यह भावना भी राष्ट्रीयता सम्बन्धी जागरूकता की ही परिचायक है ।

एकांकी नाटकों को दृष्टिगत करते हुए यदि इनकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा पर प्रकाश डाला जाए तो कहा जा सकता है कि 'सम्राट विक्रमादित्य' में प्राचीन काल की राष्ट्रीयता सम्बन्धी उस भावना पर प्रकाश पड़ता है, जिसे शक और आर्य जातिगत दृष्टिकोण से राष्ट्रीयता की व्याख्या करते थे,[७६] जिसमें जाति और रक्त की भावना होती थी ।

राष्ट्रप्रेम व्यक्ति को जीवन देता है और यही जीवन नहीं मिलने पर स्वदेश का व्यक्ति विदेश में जाकर उदास हो जाता है ।[७७] शिवाजी में भी जिस भावना का व्यापक स्तर पर प्रचार मिलता है वह जातिगत अर्थों में राष्ट्रीयता की भावना है । कदाचित् ऐसी सीमित राष्ट्र सम्बन्धी भावना से प्रेरित होने के कारण तिष्य चारु की बातों को मगध साम्राज्य के प्रति विद्रोह भरी बातें समझती है और उसके द्वारा 'मैं विद्रोह की बातें नहीं करती, मैं अपने देश के गौरव की बातें कह रही हूँ'[७८] की सफाई दिये जाने पर भी तिष्यरक्षिता इन बातों को 'महाराज के साथ विश्वासघात'[७९] कह कर लांछित करती है ।

सम्राट अशोक के शब्दों में कि -- युद्ध का रुक जाना पाटलिपुत्र की उन्नति का रुक जाना है । किसी भी साम्राज्य की सीमा रेखा में रक्त का रंग भरा जाता है[८०]- संकुचित अर्थ की दृष्टि से ही राष्ट्रीय विचारधारा कही जायेगी । ऐसी ही राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर कर्णादास कहते हैं -- 'इस पवित्रता के पुण्य पर्व में अपने से लड़ो और विजय प्राप्त करो । यह जौहर देखो ! ऐसा जौहर अभी तक राजस्थान में नहीं हुआ ।[८१] पर स्वर्ण श्री में राष्ट्रीयता सम्बन्धी दृष्टि कुछ अधिक स्पष्ट दीख पड़ती है, क्योंकि पुष्यमित्र राष्ट्रीय भावना के विस्तार में ही बृहद्रथ जैसे अत्याचारी राजा से विद्रोह करता है । उसके अनुसार ऐसा राजा पूरे देश की प्रजा के लिए घातक है ।[८२] इस एकांकी को पराधीन राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में

७६- चार ऐतिहासिक एकांकी, पृ० ६८

७७- शिवाजी, पृ० ३४

७८- चारुमित्रा, पृ० २५

७९- वही, पृ० ३६

८०- चारुमित्रा, पृ० ३६

८१- ध्रुवतारिका, पृ० ५१

८२- ऋतुराज, पृ० ११

भी देखा जा सकता है । ऐसा होने पर बृहद्रथ भारतीय जनता पर मात्र अपने विदेशी मित्र को खुश करने के लिए अत्याचार करता है । वह उसकी आज्ञाओं की कठपुतली है । पुष्यमित्र राजसत्ता का अधिकारी होकर भी अपने देशवासियों पर होने वाले अत्याचार का विरोध करता है जैसा कि भारत की पराधीनता में कतिपय सिविल सर्विस के अधिकारियों ने किया था । विकास के इसी क्रम में पुरस्कार को भी देखा जा सकता है, जिसमें प्रकाश देश की स्वाधीनता के लिए अंग्रेजी सत्ता से विद्रोह करता है और नलिनी विदेशी सत्ता के नौकर की पत्नी होने के बावजूद प्रकाश की देश सेवा के साथ ही उसके ऊँचे आदर्शों की सराहना करती है ।[८३]

राष्ट्रीय बलिदान की भावना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो -- पन्ना धाय का बलिदान राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित है जिसने उदयसिंह की जगह अपने बच्चे को मौत के हाथों समर्पित कर दिया ।[८४] पौरव की वह राष्ट्रीय भावना ही थी जिससे सिकन्दर भी प्रभावित हुआ और भैरवी अम्भि को इसी भावना से फटकारती हुई -- 'अपने को और कलंकित न कर ! मैं अपने सैनिकों से जीत नहीं सकूंगी पर बन्दिनी भी नहीं बनूंगी । देश की लज्जा होता मैं नहीं देख सकती । तो फिर यह रही तलवार । आज अपना रक्त भी देश की वेदी पर चढ़ाऊंगी । जय आर्यावर्त ! जय जननी जन्मभूमि ।[८५]-- कह तलवार से अपना मस्तक भी राष्ट्र के चरणों पर न्यौछावर कर देती है, और वीर दुर्गावती भी 'सिंगौर गढ़ की रक्षा प्राण देकर भी होगी ।'[८६] की घोषणा पूरी आत्मशक्ति के साथ करती है ।

निबंध साहित्य में भी राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा का स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है । उनके अनुसार 'इस देश में राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण सदैव ही संस्कृति से सम्बद्ध रहा है । संस्कृति के विस्तार से ही देश में एकता की सृष्टि होती है । जब यह एकता अपने जातीय जीवन अथवा नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए स्वाभिमान के साथ क्रान्ति की घोषणा करती है तब राष्ट्रीयता की रूपरेखा का निर्माण होता है । राष्ट्रीयता के लिए देश का अपना राज्य भी एकार्य होना

८३- सप्तकिरण, पृ० १०

८४- दीपदान, पृ० ६३

८५- दीपदान (मर्यादा की वेदी पर), पृ० ८५

८६- रजतरश्मि, पृ० १०८

आवश्यक है। यह बात दूसरी है कि विभिन्न युगों में देश अथवा राज्य की सीमाएं घटती बढ़ती रहती हैं। इन सीमाओं के अनुपात में ही राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण में अन्तर आता रहता है।[८१]

रामकुमार : निष्कर्ष

१- इस देश में राष्ट्रीयता का संबंध सदैव ही संस्कृति से संबंधित रहा है। इसके लिए देश या राष्ट्र की रक्षा आवश्यक है।

२- प्रारंभिक रचनाओं में राष्ट्रीयता जातिपरक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है। राष्ट्रीयता का यह संकीर्ण अर्थ काव्य के अतिरिक्त नाटक साहित्य में भी प्रस्तुत है।

३- विदेशी शासन से मुक्ति पाने की वजह से कवि बहुत प्रसन्न है। स्वतंत्रता की यह भावना ही राष्ट्रीयता संबंधी जागरूकता की परिचायक है।

४- अराष्ट्रीय कृतियों को दूर करने के लिए अपने शासक से भी विद्रोह करने का संकेत मिलता है। पत्नी अपने पति का विरोध करती है क्योंकि उसका पति विदेशी सत्ता का नौकर है और स्वयं वह कट्टर राष्ट्रप्रेमी। यहां पति-भक्ति की अपेक्षा राष्ट्रभक्ति अधिक महत्व की है।

५- राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित बड़ा से बड़ा बलिदान देकर उसके प्रति कर्तव्य के सम्मान की रक्षा का संकेत मिलता है।

महादेवी

महादेवी की कविताओं से ऐसी कोई बात स्पष्ट नहीं होती जिसे राष्ट्रीयतापरक विचारधारा की संज्ञा से अभिहित किया जा सके। इसके अतिरिक्त उनके रेखाचित्र या निबंध साहित्य में भी राष्ट्रीयता संबंधी कोई दिशा संकेत नहीं मिलता जिससे उनको राष्ट्र संबंधी या राष्ट्र के निवासियों के संदर्भ में राष्ट्रीयता संबंधी जागरण का संदेश हो। कदाचित् महादेवी को राष्ट्र के संकुचित अर्थ में राष्ट्रीयता ही स्वीकार्य नहीं, क्योंकि ऐसा होने पर विश्वमानवतावाद के सामंजस्य में कठिनाई होगी। संभवत: यही कारण है कि उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीयता संबंधी समस्या पर कुछ भी लिखना आवश्यक नहीं समझा हो।

८१- साहित्य-चिन्तन, पृ० २५४

<u>समग्र निष्कर्ष</u>

आलोच्य कवियों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनके साहित्य में राष्ट्र प्रेम की भावना एक निश्चित व्यापक दृष्टिकोण के साथ मिलती है । उनकी दृष्टि में समाज की अवश्यंभावी अपेक्षा के लिए राष्ट्रीय साहित्य मूल्यवान सिद्ध हो सकता है, क्योंकि वह छायावाद से सम्बन्धित चेतना, प्रकृति, आशा और आकांक्षा को एक सूत्र में ग्रन्थित करता है । कदाचित् इसी परिवेश में राष्ट्रीयता को व्यापक भूमि पर पहुंचने के लिए आत्मगत अनुभव का आश्रय लिया गया और व्यक्ति की उन्नति के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र के उत्थान की कल्पना की गयी । इस काल में ऐसी किसी विचारधारा को प्रश्रय नहीं दिया गया जो प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप से सामूहिक जन-चेतना के विकास में बाधक एवं अराष्ट्रीय रही हो ।

प्रारंभिक अवस्था में द्विवेदी युग के कवियों की तरह छायावादी कवियों ने भी राष्ट्रीयता का स्वरूप जातीयता के आधार पर निर्मित किया । इसी अर्थ में धर्मोद्भूत राष्ट्रीयता का स्वरूप भी देखने को मिलता है । धर्म और जातीय गौरवगान के आधार पर राष्ट्रीय चेतना का प्रचार-प्रसार देश-प्रेम की प्रारंभिक स्थिति ही कही जायेगी । कालान्तर में धर्म मिश्रित जातीयता का स्वरूप केवल उन बाह्य गुणों पर आधारित नहीं रहा जिनके कारण मात्र परम्परा और रूढ़ियां दोहरायी जाती हैं । राष्ट्रीयता सूक्ष्म होकर व्यक्ति की अन्तस् चेतना से सम्बद्ध हो गयी । उपलब्धि रूप में मूल्यांकन के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो भारतेन्दु युग में राष्ट्रीयता का स्वरूप आक्रोशपूर्ण होते हुए भी अत्यन्त सरल दिखाई पड़ता है । इसका कारण यह है कि देश पराधीनता की लम्बी कड़ी के बाद सजग हुआ था । साहित्य में केवल पराधीनता को महसूस करने की जीवन्त प्रक्रिया देखी जा सकती है । उसमें राष्ट्रीयता सम्बन्धी गंभीर चिंतन स्पष्ट लक्षित नहीं होता । राजभक्ति के संस्कार मोहभंग होने पर भी प्रच्छन्न रूप से बहुत समय तक बने रहे । पूर्ण स्वतंत्रता की कामना का भी कालान्तर में ही विकास हुआ । देश की दुर्दशा के प्रति सजगता अवश्य विकसित हुई जिसने स्वाभिमान जागरित किया जो कि साहित्य में अभिव्यक्त हुआ ।

इसके विकासक्रम में द्विवेदी युग में पौराणिक आख्यानों के माध्यम से सुधार के धरातल पर पराधीन राष्ट्र की चेतना को जागृत करने का श्रेष्ठ कार्य किया गया है ।

पुनरुत्थानवादी विचारधारा बड़े वेग से प्रकट हुई जिसका मूर्तरूप गुप्त जी की 'भारत भारती' है जिसमें देशवासियों को गौरवशाली परम्परा का ध्यान दिला जागरूकता का आभास कराया गया ।

पर छायावाद युग में जीवन की अंतरंग बौद्धिक प्रक्रिया से उत्पन्न युग की राष्ट्रीयता का जो ठोस स्वरूप मिलता है उसमें उन्मुक्ति की एक आकांक्षा, मानवीय व्यक्तित्व के प्रति सम्मान तथा समस्त विश्व के जन समाज को एकान्वित करनेवाली मानवतावादी भूमिका पर सृजित राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं । गांधीवादी विचार-धारा ने भी इस दिशा में इन कवियों को पर्याप्त प्रेरणा दी ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखने पर प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य जन-चेतना छायावादी कवियों तक पर्याप्त रूप से विकसित हो गयी थी । अपनी प्रारंभिक स्थिति में भले ही धर्मोद्भूत राष्ट्रीयता का स्वरूप देखने को मिलता है, पर कालान्तर में धर्म, जाति, वर्ण की शृंखलाएं अपने संकीर्ण परिवेश को तोड़ पूरे राष्ट्र की एकता के रूप में 'भारतमाता' के विराट रूप की कल्पना में विलीन होती गयी । भारतमाता का प्रारंभिक स्वरूप दुर्गा के आधार पर बंगाल की प्रेरणा से विकसित हुआ था । छायावाद युग में उसे स्वतंत्र रूप में कल्पित किया गया । निराला ने उसे सरस्वती के निकट ला दिया और पंत ने भारत की जनता में ही उसका अन्तर्भाव कर दिया तथा उसका विस्तार ग्राम-ग्राम में परिकल्पित कर उसे ग्रामवासिनी विशेषण प्रदान किया । भारतमाता का यह नवीन रूप राष्ट्रीय जन-जागृति का प्रतीक है । इसका रूप छाया-वादी कवियों द्वारा अधिक निखारा गया । इस युग में सारे विरोधी तत्व एक राष्ट्रीयता में समाहित हो गए । देशद्रोहियों के प्रति कवियों की कोई सहानुभूति नहीं दीख पड़ती । ऐसे पात्रों की परिणति या तो उनकी भर्त्सना करके उनमें आत्म-परिष्कार द्वारा राष्ट्रप्रेम उत्पन्न किया गया, अथवा आत्महत्या द्वारा पात्र की जीवनलीला समाप्त कर दी गयी । छायावाद में अराष्ट्रीय वृत्तियों को जड़मूल से समाप्त करने की यह एकमात्र मार्ग प्रदर्शित किया गया । छायावादी कवियों की राष्ट्रीय चेतना प्रेमचन्द के समसामयिक होने पर भी उनके साहित्य के आदर्शोन्मुख यथार्थ पर आधारित चेतना की तुलना में सूक्ष्म कल्पनामयी और कुछ वायवी भी प्रतीत होती है । निराला का उत्तरार्द्ध साहित्य कुछ दूर तक अपवाद प्रस्तुत करता है और प्रेमचन्द

के समकक्ष हो नहीं कहीं-कहीं विद्रोह वृत्ति में उनसे आगे दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द मुख्यतः द्विवेदीयुगीन सुधारवाद के ही विकासक्रम में आते हैं, पर निराला ने कहीं-कहीं क्रान्ति का नया स्वर प्रकट किया है।

इस युग में भारत प्रेमी विदेशियों ने भारतीय संस्कृति का पर्याप्त संश्लेषण विश्लेषण कर इसके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। कदाचित् इसी वैचारिक प्रक्रिया की उपलब्धि विदेशी पात्रों से कराई गई। राष्ट्र प्रेम के सम्मुख बड़ा से बड़ा त्याग एवं आत्म बलिदान भी तुच्छ दिखाई पड़ता है। व्यक्ति राष्ट्रीय जीवन का एक अंश मात्र है, अलग से उसकी सत्ता नहीं। राष्ट्रप्रेम की भावना का विश्लेषण व्यक्ति से आरंभ होता है। व्यक्ति ही बलिदान करता है, आत्म परिष्कार करता है और इस राष्ट्रीय परिवेश से अभिन्न रूप से सम्बन्धित होता है। अतः वैयक्तिक राष्ट्रीयता का यह स्वरूप छायावाद युग की एक मूल्यवान वैचारिक उपलब्धि कहा जायेगा।

सदियों की पराधीनता के कारण राष्ट्र का शरीर जर्जर हो चुका था। देशवासी विदेशी सत्ता के अधीन थे अतः ऐसी परिस्थिति में आत्मबोध के निमित्त छायावादी कवि ने साहित्य के उद्देश्य को राष्ट्रीयता से भी सम्बन्धित किया और उसका लक्ष्य जीवन में नई स्फूर्ति भरना बताया। इस दिशा में यह बात भी उल्लेखनीय है कि समाज के संगठनात्मक तत्व के रूप में राष्ट्र की सारी ऊर्जा शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए भी यह दिशा निर्देश ~~किया~~ की गयी क्योंकि ऐसा न होने पर असंतुष्ट व्यक्ति अराष्ट्रीय वृत्ति को ही जन्म दे सकते हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि छायावादी कवियों की दृष्टि में राष्ट्रीयता मानव के विकास का एक स्तर है, उसका विकास लक्ष्य नहीं। व्यक्ति के विकास में राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता के परिवेश ~~ों~~ से ऊपर उठ कर नवमानवता का समर्थन दीख पड़ता है। छायावादी कवियों की दृष्टि ~~से~~ में जिस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर सारे धर्म, वर्ण, जाति और रक्तभेद मिट जाते हैं, उसी प्रकार नवमानवतावाद के परिवेश में तथाकथित राष्ट्रीयता भी विश्व को एक इकाई के रूप में पर्यवसित हो जाती है। प्रत्येक देश की संघर्षरहित राष्ट्रीयता ~~का~~ इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होगी। उस राष्ट्रीय परिवेश में भौगोलिक, धार्मिक, जातीय संकीर्णताएं अपनी सीमित मनोवृत्ति को दूर

फिर एक विश्व के रूप में सम्मिलित होकर ऐसी राष्ट्रीयता का स्वरूप निर्मित करेंगी, जिसमें विचारों की उदात्त भूमिका के द्वारा तथा मनुष्य के प्रति कल्याण कामना की गहराई और उसकी आन्तरिक एकता के प्रति निष्ठा के द्वारा संघर्ष की संभावना ही न रहेगी । अपनी अंतिम विशेषता में विश्वकल्याणी स्तर पर राष्ट्रीयता की यह कल्पना छायावाद की एक आकर्षक भविष्योन्मुखी निर्मिति कही जायेगी ।

जहां छायावादी कवि अपने परिवेश की यथार्थ न्यूनताओं तथा उनसे उत्पन्न विकृतियों का सामना करते हुए उन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता और कुछ समय के लिए कल्पनालोक में एकांत विश्राम की कामना करता है वहीं ऐसा लगता है कि वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों सम्बन्धों से कटकर नितान्त वैयक्तिक एवं असामाजिक रूप में पलायन कर रहा है किन्तु वास्तव में वह उसके असंतोष की ही अभिव्यक्ति लगती है । यह विश्राम कामना स्थायी न होकर क्षणिक ही दिखाई देती है । समग्र रूप से छायावादी काव्य विरति और पलायन का काव्य नहीं है । प्रगतिवाद के प्रभाव के बाद कतिपय छायावादी कवियों द्वारा जो साहित्य लिखा गया उसमें ऐसे विश्राम का स्वर स्वतः विलुप्त हो गया है ।

०

खण्ड १

अध्याय ६—कला

कला

छायावादी कवियों की कला-सम्बन्धी विचारधारा को विश्लेषित करने के पूर्व तत्सम्बन्धी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो कहा जा सकता है कि शुरू से ही 'मानव के निमित्त कला ने उसके चतुर्दिक वातावरण को अलंकृत करने के लिए एक मार्ग प्रशस्त किया था, जिससे या तो उसकी अनुभूति परितुष्ट होती थी अथवा उसे अपने वैयक्तिक भयों पर जीत की भावना उपलब्ध होती थी '[१] पर इसमें निहित तत्वों के परिप्रेक्ष्य में कला की स्थिति 'मनुष्य के सौन्दर्य, राग, सत्य, प्रज्ञा एवं सदाशयता की ओर उन्मुख स्वाभाविक आवेग के कारण है ।'[२] 'कला सदैव मानव संस्कृति का एक अविभाज्य अंग रही है ।'[३]

संस्कृति के विकास के साथ ही कला संबंधी विचारधारा में भी विकास, परिष्कार होता गया । इस शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय ग्रंथों में (ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ-ब्राह्मण, तैत्तरीय संहिता, महाभारत, भागवत्, कथा-सरित्सागर, हितोपदेश आदि में)[४] चारु शिल्प, कारु शिल्प के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है ।

पौर्वात्य और पाश्चात्य में कला को पहले विशेष कौशल से समुत्पन्न कार्य के रूप में ही देखा गया । उसका स्वाभाविक जीवन के अभिव्यक्तिकरण से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था । 'शुक्रनीति' की चौंसठ और 'प्रबंधकोश' की बहत्तर कलाएं, कश्मीरी पण्डित क्षेमेन्द्र की २०८ प्रमुख कलाओं तथा भर्तृहरि के प्रसिद्ध श्लोक 'साहित्य संगीत कला विहीन:' में कला की विशिष्ट स्थिति इस बात का संकेत करती है कि कला अपने आप में जीवन की प्रयत्नसाध्य कुशल अभिव्यक्ति ही रही है । इसी प्रकार प्राचीन लैटिन में 'आर्स' का अर्थ ही कारीगरी है । बाद में इसका अर्थ 'शास्त्र' हो गया । जैसे व्याकरण या ज्योतिष ।[५] सत्रहवीं शती में कला के सौंदर्यभावना के विकास के साथ ही उसपर से परम्परागत शास्त्रीय भावना हटती सी दीख पड़ती है । इसके अनन्तर अठारहवीं शती में कला को दो भागों में वर्गीकृत किया गया -- उपयोगी कला और ललित कला । कदाचित् यह 'कला कला के लिए'

१- The Arts and Man, P.479

२- Indian Aesthetics, P. 4

३- भारतीय कला के पदचिह्न, पृ० १२७

४- कला, पृ० ६

५- साहित्य चिन्तन, पृ० १६

की प्रतिक्रिया थी । कला की नितान्त उपयोगितावादी प्रतिक्रिया होने के कारण वह सौन्दर्य भावना से उत्तरोत्तर सम्बन्धित होती गयी । पर उन्नीसवीं शती में जब कला के उद्देश्य को व्यवसाय से सम्बन्धित किया गया तो पुन: कला विचारकों ने उसके उद्देश को सुरक्षित रखते हुए 'कला कला के लिए' का ही समर्थन किया ।

साहित्य के इतिहास के आधार पर कला की प्रकृति एवं उसके औचित्तार को विश्लेषित किया जाय तो कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में कला की प्रखर ओजस्वी प्रकृति अपने सहज रूप में थी । उस समय कला का रूप अपरिष्कृत-सा था । मध्यकाल में यह अपरिष्कृत रूप प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से भक्ति से सम्बन्धित होने के कारण काफ़ी परिष्कृत हो गया क्योंकि धार्मिक भावना से प्रभावित होने के कारण कला में सौम्य, उदात्त, संयत और अन्य दूसरे मूल्यों को पौराणिक प्रतीकों से संबंधित कर उसे अधिक रसमय बनाया गया । आधुनिक काल में कला की दृष्टि में पर्याप्त परिवर्तन हुआ । कला संबंधी दृष्टिकोण पहले नितान्त आदर्शवादी था । पर विज्ञान की नवीन उपलब्धियों के कारण उसमें यथार्थ भावना का उदय हुआ । विज्ञान ने कला को अभिव्यक्ति के लिए उपकरण, विस्तार के लिए नई दिशाएं, प्रयोग के लिए क्षेत्र, नवीन रूपों के विकास के लिए आवश्यक साहस और स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति के लिए मानवतावादी दृष्टि और मंगल की भावना आदि देकर नए युग का सूत्रपात किया । कला संबंधी दृष्टिकोण रस से हट कर वस्तु में निहित वास्तविकता और जिज्ञासा से सम्बन्धित हुआ । वास्तविकता से अधिक संबंधित होने के कारण आधुनिक कला की प्रकृति व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, एवं अरूपात्मकता की ओर विकसित हुई है, जो कि स्थूल से सूक्ष्म के विकास की द्योतक है । जहां तक छायावादी कवियों की कला सम्बन्धी धारणा का प्रश्न है, उन्हें क्रमश: देखना ही अभीष्ट होगा ।

प्रसाद

'संस्कृति सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है'[६] और यह मौलिक चेष्टा कला से भी प्रमुख रूप से सम्बन्धित है । जहां तक प्रसाद की कला विषयक धारणा का प्रश्न है - उनके अनुसार 'काव्य और कला के दृष्टिकोण से कला की विवेचना में प्रथम

६- काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० २८

विचारणीय उसका वर्गीकरण हो गया है और उसके लिए संभवत: हेगेल के अनुकरण पर काव्य का वर्गीकरण कला के अन्तर्गत किया जाने लगा है।[७] प्रभाव रूप में इस युग को ~~व~~ ज्ञान-सम्बन्धिनी का व्यापक प्रभुत्व क्रियात्मक रूप में दिखाई देने लगा है, किन्तु साथ ही साथ ऐसी विवेचनाओं में प्रतिक्रिया के रूप में भारतीयता की भी दुहाई सुनी जाती है। परिणाम में मिश्रित विचारों के कारण हमारी विचारधारा अव्यवस्था के दल-दल में पड़ी रह जाती है।[८] यह स्थिति भ्रमात्मक कही जासकती है।

जहां तक काव्य और कला का संबंध है काव्य की गणना विद्या में थी और कलाओं का वर्गीकरण उपविद्या में था। कलाओं का कामसूत्र में जो विवरण मिलता है, उसमें संगीत ~~का~~ और चित्र तथा अनेक प्रकार की ललित कलाओं के साथ-साथ काव्य समस्या-पूरण भी एक कला है, किन्तु वह समस्यापूर्ति (श्लोकस्य समस्यापूरणम् क्रीड़ार्थम् वादार्थम् च) कौतुक और वाद-विवाद के कौशल के लिए होती थी। साहित्य में वह एक साधारण शैली का कौशल मात्र समझी जाती थी। कला से जो अर्थ पाश्चात्य विचारों में लिया जाता है, वैसा भारतीय दृष्टिकोण में नहीं।

हिन्दी में आलोचना कला के नाम से आरम्भ होती है और साधारणत: हेगेल के मतानुसार मूर्त और अमूर्त विभागों के द्वारा कलाओं में लघुत्व और महत्व समझा जाता है।[१०] कला के वर्गीकरण के संबंध में पाश्चात्य वर्गीकरण में भी मतभेद दिखाई पड़ता है। प्राचीन काल में ग्रीस का दार्शनिक प्लेटो कविता को संगीत के अन्तर्गत वर्णन करता है, किन्तु वर्तमान विचारधारा मूर्त और अमूर्त कलाओं का भेद करते हुए ~~व~~ भी कविता को अमूर्त संगीत-कला से ऊंचा स्थान देती है। कला के इस तरह विभाग करने वालों का कहना है कि मानव-सौंदर्य-बोध की सत्ता का निदर्शन तारतम्य के द्वारा दो भागों में किया जा सकता है। एक स्थूल और बाह्य तथा भौतिक पदार्थों के आधार पर ग्रथित होने के कारण निम्नकोटि की, मूर्त होती है। जिसका वास्तुस प्रत्यक्ष हो सके, वह मूर्त है। गृह-निर्माण विद्या, मूर्तिकला और चित्रकारी ये कला के मूर्त विभाग हैं और क्रमश: अपनी कोटि में हो सूक्ष्म होते-होते अपना श्रेणी-विभाग करती हैं।[११] प्रसाद की धारणा है कि संगीत-कला

७-काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० २७

८- वही, पृ० २७

९- वही, पृ० ३१

१०-काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३१

११- वही, पृ० ३२

और कविता अमूर्त कलाएं हैं। संगीत-कला नादात्मक है और कविता उससे उच्च कोटि की अमूर्त कला है। काव्य-कला को अमूर्त मानने में जो मनोवृत्ति दिखाई देती है वह महत्व उसकी परम्परा के कारण है। यों तो साहित्य-कला उनके तर्कों के आधार पर मूर्त भी मानी जा सकती है, क्योंकि साहित्य-कला अपनी वर्णमालाओं के द्वारा प्रत्यक्ष मूर्तिमती है।[१२]

वर्गीकरण की दृष्टि से कला को भारतीय दृष्टि में उपविद्या मानने का जो प्रश्न आता है, उससे यह प्रकट होता है कि यह विज्ञान से अधिक संबंधित है। उसकी रेखाएं निश्चित सिद्धान्त तक पहुंचा देती हैं। संभवत: इसीलिए काव्य-समस्या-पूरण इत्यादि भी छंदशास्त्र और पिंगल के ~~[illegible]~~ नियमों के द्वारा बनने के कारण उपविद्या-कला के अन्तर्गत माना गया है। छन्दशास्त्र काव्योपजीवी-कला का शास्त्र है। इसलिए यह भी विज्ञान का अथवा शास्त्रीय विषय है। वास्तुनिर्माण, मूर्ति और चित्र शास्त्रीय दृष्टि से शिल्प कहे जाते हैं और इन सब की विशेषता भिन्न-भिन्न होने पर भी ये सब एक ही वर्ग की वस्तुएं हैं।[१३]

पर यदि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखें तो स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। कोई कह सकता है कि अलंकार, वक्रोक्ति, रीति और कथानक इत्यादि में कला को समा मान लेनी चाहिए, किन्तु यह सब समय-समय की मान्यताएं और धारणाएं हैं। प्रतिभा का किसी कौशल-विशेष पर कभी अधिक झुकाव हुआ होगा। इसी अभिव्यक्ति के बाह्य रूप को कला के नाम से काव्य में समाहित करने की साहित्य में प्रथा-सी चल पड़ी है।

प्रसाद : निष्कर्ष

१- कला संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है।

२- हेगेल के प्रभाव में काव्य का वर्गीकरण कला के अन्तर्गत किया जाने लगा है।

३- कला का अर्थ पाश्चात्य-पौर्वात्य विचारधारा में भिन्न है।

१२- ~~[illegible]~~ काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३३

१३- वही, पृ० ३६

४- कला का दो वर्गीकरण किया जा सकता है :

(क) मूर्त, बाह्य तथा भौतिक (गृह निर्माण, चित्र)

(ख) अमूर्त (संगीत, कविता)

५- साहित्य कला को मूर्त ~~अथवा~~ मूर्त कला भी माना जा सकता है क्योंकि वह अपनी वर्णभावनाओं के द्वारा प्रत्यक्ष मूर्तिमती है।

पंत
--

आज साहित्य में इस प्रकार के अनेक प्रश्न मन में उठने लगे हैं कि "कला कला के लिए अथवा जीवन के लिए, कला प्रचार के लिए या आत्माभिव्यक्ति के लिए अथवा कला स्वान्त: सुखाय या बहुजनहिताय के लिए। इस प्रकार के सभी प्रश्नों के मूल में एक ही भावना या प्रेरणा काम कर रही है और वह है व्यक्ति और समाज के बीच बढ़ते हुए विरोध को मिटाना अथवा वैयक्तिक तथा सामाजिक संचरणों के बीच सामंजस्य स्थापित करना।"[१४] आज मानव चेतना के सभी स्तरों में अन्तर्विरोध के चिह्न दिखाई दे रहे हैं और चाहे वस्तुवादी दृष्टिकोण से देखा जाय अथवा आदर्शवादी विचारों के कोण से, आज मनुष्य के मन तथा जीवन के स्तरों में परस्पर विरोधी शक्तियां आधिपत्य जमाये हुई हैं और हमारी साहित्यिक पुकारें "कला कला के लिए या जीवन के लिए, अथवा कला स्वांत: सुखाय या बहुजनहिताय आदि भी हमारे युग के इसी विरोधाभास को हमारे सामने उपस्थित कर उसका समाधान मांग रही हैं।"[१५]

कवि की विचारधारा इस बात की पुष्टि करती है कि जीवन-रहस्य के द्वार खुल जाने पर हमें अनुभव होगा कि जीवन स्वयं एक विराट् कला तथा कलाकार है और एक महान् कलाकार की दृष्टि में कला कला के लिए होने पर भी जीवनोपयोगी ही बनी रहेगी और कला जीवन के लिए होते हुए भी कलात्मक अथवा कला के लिए रहेगी। इसी प्रकार कुछ और गंभीरतापूर्वक विचार करने से हमारे भीतर यह बात भी स्पष्ट हो जायगी कि कला द्वारा आत्माभिव्यक्ति भी सार्वजनिक तथा लोकोपयोगी हो सकती है। लोक कला की परिणति भी आत्म-प्रकटीकरण अथवा आत्माभिव्यक्ति

१४- गद्य-पथ (कला का प्रयोजन), पृ० १५१

१५- वही, पृष्ठ १५२

में भी सकती है ।'[१६]

कान्त सानिध्य में पंत ने कला के सम्बन्ध में ताज को कला कृति को --- 'मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन, जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन संग सौध में हो शृंगार मरण का शोभन, नग्न क्षुधातुर वास विहीन रहे जीवित जन ?'[१७] संबोधित किया । कला के प्रति उनकी यह दृष्टि 'सौन्दर्य कला'[१८] शीर्षक कविता से नितान्त भिन्न कही जा सकती है और यही बात 'कला के प्रति'[१६] के लिए भी कही जा सकती है क्योंकि दोनों में ही कवि का कला के निमित्त नितान्त स्थूल उपयोगितावादी दृष्टिकोण नहीं मिलता जो कि ताज में प्रत्यक्ष रूप से स्थित है । पर वाणी तक आते-आते उसकी विचारधारा में पुन: परिवर्तन आया और वह 'शब्द शिल्प से कला न साधी, मन के मूल्यों में मन बांधी, जीवन श्रद्धा से आराधी'[२०] को स्वीकार करने लगता है ।

कवि ने 'किसी कलाकृति के लिए तीन गुण अनिवार्य माना -- सौन्दर्य बोध, व्यापक गम्भीर अनुभूति और उपयोगी सत्य ।[२१]

उपर्युक्त तीनों को दृष्टिगत कर उन्होंने कहा कि 'आलोचकों का कहना है कि मेरी बाद की कृतियों में कला का अभाव रहा है । विचार और कला की तुलना में इस युग में विचारों को प्राधान्य मिलना चाहिए । जिस युग में विचार (आइडिया) का स्वरूप परिपक्व और स्पष्ट हो जाता है उस युग में कला का अधिक प्रयोग किया जा सकता है ।'[२२] उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि अशांत, संदिग्ध, पराजित एवं असिद्ध कलाकार को विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति के अनुकूल कला का यथोचित एवं यथासंभव प्रयोग करना चाहिए । अपनी युग परिस्थितियों से प्रभावित होकर वे उपयोगितावाद ही को प्रमुख स्थान देते हैं । पर इनके अनुसार सोने को सुगंधित करने की चेष्टा स्वप्नकार को अवश्य करनी चाहिए ।[२३] इस तरह पंत की कला विषयक दृष्टि उपयोगितावाद को भी अधिक प्रश्रय देती है ।

१६- गद्य-पथ, पृ० १४६ | २०- वाणी, पृ० ३८
१७- पल्लविनी, पृ० २३२ | २१- शिल्प और दर्शन, पृ० २०८
१८- ग्राम्या, पृ० ७६ | २२- आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ३६
१६- वही, पृ० ८१ | २३- वही, पृ० ४०

पंत : निष्कर्ष

१- कला की उपयोगिता परक दृष्टि जीवनोपयोगी, लोकोपयोगी है ।

२- घोर उपयोगितावादी दृष्टि भी कालान्तर में जीवन का मूल्य श्रद्धा से आंकने लगती है ।

३- कला के तीन गुण हैं :

(१) सौन्दर्य बोध

(२) व्यापक गंभीर अनुभूति

(३) उपयोगी सत्य

निराला

निराला कला को पूर्णता के अर्थ में ग्रहण करते हैं ।[२४] उनके अनुसार केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं किन्तु इन सभी से सम्बद्ध सौंदर्य की पूर्ण सीमा है[२५] जिसे कला से सम्बन्धित किया जासकता है । उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उनकी पद्यात्मक छोटी रचनाएं(Lyrics) और गीत (Songs) में भी कला विषयक दृष्टि अपने संपूर्णरूप में ही उपस्थित हुई है, खंड रूप में नहीं ।[२६] यही कारण है कि यदि उनकी कविताओं पर कला के दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो खंडश: विश्लेषण करके उसे किसी एकांगी दृष्टिकोण से नहीं देखा जा सकता ।

निराला काव्य शिल्प को कला की उपलब्धि तक पहुंचने का मात्र साधन समझते हैं । उनके दृष्टिकोण से यदि कला को ही केन्द्र बिन्दु बनाया जाय तो उसे शिल्प की संज्ञा दी जा सकती है । पर यह ध्यान देने की बात है कि कला की सार्थकता मात्र 'वर्ण चमत्कार'[२७] से नहीं आ सकती । भले ही एक-एक शब्द... ध्वनिमय साकार'[२८] करने का सार्थक प्रयत्न ही क्यों न किया जाय । वस्तुत: इसके लिए बाह्य और आन्तरिक परिष्कार दोनों अपेक्षित हैं ।

२४- प्रबन्ध प्रतिभा, पृ० २७६
२५- वही, पृ० २७२
२६- वही, पृ० २८४
२७- गीतिका, पृ० ६२
२८- वही, पृ० ६२

निराला : निष्कर्ष

१- सौन्दर्यपूर्ण परिणति ही कला है ।

२- काव्य शिल्प के माध्यम से कला की खोज है ।

३- काव्य में कला की सार्थकता मात्र वर्ण चमत्कार से नहीं आ सकती ।

४- भाव और कला पक्ष दोनों ही कलात्मक उपलब्धि के लिए आवश्यक हैं ।

महादेवी

महादेवी वर्मा साहित्य के आधार पर कला सम्बन्धी धारणा के स्पष्टीकरण के निमित्त उनकी विचारधारा का विश्लेषण किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि 'बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् तक फैले और ज्ञान तथा भाव क्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा ।'[29] इसके उद्देश्य के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'काव्य कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है ।'[30] और इस सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएं जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं वह जीवन की पूर्णतया अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रेखा पर नहीं ।[31] 'जब तक हमारे सूक्ष्म अन्तर्जगत का बाह्य जीवन में पग-पग पर उपयोग होता रहेगा, तब तक कला का सूक्ष्म उपयोग सम्बन्धी विवाद भी विशेष महत्व नहीं रख सकता ।'[32] जहां तक काव्य तथा अन्य ललित कलाओं का सम्बन्ध है, वे उपयोग को उस उन्नत भूमि पर स्थायी हो पाती हैं, जहां उपयोग सामान्य रह सके ।'[33] वहां यह जीवन की विविधता समेटती हुई उससे आगे बढ़ती है ।'[34]

२९- साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० २२

३०- वही, पृ० ३४

३१- वही, पृ० ३४

३२- वही, पृ० ३६

३३- वही, पृ० ४०

३४- वही, पृ० ४२

कला दृष्टि ने सत्य पर सुन्दर ताना-बाना बुनने के लिए स्थूल-सूक्ष्म सभी विषयों को अपना उपकरण बनाया । `इसी से काव्य में कलात्मक उत्कर्ष एक ऐसी सीमा तक पहुंच गया जहां से वह ज्ञान को भी सहायता दे सके`[35] आंगिक दृष्टिकोण से कला शब्द में पूर्णत्व का बोध होता है । ऐसी कोई भी वस्तु अपनी अन्तिम स्थिति में जितनी विशेष है आरम्भ में उतनी ही सामान्य दीख पड़ती है क्योंकि उसके पीछे स्थूल जगत का अस्तित्व, जीवन की स्थिति, अभाव की अनुभूति, पूर्ति का आदर्श, उपकरणों की खोज, एकीकरण की कुशलता[36] आदि चीजें रहती हैं । यह ललित हो या... उपयोगी उन दोनों की स्थिति जीवन के बाहर संभव नहीं ।[37] इसलिए भी कि अन्तर और बाह्य जगत के ज्ञान और भाव जगत के व्यापक सत्य की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम अन्वेषण से ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार[38] किया और `जीवन... के क्षेत्र में उनके द्वारा... (पर्याप्त) परिष्कार हुआ`[39] इसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।

जहाँ तक कला से युग, धर्म, संस्कृति और जीवन का सम्बन्ध है -- `आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रंग चढ़ाये यथार्थ का चित्र दे परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नहीं क्योंकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता`[40] वस्तुतः यह यथार्थ बिना वैयक्तिक भावना की प्रतिक्रिया के प्रकट नहीं हो सकता । जहां तक संस्कृति और धर्म का प्रश्न है -- `हमारी संस्कृति ने धर्म और कला का ऐसा ग्रन्थि बन्धन किया था जो कि जीवन से अधिक मृत्यु में दृढ़ होता गया ।`[41] पर आधुनिक युग में `व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्ष-शोक, आशा-निराशा, सुख दुःख आदि की संख्यातीत विविधता की स्वीकृति देने ही के लिए कला-सृजन होता है ।`[42]

३५-दीपशिखा, पृ० ३

३६-वही, पृ० ३

३७-वही, पृ० ३

३८-वही, पृ० २

३९-साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० ७०

४०-आधुनिक कवि, महादेवी, पृ० १४

४१-साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० ५९

४२- दीपशिखा, पृ० ७

महादेवी : निष्कर्ष

१- कला सत्य और सहज अभिव्यक्ति का माध्यम है ।

२- यह जीवन में अखण्ड सत्य की खोज करता है ।

३- कला में उपयोगिता परक दृष्टि आवश्यक है ।

४- कला काव्य में इस स्तर तक पहुंच गई कि ज्ञान को भी सहायता दे सके, क्योंकि वह जीवन के परिष्कार का साधन है ।

५- कला में भावना का रंग आवश्यक है । मात्र यथार्थ की नग्नता ग्राह्य नहीं ।

६- भारतीय संस्कृति में धर्म और कला का ग्रन्थि बन्धन है । इसका कारण जीवन की विविधता के साथ कला-सृजन के नैकट्य संबंध की धारणा है ।

रामकुमार

रामकुमार वर्मा के अनुसार `अनुभूति ही कला बन जाती है और यही कला जीवन में राग की सृष्टि करती है ।`[४३] यह अपने आप में जीवन की प्रयत्न साध्य अभिव्यक्ति[४४] भी कही जा सकती है ।

यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो `पूर्व और पश्चिम दोनों ही की दृष्टियों ने `कला` को पहले विशेष कौशल से समुत्पन्न कार्य के रूप में ही देखा, उसका स्वाभाविक जीवन के अभिव्यक्तिकरण से विशेष सम्बन्ध नहीं था ।`[४५] पर सत्रहवीं शताब्दी में जब सौंदर्य-भावना और सौंदर्य-रहस्य का विकास हुआ तब कला पर से शास्त्र का आवरण हटता हुआ दिखाई पड़ा । अठारहवीं शताब्दी ने `कला` की विशिष्टता स्थापित की और उन्नीसवीं शताब्दी में `कला कला के लिए` सिद्धान्त प्रचारित हुआ, तो `उपयोगी कला` और `ललित कला` के बीच एक विभाजक रेखा खींची गई । इस भांति कला का सम्बन्ध क्रमशः सौन्दर्य-भावना के समीप आता गया और वह धीरे-धीरे एकमात्र ललित भाव-मूलक ही निर्धारित हुआ । कला के विकास में जब से `उपयोग` की भावना का आधिपत्य हुआ है, तभी से कला की सौन्दर्य-भावना ने विद्रोह किया है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब व्यवसाय के लिए

४३- साहित्य शास्त्र, पृ० ३३ ४५-साहित्य चिन्तन, पृ० १९

४४- वर्मा, पृ० ३३

कला का प्रयोग होने लगा तथा 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त (पुन:) वायु-मण्डल में गूंजा और यह समझा गया कि कला का अस्तित्व केवल अपने लिए ही है।[46]

कवि कला के निमित्त सुन्दरता वाह्य और अंतरंग दोनों ही दृष्टियों से आवश्यक मानता है।[47] सौन्दर्य के आश्रय से कला जीवन का मूल्यांकन करने में समर्थ होती है। दूसरी ओर जीवन भी नए-नए मानदण्डों को लेकर कला की कोटियां निर्धारित करता है। इस भांति जीवन और कला का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, लेकिन शर्त यही है कि न तो जीवन अस्वाभाविक हो सके और न कला में ही कृत्रिमता का कुत्सित कीट प्रवेश करे।[48] जीवन अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कला को अपना माध्यम बनाना चाहता है,[49] और अपनी ललित अनुभूतियों के लिए कला को ही उचित कसौटी समझने लगा है।[50] यही कारण है कि कवि ने कला की सृष्टि जीवन के मनोविज्ञान में ही देखी है, और इस भांति कला-क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है। उसकी दृष्टि में चाहे कला किसी माध्यम से प्रकट हो या न हो, जीवन का मनोविज्ञान ही कला का सर्वप्रधान माध्यम है।[51]

रामकुमार: निष्कर्ष

१- पूर्व और पश्चिम के देशों में कला पहले कौशल के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ।

२- कला को उपयोगिता परक भावना से सम्बन्धित करने पर सौन्दर्य भावना में पर्याप्त अन्तर आ गया।

३- कला में सौंदर्य वाह्य और आंतरिक दोनों ही दृष्टियों से आवश्यक है।

४- कला जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है और इसका विस्तार जीवन के मनोविज्ञान से प्रभावित है।

समग्र निष्कर्ष

छायावादी कवियों ने कला को संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग माना। उनकी दृष्टि में देश की संस्कृति के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही कला के दृष्टिकोण में भी

४६- साहित्य चिन्तन, पृ० १६   ४८-साहित्य चिन्तन, पृ० २०

४७- वही, पृ० १६   ५०- वही, पृ० २०

परिष्कार होता है, यह सत्य और सहज अभिव्यक्ति का माध्यम है, साथ ही जीवन में अखण्ड सत्य की खोज करता है। जहाँ तक कला की परिभाषा का प्रश्न है उन्होंने सौन्दर्य पूर्ण परिणति को ही कला माना है। काव्य शिल्प के माध्यम से कला की खोज है और काव्य में कला की सार्थकता मात्र वर्ण चमत्कार से नहीं आ सकती, क्योंकि कला के तीन गुण हैं -- १- सौन्दर्य बोध, २- व्यापक गम्भीर अनुभूति और ३- उपयोगी सत्य। कला की शब्दगत सार्थकता के निमित्त इन तीनों की स्थिति आवश्यक है। कला काव्य में उस ऊँचे स्तर पर पहुँच जाती है जहाँ ज्ञान को भी सहायता दे सके क्योंकि यह जीवन के परिष्कार का साधन है।

आलोच्य कवियों ने कला को जीवन की उपयोगिता परक दृष्टि से अलग नहीं देखा। वरन् उन्होंने कला और जीवन को अभिन्न रूप से सम्बन्धित करते हुए स्वयं जीवन को भी एक विराट कला तथा कलाकार माना। उनकी दृष्टि में कला की उपयोगिता जीवन परक होने के साथ ही लोकोपयोगी भी है। यहाँ कला की मूल मूल दृष्टि व्यक्ति और समाज पर केन्द्रित होने से कला को अनुकरण, अभिव्यक्ति, भावनाओं को दूसरों पर प्रतिष्ठित करने का साधन, सौन्दर्य साधना तथा अन्य दूसरी परिभाषाओं को भी अपने अर्थविस्तार में समेट लेती है क्योंकि उसमें सौन्दर्यवादी दृष्टि भी निहित है।

भूमिका में इसका संकेत किया जा चुका है कि पूर्व और पश्चिम के देशों में कला पहले कौशल के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ। उसका सम्बन्ध सहज जीवन की अभिव्यक्ति से विशेष सम्बन्धित नहीं था। पर कालान्तर में यह भेद दोनों में स्पष्ट होने लगता है। इस दृष्टि से भारतीय परिवेश में जो कला समीक्षा हुई है उसका सम्बन्ध कला के व्यावहारिक पक्ष से ही विशेष रूप से सम्बन्धित कहा जा सकता है जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण अपेक्षाकृत ऐसा कम रहा है। साथ ही कला सम्बन्धी उदारवादी दृष्टिकोण पाश्चात्य की अपेक्षा पौर्वात्य में कम मिलता है। कतिपय पाश्चात्य विचारकों ने कला को धर्म से भी ऊँचा स्थान दिया पर यह बात पौर्वात्य विचारकों में देखने को नहीं मिलती। भारतीय दृष्टिकोण से धर्म ही सभी मूल्यों का मापदण्ड था। पर वैज्ञानिक उपलब्धियों और पाश्चात्य विचारधारा में भी पर्याप्त अन्तर आया यह बात आलोच्य विषय के छायावादी कवियों की कला विषयक धारणा के आधार पर कही जा सकती है।

अब तक कला और उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में कला-कला के लिए, जीवन के लिए, आत्मानुभूति के लिए और सृजनात्मक वृत्ति की परितृप्ति के लिए ही उसके प्रयोजन माने जाते थे। छायावादी कवियों ने उपर्युक्त सभी उपयोगितावादी विचारधारा को कला से सम्बन्धित किया, इसके कारण तत्सम्बन्धित सौन्दर्य भावना में भी पर्याप्त अन्तर आ गया है जिसमें आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य अनिवार्य है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कला सम्बन्धी भारतीय दृष्टिकोण धर्म और कला से अनिवार्य रूप से सम्बन्धित दीख पड़ता है। छायावादी कवियों के अनुसार इसका कारण कला और जीवन की विविधता के साथ कला सृजन के नैकट्य सम्बन्ध की धारणा है। यह जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है साथ ही इसका विस्तार जीवन के मनोविज्ञान से प्रभावित रहा है। पर छायावादी कवियों की कला विषयक दृष्टि मध्यकालीन कवियों की कला विषयक दृष्टि से पर्याप्त भिन्न दीख पड़ती है। उस समय कला धर्माश्रित और राज्याश्रित थी पर लोकाश्रित नहीं थी। लोक कला की कला की श्रेणी में स्थान नहीं था। राज्य ही संस्कृति का केन्द्र था। पराधीनता के युग में राजसत्ता से संघर्ष करने के निमित्त जनशक्ति जागरण ने लोक कला एवं लोकसाहित्य की प्रतिष्ठा की। छायावादी कवियों की कला सम्बन्धी धारणा में परलोकवादी चिन्ता की जगह लोकवादी चिन्ता दीख पड़ती है। फलत: धर्म, सम्प्रदाय एवं बहुदेववादी रूप के प्रति एक उदासीनता और उनके स्थान पर तत्कालीन जीवन के राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक एवं अन्य सामाजिक पक्ष प्रधान परिलक्षित होते हैं। आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने भी काव्य और कला का पर्याप्त विवेचन, विश्लेषण किया। उनके अनुसार भारतीय दृष्टिकोण से काव्य और कला को परस्पर सम्बन्धित करते हुए उसके दो विभाजन किए गए। काव्य का सम्बन्ध विद्या से था और अन्य कलाओं की गणना उपविद्या में की जाती थी। कदाचित् यही कारण था कि कामसूत्र में जो अनेक प्रकार की ललित कलाओं की गणना की गयी उसमें संगीत, चित्र तथा अन्य कलाओं के साथ काव्य समस्या पूरण को भी समाहित किया गया, क्योंकि समस्या पूर्ति -- कौतुक, वादविवाद और साधारण शैली कौशल से ही संबंधित की जाती थी। इसे कला इसलिए माना गया क्योंकि इस काव्य का सम्बन्ध छन्द और पिंगल शास्त्र से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित था। इनके अनुसार छन्दशास्त्र काव्योपजीवी कला का शास्त्र होने से विज्ञान अथवा शास्त्रीय विषय है। वस्तुत:

चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुनिर्माण कला भी शास्त्रीय दृष्टिकोण से शिल्प कहे जाते हैं। इनकी विशेषता भिन्न-भिन्न होने पर भी ये एक ही वर्ग की वस्तुएं हैं, इसे छायावादी कवियों ने भी स्वीकार किया है। पर इन्हीं कवियों ने काव्य को समस्यापूर्ति, कौतुक, वादविवाद तथा शैली कौशल से अलग उसे जीवन से अधिक संबंधित किया क्योंकि काव्य उनकी दृष्टि में जीवन की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है, मात्र मनोरंजन की वस्तु नहीं।

आलोच्य कवियों ने भी कला को दो पृथक वर्गों में विभाजित किया, अमूर्त और मूर्त। जिसमें अमूर्त को मूर्त की अपेक्षा उच्च कोटि का स्थान दिया गया। इन्होंने भी संगीत और कविता को अमूर्त और चित्र, मूर्ति आदि कलाओं को मूर्त की श्रेणी में रक्खा।

छायावाद युग के राष्ट्रीय आन्दोलनों ने कला के रूप को प्रभावित किया साथ ही तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों की वृद्धि से कला सम्बन्धी उपलब्धियों की खोज छायावादी कवियों की विशेषता कही जा सकती है। इनके अनुसार कला में भावना का रंग आवश्यक है मात्र यथार्थ की नग्नता इन्हें ग्राह्य नहीं। कदाचित् इसका कारण यह है कि उन्होंने यह स्वीकार किया है कि कालान्तर में घोर उपयोगितावादी दृष्टि भी जीवन का मूल्य श्रद्धा से आंकने लगती है। अत: कला का भावना-मिश्रित यथार्थ रूप छायावादी कवियों की वैचारिक उपलब्धि कही जाएगी।

खण्ड-१

अध्याय ७ – प्रकृति

प्रकृति

छायावादी कवियों ने प्रयोग की दृष्टि से प्रकृति को अंग्रेजी के 'नेचर' शब्द का समानार्थी प्रयुक्त किया है । पर इसके विपरीत साधारण अर्थ में ये दोनों ही शब्द अपने विभिन्न अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं ।[१] छायावादी कवियों की प्रकृति विषयक धारणा को विश्लेषित करने के पूर्व उसकी पीठिका पर विचार करना युक्तिसंगत होगा ।

गीता के अध्याय ७ श्लोक चार में भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रकृति की व्याख्या इस प्रकार की गयी है –

भूमिरापो नलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।[२]

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार वाह्य और अंतरजगत् (मनोजगत) सब प्रकृति में सम्मिलित हैं और यह प्रकृति का वर्गीकरण भी सत्य-रज-तम तीन गुणों से आच्छादित है । परन्तु बोलचाल में प्रकृति मानव का प्रतिपक्ष हैं अर्थात् मानवेतर ही प्रकृति है -- वह सम्पूर्ण परिवेश जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है ।[३]

प्राचीनकाल में प्रकृति के प्रति मनुष्य का भाव आश्चर्यात्मक था । वह उसके रहस्यों से भयभीत भी था । लेकिन आदिम संस्कृति के आख्याताओं ने मानव के इस भाव को विशेष रूप से ि व्याख्यायित किया है और इसे धर्म का मूल स्रोत माना है । धार्मिक विश्वास से और देववाद का लोग इसी भय से प्रेरित होकर उसकी पूजा किया करते थे । लेकिन जैसे जैसे प्रकृति का रहस्य खुलता गया उसके प्रति आत्मीयता बढ़ती गयी । कालान्तर में इसका मानवीकरण

---

१. बुद्धिजीवी, भू-लोक या भूगोल, जगत्, संसार, सृष्टि विश्व, आदि धर्म या स्वाभाविक विधान, स्वाभाविक जगत् का उपादान कारण, वह मूल

भी हो गया और वह आश्चर्य, पूजा या श्रद्धा का भाव समत्व के स्तर पर बदल गया । प्राकृतिक शक्तियों में देवताओं की कल्पना उत्तरोत्तर मानवीयता से युक्त होती गयी और प्रकृति तथा मानव के बीच सम भाव आता गया । भय के स्थान पर परिचय और प्रियता का संचार हुआ ।

प्रकृति चेतना की विस्मृति स्थिति और जीव ब्रह्म पूर्ण चेतन के मध्य की स्थिति है । भारतीय दर्शन के अनुसार ब्रह्म की भावना और ईश्वर रूप प्रत्यक्ष है, प्रकृति की भावना भी इसी से प्रेरित है लेकिन उससे प्रकृति के रूप का अलग अस्तित्व नहीं है । मध्यकालीन (पाश्चात्य) सर्वेश्वरवाद, एकत्व और एकात्म की ब्रह्म भावना को प्रकृति में माध्यम रूप से देखते हुए उसमें ईश्वर भावना को समझने का प्रयास करता है । हम अपनी आंखों से ही प्रकृति को देखते हैं । ज्ञान और अनुभव में स्वयं की इच्छा शक्ति की सचेतन प्रेरणा ही प्रधान रहती है । यही कारण है कि अपनी मन: स्थिति के अनुसार प्रकृति को अपने सुख में सुखी और दु:ख में दु:खी देखते हैं । यह अवश्य है कि प्रकृति के भावात्मक और वर्णनात्मक चित्रण एवं उसके बिम्ब स्पष्टीकरण में कल्पना का भी प्रमुख हाथ रहता है क्योंकि कल्पना के ही माध्यम से प्रकृति के रंग को मन: स्थिति के अनुसार और भी चटकीला करने में सहायता मिलती है ।

" मानव प्रकृति को अपनी चेतना के आधार पर ही समझता है । इस कारण प्रकृति की समानान्तर स्थितियों में अपनी जीवन शक्ति का आरोप कवि के लिए सरल और स्वाभाविक है । कवि अपनी अभिव्यक्ति में प्रकृति के

(पिछले पृष्ठ का शेष)

दृश्यों में दृष्टिगोचर होता है ।

Author of created things, an intelligent being. The visible creation, native state, affection, disposition, constitution, sort, birth.

गतिशील और प्रवाहित रूपों को सजीव और सप्राण कर देता है ।[४]

प्रकृति की दृष्टि से यद्यपि संस्कृत साहित्य में प्रकृति और उसके काव्य की परम्परा बहुत पुरानी है । पर यदि हिन्दी साहित्य के आदिकाल से अब तक के इतिहास को विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाय तो वीरगाथा काल और भक्ति काल के साथ रीतिकाल का दाय भी इसलिए नगण्य दीख पड़ता है, क्योंकि इस काल में प्रकृति के सूक्ष्म परिवेक्षण के प्रमाण कुछ ही कवियों में प्राप्त होते हैं, अन्यथा उपर्युक्त काल का अधिकांश साहित्य प्रकृति को अपने काव्य में मात्र चमत्कार प्रदर्शन की पीठिका बनाना चाहता है ।

आधुनिक काल में पाश्चात्य साहित्य और बंगला साहित्य के संसर्ग में आने पर प्रकृति और काव्य विषयक दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन हो गया और प्रकृति काव्य अपनी परम्परागत दृष्टिकोण से भिन्न एक नयी चेतना के रूप में अग्रसर होने लगा । इस नई चेतना ने प्रभावकारी रूप में वैदिक और संस्कृत से प्रेरणा पाई इसे नहीं भुलाया जा सकता, प्रभाव का यह रूप उसके बिम्ब और उपमाओं को स्पष्टत: देखा जा सकता है । प्रकृति सम्बन्धी अधिकांश बिम्ब और उपमायें अपनी प्रभाव की गहराई के कारण छायावाद में भी उसी रूप में प्रयुक्त होने लगी ।

पर यदि क्रम से देखें तो भारतेन्दु युग में प्राकृतिक दृश्यों का प्रत्यक्षीकरण स्थूल व्यवसाय के रूप में देखने को मिलता है ।[५] द्विवेदी काल में भी प्रकृति वर्णन के प्रति बहुत कुछ इतिवृत्तात्मक और परिगणनात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है । आचार्य ~~महावीरप्रसाद-द्विवेदी~~ रामचन्द्र शुक्ल की धारणा है कि इस काल में प्राकृतिक वर्णन की ओर हमारा काव्य कुछ अधिक अग्रसर हुआ पर प्राय: वहीं तक रहा जहाँ तक उसका सम्बन्ध मनुष्य के सुख-सौन्दर्य की भावना

---

४. प्रकृति और काव्य , पृ० ११२

५. माधुरी, ज्येष्ठ-आषाढ़ १९८० विक्रमी " काव्य में प्राकृतिक दृश्य " २५

से है। प्रकृति के जिन सामान्य रूपों के बीच नर जीवन का विकास हुआ है, जिन रूपों से हम बराबर घिरे रहते आए हैं उसके प्रति वह राग या ममता व्यक्त न हुई जो चिर सहचरों के प्रति सम्भवत: हुआ करती है। प्रकृति के प्राय: वे ही चटकीले, भड़कीले रूप लिये गए जो सजावट के काम के समझे गये।" [६] पर भारतेन्दु और द्विवेदी काल के कवियों की अपेक्षा आलोच्य कवियों के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण में पर्याप्त विस्तार मिलता है जिन्हें क्रमश: विश्लेषित करना ही अभीष्ट होगा।

प्रसाद

प्रसाद के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को यदि उनकी रचनाओं के आधार पर विश्लेषित करें तो कह सकते हैं कि उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रकृति और उसके सौन्दर्य के प्रति एक चमत्कृत करने वाला दृष्टिकोण मिलता है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में —" प्रकृति- सौन्दर्य ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह है, अथवा उस बड़े शिल्पकार के शिल्प का एक छोटा-सा नमूना है, या उसी को अद्भुत रस की जन्मदात्री कहना चाहिए। सम्पूर्ण रूप से वर्णन करना तो मानो ईश्वर के गुण की समालोचना करना है।" [७] और " हे प्रकृति देवी तुमको नमस्कार है, तुम्हारा स्वरूप अकथनीय है। द्वीप, महाद्वीप, प्रायद्वीप, समुद्र, नदी, पर्वत, नगर अथवा सम्पूर्ण जल-स्थल तुम्हारे उदर में हैं। उसमें स्थान विशेष में ईश्वरीय शिल्प, कौशल के साथ तुम्हारी मनोहारिणी छटा अतीव सुन्दर दृष्टिगोचर होती है। अगाध जल के तल में,समुद्र के गर्भ में, कैसी अद्भुत रचना, कैसा आश्चर्य। अहा!" [८] " ..... यह सब तुम्हारी ही आश्चर्यजनक लीला है, इससे तुम्हारे अनन्त वर्ण-रंजित मनोहर रूप को देखकर कौन आश्चर्य चकित नहीं हो जाता?" [९]

प्रकृति के प्रति यह आश्चर्यात्मक रूप प्राय: उनकी सभी प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में पाया जाता है। [१०] ऐसा लगता है वह प्रकृति को देख

---

६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५७३

मंत्रमुग्ध हो गया हो और उसके अनन्त सौन्दर्य के प्रति ऐसा आकर्षित हो गया कि उसके सौन्दर्य रहस्यों को समझ न पाने पर मात्र अवाक् रह जाने की स्थिति का साक्षात्कार करता है। साथ ही प्रकृति के सन्दर्भ में शिशु सी आश्चर्य की भावना उर्वशी [१०] बभ्रुवाहन [११] के कतिपय प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में देखी जा सकती है। पर बाद की कविताओं में कवि का प्रकृति के प्रति आश्चर्यात्मक भाव प्रकृति प्रेम के रूप में परिवर्तित दीख पड़ता है। यही कारण है कि वह स्वतंत्र रूप से भी प्रकृति वर्णन के रूप में — प्रथम प्रभात [१२] प्रभातकुमार, [१३] चन्द्र, [१४] रजनी, [१५] नीरद, [१६] शरद्पूर्णिमा, [१७] सन्ध्या तारा, [१८], चन्द्रोदय, [१९] इन्द्रधनुष, [२०] शारदीय शोभा, [२१] नवबसन्त, [२२] जलद आह्वान, [२३] वर्षा में नदी कूल, [२४] उद्यानलता, [२५] रजनीगन्धा, [२६] सरोज, [२७] मकरन्द बिन्दु, [२८] रसाल मंजरी, [२९] रसाल, [३०] कोकिल, [३१] खंजन, [३२] गंगासागर, [३३] चित्रकूट, [३४] भक्तियुग, [३५] महाक्रीड़ा, [३६] आदि कविताओं में बड़े मनोयोग से चित्रण किया

---

१०. चित्राधार, पृ० १
११. चित्राधार, पृ० २१, २३, २८, ३८
१२. कानन कुसुम, पृ० १५
१३. चित्राधार, पृ० १५२
१४. चित्राधार, पृ० १४६
१५. चित्राधार, पृ० १४५
१६. चित्राधार, पृ० १५७
१७. चित्राधार, पृ० १५६
१८. चित्राधार, पृ० १०७
१९. चित्राधार, पृ० १६१
२०. चित्राधार, पृ० १६३
२१. चित्राधार, पृ० १४४
२२. कानन कुसुम, पृ० १७
२३. कानन कुसुम, पृ० २६
२४. चित्राधार, पृ० १५०
२५. चित्राधार, पृ० १५१
२६. काननकुसुम, पृ० ३३
२७. ,, पृ० ३६
२८. चित्राधार, पृ० १७१
२९. ,, पृ० १४७
३०. ,, पृ० १४६
३१. कानन कुसुम, पृ० ४८
३२. कानन कुसुम, पृ० ६६
३३. ,, पृ० ७४
३४. ,, पृ० ६५
३५. ,, पृ० ८८
३६. ,, पृ० ९०

और इस चित्रण में कवि की चित्रवृत्ति रमी भी है। अत: प्रकृति के प्रति असीम सत्ता का आकर्षण कालान्तर में स्वतंत्र प्रकृति चित्रण के रूप में प्रकट हुआ। फिर स्थूल प्रकृति चित्रण के अनन्तर मानवी करण के द्वारा प्रकृति पर ही आरोपित जीवन सम्बन्धी नाना व्यापारों की सूक्ष्म परिकल्पना की गयी। इसे भरना,[३७] शशि और फूल,[३८] झील में झाई,[३९] बसन्त की प्रतीक्षा,[४०] आदि में देखा जा सकता है। पर प्रसाद के कालान्तर की कविताओं में प्रकृति सम्बन्धी अधिकाधिक प्रौढ़ सार्थक प्रयोग तथा मानवीकरण की परिपक्वता के दृष्टिकोण से प्रकृति सम्बन्धी नयी भाव-भूमि भरना के अनन्तर आँसू,[४१] और लहर[४२] में देखने को मिलती है। प्रयोग की सार्थकता को देखते हुए कहा जा सकता है कि प्रकृति सम्बन्धी प्रसाद की ब्रज भाषा की कविताओं की अपेक्षा भरना से अधिक प्रौढ़ता मिलती है जो कि प्रसाद के ही द्विवेदी कालीन कविताओं से सर्वथा अलग स्थान रखती है।

जहाँ तक कामायनी का सम्बन्ध है, यहाँ तक आते आते प्रसाद की प्रकृति विषयक दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर आ गया था। अब प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन अपेक्षाकृत न होकर उद्दीपन और मानवीयकरण के अतिरिक्त वातावरण की सृष्टि के निमित्त ही उसका उपयोग किया जाता था। फिर भी कवि ने प्रकृति जीवन को धार्मिक जीवन का ही पर्याय माना क्योंकि प्रकृति से सम्बन्धित जीवन नितान्त सहज था। पर "प्रकृति रही-दुर्जेय पराजित हम सब"[४३] की भावना ने ही उस पर विजय की आकांक्षा जगाई। कालान्तर में प्रकृति शक्ति,[४४] की भी जीत की लालसा जगी और प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि-

---

३७. भरना, पृ० १३
३८. ,, पृ० २१
३९. ,, पृ० ६६
४०. भरना, पृ० २४
४१. आंसू, पृ० १८
४२. लहर, पृ० १६
४३. कामायनी, पृ० ७
४४. कामायनी, पृ० ६

कोण में एकदम परिवर्तन हो गया । अब स्थिति यह है कि यन्त्रों के माध्यम से प्रकृति शक्ति छीन ली गयी और उसके शोषण से जीवन .... जर्जर भीना बन गया । पर यह दृष्टव्य है कि प्रकृति का यह रूप स्व् उसके कारण नहीं वरन् मनुष्य के बुद्धिमूलक स्वार्थ के कारण हुआ है ।[४६]

जहां तक उद्दीपन रूप का प्रश्न है , कवि ने इसे भावनोद्दीपक रूप में भी चित्रित किया है । उदाहरणार्थ वासना सर्ग का नाम लिया जा सकता है । मानवीयकरण का उपयोग भी प्रकृति के संदर्भ में पर्याप्त मात्रा में हुआ है । सारी प्रकृति ही सर्वजीवन्तवाद के रूप में दीख पड़ती है । ऐसे अंश की कामायनी में बहुलता है जिसमें प्रसाद की कला मानवीकरण द्वारा प्रकृति को चित्रित करती है ।[४७] साथ ही इसी संदर्भ में यदि यह कहा जायकि कवि ने संवेदनमयी सहचरी के रूप में प्रकृति को देखा है और उसे बड़ी सफलता से व्यक्त किया है तो अत्युक्ति न होगी ।[४८] क्योंकि कतिपय अंश को यदि प्रकृति से अलग करके उसका मूल्यांकन किया जाय तो कदाचित् वह इतना प्रभावशाली न होगा । अत: कवि ने प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण के अतिरिक्त कथा योजना के संदर्भ में भी सहायता ली है और प्रकृति चित्रण के माध्यम से सारी वस्तु योजना का नियोजन किया है । काव्य के अतिरिक्त कवि प्रसाद ने अपने गद्य साहित्य में भी प्रकृति का उपयोग पर्याप्त मात्रा में किया है ।

जहाँ तक कहानी साहित्य का प्रश्न है प्रसाद ने अपनी कहानियों में प्रकृति का चित्रण या तो कथावस्तु को उभारने में किया है या उसे सुसंगठित बनाने में । प्रकृति के चित्रण से कभी-कभी वे कहानियों की शुरूआत बड़े नाटकीय ढंग से करते हैं । जिससे कहानी अपनी कमजोर कथावस्तु से भी प्रारंभ में ही बड़ी आकर्षक लगती है । चरित्र को विकसित करने में भी प्रसाद ने प्रकृति का आश्रय लिया पर यह आश्रय मात्र इतना है जिससे पात्र का मनोविज्ञान प्रकृति के अनुकूल वातावरण में उभर सके । कुछ कहानियों में वातावरण के निर्माण में स्वतंत्र प्रकृति चित्रण भी मिलता है जिसका अलग सम्बन्ध मूल कथावस्तु से नहीं है। अत: यह प्रसाद की प्रकृति प्रियता का ही द्योतक कहा जा सकता है ।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से यदि प्रसाद के कहानी संग्रह की ओर दृष्टि-पात करें तो आकाशदीप संग्रह की कहानियों में आकाशदीप[४६], प्रणय चिह्न,[५०] रूप की छाया[५१] ज्योतिष्मती,[५२] रमला,[५३] विसाती,[५४] आदि कहानियों में प्रकृति चित्रण कथावस्तु को अग्रसर करने के लिए हुआ है। जबकि गुंडा[५५] में प्रकृति चित्रण का उपयोग चरित्र को उभाड़ने में हुआ है। प्रकृति प्रियता के कारण प्रसाद के कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि वे प्रकृति चित्रण की भूमिका से ही शुरू होती हैं, जिसमें सलीम,[५६] ग्रामगीत,[५७] पुरस्कार,[५८] आदि उल्लेखनीय हैं। प्रतिध्वनि (संग्रह) की प्रत्येक कहानी में उद्यान, संध्या नदी, तट, झील, वसन्त, चांदनी, वर्षा, प्रभात, प्रलय, आदि का उपयोग पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है, जबकि छाया(संग्रह)की[५] तानसेन,[५९] चन्द्रा,[६०] ग्राम,[६१] रसिया बालम,[६२] शरणागत,[६३] सिकन्दर की शपथ,[६४] चित्तौर उद्धार,[६५] अशोक,[६६] गुलाम,[६७] जहाँनारा,[६८] शीर्षक कहानियाँ तो केवल प्रकृति चित्रण से ही प्रारंभ होती हैं।

---

४९. आकाशदीप, पृ० १
५०. आकाशदीप, पृ० १४२
५१. आकाशदीप, पृ० १४१
५२. आकाशदीप, पृ० १४९
५३. आकाशदीप, पृ० १५५
५४. आकाशदीप, पृ० १६५
५५. इन्द्रजाल, पृ० ६१
५६. इन्द्रजाल, पृ० १८
५७. आंधी, पृ० ८७
५८. आंधी, पृ० ११२
५९. छाया, पृ० २
६०. छाया, पृ० ११
६१. छाया, पृ० २३
६२. छाया, पृ० ३४
६३. छाया, पृ० ४३
६४. छाया, पृ० ५२
६५. छाया, पृ० ५९
६६. छाया, पृ० ६७
६७. छाया, पृ० ८३
६८. छाया, पृ० ९५

प्रसाद ने प्रकृति का सबसे कम उपयोग उपन्यास साहित्य में किया है जिसे क्रमश: देखना भी अभीष्ट होगा । चार खंड में विभक्त कंकाल उपन्यास प्रकृति के मात्र एक पंक्ति की भूमिका से शुरू होता है ।[६९] बीच बीच में प्रकृति का वर्णन थोड़े शब्दों में वर्णित किया गया है जहां स्थान,[७०] सत्ता, समय[७१] एवं वातावरण,[७२] का बोध देना उपन्यास की वस्तु योजना की दृष्टि से नितान्त आवश्यक था । पर तितली नामक उपन्यास में स्थान,[७३] समय,[७४] एवं वातावरण[७५] के अतिरिक्त प्रकृति से पात्र के मनोविज्ञान,[७६] की भी पुष्टि की गयी है । पर इरावती नामक उपन्यास में प्रकृति वर्णन के अंश नाममात्र के हैं । प्रसाद के उपन्यास में प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को विश्लेषित करने के अनन्तर उपर्युक्त निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रकृति प्रेमउपन्यास साहित्य में उनके साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कम दीख पड़ता है । कहीं भी स्वतंत्र रूप से प्रकृति वर्णन नहीं आया है । यहां प्रकृति का उपयोग किया गया है वहां भी उसके संक्षिप्त उपयोग की ही प्रवृत्ति अपनायी गयी है और उसके माध्यम से पात्र के मनोविश्लेषण का सहारा लिया गया है ।[७७]

जहां तक नाटक साहित्य का प्रश्न है उनके प्रारंभिक नाटक एक-घूंट में[७७] सारी पृष्ठभूमि और अधिकांश पात्र प्रकृति से ही संबंधित हैं । सारा नाटक प्रकृति के ही रंगमंच पर अवतरित होता है । राजश्री,[७८] का प्रारंभ भी नदी-तट का उपवन,[७८] से होता है और बीच-बीच में सुहावनी रात,[७९] चांदनीरात,[८०]

---

६९. कंकाल, पृ० ६
७०. कंकाल, पृ० ३५
७१. कंकाल, पृ० ७९, १०८, १४७
७२. कंकाल, पृ० २१
७३. तितली, पृ० ४७
७४. तितली, पृ० २६, ६७
७५. तितली, पृ० ३३, १२३
७६. तितली, पृ० १४१
७७. एक घूंट, पृ० ७
७८. राजश्री, पृ० १३, १५
७९. राजश्री, पृ० २१
८०. राजश्री, पृ० २१, ४७

वन,[८१] उपवन,[८२] वर्णन तथा कामना में प्रारंभ से ही फूलों के द्वीप में दक्षिण-पवन,[८३] नदी,[८४] वृक्ष-कुंज,[८५] कुंज-वन,[८६] जंगल,[८७] पतझड़,[८८] की अवतारणा प्रसाद की प्रकृति-प्रियता और उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में बड़ा महत्व रखती है।

नाटक चन्द्रगुप्त में तो प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा को व्यक्त किया गया है। जिसे कार्नेलिया के शब्दों में " मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहां के श्यामल-कुंजों, घने जंगल,सरिताओं की माला पहने हुए शैल श्रेणी, वर्षा, गर्मी की चांदनी शीत काल की धूप क्या भुलाई जा सकती है।[८९] उपर्युक्त उद्धरण से देश के प्रकृति सौन्दर्य का बोध होता है, साथ ही राष्ट्रीय परक भावना का भी। देश की मानवता सम्बन्धी विचारधारा भी इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यक्त की गयी है। अजातशत्रु के बिम्बसार के स्वागत के माध्यम से प्रकृति का चित्रण[९०] किया गया है पर वह उसके मनःस्थिति को ही प्रकट करता है। साथ ही " हिमालय के आंगन में प्रथम किरणों का दे उपहार" [९१] भी राष्ट्रीय विचार-धारा की ही पुष्टि करता है।

प्रसाद : निष्कर्ष

१. प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति के प्रति चमत्कृत रहने वाला दृष्टि-कोण है।

---

८१. राजश्री, पृ० ३७
८२. राजश्री, पृ० ३५
८३. कामना, पृ० १
८४. कामना, पृ० ५
८५. कामना, पृ० ६
८६. कामना, पृ० ६
८७. कामना, पृ० ३३
८८. कामना, पृ० ५७
८९. चन्द्रगुप्त, पृ० १४५
९०. अजातशत्रु, पृ० १४१
९१. स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य,पृ०१४५

२. कालान्तर में प्रकृति से आकर्षित होकर स्वतंत्र चित्रण किया गया ।

३. प्रकृति जीवन धार्मिक जीवन की तरह ही पवित्र है ।

४. यंत्र युग में प्रकृति शक्ति का ह्रास हुआ है जिसका कवि को खेद है ।

५. सारी प्रकृति ही सर्वजीवन्तवाद के रूप में दीख पड़ती है ।

६. वह संवेदनमयी सहचरी की तरह है ।

७. स्वतंत्र चित्रण के अतिरिक्त कथा-योजना के संदर्भ में भी प्रकृति का उपयोग किया गया है यह बात काव्य,उपन्यास और नाटक के अतिरिक्त कहानी साहित्य में भी दीख पड़ती है ।

८. अधिकांश कहानियाँ प्रकृति चित्रण से ही शुरू होती हैं । प्रकृति की पृष्ठभूमि से कमजोर कथावस्तु को भी वह रोचक बना देता है ।

९. काव्य के अतिरिक्त उपन्यास और नाटक साहित्य में भी देश की प्राकृतिक सुन्दरता,के माध्यम से सांस्कृतिक गौरव-गाथा पर प्रकाश डाला गया है ।

१०. प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है ।

पंत

पंत की प्रकृति विषयक धारणा को विश्लेषित किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में प्रारंभ से ही प्रकृति के प्रति एक विशिष्ट आकर्षण मिलता है । इसे प्रभाव के रूप में उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है कि उन्हें - " कविता करने की प्रेरणा ..... सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय ..... कूर्मांचल प्रदेश को है । कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है मैं घंटों एकान्त में बैठा,प्राकृतिक दृश्यों को एक टक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुन-कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था ।   प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक

और सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पना जीवी, बनाया, वहाँ दूसरी ओर जन-भीरु भी बना दिया। [९२] उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रकृति के प्रति उनका रुझान शुरू से ही है और वीणा से ग्राम्या तक उनकी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेम किसी न किसी रूप में वर्तमान है। [९३] कदाचित पंत ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने आलोच्य विषय के सभी कवियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्रकृति सम्बन्धी कविताएं लिखीं।

वीणा की प्रारंभिक कविता ही प्रकृति की पृष्ठभूमि में शुरू होती है जिसमें कवि 'वसन्त ऋतु में नव कलियों को विकसाओ' [९४] की कामना करता है। 'विटप डाल में बना सदन' [९५] खद्योतों से खेलने की बात, [९६] नभ की निर्मलता, [९७] पी-पी ध्वनि', [९८] चन्द्रोदय, [९९] ' प्रथम रश्मि का स्पर्श', [१००] कोमल कमल मधुपदल, [१०१] ऋतुपति' [१०२] के वन वन उपवन.... नव-वय के अलियों का गुंजन' [१०३] की ओर वह विशेष रूप से आकर्षित है।' रुपहले, सुनहले आम्र-बौर' [१०४] 'डाल-डाल, फूलों का विकास,' [१०५] खगगृहों का प्रात: उठकर सुंदर, सुखमय, जग-जीवन में प्रवेश संध्या-तट पर मंगल, मधुमय जग-जीवन [१०६]

---

९२. गद्य पद्य (पर्यालोचन) पृ० ४६
९३. गद्य पद्य (पर्यालोचन) पृ० ४८
९४. वीणा-ग्रन्थि, पृ० १
९५. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ४
९६. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ६
९७. वीणा-ग्रन्थि, पृ० १०
९८. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ३२,२७
९९. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ३३
१००. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ६८
१०१. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ८४
१०१. वीणा-ग्रन्थि, पृ० ८४
१०२. गुंजन, पृ०६
१०३. गुंजन, पृ० १०
१०४. गुंजन , पृ० १०
१०५, गुंजन, पृ० १०
१०६ . गुंजन, पृ० ३०
१०७. गुंजन, पृ०

`चाँदनी,[१०७] `फूलों का हास,[१०८] नीले नभ के शततल पर बैठी शरद हासिनी,[१०९] और शत स्निग्ध,ज्योत्स्ना उज्ज्वल। अपलक अनत, नीरव भूतल। सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल, लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल। तापस बाला गंगा निर्मल` [११०] के साथ नौका-विहार का आनन्द कवि को बरबस अपनी ओर खींच लेता है।

युगान्त के अनन्तर युगवाणी में कवि अपनी जीवन की सामाजिक पीठिका का नया निर्माण करता है और वह युग उपकरण[१११] मार्क्सवाद,[११२] समाजवाद-गांधीवाद,[११३] की सामाजिक परिप्रेक्षा में सैद्धान्तिक समीक्षा करके भी प्रकृति सौन्दर्य की उस रागात्मक वृत्ति से दूर नहीं हो पाता जिसमें उसे अपने सहज आकर्षण के कारण गंगा की सौम्य,[११४] गंगा का प्रभात,[११५] हरीतिमा,[११६] पलाश के प्रति,[११७] कैलिफोर्निया पापी,[११८] बदली का प्रभात,[११९] जलद,[१२०] ओस बिन्दु,[१२१] आदि कविताओं में प्रकृति सौन्दर्य को निहारना अच्छा लगता है। हार गई तुम। रच निरुपम मानव कृति,[१२२] का स्पष्टीकरण करें तो कदाचित वह इस बात का द्योतक होगा कि अब तक प्रकृति सौन्दर्य में मात्र सौन्दर्यवादी दृष्टि ही नहीं रही वरन् उसके सौन्दर्य से चमत्कृत होने वाली दृष्टि अपने वैचारिक परिवेश में उस उपयोगितावादी मानव-मूल्यों व की ओर मुखर हो गयी है

---

१०७. गुंजन, पृ० ३४

१०८. गुंजन, पृ० ७५

१०९. गुंजन, पृ० ८७

११०. गुंजन, पृ० १०१

१११. युगवाणी, पृ० १७

११२. युगवाणी, पृ० ३८

११३. युगवाणी, पृ० ४१

११४. युगवाणी, पृ० ३१

११५. युगवाणी, पृ० ३३

११६. युगवाणी, पृ० ७१

११७. युगवाणी, पृ० ८३

११८. युगवाणी, पृ० ८४

११९. युगवाणी, पृ० ८५

१२०. युगवाणी, पृ० ९१

१२१. युगवाणी, पृ० ९०

१२२. युगवाणी, पृ० ७२

जिसे अब वह सृष्टि के निमित्त नितान्त आवश्यक समझता है । पर कवि चाँदी की रेती का स्वर्णिम गंगा धारा,[१२३] पर जो जाता है सा कुछ चिर पथहारा "[१२४] सा दीख पड़ता है और "स्वीट पी के प्रति "[१२५] में इस बात का स्पष्टीकरण कर देता है कि क्या तुम्हारा हृदय जगती का क्रन्दन सुन,[१२६] दाुब्ध नहीं होता यदि नहीं तो — पतझर [१२७] को तुम्हारी प्रतीक्षा है । नव युग के परिवर्तन में मन के पीले पत्तों" झरो, झरझरो, झरो ।"[१२८]

स्वर्ण किरण से पंत की प्रकृति सम्बन्धी विचारधारा में एक नया मोड़ आया । इसका कारण यह है कि इस काल में वे अरविन्द-दर्शन से प्रभावित हुए । इनकी विचारधारा अब मात्र प्रकृति के सौन्दर्य दर्शन तक ही सीमित नहीं रही वरन् उन्होंने अरविन्द के आध्यात्मिक प्रभाव में प्रकृति सौन्दर्य को भी बड़ा तटस्थ होकर देखने का प्रयास किया । जिससे इनकी विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ अब इनके अनुसार सृष्टि का यह सौन्दर्य मात्र प्रकृति में ही नहीं वरन् स्वयं मनुष्य में भी है । यही कारण है कि स्वर्ण किरण की रचनाओं में कवि हर रचना को 'दिव्य' और सौन्दर्योचित समझता है । प्रकृति में जहां साधारण सौन्दर्य नहीं है वहां भी सौन्दर्य मयी सृष्टि कवि की अपनी विशेषता कही जा सकती है । कौवा अपने कालेपन के कारण कुरूप समझा जाता है पर कवि "तरु की नग्न डाल पर बैठे लगते तुम चिर सुन्दर,[१२९] ही कहता है ।

युगान्त और युगवाणी की भौतिकवादी संघर्षमयी जीवन - दर्शन के जिस प्रभाव में कवि प्रकृति में भी मार्क्सवादी छाया देखता था वही

---

१२३. ग्राम्या, पृ० ७१
१२४. ग्राम्या, पृ० ७२
१२५. ग्राम्या, पृ० ७८
१२६. ग्राम्या, पृ० ७६
१२७. ग्राम्या, पृ० ६७
१२८. ग्राम्या, पृ० ६७
१२९. स्वर्णकिरण, पृ० ७६

इसमें संगीत, सौन्दर्य, प्रणय के तथ्यदर्शन और, प्रकृति के माध्यम से सृष्टि को मानवता का नया रूप देना चाहता है। [१३०] यहाँ प्रकृति से सीख लेने का निर्देश देते देते उसका स्वर पहले की अपेक्षा प्रत्यक्ष रूप से उपदेशात्मक हो गया है क्योंकि उसके अनुसार `उषा [१३१] आध्यात्मिक प्रकाश के साथ धरा पर इसलिए अवतरित हुई है कि सृष्टि को जगा सके। उसे कर्मशील कर सके और चाँद भी इसलिए उगा है क्योंकि वह उसके` ज्योतिर्मय मन सा [१३२] सत्य का संदेश सुना सके।

`स्वर्णधूलि का धरातल सामाजिक है। [१३३] पर इस सामाजिक धरातल पर कवि ने प्रकृति से अपने को अलग नहीं किया है। इसमें भी प्रकृति के संदर्भ में अरविन्द जीवन दर्शन अपनाया गया है। वह काले बादल को `जाति द्वेष, विश्व क्लेश, [१३४] का प्रतीक मानता है और रिमझिम रिमझिम वर्षा के स्वर में आत्मोन्नति का संदेश पाता है।" वर्षा के प्लावन, नव सौन्दर्य प्रेम, प्राणों में प्रतीति और....... नूतन अमर-चेतना के प्रतीक घन [१३५] मेघ से बरसने का आमंत्रण देता है। साथ ही `तालकुल [१३७] में सौन्दर्य की खोज भी `कौवे के प्रति` में ही सौन्दर्य की खोज की पुनरावृत्ति है। उसने क्रोटन की टहनी` [१३८] में इस बात का भी स्पष्टीकरण किया है कि मात्र प्रकृतिवादी होने से ही काम नहीं चल सकता। इस प्रकृतिवादी सौंदर्य की उपयोगिता जीवन के निमित्त है, इससे अलग नहीं। यही बात `शरद् चाँदनी, [१३६] के संदर्भ में भी कही जा सकती है।

---

१३०. स्वर्णकिरण—हिमाद्रि, चिन्मयी, हिमाद्रि और समुद्र, प्रेमी, उषा, चन्द्रोदय, प्रभात का चाँद, कौवे के प्रति

१३१. स्वर्णकिरण, पृ० ५१

१३२. स्वर्णकिरण, पृ० ६४(चन्द्रोदय)

१३३. स्वर्णधूलि—विज्ञापन

१३४. स्वर्णधूलि, पृ० २५

१३५. स्वर्णधूलि, पृ० ४६

१३६. स्वर्णधूलि, पृ० ५२

१३७. स्वर्णधूलि, पृ० ५५

१३८. स्वर्णधूलि, पृ० ५७

१३९. स्वर्णधूलि, पृ० ६४

यदि प्रकृति जीवन की साधनाओं और अति मानस के अवतारणा के लिए उपर्युक्त वांछित मनोभूमि के निर्माण में असमर्थ है तो कवि ऐसी प्रकृति के नष्ट होने की कामना करता है।[१४०] जिससे वह फिर सृष्टि में नयी प्रकृति का निर्माण कर उसके वसंत, चिड़ियों की चहचहाहट,[१४१] तारों भरा नभ,[१४२] बांसों का झुरमुट,[१४३] संध्या,[१४४] आदि का सहर्ष स्वागत कर इस बात की भी घोषणा करे कि वह एक नवल सृष्टि रच रहा है जिसमें भावी मानव का हित निहित है।[१४५]

उत्तरा में पन्त ने प्रकृति को अतीन्द्रिय सौन्दर्य के उद्घाटन के माध्यम रूप में प्रयुक्त किया है। वह सामंजस्य रूप में प्रकृति के वाह्य सौन्दर्य के प्रति आकर्षित है साथ ही उसके आन्तरिक सौन्दर्य का भी उद्घाटन करने का प्रयत्न करता है। इसके अतिरिक्त वह प्रकृति के हर रहस्य को पहचानने को उत्सुक है। उसके अनुसार प्रकृति अन्तरतम के साक्षात्कार का एक साधन है। 'मेघों के पर्वत'[१४६] 'भू-वीणा,[१४७] शरदागम,[१४८] शरद चेतना,[१४९] शरद श्री,[१५०] वसंत,[१५१] वनश्री,[१५२] चन्द्रमुखी,[१५३] आदि' जीवन-उत्सव'[१५४] के निमित्त हैं। जिसके सम्बन्ध से जीव (व्यक्ति) जड़ तत्व, प्राण, जीव, मानस, अतिमानस से सत्‌चित आनन्द तक की स्थिति का साक्षात्कार करता है।

कवि जन सामान्य को भी प्रकृति का नव अरुणोदय देखने को आमंत्रण देता है।[१५५] चन्द्र,[१५६] सोनजुही,[१५७] झींगुर, बतखें, मेढक, पतिंगे

---

१४०. युगपथ, ११,१२,१४
१४१. युगपथ, पृ० २०
१४२. युगपथ, पृ० २२
१४३. युगपथ, पृ० २७
१४४. युगपथ, पृ० ५४
१४५. युगपथ, पृ० ३५
१४६. उत्तरा, पृ० ३३
१४७. उत्तरा, पृ० ४३
१४९. उत्तरा, पृ० १०१
१५०. उत्तरा, पृ० १०५
१५१. उत्तरा, पृ० १४३
१५२. उत्तरा, पृ० १४२
१५३. उत्तरा, पृ० १०३
१५४. उत्तरा, पृ० ४७
१५५. अतिमा, पृ० २
१५६. अतिमा, पृ० ३७

छिपकलियां,[१५९] केंचुल,[१६०] से स्फटिक वन,[१६१] और कूर्मांचल(प्रदेश)[१६२] तक में प्रकृति निहित सौन्दर्य के माध्यम से आन्तरिक सत्य का साक्षात्कार करता है। उसके स्नेह, स्पर्श[१६३] से बूढ़ा चांद,[१६४] भी नर जीवन की सार्थकता पाता है। मानव की विकासमय इस उपलब्धि पर ही "श्यामल मेघ रुपहले सूपों की तरह सिन्धु जल की निर्मलता बटोर कर सब पर उलीच रहे हैं।[१६५]

प्रकृति सम्बन्धी मानव की उपलब्धि पर कवि को विश्वास है तभी कवि कल जिन गुलाबों की काट-छाँट करता है उसमें अब नयीनयी ललछौंहीं कोंपलें फूटते चित्रित किया गया है।[१६६] नवीन सृष्टि के प्रतीक रूप नए युवक युवतियों से कवि स्वच्छ चाँदनी में नग्न गात्र, नग्न मन, आत्मदीप लिए मुक्त रूप से नहाने का आमंत्रण देता है।[१६७] जिससे सभी अपनी " रूप रेखाएं, रूप-सीमाएं देखते हुए नवीन देह बोध की प्राप्ति कर लें।[१६८] क्योंकि प्रकृति प्रदत्त सृष्टि का सुन्दरतम प्राणी मानव ही है।[१६९] उसके बीच किसी तरह की विभाजक रेखा नहीं हो सकती।

लोकायतन तक आते आते पन्त की प्रकृति विषयक धारणा उसके काल्पनिक मूल्यों से उतर कर पूर्णरूपेण उपयोगितावादी मूल्यों का सहारा लेती है। कवि जड़ प्रकृति को यक्ष के तृण सा मानता है जिसके भीतर अपनी अजेय गरिमा में ईश्वर गुंठित है। लेकिन अग्नि, वायु-सा बाह्य बोध प्राप्त कर विजयी नर दर्प से प्रकृति को जड़ से ऊपर सत्य की स्थिति नहीं समझ पाता।[१७०]

---

१५९. अतिमा, पृ० ६१
१६०. अतिमा, पृ० ६४
१६१. अतिमा, पृ० ११६
१६२. अतिमा, पृ० [illegible]
१६३. वाणी, पृ० ३६
१६४. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १५
१६५. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १३६
१६६. कला और बूढ़ा चाँद, ६५
१६७. कला और बूढ़ा चाँद, ३२
१६८. कला और बूढ़ा चाँद, ३२
१६९. पल्लविनी, पृ० २४६
१७०. लोकायतन, पृ० २३७

पर कवि उसी धरा उदर से जन्म ले रहे नए स्वर्ग की मर्मर[१७१] सुनता तो है, किन्तु अभी प्रकृति जो विकृत रूप में शेष है अपने स्थगित विधिक्रम से कार्य न करते हुए सृष्टि नियम का उल्लंघन कर रही है, इसी कारण कार्य जगत् का विघटन होता जा रहा है और यह विकृत सारी प्रकृति अपलक महाकाल के उर में अग्रसर हो रही है।[१७२] कदाचित इसके बाद ही पूर्ण मानवता जन्म लेगी। ~~कवि की~~

कवि की प्रकृति सम्बन्धी विचारधारा की पुष्टि यदि काव्य रूपकों से की जाय तो रजत-शिखर के अधिकांश काव्य-रूपकों में प्रकृति के माध्यम से जीवन की सांस्कृतिक चेतना का धरातल उभारा गया है। साथ ही 'अध्यात्म-वाद, भौतिक वाद और आदर्शवाद, वस्तुवाद सम्बन्धी संघर्ष' [१७३] की रूपरेखा प्रस्तुत कर प्रकृति के ही माध्यम से उसका हल प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। कवि को यह भी विश्वास है कि उत्तर-शती मानव जाति में नवीन स्वर्ण युग का समारंभ कर सकेगी।' [१७४] प्रकृति की गोद में ही 'शुभ्र पुरुष [१७५] — युगीन' जन स्वतंत्रता की उपयोगिता दे सकेगा और वह लोक एकता तथा विश्व मानवता के निर्माण में सहायक होगा।[१७६] 'धरती की ऋतुएं शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त श्रीसुख शान्ति का संचार करती' [१७७] ' अंत: चेतना का शुभ्र प्रतीक' [१७८] उपस्थित कर सकेंगी।

शिल्पी[१७९] ध्वंस शेष,[१८०] और अप्सरा[१८१] में प्रकृति का परि-वेश कटने नहीं पाया है। सोवर्ण में तो देवताओं द्वारा भी प्रकृति का स्तवन

---

१७१. लोकायतन, पृ० २४७
१७२. लोकायतन, पृ० ५६०
१७३. रजतशिखर, पृ० ४८
१७४. रजतशिखर, पृ० ७७
१७५. रजतशिखर, पृ० १०५
१७६. रजतशिखर, पृ० १२१
१७७. रजतशिखर, पृ० १२७
१७८. रजतशिखर, पृ० ३
१७९. शिल्पी, पृ० ६
१८०. शिल्पी, पृ० ४७
१८१. शिल्पी, पृ० ~~८~~ ६०

कराया गया है।[१८२] जोत्सना नाटक में पात्र पृष्ठभूमि, कथावस्तु सब कुछ प्रकृति से ही सम्बन्धित है। कदाचित इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर उसमें कहा कि —" प्रकृति की इस अपार रूप राशि पर मुग्ध होकर मनुष्य का प्रकृति बन जाना आश्चर्य की बात नहीं किन्तु इससे मुक्त न हो सकना अवश्य दु:ख की बात है।[१८३]

पंत : निष्कर्ष

१. कविता करने की प्रेरणा कवि को प्रकृति से ही मिली।
२. कवि प्रकृति के कण-कण पर मुग्ध है।
३. प्रकृति सौन्दर्य में उपयोगितावादी दृष्टि भी निहित है।
४. सृष्टि का सौन्दर्य मात्र प्रकृति में ही नहीं जीवन में भी है।
५. कवि प्रकृति के माध्यम से मानवता को नया रूप देना चाहता है
६. प्रकृति से वह आत्मोन्नति का सन्देश पाता है।
७. प्रकृति सौन्दर्य की उपयोगिता जीवन के निमित्त है।
८. वह प्रकृति के आन्तरिक-बाह्य सौन्दर्य का उद्घाटन करते हुए उसके हर रहस्य को जानने के लिए उत्सुक है।
९. प्रकृति अन्तरतम के रहस्य के साक्षात्कार करने का एक साधन है
१०. प्रकृति प्रदत्त सृष्टि का सुन्दरतम रूप मानव है।
११. आध्यात्मवाद, भौतिकवाद, आदर्शवाद और वस्तुवाद के वैचारिक संघर्ष को प्रकृतिवाद के माध्यम से हल करने का प्रयत्न किया गया है। कवि का विश्वास है कि इससे मानव-जाति में नवीन स्वर्णयुग का उदय होगा।
१२. प्रकृति देवताओं द्वारा भी पूजित है।
१३. प्रकृति के प्रति आकर्षित होकर प्रकृतिमय होने पर भी वह प्रकृति का दास नहीं प्रकृति का स्वामी बनना चाहता है।

---

१८२. सौवर्ण, पृ० १४

निराला :

निराला की प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति के प्रति एक विशेष आकर्षण है पर इसमें प्रकृति का यथावत चित्रण कम और मानवीकरण अधिक मिलता है।

चाहे यह बात 'जूही की कली' के मलयानिल[१८४] के संदर्भ में कही जाय या सन्ध्या सुन्दरी[१८५] अथवा अन्य प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के सन्दर्भ में। कली का स्वप्न मग्न दृग बन्द किये शिथिल प्रत्यंक में सोना। वासन्ती निशा में प्रवासी मलयानिल को प्रेयसी की याद और उसका उपवन - सर- सरित- गहन गिरि कानन-कुंज, लता-कुंजों को पार कर प्रिय आगमन से अनभिज्ञ कली के पास पहुंचना। कपोल पर स्पर्श पाकर भी कली का न जगना। नायक का सुन्दर सुकुमार देह के झकझोर देने के अनन्तर नम्रमुखी हँसी के साथ खेलना वसंत मलयानिल का सुखद स्पर्श पा कली का फूल बनना[१८६] प्रकृतिगत एक सहज स्वाभाविक प्रक्रिया का ही मानवीकरण है। सन्ध्या सुन्दरी का आगमन विस्मृति के अगणित मीठे सपने के बीच अर्द्धरात्रि की निश्चलता में लीन विरहाकुल कवि के बढ़ते अनुराग में सहस्त्र विहाग-गान "[१८७] भी कितना स्वाभाविक है। कवि रश्मि को "नभ- नील- पर, सतत शत रूप धर विश्व छवि में उतर"[१८८] "नयन पावन करने को कहता है। वसन्त आया[१८९] यामिनी जागी,[१९०] अब कवि " गत स्वप्न निशा का तिमिर-जाग, नव किरणों से धो- "[१९१] लेने को कहता है क्योंकि " नैश अन्ध पार कर "[१९२] " अस्ताचल रवि "[१९३] पूर्व.. गगन में...

---

१८४. अपरा, पृ० १४
१८५. अपरा, पृ० २२
१८६. अपरा, पृ० १४
१८७. अपरा, पृ० २२
१८८. अपरा, पृ० २१
१९०. अपरा, पृ० २४
१९१. अपरा, पृ० २८
१९२. अपरा, पृ० ३३
१९३. अपरा, पृ० ३२

जागा दिशा ज्ञान "[१९४] का सन्देश दे रहा है। आंखों से निकले सपने से मंडराते बादल,[१९५] "अम्बर पथ से मन्थर सन्ध्या श्यामा का पृथ्वी पर कोमल पद-भार लिए "[१९६] आगमन " यमुना,[१९७] और प्रपात,[१९८] फूले फूल और सुरभि-व्याकुल अलि,[१९९] तथा नदी पर पड़ने वाली चन्द्रमा की किरणें राशि राशि कुमुद दल के पट खोलती प्रकृति "[२००] सुखद लगती है।

कवि तप्त धरा की शीतलता के निमित्त बादल का आह्वाहन करता है,[२०१] वारिधि बन्दना,[२०२] करता है और कवि वर्षा के अनन्तर "खुला आसमान और धूप निकलने पर सारे जहांन की खुशी में अपना हर्ष प्रकट करता है।[२०३]

नरगिस,[२०४] और वसन्त [२०५] कवि को विशेष रूप से प्रिय हैं। वह "ऋतुपति के दूतों का भी स्वागत करता है,[२०६] क्योंकि इसी के द्वारा धरा को जीवनमृत रहने पर भी जीवन मिलता है [२०७] यही उसे जीवन "प्रभात"[२०८] देता है।

शरद् पूर्णिमा,[२०९] में बनी वन कुसुमों की शैय्या[२१०] से "रास्ते के फूल"[२११] तक उसकी दृष्टि समानरूप से प्रकृति सौन्दर्य का पान करती है। वह प्रपात के रास्ते में आए रोड़ों को जीवन पथ का एक ठहराव मानता है जिसे उसका प्रवाह मात्र मुड़ कर एक बार देख भर लेता है ।[२१२] फिर वह अपने पथ पर अग्रसर होता है क्योंकि प्रकृति की गति में कहीं भी ठहराव नहीं है।

---

१९४. अपरा, पृ० ३२
१९५. अपरा, पृ० ४२
१९६. अपरा, पृ० ४१
१९७. अपरा, पृ० ६२
१९८. अपरा, पृ० १२१
१९९. अपरा, पृ० १३३
२००. अनामिका, पृ० ४७
२०१. अनामिका, पृ० ८२
२०३. अनामिका, पृ० १३८
२०४. अनामिका, पृ० १८६
२०५. अनामिका, पृ० १४४
२०६. परिमल, पृ० ४३, १०२
२०७. परिमल, पृ० ८२
२०८. परिमल, पृ० ६३
२०९. परिमल, पृ० १३८
२१०. परिमल, पृ० १५२
२११. परिमल, पृ० १५५

परिमल में भी "शेफालिका"[२१३] "यमुना",[२१४] और उसके "तरंगों के प्रति",[२१५] "वसंत समीर",[२१६] और "बादल राग"[२१७] की तीनों कविताओं में मानवीकरण पर अपनी प्रारंभिक कविताओं की तरह प्रकृति के सौन्दर्य को आत्मीयता से चित्रित करता है।

गीतिका की अधिकांश कविताएं कवि की प्रकृति प्रियता की ही द्योतक हैं। बसंत, राग,[२१८] वन, उपवन[२१९], रश्मि,[२२०] कली,[२२१] पवन,[२२२] धरा,[२२३] कमल-दृग,[२२४] ज्योत्सना,[२२५] समीर,[२२६] तरु-किसलय,[२२७] ऊषा,[२२८] डूबता सूर्य,[२२९] शेफाली,[२३०] का बड़ा मनोहारी वर्णन करता है। साथ ही वसन्त,[२३१] शिशिर,[२३२] पतझड़,[२३३] और मेघ और वर्षा,[२३४] के माध्यम से प्रकृति को जड़ नहीं आत्मशक्ति युक्त की संज्ञा से अभिहित करना चाहता है।

निराला के रचनाकाल के मध्य में "कुकुरमुत्ता", "नए पत्ते" और "बेला" में प्रकृति के प्रति अपनी प्रारंभिक दृष्टि की अपेक्षा एक नया दृष्टिकोण मिलता है जो कि प्रकृति के सौन्दर्य पर मात्र मुग्ध होने और उसके मानवीकरण की अपेक्षा

---

२१३. परिमल, पृ० १९६
२१४. परिमल, पृ० ४५
२१५. परिमल, पृ० ८०
२१६. परिमल, पृ० ८९
२१७. परिमल, पृ० १७५
२१८. गीतिका, पृ० ५
२१९. गीतिका, पृ० ६,१०१
२२०. गीतिका, पृ० ११
२२१. गीतिका, पृ० २६,४०
२२२. गीतिका, पृ० २१
२२३. गीतिका, पृ० ५१
२२४. गीतिका, पृ० ६१
२२५. गीतिका, पृ० ६४
२२६. गीतिका, पृ० ६५
२२७. गीतिका, पृ० ७२
२२८. गीतिका, पृ० ८४,८६,६६,१००
२२९. गीतिका, पृ० ७८,६८
२३०. गीतिका, पृ० १०६
२३१. गीतिका, पृ० ५, १६
२३२. गीतिका, पृ० १०,५२,८८
२३३. गीतिका, पृ० ८०
२३४. गीतिका, पृ० १५,५०,५६,६२

एक नया दृष्टिकोण मिलता है, जो कि प्रकृति के सौन्दर्य पर मात्र मुग्ध होने और उसके मानवीकरण की अपेक्षा कुछ भिन्न कहा जा सकता है। जिसका कारण कवि पर मार्क्सवाद का प्रभाव है। वह प्रकृति के सौन्दर्य में फूलों की भी उपयोगिता नगण्य बताता है इसलिए उसमें कुकुरमुत्ते की तरह कबाब बना कर भूख शान्त करने की शक्ति नहीं। इसलिए उसने गुलाब को कुकुरमुत्ते की तुलना में हीन बताया अन्त में नवाब भी कुकुरमुत्ते की उपयोगिता पर मुग्ध होकर बाग के सारे गुलाब को उखाड़ कर कुकुरमुत्ता लगाने की आज्ञा दे देते हैं [२३५]।

"नए पत्ते" के "कजोहरा" [२३६] में प्रकृति का उपयोग मात्र हाईकोर्ट के कर्मचारियों को बगुला और बादल कहने में तथा वर्षा को भाग्यवादिता के प्राप्य रूप में ~~कहा~~ करते किया गया है। [२३७] "अणिमा" में तो "जलाशय" के किनारे कुहरी थी" [२३८] के अतिरिक्त अन्य किसी भी कविता में प्रकृति वर्णन नहीं किया गया है। पर आराधना में विशुद्ध प्रकृति सम्बन्धी कविताएं पुन: मिलती हैं तो ऐसा लगता है कि कवि मार्क्सवाद की भौतिकता से ऊब कर पुन: प्रकृति के सहज - सौन्दर्य से अपनी प्रारंभिक कविताओं की तरह प्रभावित हुआ है पर उसमें प्रकृति के प्रति आश्चर्यात्मक भाव की जगह मानवीकरण की प्रवृत्ति अधिक मिलती है। ~~-अब-वह~~ लेकिन कहीं कहीं इसका अपवाद भी है।

वह "पड़ती ओस, शरद् आगमन, हर सिंगार का फूलना," [२३९] चिड़ियों का चहकना, [२४०] फूलों का कुम्हलाना, [२४१] रवि शशि, [२४२] और उसके

---

२३५. कुकुरमुत्ता, पृ० २४
२३६. नए पत्ते, पृ० ११
२३७. नए पत्ते, पृ० ८६
२३८. अणिमा, पृ० १०४
२३९. आराधना, पृ० २३
२४०. आराधना, पृ० २५
२४१. आराधना, पृ० ३७
२४२. आराधना, पृ० ३६

ज्योति प्रात, ज्योति राग,[२४३] मन-उपवन में खिली कलियां,[२४४] आम,जामुन, गूलर,[२४५] कद्दू , कुंम्हड़े , खरबूजे, ककड़ी,[२४६] तथा ऋतुओं में अषाढ़, श्रावण, भादों, क्वार का भी विधिवत वर्णन करता बारहमासा की तरह चतुरमासा की परम्परा का निर्वाह करता है ।

अर्चना में भी फागुन की प्रकृतिगत मस्ती [२४७] के साथ अलियों की गूंज,[२४८] कोयल की कूक,आमों का बौराना,[२४९] के साथ पतझड़,[२५०] वसन्त के मनोहारी वर्णन के अतिरिक्त अपनी प्रारम्भिक कविताओं की तरह बादल से पुन: बरसने की प्रार्थना करता है। [२५१] और यही वारिद वन्दना[२५२] गीत-गुंज[२५३] में भी देखने को मिलती है ।

निराला ने काव्य के अतिरिक्त उपन्यास में प्रकृति वर्णन के संबंध-में कोई विशेष रूचि नहीं दिखाई । यह बात `अप्सरा`, अलका`,`काले कारनामे`, और`चोटी के पकड़`के सम्बन्ध में कही जा सकती है पर मात्र`प्रभावती`ही इसका अपवाद है ।

अप्सरा में घटना क्रम की अन्विति में प्रकृति वर्णन का प्रयोग मात्र वातावरण के निर्माण में किया गया है । पर यहाँ प्रकृति का उपयोग भी `इडेन गार्डेन,`[२५४] `कृत्रिम सरोवर,`[२५५] `प्रकाश स्तंभ,`[२५६] `चम्पे की कली`,[२५७] और चाँद तक ही सीमित है । अप्सरा की कथावस्तु कलकत्ता और विजयपुर से सम्बन्धित है, और यह नहीं कहा जा सकता है कि उपर्युक्त दोनों स्थलों पर

---

२४३. आराधना, पृ० ५४
२४४. आराधना, पृ० ६३
२४५. आराधना, पृ० ७४
२४६. आराधना, पृ० ७५
२४७. अर्चना, पृ० ३०
२४८. अर्चना, पृ० ३१
२४९. अर्चना, पृ० ३३
२५०. अर्चना, पृ० ५६
२५१. अर्चना, पृ० ५७
२५२. अर्चना, पृ० १०२
२५३. गीत-गुंज, पृ० ५७
२५४. अप्सरा, पृ० ६
२५५. अप्सरा, पृ० ६
२५६. अप्सरा, पृ० ६

प्रकृति वर्णन की सम्भावना नहीं थी । पर कदाचित उपन्यास की कथावस्तु समाज के इतने यथार्थ के धरातल से सम्बन्धित है कि वहाँ उपमा के अतिरिक्त नाम मात्र का ही प्रकृति का प्रवेश आ सका । यही बात अलका के लिए भी कही जा सकती है । उसमें भी प्रकृति वर्णन नाम मात्र का ही है जहाँ निराला " पृथ्वी की गोद "[२५८] में होने वाली वर्षा का वर्णन[२५९] बड़े मनोयोग से करता है । साथ ही मनोहारी वर्षा वर्णन के अन्त में वह यह भी कहना नहीं भूलता कि इस " सुप्ति के स्वप्न में भारत जगने का दु:ख भूल गया है । "[२६०] चोटी की पकड़ राजवाड़ों की आर्थिक अव्यवस्था और स्वदेशी आन्दोलन से सम्बन्धित होने के कारण प्रकृति वर्णन का लगभग अभाव सा ही है, पर यह बात ऐतिहासिक उपन्यास प्रभावतीमेंनहीं दीख पड़ती । प्रभावती के अधिकांश परिच्छेद प्रकृति वर्णन से ही प्रारंभ होते हैं और उसके बीच बीच में भी ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में प्रकृति वर्णन का बड़ा महत्वपूर्ण योग रहा है ।[२६१]

निराला की कहानियों में प्रकृति का पक्ष नहीं उभर पाया है इसका कारण यह है कि उसकी अधिकांश कहानियाँ जीवन के कटु यथार्थ का वह पक्ष उद्‌धाटन करती है जिन्हें समस्या मूलक परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है । मात्र पद्‌मा और लिली "[२६२] श्यामा,[२६३] हिरनी,[२६४] ही उपर्युक्त कथन का अपवाद कही जा सकती हैं जिनमें कथानक की पृष्ठभूमि को उभारने में प्रकृति का उपयोग किया गया है जिसमें पहले कहानी में उपमा के रूप में चन्द्रमुख पर षोडश कला की शुभ्र चंद्रिका,[२६५] का खिलना, दूसरे में गाँव की हँसती हुई बारही

---

२५८. अलका, पृ० ६७

२५९. अलका, पृ० १५८

२६०. अलका, पृ० १५८

२६१. प्रभावती, पृ० ५,१५,२६, ३६,४३ ५७, ६२,६६, ८०, ८३, १०१, १०७, ११०, ११४, १२५, १३३, १७०

२६२. लिली, पृ० १०

२६३. लिली, पृ० ५७

२६४. देवी, पृ० ३७

२६५. लिली, पृ० १०

प्रकृति से [२६६] बंकिम का प्रेम और तीसरे में प्रकृति की विभीषिका के रूप में मात्र कुछ पंक्तियों में कृष्णा की बाढ़ और अकाल का वर्णन किया गया है ।

निराला : निष्कर्ष

१. प्रकृति का यथावत् चित्रण भी किया गया है ।
२. प्रकृति का मानवीकरण अधिक किया गया है ।
३. प्रकृति की गति में कहीं भी ठहराव नहीं है ।
४. वह प्रकृति को भी उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देखता है ।
५. भौतिकवादी दृष्टिकोण से ऊबकर वह प्रकृति की शरण में जाता है ।
६. चतुर्मासा और बारहमासा की परम्परा का भी निर्वाह किया गया है ।
७. कथा साहित्य में प्रकृति वर्णन, मात्र वातावरण के निर्माण के लिए किया गया है ।

महादेवी

जिन पूर्वजों से हमें धर्म, दर्शन, नीति आदि के रूप में महत्वपूर्ण दाय-भाग प्राप्त हुआ है, उनके प्राकृतिक परिवेश के भी हम उत्तराधिकारी हैं । उनके पर्वत, वन, मरु, समुद्र, ऋतुयें आदि प्राकृतिक नियम से कुछ परिवर्तित अवश्य हो गए हैं, परन्तु तत्वत: उनकी स्थिति पूर्ववत् है और उनसे हमारे रागात्मक सम्बन्ध संस्कारजन्य ही नहीं स्वर्जित भी रहते हैं । [२६७] पर यदि इतिहास के परिप्रेक्ष्य

---

२६६. लिली, पृ० ६०

२६७. हिमालय, पृ० १३

में प्रकृति के दृष्टि विस्तार को देखें तो प्रकृति के अस्त-व्यस्त सौन्दर्य में रूप प्रतिष्ठा, बिखरे रूप में गुण प्रतिष्ठा फिर उनकी समष्टि में एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जैसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीनतम काव्य देता है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा." [२६८] पर जहाँ तक छायावादी कवि और प्रकृति का सम्बन्ध है महादेवी ने काव्य में प्रकृति के प्रति आकर्षण का ही आभास दिया है। उसके अनुसार छायावाद एक प्रकार से अज्ञात कुलशील बालक रहा जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिल सका। फलत: उसने आकाश, तारे, फूल, निर्झर आदि से आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ा"। उनके काव्य साहित्य में प्रकृति का शान्त रूप जैसे उनके हृदय को एक चंचल लय से भर देता है उसका रौद्ररूप वैसे ही आत्मा को प्रशान्त स्थिरता देता है। अस्थिर रौद्रता की प्रतिक्रिया ही सम्भवत: उसकी एकाग्रता का कारण रही है, [२६९] पर इतना अवश्य है कि" छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीनकाल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दु:ख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अत: अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमल-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।" [२७०] यही महादेवी काव्य की विशेषता भी कही जा सकती है।

महादेवी ने एक ओर जहाँ जीवन की गतिविधि को प्रकृति से सम्बन्धित किया वहां दूसरी ओर यह भी स्वीकार किया है कि " मनुष्य ने प्राकृतिक दाय को स्वीकार करके भी उसे नियामक नहीं बनने दिया, परिणामत: प्रकृतिदत्त उत्तराधिकार में अपनी सृजनात्मक चेतना मिलाकर उसमें जीवन के रहस्य का समाधान पा लिया" [२७१] है। साथ ही प्रकृति में उसका सौन्दर्य दर्शन केवल कोमल मधुर तत्वों तक ही सीमित नहीं है, वरन् वह उग्र और रुद्र रूपों में भी आकर्षण का अनुभव करता है।" [२७२] ~~परन्तु महादेवी का यह आकर्षण~~ परन्तु महादेवी का यह आकर्षण अपनी अभिव्यक्ति में पंत की अपेक्षा कुछ कम मुखर है।

जहां तक काव्य साहित्य में प्रकृति वर्णन के दृष्टिकोण का प्रश्न है महादेवी ने 'यामा' में प्रकृति के मानवीकरण द्वारा उसको अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मात्र एक पृष्ठभूमि के रूप में प्रयुक्त किया है। 'यामा' की अधिकांश कवितायें इसी पृष्टभूमि से सम्बन्धित हैं। 'यामा' की पहली कविता से ही " तभी तुम आए थे इस पार" [२७३] के वातावरण की पुष्टि में " राकेश, चांदनी, कलि, मधुमास के सन्दर्भ से प्रकृति वर्णन किया गया है और इसी सन्दर्भ में "मुस्कराते फूल", "तारों के दीप", "नीलम के मेघ" और अनन्त ऋतुराज का वर्णन भी। [२७४] नक्षत्र लोक, [२७५] के नीचे कली के रूप शैशव में सुमन का मुस्काना, पवन के अंक में खेलना, खिलने पर भंवर का मंडराना, स्निग्ध चन्द्र किरणों का इसे हंसाना " [२७६] और इसके साथ कनक रश्मियों में जगा हिलोर लेता अथाह तमसिन्धु, बुद बुद से बहते विहगों के मधुर राग, [२७७] गर्जन के द्रुत तालों पर चपला का बेसुध नर्तन, [२७८] "मलिन पंथ में गिन गिन पग धरती रात" [२७९] " अपनी करुण कहानी कहते फिरते सूखे पत्ते, [२८०] अलि के

---

२७१. सप्तपर्णा, पृ० १७
२७२. सप्तपर्णा, पृ० २०
२७३. यामा, पृ० १
२७४. यामा, पृ० ७
२७६. यामा, पृ० २९
२७७. यामा, पृ० ६९
२७८. यामा, पृ० ८४

आगमन की सूचना देता मुस्कराता संकेत भरा नभ [८१] का वर्णन मानवीकरण के रूप में ही किया गया है।

महादेवी ने एक ओर प्रकृति में विराटता के दर्शन किए दूसरी ओर मानवीकरण के अनन्तर अन्य छायावादी कवियों की तरह अपना भी प्रतिबिम्ब उसमें देखने का प्रयत्न किया। पर प्रकृति से तादात्म्य की प्रवृत्ति आलोच्य कतिपय कवियों की अपेक्षा महादेवी में अधिक मिलती है। `यामा` और `दीपशिखा` की कविताएं इस कथन की पुष्टि करती हैं।

सामान्यत: प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति कतिपय आलोचकों के द्वारा अंग्रेजी साहित्य की देन मानी जाती है। पर कवियित्री के `सप्तपर्णा` की अनूदित रचनाओं से यह पता चलता है कि मानवीकरण की यह प्रवृत्ति वेदों में निहित ऊषा, मरुत, अग्नि आदि से सम्बन्धित ऋचाओं में भी है। कदाचित मानवीकरण के कारण ही महादेवी के काव्य में प्रकृति सम्बन्धी चित्र इतने सजीव और उनके भावों के अनुरूप प्रस्तुत हो सके हैं।

जहाँ तक ऋतु का प्रश्न है महादेवी के काव्य साहित्य में दो ऋतुएं ही विशेष रूप से दीख पड़ती हैं- पहला है वसन्त और दूसरा है पावस। जिसे क्रमश: मुस्कान और आँसू के रूप में साध्य और साधन कहा जा सकता है। पक्षियों में अलि, चातक, चकोर और कोकिल का विशेष रूप से उल्लेख किया है ठीक उसी प्रकार फूलों में गुलाब, कमल और हरसिंगार का भी। जहाँ तक पहर का प्रश्न है मात्र दोपहर को छोड़ प्रभात, सन्ध्या और रात्रि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है जिसमें महादेवी की विशेष रुचि परिलक्षित होती है।

दीपशिखा के गीतों में भी प्रकृति के स्फुट चित्र मिलते हैं जिससे कवियित्री के प्रकृति विषयक रुझान का ही परिचायक नहीं वरन् वह उसके प्रति अटूट तादात्म्य का भी परिचायक कहा जा सकता है। वह सिन्धु का उच्छ्वास घन और तड़ित तन का विकल मन [८२] के साथ भावना में एकता स्थापित करती

है और अमा की घिरती छाया के साथ कज्जल अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिराघन की भी कामना करती है। [२८३] 'पतझार', [२८४] 'सरिता', [२८५] घिरते कजरारे बादल, [२८६] नभ के मेघों का आमंत्रण [२८७] और सबेरे की सजलता उसे विशेष रूप से आकर्षक लगती है। उसे लगता है कि रात की व्यथा के आंसुओं को ही फूल अपने शीश पर रख पुष्पित हुआ। [२८८] यह कवयित्री की प्रकृति के प्रति आत्मीयतापूर्ण दृष्टि ही कही जायेगी। कदाचित् यह अभिन्नता उसे इसलिए मिली कि उसने प्रकृति में भी अपना या अपना मनोवांछित प्रतिबिम्ब देखा। उन्होंने उसके माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति में भाव पक्ष और कला पक्ष का परिष्कार किया। यद्यपि प्रतीक के रूप में व्यंजना तो आलोच्य विषय के अन्य कवियों ने भी की पर 'ससीम का असीम से तादात्म्य' के माध्यम के रूप में प्रकृति का उपयोग महादेवी की प्रमुख विशेषता है। भावना में अभिव्यक्ति के रूप में प्रकृति उसके तदनुरूप ही उपस्थित हुई है। जिसे कदाचित स्वतंत्र प्रकृति वर्णन के रूप में नहीं देखा जा सकता। यद्यपि हिमालय संकलन में 'तू भूखे प्राणों का शतदल' तथा हे चिर महान् [२८९] जैसी कतिपय अन्य कविताएं प्रस्तुत कथन का अपवाद भी प्रस्तुत करती हैं।

महादेवी : निष्कर्ष

१. प्राकृतिक नियम में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं पर मूल नियम पूर्ववत ही हैं।

२. छायावादी कवि सामाजिक उपेक्षा से प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ।

३. प्रकृति की विशालता में कवयित्री ने ऐसे सामंजस्य का रूप

---

२८३. दीपशिखा, पृ० ९ गीत, २

२८४. दीपशिखा, गीत, २

२८५. दीपशिखा, गीत, ३

२८६. दीपशिखा, गीत ५

२८७. दीपशिखा, गीत ३३

२८८. दीपशिखा, गीत, ५०

२८९. हिमालय, पृ० १६१, १६३

ग्रहण किया जिसका एक रूप अलौकिकता से सम्बन्धित है और दूसरा उसके हृदय से ।

४. मनुष्य में प्रकृति का दाय स्वीकार करते हुए भी उसे नियामक नहीं बनने दिया ।

५. प्रकृति के मानवीकरण के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी ।

६. एक ओर प्रकृति में विराटता के दर्शन किये और अन्य कवियों की तरह अपना भी प्रतिबिम्ब देखने का प्रयत्न किया । प्रकृति से तादात्म्य की प्रवृत्ति अन्य कवियों की अपेक्षा महादेवी में अधिक मिलती है ।

७. मानवीकरण की प्रवृत्ति मात्र अंग्रेजी साहित्य की ही देन नहीं यह वैदिक ऋचाओं में भी उपलब्ध है ।

८. ऋतुएं, पक्षी, फूल और पहाड़ में उन्हें वही प्रिय है जो कि उनकी करुणा अभिव्यक्ति में सहयोग दे सके ।

रामकुमार वर्मा

डा० वर्मा का भी प्रकृति के प्रति एक अजीब आकर्षण रहा है,[२६०] और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि संसार भर में प्रकृति सौन्दर्य के दृष्टिकोण से हमारे देश में जो मनोरमता है, वह बहुत कम देशों को प्राप्त है । सर्वोच्च गिरिमाला के क्रोड़ से निकलने वाली पवित्र और गुणाकारी जल से परिपूर्ण नदियाँ उनके सभी समीपवर्ती उपजाऊ भूमि, अनेक प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित पेड़ और लताएं एवं विविध ऋतुओं की नृत्यमयी शोभा हमारे देश की विशेषता है ।"[२६१] कदाचित उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही कवि प्रकृति की ओर आकर्षित है । उसके हर कविता संकलन में कतिपय ऐसी कविताएं अवश्य हैं जो कि उसके प्रकृति प्रेम की द्योतक कही जा सकती हैं ।

---

२६०. अनुशीलन , पृ० १६३

२६१. अनुशीलन, पृ० १६६

छायावाद और प्रकृति के घनिष्ट सम्बन्ध को देखते हुए तो उनकी धारणा है कि `प्रकृति का क्षेत्र ही इन कवियों की कविता का क्षेत्र है। ऐसी स्थिति में इस कविता को यदि`छायावाद ` के बजाय` प्रकृतिवाद` कहें तो अधिक युक्ति-संगत होगा। अनन्त के सम्मिलन की आकांक्षा और अन्तिम संयोग के पहले कवि को प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का अन्वेषण करना पड़ता है। उसे पहले प्रकृति का मर्म जानना पड़ता है, प्रकृति का ज्ञान आत्मा के ज्ञान के पहले होना चाहिए।` [२९२]

अंजलि के गीत भी उनके प्रकृति विषयक दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण में सहायक हैं। उन्हें प्रकृति में अज्ञात प्रियतम की ओर संकेत भी मिलता है, मानवीकरण द्वारा उससे आत्मीयता का बोध होता है और अन्त में कवि प्रकृति की हर रेखाओं से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

अपनी आत्मीयता में कवि सारी प्रकृति को ही कुछ न कुछ वर्जनाओं का संकेत करता है। कलियाँ तब तक खिलने का प्रयास रोकें जब तक उसका प्रियतम न `हौले-हौले` आ जायें, सागर की गतिविधि, तरंग[२९३] ओसों के बिखरे वैभव, तरुवर के पीले पत्ते` समीर का मन्दोच्छ्वास` [२९४] को वह अज्ञात मिलन की पृष्ठभूमि में मूल्यांकित करता है, तो दूसरी ओर तारों के गजरे [२९५] को देख उसके सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है। सोते पत्तों के डर से प्रात: समीर को धीरे चलने का [२९६] आदेश देता है। उसके लिए प्रकृति ही` जीवन स्रोत है।[२९७] `शिशिर`[२९८] के उज्वल प्रात:काल[२९९] में ओस बिन्दु [३००] और इन्द्र धनुष [३०१] का सौन्दर्य, केतकी का फूलना,[३०२] कलियों का खिलना,[३०३] फिर से बादलों में मधुमास में के हास

---

२९२. अंजलि, पृ० ९८

२९३. अंजलि पृ० १

२९४. अंजलि, पृ० ३

२९५. अंजलि, पृ० ७

२९६. अंजलि, पृ० ११

२९७. अंजलि, पृ० १५

२९८. अंजलि, पृ० ३४

२९९. अंजलि, पृ० ३७

३००. अंजलि, पृ० ३८

३०१. अंजलि, पृ० ३७, चित्ररेखा, १३

३०२. चित्ररेखा, पृ० २, १६, ४६

३०३. चित्ररेखा, पृ० ३४

का उभरना और उदास अम्बर [३०३] तरु के पास समीर का सिसकना[३०४] वसंत का आगमन,[३०५] और उसके साथ ऊषा की रोचक भंगिमाएं,[३०६] सन्ध्या का सौन्दर्य,[३०७] कोकिल का स्वर,[३०८] वर्षा नभ,[३०९] के सौन्दर्य के प्रति कवि आकर्षित ही नहीं वरन् उन सबसे तादात्म्य कर अपनी हृदय की एक एक भावना को आँसों के आकार में [३१०] व्यक्त करना चाहता है। कदाचित प्रकृति के इसी आकर्षण के कारण `एकलव्य` के ममता सर्ग में षड्ऋतु वर्णन किया है। पर इस वर्णन में भी कवि रीतिकालीन की इस परम्परा से विच्छिन्न नहीं दीख पड़ता। [३११] वह प्रकृति के प्रति कोई नया आकर्षण महसूस नहीं करता। पर अन्यत्र प्रकृति का उपयोग स्वतंत्र प्रकृति वर्णन के रूप में न होकर कथा पीठिका निर्माण के रूप में हुआ है। [३१२]

एक स्थल पर प्रकृति में माँ का रूप भी दर्शनीय है।[३१३] जिसकी गोद में वह अपने विकास को स्वीकार करता है। [३१४]

काव्य के अतिरिक्त उनके गद्य साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो प्रकृति को सामान्यत: एकांकी साहित्य में मात्र वस्तु पीठिका के रूप में ही प्रयुक्त किया है [३१५] पर प्रसाद के `एक घूंट` की तरह `बादल की मृत्यु` एक ऐसा नाटक है जिसमें कथावस्तु, पात्र, मंच और विषय सभी कुछ प्रकृति से ही सम्बन्धित है। बादल संध्या के संवाद से प्रकृति के क्रिया-कलाप

---

३०३. चित्ररेखा, पृ० ३,१८,१६,२३
३०४. चित्ररेखा, पृ० ५
३०५. चित्ररेखा, पृ० १३
३०६. चित्ररेखा, पृ० १०,१२,४४
३०७. चित्ररेखा, पृ० २१,४१
३०८. चित्ररेखा, पृ० २२,२८,३१
३०९. चित्ररेखा, पृ० २७,३६
३१०. आधुनिक कवि, पृ० १४०
३११. एकलव्य, पृ० १५६,१५७,१५८
१५९, १६०
३१२. एकलव्य, २६०,३००,३०५
३१३. ~~एकलव्य~~ चित्ररेखा, पृ० ३४
३१४. चित्ररेखा, पृ० ३६
३१५. शिवाजी - पृ० २१
इन्द्रधनुष (राजश्री ३७,५७,)

का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है । [३१७] `पृथ्वीराज` [३१८] संयोगिता से प्रकृति की तरह श्रृंगार करने को कहता है । उसके अनुसार `उषाकाल के पर्व में बादलों की तरह वस्त्र धारण , लालिमा की तरह अंगराग, शुक्रतारे की तरह मस्तक पर हीरा की ज्योति समीर की तरह सामन्तों की पंक्तियाँ, पंछियों की तरह चारण गान, और सूर्य की तरह स्वयं के आगमन की बात` [३१८] से परोक्ष रूप से उनके प्रकृति सम्बन्धी आकर्षण का बोध देता है ।

रामकुमार : निष्कर्ष

१. देश की प्रकृति सम्बन्धी विशेषता के कारण ही कवि उसकी ओर आकृष्ट है उसे अपने देश की प्रकृति पर गर्व है ।

२. छायावाद को उसके प्रकृति केआकर्षण के कारण ही उसे प्रकृति काव्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है ।

३. अनन्त संयोग से पूर्व प्रकृति का रहस्य उद्घाटन पहली सीढ़ी है ।

४. मानवीकरण से प्रकृति की हर रेखाओं से तादात्म्य किया गया है ।

५. प्रकृति ही जीवन स्रोत है ।

६. परम्परा अनुसार षट्ऋतु वर्णन मिलता है ।

७. कतिपय स्थलों पर प्रकृति का उपयोग कथा पीठका के निर्माण के रूप में हुआ है ।

८. प्रकृति माँ की प्रतीक है ।

९. प्रकृति मानव का श्रृंगार है ।

---

३१७. पृथ्वीराज की आँखें(बादल की मृत्यु) ७३

समग्र निष्कर्ष

आलोच्य विषय के सभी कवियों ने अपने काव्य और गद्य साहित्य में प्रकृति चित्रण किया साथ ही प्रकृति पर मानव व्यक्तित्व का आरोप (मानवीकरण) कर उसे यांत्रिक न मानते हुए आत्मशक्ति युक्त की तरह चित्रित किया है। कवियों के प्रारंभिक काव्य में प्रकृति सौन्दर्य के प्रति चमत्कृत करने वाला दृष्टिकोण दीख पड़ता है। कवि प्रकृति के नाना रूपों को देख कर उसके प्रति कुछ भी धारणा बनाने में असमर्थ दीख पड़ते हैं वे मात्र उसके विभिन्न रूपों को देख कर चकित हो जाते हैं। कतिपय छायावादी कवियों ने तो यह भी स्वीकार किया है कि उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली। यही कारण है कि आलोच्य कवि उसके कण-कण पर मुग्ध दीख पड़ते हैं। उसमें उन्हें रहस्यात्मक आभास भी देखने को मिलता है। साथ ही वे उसे धार्मिकजीवन की तरह पवित्र मानते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में प्रकृति देवताओं द्वारा भी पूजित है। प्राय: सभी कवि उसको आत्मोन्नति का साधन मानते हैं क्योंकि प्रकृति अन्तर्तम के रहस्यों के साक्षात्कार करने का माध्यम भी है। सारी प्रकृति ही उन्हें सर्वजीवन्तवाद के रूप में दीख पड़ती है। कदाचित इसीलिए वे प्रकृति के आन्तरिक और वाह्य सौन्दर्य का उद्घाटन करते हुए उसके हर रहस्य को जानने को उत्सुक हैं साथ ही प्रयत्नशील भी। छायावादी कवियों के काव्य में प्रकृति प्रियता के कारण ही डॉ० रामकुमार वर्मा ने छायावाद को प्रकृति काव्य की संज्ञा से अभिहित किया है।

छायावादी कवियों में प्रकृति-प्रियता मात्र सौन्दर्यवादी दृष्टि के आधार पर ही नहीं थी। कालान्तर में इन्हीं कवियों ने (पंत और निराला) प्रगतिवाद की विचारधारा से प्रभावित होकर उपयोगितावादी दृष्टिकोण से भी इसे देखने का प्रयास किया है। उनके अनुसार सृष्टि का सौन्दर्य मात्र प्रकृति में ही नहीं जीवन में भी है, साथ ही प्रकृति की उपयोगिता जीवन के निमित्त ही है क्योंकि प्रकृति प्रदत्त सृष्टि का सुन्दरतम रूप मानव है।

को देखें तो जयशंकर प्रसाद की द्विवेदीकालीन (छायावाद से पूर्व) कविताओं में प्रकृति के प्रति मात्र चमत्कृत करने वाला दृष्टिकोण मिलता है। वह प्रकृति सौन्दर्य को देखकर अवाक रह जाता है। पर कालान्तर में छायावादी वे कविताओं में प्रकृति को सौन्दर्यवादी दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति मिलती है। वह कहीं प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन करता है और कहीं मानवीकरण के द्वारा। पर उसे खेद है कि मानव ने ही यंत्र युग की सृष्टि कर प्रकृति-शक्ति का ह्रास किया है। उसके अनुसार प्रकृति शक्ति क्षीण होने के कारण ही मानव जीवन इतना खोखला और जर्जर हो गया है। सुमित्रानन्दन पंत भी पहले प्रकृति सौन्दर्य के प्रति आकर्षित दीख पड़ते हैं। नक्षत्रों से उन्हें कोई आमंत्रण देता है और कवि उसे समझने की चेष्टा करता है। पुन: मार्क्सवाद के प्रभाव में उसके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण में अन्तर आया और वैज्ञस भौतिकतावादी खोखले जीवन से त्रस्त मानव को भी प्रकृति के माध्यम से एक नया रूपदेना चाहता है। जीवन के इस परिष्कार में कुण्ठा या घुटती मानवी संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं होगा। प्रकृति उसके लिए संवेदना मय सहचरी के रूप में आत्म-परिष्कार का साधन होगी। निराला पहले प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति आकर्षित दीख पड़ते हैं पर कालान्तर में भौतिकवादी जीवन दर्शन के प्रभाव में उनमें पर्याप्त अन्तर आ गया और वे उसे उपयोगितावादी दृष्टि से मूल्यांकित करते हैं। पर पुन: घोर भौतिकतावादी दृष्टि से ऊब कर प्रकृति की शरण में जाते हैं जहाँ उन्हें शान्ति मिलती है। यदि दृष्टि विस्तार में देखें तो पंत और निराला ने आध्यात्मवाद, भौतिकवाद, आदर्शवाद और वस्तु वाद के वैचारिक संघर्ष को प्रकृतिवाद के ही माध्यम से हल करने का वैचारिक निष्कर्ष रक्खा, उसमें अपनी आस्था प्रकट की और यह विश्वास व्यक्त किया कि मानवता प्रकृति के तादात्म्य से ही उचित दिशा में विकास की ओर अग्रसर हो सकेगी। महादेवी ने तो जीवन और प्रकृति को अभिन्न रूप से सम्बन्धित करते हुए उसके एक रूप को अलौकिकता से सम्बन्धित किया और दूसरा मानव हृदय से। पर साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि मनुष्य ने प्रकृति का दास स्वीकार करते हुए भी उसे नियामक नहीं बनने दिया है। रामकुमार वर्मा ने छायावादी कवियों की प्रकृति की ओर अधिक

जबकि महादेवी ने इसका मूल कारण कवियों को समाज से मिलने वाली उपेक्षा।
कारण कुछ भी हो पर आलोच्य विषय के सभी कवियों के साहित्य पर यदि
विश्लेषणात्मक दृष्टि डाली जाय तो कहा जा सकता है कि प्रकृति में उनके
आकर्षण का मूल कारण तत्सम्बन्धी जिज्ञासा और समाज से ऊबकर (समाज
की भौतिकता से ऊबकर) प्रकृति के माध्यम से शान्ति उपलब्ध करना ही उनका
माध्यम दीख पड़ता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि आलोच्य विषय के सभी कवियों
ने प्रकृति का मानवीकरण किया पर वस्तुत: प्रकृति के माध्यम से स्वयं अपनी
ही भावनाओं की अभिव्यक्ति की।

प्रकृति चित्रण के प्रति उनके विभिन्न दृष्टिकोण की ओर
दृष्टिपात करें तो निम्नलिखित प्रकृति चित्रण के रूप मिलते हैं वे हैं —
प्रकृति के प्रति आश्चर्यात्मक भाव से चित्रण, उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर
स्वतंत्र चित्रण, मानवीय करण के रूप में चित्रण, भौतिकतावादी दृष्टिकोण
से प्रभावित होकर उपयोगितावादी दृष्टि से चित्रण, भौतिकता से ऊबकर
प्रकृति में शान्ति पाने के निमित्त और कोलाहल से दूर विश्राम पाने के रूप में
प्रकृति चित्रण तथा नव मानवतावाद की अवतारणा और मानव के परिष्कार
के निमित्त प्रकृति चित्रण कर उसके उपयोग की ओर संकेत किया गया है।

छायावादी कवियों ने प्रतीक और संकेत के रूप में प्रकृति वर्णन
और उसकी सौन्दर्यसत्ता की अभिव्यक्ति के लिए इसका उपयोग किया है।
ऐसे छायावादी कवियों में अधिकतर प्रकृति वर्णन का अन्तिम रूप प्रतीकात्मक
है, क्योंकि अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिस प्रकार रहस्यवादी प्रतीकों
का सहारा लेना पड़ता है, उसी प्रकार छायावादी कवियों ने भी नूतन प्रतीकों
को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

छायावादी कवियों की प्रकृति की प्रतीक योजना कहीं संश्लिष्ट
और कहीं उसके द्वारा स्फुट चित्र खींचा गया है। ऐसे तो संकेत रूपों में भी
प्रकृति चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है कि यह विश्व भी अपने निर्माता की

और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संकेत करता है। यद्यपि प्रतिबिम्ब और आभास का रूप एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है तथापि वह अनुमान और कल्पना पर आधारित मानव वृत्ति और कवियों की मनोभावना की आरोपित प्रकृति है। प्रसाद ने प्रकृति को संवेदनामयी सहचारी के रूप में देखा है तो पंत को प्रकृति के अणु अणु से न जाने कौन आनी और आने का संकेत देता है। निराला भी प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हैं तो महादेवी को उनके प्रियतम का संकेत प्रकृत के हर कण में बिखरा मिलता है। यही बात रामकुमार वर्मा के लिए भी कही जा सकती है।

कतिपय दार्शनिकों ने प्रकृति को ईश्वर की छाया कहा है। उपनिषद् के प्रतिबिम्बवाद में इसी भावना का संकेत मिलता है। ब्रह्म प्रकृति के रूप में ही सगुण रूप में निर्मित हुआ है किन्तु प्रकृति के प्रति स्वतंत्र प्रेम की व्यंजना छायावाद की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने प्रकृति के मानवीकरण द्वारा उनकी भावनाओं और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की। एक ओर प्रकृति में विराटता के दर्शन किये दूसरी ओर अन्य कवियों की तरह अपना भी प्रतिबिम्ब देखने का प्रयत्न किया साथ ही उसे जीवन का स्रोत बताया और उसे जीवन से अभिन्न रूप से सम्बन्धित कर मानव के शृंगार रूप में चित्रित किया। पर दूसरी ओर उन्होंने काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र रूप भी वर्णन किया है यह वर्णन भी उनकी प्रकृति प्रियता का परिचायक है। प्रकृति के माध्यम से राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय एकता जागृत करने का भी आलोच्य विषयके छायावादी कवियों ने सफल प्रयास किया। साथ ही देशवासियों को देश की सुन्दरता की ओर आकर्षित कराकर उनमें स्वाभिमान का भाव जगाया गया और देश की प्राकृतिक सुन्दरता में ही माँ की कल्पना करके पूरे राष्ट्र के लिए भारत माता के स्वरूप का विकास किया गया।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के संहार और सृजनकर्ता दोनों ही रूपों को ग्रहण किया। उन्होंने प्रकृति-सौन्दर्य, कुरूपता, प्रसन्नता, उदासता, सूक्ष्म और स्थूल रूपों में समान रूप से आकर्षण महसूस किया।

मिलता है।

छायावादी कवियों ने कल्पना के माध्यम से अपनी ही चेतन-आत्मा का आरोप प्रकृति की शक्तियों पर किया है, यद्यपि उनमें विचारात्मक स्वतंत्र चेतना का अभाव नहीं है। उनकी मान्यतानुसार सभी वस्तुओं में चेतना व्याप्त है। जहाँ तक जड़ वस्तु का सम्बन्ध है, स्थूल दृष्टि से देखने पर उसमें जड़ता व्याप्त है पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उस जड़ में भी चेतन का स्पन्दन दीख पड़ता है। डॉ० शंभुनाथ सिंह के शब्दों में इस प्रकार उनका प्रकृति का सौन्दर्य दो प्रकार का है, पहला आत्मारोपित (Subjective projection of the Self) दूसरा सर्ववादी (Pantheistic) ये दोनों ही प्रकार के सौन्दर्य दर्शन संबंधी विचार योरोप और भारत के साहित्य में बहुत प्राचीनकाल से चले आ रहे हैं।[३१६]

" प्रकृति को स्पन्दन शील और जीवन युक्त सर्वव्याप्त चेतना से परिचालित मान कर आलोच्य विषय के कवियों ने प्रकृति के विषय में अपनी अनुरक्ति दिखायी। यह सर्ववादी दर्शन छायावाद में अपने विविध रूपों में दीख पड़ता है।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य को नारी रूप में देखा या पुरुष सौन्दर्य के रूप में, यदि इस पर विचार करें तो कतिपय विद्वानों का मत है कि प्रकृति और उसके उपकरणों को छायावादी कवियों ने नारी सौन्दर्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है क्योंकि प्रकृति का यही मसृण, कोमल, स्निग्ध और मधुर रूप आलोच्य छायावादी कवियों के रुचि के अनुकूल था। लेकिन यह धारणा बहुत कुछ भ्रान्त सी दीख पड़ती है क्योंकि पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में " सौन्दर्य की भावना सर्वत्र स्त्री का चित्र चिपका कर करना खेल-सा हो जाता है। ऊषा सुन्दरी के कपोलों की ललाई, रजनी के रत्न जटित केश-कला, दीर्घ निःश्वास और अश्रुबिन्दु तो रूढ़ हो ही गए हैं किरण, लहर, चन्द्रिका, छाया, तितली सब अप्सराएं या परियां बन कर ही सामने आने पाती हैं। उसी तरह प्रकृति के नाना व्यापार भी चुंबन, आलिंगन, मधु ग्रहण, मधुदान, कामिनी-क्रीड़ा इत्यादि में अधिकतर परिणत दिखायी देते हैं।"[३२०] पर छायावादी कवियों को प्रकृति में नारी

का ही मात्र रूप दीखता हो ऐसा नहीं है। प्रसाद के परिवर्तन, बादल, निराला का बादल, तजोहरा, राम की शक्ति पूजा, प्रसाद की कामायनी में और प्रकृति के स्वतंत्र दृश्य, `अरुण यह मधुमय देश हमारा` और उनकी अन्य रचनाओं के साथ महादेवी और रामकुमार की कविताओं में भी पुरुष सौन्दर्य का आकर्षण व्यक्त किया गया है। अत: यह कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि छायावादी कवियों ने जिस मनोयोग से प्रकृति में नाट्य सौन्दर्य का वर्णन किया है ठीक उसी प्रकार पुरुष सौन्दर्य भी। यद्यपि प्रकृति वर्णन की दृष्टि से कवियों ने सर्व प्रथम रहस्य भावना और अशरीरी सूक्ष्म सौन्दर्य तथा कालान्तर में मानवीकरण की प्रवृत्ति अपनायी तथापि पुरुष सौन्दर्य के साथ नारी सौन्दर्य का चित्रण मिलता है। स्वयं पंत ने इस बात को स्वीकार किया है कि `प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है।[३२१] पर उन्हीं के साहित्य में उनके कथन का अपवाद दीख पड़ता है।

आलोच्य विषय के छायावादी कवियों के प्रारंभिक काव्य में प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर मात्र अवाक् रह जाने की प्रवृत्ति मिलती है और कालान्तर में उनकी प्रकृति सम्बन्धी विचारधारा में पर्याप्त अन्तर आया। रोमाण्टिक कविता का प्रभाव (विदेशी), संस्कृत काव्य और उसकी विस्तृत परम्परा का अध्ययन तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण पूरे देश को एक भारत माता के रूप में देखते हुए प्रकृति में वात्सल्य भावना का प्रादुर्भाव आदि उसके प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं। प्राय: समस्त छायावादी विचारधारा पर रोमाण्टिक भावधारा की प्रकृति वैश्या कल्पना का अत्यधिक प्रभाव है जिसमें प्रकृति मात्र आलम्बन नहीं है। डॉ० रघुवंश के अनुसार `—छायावाद काव्य की रोमाण्टिक प्रकृति की उपस्थिति काव्य के लिए जीवत और स्पन्दित है। जिस प्रकार उसने जीवन को अनुभूति और संवेदना के सूक्ष्म स्तर पर ग्रहण किया है, उसी प्रकार प्रकृति उसके लिए जीवन का अंश है जो अनुभव या संवेदना की वस्तु (आलम्बन) न होकर उसका साक्षात्कार है। वह पुन: प्रकृति की व्यापक चेतना का सहज और जिज्ञासु भाव से अन्वेषण करता है, उसके वस्तु परक सौन्दर्य के परे सूक्ष्म भावगत सौन्दर्य का अनुभव करना चाहता है। वह

इच्छा आकांक्षाओं का अनुभव प्रकृति के फैले हुए जीवन के माध्यम से करता है और अपनी कल्पना के मुक्त और स्वच्छन्द प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र प्रकृति में खोजता है। यह प्रकृति का जीवन न कवि के जीवन के समानान्तर है न उसके आरोपित और उत्प्रेरित ही, वह कवि जीवन से अभिन्न हो गया है।[३२२] लेकिन रोमांटिक दृष्टि के अलावा युगीन काव्य प्रकृति और उसकी परिकल्पना पर अन्य वस्तु का भी प्रभाव है और वह प्रभाव है भारतीय दार्शनिक आध्यात्मिक चिन्तन का। नव्य और अद्वैतवाद, मानवतावाद, विश्वबन्धुत्व आदि विचारधाराओं का स्रोत भी छायावदी कवियों की विचारधारा में ढूँढा जा सकता है। इन विचारधाराओं के फलस्वरूप प्रकृति के सर्वचेतनावादी परिकल्पना के साथ छायावादी कवियों में प्रकृति चेतना में आध्यात्मिक भाव बोध और अर्थ-संकेत देने की प्रवृत्ति विकसित हुई है। प्रकृति के रोमाण्टिक दृष्टि से यहाँ आलोच्य विषय के छायावादी कवियों की प्रकृति का अन्तर उपस्थित होता है, जब उसकी चेतना कल्पना और सौन्दर्य में किसी व्यापक सत्ता (जो प्रकृति के अतिरिक्त है) का आभास उनको मिलता है। मध्य युग के साधक कवियों ने अपने आराध्य के व्यक्तित्व में सारी प्रकृति को उसके रूपाकार और भाव प्रवण सौन्दर्य को समाहित कर दिया था। आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने रहस्यवादी प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य बोध के माध्यम से किसी अलौकिक (अध्यात्मिक) सत्ता के संकेत को ढूंढने का प्रयत्न किया है साथ ही स्वच्छन्द प्रकृतिवादी के रूप में प्रकृति और उसके जीवन से समान संबोध, अनुभूति तथा साक्षात्कार भी किया है।

प्रकृति के प्रति व्यापक एवं नवीन दृष्टिविस्तार के अतिरिक्त भी अलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने चतुरमासा और बारहमासा की परम्परा भी निबाही, जिनमें निराला और रामकुमार वर्मा उल्लेखनीय हैं। महादेवी ने भी कदाचित ऐसी विचारधारा से प्रभावित होकर करुणा या वियोग से सम्बन्धित प्रकृति की चेतना का उपयोग किया है जो कि उनकी वियोगाभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि को सजीव बनाने में पर्याप्त समर्थ दीख पड़ती

---

३२२. रूपाम्बरा, पृ० ३६६

है । कदाचित परम्परा पालन का यह भी कारण हो कि उनकी दृष्टि में प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं दीख पड़ता । प्रारम्भ से अब तक प्रकृति सम्बन्धी मूल नियम पूर्ववत ही हैं ।

जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा के काव्य सम्बन्धी विचारधारा के विश्लेषण-विवेचन के अनन्तर गद्य साहित्य में प्रकृति के उपयोग सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार किया जाय तो -- यह कहा जा सकता है कि प्रसाद ने अपनी कहानियों में प्रकृति वर्णन कथावस्तु को सुसंगठित बनाने, वातावरण के निर्माण, चरित्र को उभारने तथा मनोविश्लेषण के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी किया है । अधिकांश कहानियां प्रकृति वर्णन से ही प्रारंभ होती हैं । जिन कहानियों की कथावस्तु कमजोर है उसको भी प्रकृति द्वारा रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है । उनके उपन्यास साहित्य में प्रकृति वर्णन काव्य एवं कहानियों की अपेक्षा कम किया गया है । जहाँ तक नाटक साहित्य का प्रश्न है प्रकृति के माध्यम से ही राष्ट्र प्रेम एवं तत्संबंधी विचारधारा की अभिव्यक्ति की गयी है, साथ ही देश के प्रकृति सौन्दर्य पर गर्व करते हुए देश की सांस्कृतिक गौरवगाथा पर प्रकाश डाला गया है ।

पंत ने अपने लेखों में प्रकृति सम्बन्धी पर्याप्त विवेचन-विश्लेषण किया है पर इसके अतिरिक्त उनके एक मात्र कहानी संग्रह पांच कहानियां में प्रकृति वर्णन का उपयोग मात्र वातावरण निर्माण के दृष्टिकोण से किया गया है । निराला के उपन्यासों में काव्य की तरह प्रकृति वर्णन की रुचि नहीं देखने को मिलती । कथावस्तु की अन्विति के दृष्टिकोण से कहानियों की तरह उपन्यास में भी प्रकृति का उपयोग कम किया गया है । पर उनके ऐतिहासिक उपन्यास प्रभावती में प्रकृति का उपयोग ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करने के लिए किया गया है । महादेवी ने अपने लेखों में प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण का पर्याप्त विश्लेषण किया । साथ ही मानवीकरण की प्रवृत्ति को प्राचीन भारतीय साहित्य के आधार पर इस देश की ही प्रवृत्ति बताया । पर उनके रेखा चित्रों में प्रकृति का बहुत कम प्रयोग मात्र वहीं देखने को मिलता है जहाँ स्थान या वातावरण सम्बन्धी

पृष्ठभूमि को उभारने का रहा है । जहाँ तक रामकुमार वर्मा का प्रश्न है पंत की तरह उनके लेखों में भी प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण का विवेचन किया गया । पर एकांकी नाटकों में प्रकृति का उपयोग मात्र वातावरण निर्माण के दृष्टिकोण एवं श्रृंगार के निमित्त किया गया है ।

अत: उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों ने काव्य के अतिरिक्त काव्येतर साहित्य में प्रकृति वर्णन किया । काव्य एवं गद्य साहित्य सम्बन्धी प्रकृति वर्णन की विचारधारासम्बन्धी,रूप में परस्पर कोई विरोध नहीं दीख पड़ता , वरन् वह छायावादी कवियों की वैचारिक पुष्टि में सहायक है ।

खण्ड १

अध्याय ८—समाज

समाज

आलोच्य कवियों की समाज विषयक परिभाषा को देखें तो कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद ने समाज की धारणा को स्पष्ट करते हुए प्राचीन भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया । पर उनके साहित्य में समाज सम्बन्धी कोई परिभाषा नहीं देखने को मिलती । निराला ने शब्दगत दृष्टिकोण से समाज की परिभाषा की कि " शब्दशास्त्र के अनुसार समाज का जो अर्थ भारत में प्रचलित है वह पश्चिम के सोसाइटी शब्द अथवा तत्सम तद्भव किसी अपर शब्द में नहीं ।"[१] उनके अनुसार "समाज एक ऐसा शब्द है जो अपने अर्थ में उत्तम प्रगति सूचित करता है और प्रगति हर एक मनुष्य समुदाय के लिए आवश्यक है ।"[२] पन्त ने समाज को संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग माना क्योंकि प्रत्येक " प्रथा "[३] की उत्पत्ति समाज द्वारा ही होती है । महादेवी के अनुसार " समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिसमें स्वार्थों की सार्वजनिक रक्षा के लिए अपने विषम आचरणों में साम्य उत्पन्न करने वाले कुछ सामान्य नियमों से शासित होने का समझौता कर लिया (जाता) है ।"[४] रामकुमार वर्मा के साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि " समाज वह इकाई है जिसमें कुछ विशिष्ट मान्यताएं "[५] होती हैं ।

छायावादी कवियों की उपर्युक्त परिभाषा के अनन्तर उनकी समाज विषयक धारणा की पीठिका पर भी विचार करना अधिक युक्तिसंगत होगा । आधुनिक युग के संदर्भ में देखें तो भारतेन्दु युग में व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग मानते हुए भी उसके स्वतंत्र परिवेश पर प्रकाश नहीं डाला गया । कदाचित यह देश की पराधीनता के कारण संभव न था । पर समाज में विदेशी शासन की पराधीनता से त्राण पाने का प्रयत्न अपने प्रारंभिक रूप में दीख पड़ता है.। यह चेतना घर करने लगी थी कि देश की गिरी आर्थिक, सामाजिक स्थिति की बहुत कुछ जिम्मेदार देश को शासित

---

१. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ३४१
२. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ३४२
३. आधुनिक कवि पन्त, ४०
४. श्रृंखला की कड़ियां, पृ० १२६
५. साहित्य शास्त्र, पृ० ८३

करने वाली विदेशी सरकार है । समाज में रूढ़िगत नाना कुरीतियां घर कर गयी थीं जिसके प्रतिकार के निमित्त समाज सुधार के आन्दोलनों की धूम थी । फलस्वरूप सामाजिक जागृति और चेतना फैली यह तत्कालीन साहित्य की विधाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । पर समाज सुधार की चेतना के सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है, यद्यपि यह महसूस किया जाता था कि देश की दुर्व्यवस्था का कारण विदेशी शासन है पर समाज सुधार का पूर्णतया आत्मविश्वास नहीं दीख पड़ता । उसके सुधार के लिए देशवासियों में ईश्वर से ही अधिकतर प्रार्थना की जाती थी । कदाचित यह नियतिवादी चेतना की ही परिणति थी जिसमें पुरुषार्थ पर अधिक बल प्रदान न कर ईश्वर के समक्ष समाज सुधार सम्बन्धी एकनिष्ट भावना व्यक्त की गयी थी ।

पर द्विवेदी युग में समाज विषयक धारणा में कुछ परिवर्तन देखने को मिलता है जिसका बहुत कुछ कारण तत्कालीन समाज में समाज-सुधार सम्बन्धी चल रहे आन्दोलन कहे जा सकते हैं । समाज सुधारकों की धारणा थी कि व्यक्ति ही समाज संरचना की मूल इकाई है । अतः समाज की सभी रूढ़ियों में सुधार सम्यक है । इस भावना ने समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों को पर्याप्त प्रोत्साहित किया। जिस राष्ट्रीय चेतना का जन्म भारतेन्दु युग में हुआ था उसे समाज में विकसित होने का अवसर मिला । समाज सुधार में उपदेशात्मकता की प्रमुखता था । राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में पूरे देश को एक मानव समाज का रूप मानकर भारत मां की विराट कल्पना की गयी । कदाचित यह विराट कल्पना भारत दुर्दशा की ही प्रतिक्रिया थी जिसके कारण कालान्तर में देश को नवीन चेतना प्राप्त हुई थी ।

छायावादी कवियों ने समाज की सापेक्षिक महत्ता में व्यक्ति के अन्तर्मन को अधिक महत्वपूर्ण समझा कदाचित उनकी धारणा थी कि सामाजिक बंधनों के कारण व्यक्ति का अन्तर्मन पूरी तरह उद्घाटित नहीं होने पाता । पर कतिपय उन्हीं छायावादी कवियों में प्रगतिवाद की विचारधारा को ग्रहण करने का नितान्त व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की उपेक्षा भी की और समाज रहित व्यक्तित्व को निरर्थक बताते हुए समाज को ही सर्वोपरि बताया । जहां तक आलोच्य विषय के छायावादी कवियों के साहित्य में सामाजिक स्थिति एवं तत्सम्बन्धी धारणा का

प्रश्न है उसे क्रमश: विश्लेसित करना ही अभीष्ट होगा ।

प्रसाद

प्रसाद की कविताओं में तत्कालीन स्थिति एवं उनकी समाज सम्बन्धी धारणा को विश्लेषित किया जाय तो उन्हीं के शब्दों में कहा जा सकता है कि—

" भुनती वसुधा, तपते नग, दुखिया है सारा अग जग
कंटक मिलते हैं प्रतिपग, जलती सिकता का यह मग ।"[६]

और तत्कालीन त्रस्त समाज में जीवका अर्जित करने के लिए सरकारी नौकरी ढूंढ़ने की प्रवृत्ति के साथ पश्चिमी सभ्यता के संयोग से हुई भौतिक उथल-पुथल का एक संकेत —" भौतिक विप्लव देख विकल वे थे घबराये, राज-शरण में त्राण प्राप्त करने को आये, किन्तु मिला अपमान और व्यवहार बुरा था, मनस्ताप से सबके भीतर रोष भरा था ।"[७] में स्पष्ट रूप से मिल जाता है । पर परिस्थिति के हल के रूप में सामाजिक विडम्बनाओं के प्रति कवि का सारा क्षोभ—" बह जा बन करुणा की तरंग, जलता है यह जीवन पतंग "[८] कह कर ही शान्त हो जाता है, वह इन समस्याओं के प्रति किसी ठोस परिणति की ओर कोई संकेत नहीं करता ।

गद्य साहित्य में प्रसाद की सामाजिक चिंतन की प्रखरता कुछ अधिक देखने को मिलती है, जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनकी सामाजिक विचारधारा पर प्रकाश पड़ता है । इनके ' कंकाल ' उपन्यास का विजय सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट शब्दों में कहता है कि आज " जब इस समाज का अधिकांश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची — उसकी संस्कृति विडम्बना, उसकी संस्था सारहीन और राष्ट्र बौद्धों के शून्य के सदृश बन गया है, जब संसार की अन्य जातियां सार्वजनिक भ्रातृभाव और साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं"[९] ऐसी स्थिति में समाज की उपेक्षा नहीं हो सकती । समाज में

---

६. लहर, पृ० ५०
७. कामायनी, पृ० २०१
८. लहर, पृ० ५०
९. कंकाल, पृ० ७२

भुठलाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है यही कारण है " धर्म के सेनापति विभीषिका उत्पन्न करके साधारण जनता से अपनी वृत्ति कमाते हैं और उन्हीं को गालियां सुनाते हैं। यह गुरुडम कितने दिनों चलेगा।" [१०] " आज भी ..... समाज वैसे ही लोगों से भरा पड़ा है -- जो स्वयं मलिन रहने पर भी दूसरों की स्वच्छता को अपनी जीविका का साधन बनाये हैं।" [११] समाज सुधार के दृष्टिकोण से प्रेरित होकर प्रसाद ने कंकाल में 'भारत संघ' की स्थापना की। जिसका उद्देश्य कुल-धर्म "श्रेणी--वाद, धार्मिक पवित्रतावाद, अभिजात्यवाद इत्यादि अनेक रूपों में फैले हुए सब देशों के भिन्न भिन्न प्रकारों के जातिवाद की अत्यन्त उपेक्षा" (करना है। साथ ही संसार में) .. "अन्न-वस्त्रविहीन, बिना किसी औषधि-उपचार के मर रहे" [१२] लोगों की सेवा उसका उद्देश्य है।

कंकाल की तरह प्रसाद साहित्य में कुछ अन्य ऐसे स्थल दीख पड़ते हैं जिनसे उनकी सामाजिक विचार धारा और तत्कालीन स्थिति की भी पुष्टि होती है। जैसे --" संवत् ५५ का अकाल आज के सुकाल से भी सदय था-- कोमल था।" [१३] इससे तत्कालीन स्थिति का बोध होता है, साथ ही यह कहा जा सकता है कि सामाजिक परिस्थितियों की जटिलता वे के कारणों में महत्व हैं ---सामाजिक कुरीतियां। उनकी धारणा है कि" हिन्दू की छोटी सी गृहस्थी में कूड़ा--करकट तक जुटा रखने की चल है और उन पर प्राण से बढ़कर मोह। दस पांच गहनेन्न दो चार बर्तन, उनको बीसों बार बन्धक करना और घर में कलह करना यही हिन्दू-घरों में आये दिन के दृश्य हैं। जीवन का जैसे कोई लक्ष्य नहीं। पद दलित रहते--रहते उनकी सामूहिक चेतना जैसे नष्ट हो गई है। अन्य जाति के लोग मिट्टी या चीनी के बरतन में उत्तम स्निग्ध भोजन करते हैं। हिन्दी चांदी की थाली में भी सत्तू घोल कर पीता।" [१४] आर्थिक दृष्टिकोणसेयदि विचार तो" बिना वस्त्र के सैकड़ों नर कंकाल" [१५] सामाजिक जीवन का अभिशाप हो रहे हैं। " हिन्दुओं में परस्पर तनिक भी सहानुभूति नहीं। .... मनुष्य, मनुष्य के सुख-दुख से सौदा करने लगा ... है और उसका मापदंड " [१६] बन गया है रुपया। समाज की ऐसी दयनीय स्थिति में भी प्रसाद ने शैला के माध्यम से एक सुधरवादी रूप उभारा है। उसके शब्दों में

---

१०. कंकाल, पृ० ७३
११ वही, पृ० १६३
१२. कंकाल, पृ० २३५
१३. तितली, पृ०८
१४. वही, पृ० ५६
१५. तितली, पृ० ५६

" जीवन का सच्चा स्वरूप विमल है, जिसमें ठोस मेहनत, अटूट विश्वास और सन्तोष से भरी शांति हंसती-खेलती है ।"[१७]

प्रसाद ने समाज का यथावत चित्रण ही नहीं किया वरन् उन्होंने आदर्श सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला । साथ ही उसमें बाधक परिस्थितियों पर असंतोष प्रकट किया । समाज में धार्मिक विचारधारा के सम्बन्ध में उन्होंने निरंजन के इस कथन से अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है कि -- " जब मैं स्वार्थियों को भगवान् पर भी अपना अधिकार जमाये देखता हूं , तब मुझे हंसी आती है --- जब उस अधिकार की घोषणा करके दूसरों को वे छोटा, नीच और पतित ठहराते हैं । "[१८] पर समाज में ऐसी स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रह सकती । समाज का हर व्यक्ति जब इन स्वार्थ-परक मूल्यों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करेगा तभी समाज के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा हो सकेगी । कदाचित इसी आदर्श समाज की भावना से प्रेरित होकर उनके द्वारा " भारत संघ "[१९] की स्थापना कराई गई जिसका उद्देश्य था --आर्य संस्कृति का प्रचार,श्रेणीवाद , धार्मिक पवित्रतावाद, आभिजात्यवाद और जातिवाद की अत्यन्त उपेक्षा, " यत्र नार्यास्त पूज्यन्ते रम्यते तत्र देवता" की भावना का प्रचार और हर गिरे हुए को उठाना । तितली में भी प्रसाद ने आदर्श सामाजिक व्यवस्था की धारणा से प्रभावित होकर ही गांवों में बैंक, चकबन्दी, पंचायत और बीज गोदामों के खुलवाने पर जोर दिया । जिससे गांव सम्पन्न हों । आदर्श समाज की सृष्टि हो सके और -" सबके लिए सुख साधन का द्वार खुला हो"।[२०]

प्रसाद साहित्य के आधार पर यदि समाज पर पड़ने वाले विदेशी प्रभाव को विश्लेषित किया जाय तो उनकी विचारधारा और भी स्पष्ट हो जाती है उनके अनुसार पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण भारतीय समाज की

---

१७. तितली, पृ० ३५

१८. कंकाल , पृ० २६१

१९. कंकाल, पृ० २३५

२०. कामायनी, पृ० १८४

विचारधारा में एक परिवर्तन दीख पड़ता है। योरोप की औद्योगिक क्रान्ति भारतीय समाज के लिए एक आकर्षक केन्द्र बन रही थी। भारत में भी विदेशी पूंजीपतियों द्वारा उद्योगधन्धे खुल रहे थे। पर इस औद्योगिक विकास के प्रथम चरण में ही विदेशियों द्वारा अपमान मिलने से भारतीय जनमानस क्षुब्ध था।[२१] पाश्चात्य प्रभाव से समाज में व्यक्ति चेतना जग तो रही थी पर, "राग द्वेष पंक में सने "[२२] वातावरण में इसके पूर्ण विकास का अवसर न था। देश में हो रहे रेल, डाक, तार के विकास से समाज में एक नया वातावरण मिल रहा था। पर समाज में शिल्पकला को प्रोत्साहन न मिलने से उसका ह्रास हो रहा था। इसकी झलक "प्रकृति-शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी, शोषण की जीवनी बना दी जर्जर झीनी "[२३] — में भी देखी जा सकती है। कवि का यह दृढ़ विश्वास था कि विदेशी दासता की परिस्थिति अब अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगी।[२४]

प्रथम महायुद्ध में होने वाले नर संहार के कारण समाज युद्ध से त्रस्त हो गया था। कदाचित् उसे ही प्रसाद ने " ओ पागल प्राणी तू क्यों जीवन खोता है"[२५] में व्यक्त किया है क्योंकि उन्होंने " जीने दे सबको, फिर तू भी सुख से जी ले"[२६] की भावना का ही समर्थन किया है। प्रसाद की धारणा थी कि — तत्कालीन विदेशी शासन और संस्कृति के प्रभाव में " समाज का अधिकांश पददलित और दुर्दशा ग्रस्त है, उसकी अभिमान और गौरव की वस्तु धरा पृष्ठ पर नहीं नहीं बची।[२७] कितने अनाथ यहां अन्न-वस्त्र विहीन, बिना किसी औषधि उपचार के मर रहे हैं।"[२८] तत्कालीन-वह कदाचित् यह स्थिति समाज में प्रथम महायुद्ध के अनन्तर मन्दी तक की स्थिति का द्योतन करता है क्योंकि प्रसाद की मृत्यु संवत् १९९४ में हो गयी थी।

---

२१. कामायनी, पृ० २०१
२२. कामायनी, पृ० २०५
२३. कामायनी, पृ० २११
२४. कामायनी, पृ० २१०
२५. कामायनी, पृ० २१३
२६. कामायनी, पृ०२१३
२७. कंकाल, पृ० ७३
२८. कंकाल, पृ० २७६

तितली में प्रसाद ने यौरोपीय सामाजिक व्यवस्था पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विजय दिखायी है। इन्द्रदेव के साथ इंगलैण्ड से आने वाली मिस शैला इसी की प्रतीक है। उसके अनुसार-- भारतीय समाज में ही "जीवन का सच्चा स्वरूप मिलता है, जिसमें ठोस मिहनत, अटूट विश्वास और संतोष से भरी शांति हंसती खेलती है। लंदन की भीड़ से दबी हुई मनुष्यता में मैं ऊब उठी थी।"[२९] शैला भारतीय पहनावे के प्रति भी आकर्षित है।[३०] वह विभिन्न भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों में शरीक होती है। बाथम और जान[३१] तथा वाट्सन[३२] भी भारतीय समाज के प्रति आकर्षित हैं। कंकाल का पादरी भी हिन्दू धर्म के व्याख्यान में शरीक होता है। यह तत्कालीन भारतीय समाज के प्रति यौरोप का एक सहज आकर्षण कहा जा सकता है।

प्रसाद ने समाज पर छाये अंग्रेजी सभ्यता के आतंक का भी चित्रण किया है जिसमें तत्कालीन विचार धारा और उस पर पड़ने वाले प्रभाव की स्थिति का स्पष्टीकरण होता है। वाट्सन का कथन है कि -" स्वतंत्र इंगलैण्ड में रह आने के कारण आप वाट्सन को हौवा नहीं समझते किन्तु मैं अनुभव करता हूं यहां के लोग मेरी कितनी धाक मानते हैं। उनके लिए मैं देवता हूं या राक्षस, साधारण मनुष्य नहीं। यह विषमता क्या परिस्थितियों से उत्पन्न नहीं हुई है।[३३]

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में भारतीय समाज पर बढ़ती हुई यांत्रिक संस्कृति के बोझ को प्रसाद मानवता के विकास में बाधक समझते हैं जिसे उन्होंने कामना (नाटक) में मात्र संकेत भर किया है।

प्रसाद : निष्कर्ष

१. सरकारी नौकरी की ओर युवक आकर्षित हैं पर साथ ही आत्म-

---

२९. तितली, पृ० ३५
३०. तितली, पृ० ११५
३१. कंकाल, पृ० ११४
३२. तितली, पृ० ११४
३३. तितली, पृ० ११६

सम्मान पर ठेस लगने के कारण उनका स्वाभिमान आहत है ।

२. समाज में आर्थिक दुर्दशा की स्थिति सर्वत्र व्याप्त है । गरीबी के कारण समाज के अधिकांश लोग भोजन, वस्त्र और घर की समस्या को नहीं सुलझा पाते ।

३. तत्कालीन समाज में पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के चकाचौंध के प्रति एक जिज्ञासा की भावना मिलती है । कालान्तर में भारतीय संस्कृति और समाज के प्रति विदेशियों का भी आकर्षण दीख पड़ता है ।

४. समाज की विचारधारा मूल समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में न होकर बाह्याडम्बर की ओर केन्द्रित हैं ।

५. सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रति अविश्वास नहीं दीख पड़ता । आदर्श सामाजिक व्यवस्था की विचारधारा से प्रभावित होकर गांव में बैंक, चकबन्दी, पंचायत तथा अच्छे बीज गोदाम को खोलवाने की बात का समर्थन किया गया है ।

६. समाज में सबका जीवन सुख सुविधा सम्पन्न हो ऐसी आदर्श व्यवस्था की कामना की गयी है ।

पंत

पंत की विचारधारा में समाज के गर्हित रूप की प्रतिक्रिया भी सदैव मंगल कामना में सिक्त दीख पड़ती है । कवि समाज को सम्बोधित करते हुए कहता है कि समाज में " दैन्य जर्जर, अभाव, ज्वर पीड़ित जीवन-यापन से मनुष्य का जीवन गर्हित न हो । युग-युग के छाया भावों से त्रसित, मानव का मानव के प्रति मन सशंकित न हो ।[३४] पर समाज के व्यक्ति ... " तन की चिन्ता में निशिदिन मात्र दे "[३५] तक ही सीमित रह गए हैं । निद्रा, भय, मैथुन, आहार ये चार पशु लिप्सायें हैं जो उन्हें सर्वस्व सार-सी दीख पड़ती हैं । कवि का दृष्टिकोण है कि असामाजिक रूप से जीवन व्यतीत करना सामाजिक

---

३४. चिदम्बरा, पृ० ३६

३५. चिदम्बरा, पृ० ४१

दृष्टि से हानिकारक है क्योंकि ऐसी बालुका भीतों पर समाज के नव्यतंत्र का सृजन नहीं हो सकता ।

समाज में यदि परिस्थितियों से सबसे अधिक त्रस्त है तो वह मध्यम वर्ग का मानव । वह खोखली, मान्यताओं से अपने को लपेटे हुए है । अपने को जितना ही सुलझाने का प्रयत्न करता है वह उतना ही उलझता जाता है । कवि के शब्दों में " मध्यम वर्ग का मानव परिजनपत्नीप्रिय, व्यक्तित्व प्रसारक, परहित निष्क्रिय," [३६] यदि श्रमजीवी रूप में — श्रमिकों का — अभिभावक नवयुग का वाहक, (सच्चा) नेता (और) लोक प्रभावक" [३७] होता तो समाज में मध्यम वर्ग की दयनीयता ऐसी न होती ।

कविकृषक समाज की गिरी स्थिति के प्रति भी पर्याप्त सहानुभूति रखता है । उसने कृषक समाज की दशा को `वज्र मूढ़, हठी, ध्रुव ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक, कर जर्जर, ऋण ग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू-धन, निखिल दैन्य " [३८] के रूप में चित्रित किया है । उसे इस बात का क्षोभ है कि इस प्रयोगिक युग में कृषक — विश्व प्रगति अनभिज्ञ , निज कूप तम में ही सीमित रह गया है । वह कृषकों के उद्धारक कार्य को` पुण्य` की संज्ञा से अभिहित करता है । [३९] पर यह पुण्य इच्छा तभी पूरी होगी जब`सामूहिक कृषि`[४०] द्वारा ग्राम्य समाज की सारी व्यवस्था कवि ने न केवल कृषक समाज वरन् समस्त ग्रामवासियों की आर्थिक स्थिति पर भी क्षोभ प्रकट किया है । कदाचित इसीलिए उसने कहा है कि --"यहां युग-युग से अभिशासित, अन्न-वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित लोग रहते हैं । यह मानव लोक नहीं, अपरिचित नरक है । वह आश्चर्य प्रकट करता है कि क्या इसी इन्ही झाड़-फूंस के विवर में देश का जीवन शिल्पी निवास करते हैं, जिसके कीड़ों से रेंगते घर के लोग अकथनीय जड़ता में गृह-खेत-मग हर जगह कलह के बीच अपनी विवशता भरी जिन्दगी बिता रहे हैं । [४२]

---

३६. चिदम्बरा, पृ० ५१
३७. चिदम्बरा, पृ० ५१
३८. चिदम्बरा, पृ० ५१
३९. चिदम्बरा, पृ० ५१
४०. चिदम्बरा, पृ० ५२
४१. चिदम्बरा, पृ० ५२
४२. चिदम्बरा, पृ० ६६

पंत की दृष्टि में समाज का एक ऐसा ढांचा है जिसमें वह पूरे समाज तंत्र को नया रूप देना चाहता है । " जिससे पापों की जननी दरिद्रता मिटे और अधिवास, वसन आदि सभी मनुजोचित सुविधाएं समाज को उपलब्ध हो सकें । [४३] कवि को इस सामाजिक व्यवस्था के लक्ष्य को प्राप्त करने में पूर्ण आस्था है क्योंकि उसे "मनुष्यत्व की क्षमता[४४] पर विश्वास है जिस पर आधारित उसे" अभिनय लोक सत्य को इस भू पर स्थापित करना है ।[४५] "नंगे भूखों के क्रन्दन, निर्मम शोषण[४६] और अन्ध रूढ़ियों को [४७] नष्ट करना है । कवि के अनुसार" नव मानवता (और नव समाज सृजन करने के लिए) एका "[४८] होने का यही समय है । वह नव सृजन करने के निमित्त " जीवन की स्थितियों (को परिवर्तित परिवर्धित" [४९] करके आओ स्थितियों से लड़ें साथ-साथ आगे बढ़े, भेद मिटेंगे निश्चय एक्य की होगी जय" [५०] की कामना करता है क्योंकि ऐसी स्थिति में ही" नव जीवन , नव कर्म, वचन, मन" [५१] सृजित हो सकेगा ।

युगवाणी में कवि की यह स्पष्ट धारणा दीख पड़ती है कि बिना परिवर्तन के समाज में नव मानवतावादी विचारधारा की सृष्टि नहीं हो सकती । इस नये समाज की सृष्टि के निमित्त कर्मशील हाथों की आवश्यकता है । इसलिए पंत की वैयक्तिक चेतना इस बात की कामना करती है कि -" जगजीवन में जो चिर महान् सौन्दर्यपूर्ण औ सत्यप्राण है उसका सह प्रेमी बने उसे शक्ति मिले और "मानव का परित्राण कर" भय, संशय,अंधभक्ति, भेदभाव और अंधकार [५२] को नष्ट कर एक बार फिर से वह समाज में नव जीवन का विहान ला सकें ।

समाज में चली आ रही रूढ़ियों से कवि क्षुब्ध है । उसकी धारणा है कि इन जर्जित रूढ़ियों के कारण ही समाज और सामाजिक व्यवस्था उन्नति

---

४३. चिदंबरा, पृ० ८६
४४. स्वर्णधूलि, पृ० १२
४५. स्वर्णधूलि, पृ० १३
४६. स्वर्णधूलि, पृ० ६०
४७. स्वर्णधूलि २पृ० २६
४८. स्वर्णधूलि, पृ० २६
४९. स्वर्णधूलि, पृ० १६
५०. स्वर्णधूलि, पृ० १८
५१. स्वर्णधूलि, पृ० २४
५२. युगपथ, पृ० २६

नहीं कर पाता । कदाचित इसलिए — " द्रुत भरो जगत के जीर्ण पत्र , हे स्त्रस्त-ध्वस्त हे शुष्कशीर्ण "[५३] कह कर विकृत [५४] व्यवस्था के ध्वंस होने की कामना करता है क्योंकि कवि का आत्मविश्वास है कि " जो देख चुके जीवन निशीथ, वे देखेंगे जीवन प्रभात । " [५५] वह समाज में दीन-हीन, पीड़ित, निर्बल [५६] को जीवन का सम्बल देना चाहता है । कवि काव्य भूमि में अपने को " उस जग जीवन का शिल्पी मानता है जिसमें जीवित वाणी का स्वर है । [५७] उसका ध्येय एक आदर्श समाज की सृष्टि है जिसमें — " मनुज प्रेम से ... रह सके मानव ईश्वर का प्रतीक हो । [५८] सिवा उसके उसे और कौन सा स्वर्ग धरा पर चाहिए । [५९]

कवि के अनुसार समाज का एक बहुत बड़ा भाग श्रमजीवी वर्ग है जो निर्माता श्रेणी द्वारा धन बल से शोषित है । पर दैन्य कष्ट कुंठित ... मूढ़ अशिक्षित होकर भी आधुनिक युग के — सभ्य शिक्षितों से भी वह बहुत कुछ शिक्षित है । कठोर श्रम के कारण गंदे गात-वसन उनके भले ही हों पर स्नेह साम्य सौहार्द्र पूर्ण तप से उसका मन पूर्ण रूप से पवित्र है । भूख प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति इस बात की कथा-कहती है कि जिसे पशु से भी मानव की कृति कहा जाता था उन्हीं हाथों से युग की संस्कृति का निर्माण हो रहा है । [६०]

लोक क्रान्ति का अग्रदूत, नव्य सभ्यता का उन्नायक शासक श्रमजीवी आज भले ही शासित, भय, अन्याय, घृणा से पालित होकर दिन बिता रहा है पर कवि का विश्वास है कि वह नवयुग की सृष्टि में सहायक है । [६१] पंत की काव्य चेतना ने यह स्वीकार किया है कि समाज का नव-निर्माण बिना श्रमजीवियों के जागरण के नहीं हो सकता । कदाचित इसीलिए वह संदेश देता है कि " जागो श्रमिकों, बनो सचेतन, भू के अधिकारी हैं श्रमजन । " [६२]

---

५३. युगपथ, पृ० ११
५४. युगपथ, पृ० २०
५५. युगपथ, पृ० १६
५६. युगपथ, पृ० ३०
५७. युगवाणी, पृ० १३
५८. युगवाणी, पृ० १५
५९. युगवाणी, पृ० १६
६०. चिदंबरा , पृ० ५२
६१. चिदंबरा , पृ० ५२
६२. चिदंबरा , पृ० ५३

कवि ने समाज के नव निर्माण में न केवल श्रमिक की महत्ता को स्वीकार किया है वरन् नारी वर्ग में भी एक नयी चेतना एवं जागृति प्रदर्शित की है। उसकी धारणा है कि समाज में नारी वर्ग को एक नयी दृष्टि मिली। वह नारी परंपरागत शब्द की अर्थगल संज्ञा को भुलाकर नरों के संग बैठ जन-जीवन के कामकाज में हाथ बटा रही है। श्रम से यौवन का स्वस्थ झलकता आतप सा तन लिए, कुल बधू सुलभ संरक्षण से वंचित होकर भी उसने स्वतंत्रता अर्जित की है।[६३]

पंत युगीन समाज से संतुष्ट नहीं हैं, कदाचित इसीलिए उन्होंने उसको ध्वंस कर नये समाज की श्रृष्टि का वैचारिक संकल्प रक्खा। उनके अनुसार " मैंने इस युग में अधिक महत्व भू--जीवन की उन्नति मंगल रचना को ही देना उचित समझा है, जिसमें व्यापक से व्यापक अर्थ में भगवत गुणों का आवरण एवं भगवत् वास्तविकता का साक्षात्कार संभव हो सकता है"[६४] क्योंकि आज के भू-व्यापी संघर्ष, विरोध, अनास्था, निराशा, विशाद तथा संहार की यही वास्तविकता है कि वह मानव समाज को नवीन मान्यताओं के क्षितिजों, नवीन जीवन बोध के धरातलों, तथा महत्तर सामंजस्य की भूमिकाओं की ओर अग्रसर करे।"[६५]

भारतीय समाज पर पड़ने वाले विदेशी प्रभाव और उनकी प्रतिक्रिया का भी पंत ने बड़ा स्पष्ट चित्रण किया है। कवि के अनुसार विदेशी प्रभाव से यद्यपि समाजगत मान्यताओं में बड़ा परिवर्तन आया, "प्राचीन जीर्ण मान्यताएं"[६६] नष्ट हुई और सामाजिक जीवन को नयी दिशा मिली। पर समाज में आर्थिक व्यवस्था का उथल-पुथल उसे उन्नति की ओर अग्रसर न कर सका। इसका कारण कदाचित शासक की शोषण योजना थी, जिसके कारण समाज का "श्रमजीवी वर्ग, मूल, अशिक्षित, दैन्य-कष्ट-कुण्ठित"[६७] रह गया। कृषक वर्ग " कर जर्जर ऋण-ग्रस्त "[६८] है। मध्य वर्ग आत्म वृद्ध, संकीर्ण हृदय, पाप-पुण्य संत्रस्त, धी दर्पी, अति विवेक से निर्बल हो गया है।[६९] उधर धनपति, जन के श्रमबल से पोषित, दुहरे जोंक से जग के सारे समाज का शोषण कर रहा है। उसके समक्ष नैतिकता के परिचय का कोई मूल्य नहीं। नारी उनके लिए शैय्या की क्रीड़ा-कंदुक है और

---

६३. ग्राम्या, पृ० ८४
६४. चिदंबरा, पृ० ३२
६५. चिदंबरा, पृ० ३३
६६. शिल्पी, पृ० ५५
६७. चिदंबरा, पृ० ५२
६८. चिदंबरा, पृ० ५१
६९. चिदंबरा, पृ० ५१

और अहमन्य, मूल, अर्थबल के व्यभिचारी इन धनपतियों से मानवता लज्जित हो रही है क्योंकि उनके दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित, कर्मों से समाज लांछित हो रहा है। [७०] भारत का ग्रामीण समाज भी पाश्चात्य भौतिक सभ्यता और उसकी स्वार्थ-परक नीति से शोषित हो रहा है। गांव के महाजनों के कारण त्रस्त किसान व्याज की कौड़ी-कौड़ी न दे पा सकने के कारण घर-द्वार भी खो बैठता है[७१] और समाज में मिथ्या मूल्य का चतुर्दिक प्रचार हो रहा है और गत् सत्य मानव के लिए घोर घृणा की वस्तु बनता जा रहा है। मिथ्या नैतिकता, मिथ्या आदर्श, जन-पीड़न, हित-शोषण के लिए उद्धत हैं। [७२] समाज में पाश्चात्य प्रभाव के कारण `सत्य विषमताएं हैं, प्रतिहिंसा है, अतृप्त पिपासा है, तृष्णा `[७३] शेष रह गयी है।

कवि की धारणा है कि महायुद्धों के प्रभाव में `रक्त से लथ-पथ जन मन` [७४] `दारुण मेघों की घटा छा रही है। समाज के प्रांगण पर भीषण विनाश की परछाइयां फूल रही हैं।[७५] `ह्रास की शक्तियां आत्मनाश के लिए तत्पर हैं` [७६] यही कारण है कि`कवि का मन `[७७] समाज की विभीषिका से आक्रान्त है।

`ज्योत्सना` के इंदु का कथन भी प्रकारान्तर से पंत की ही विचार-धारा का समर्थन करता है कि समाज से` मानवीय भावनाएं धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। प्रेम-विश्वास, सत्य-न्याय, सहयोग और समत्व, जो मनुष्य आत्मा के दैव भोजन हैं, एकदम दुर्लभ हो गये हैं। पशु बल, घृणा, द्वेष और अहंकार सर्वत्र आधिपत्य जमाए हैं। अंध-विश्वासों की और अंध-निराशा में चारों जाति-भेद, वर्णभेद, धर्म-भाषा-भेद, देशाभिमान, वंशाभिमान, दानवों की तरह.... साकार रूप धारण कर मानवता के जर्जर हृदय पर तांडव -नृत्य कर रहे हैं। विश्वास का विशाल आंगन, राष्ट्रवादों की व्योमचुंबी भित्तियों से अनेक संकीर्ण

---

७०. चिदंबरा, पृ० ५१
७१. चिदंबरा, पृ० ७१
७२. रजत शिखर, ६१
७३. रजत शिखर, ६१
७४. उत्तरा, ३३
७५. उत्तरा, ५
७६. उत्तरा, ५
७७. उत्तरा, ७

धाराओं में विभक्त हो गया है, जिनके शिखर पर दिन-रात विनाश के बादल धुंआ धार मंडरा रहे हैं। अर्थ और शक्ति के लोभ में पड़ कर, संसार की सभ्यता ने मनुष्य जाति के उन्मूलन के लिए संहार की इतनी अधिक सामग्री शायद ही कभी एकत्रित की होगी। [७८]

कवि ने विदेशी शासन से भारतीय समाज की स्वतंत्रता के लिए चल रहे तत्कालीन समाज में महात्मा गांधी के आन्दोलन का समर्थन किया है।[७९] साथ ही स्वतंत्रता के अनन्तर भावी समाज को स्वर्णयुग का द्योतक बताया है।[८०] पर स्वतंत्रता के अनन्तर उसका स्वप्न पूरा न हो सका और उसने इस बात का भी स्पष्टीकरण किया कि ग्राम समाज को जीवन देने की योजना अब तक पूरी नहीं हो सकी है।[८१]

यदि पूरे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो कहा जा सकता है कि उसके अनुसार सभ्यताओं के संघर्ष से ही हमारे नवीन युग का जन्म हुआ। पाश्चात्य-जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्म-वाद के अस्थि-पंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रूप रंग भर उसने नवीन युग की सापेक्षत: परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया है।"[८२] इस सत्य से भी भारतीय समाज का प्रत्येक सदस्य परिचित है कि हृदय की शिरा में ही हमारी विश्व-संस्कृति के मानव-प्रेम एवं समस्त जीव-कल्याण के मूल अंतर्हित हैं। [८३]

पंत के दृष्टिकोण से भारतीय समाज की आदर्श रूपरेखा इस बात का संकेत करती है कि आधुनिक भारतीय समाज में " मानव प्रेम के नवीन प्रकाश में राष्ट्रीयता, अन्तराष्ट्रीयता जाति और धर्म के भूत-प्रेम सदैव के लिए तिरोहित हो गये। इस समय देश जाति के बन्धनों से मुक्त मनुष्य केवल मनुष्य है, स्त्री-पुरुष का संबंध भी अब पापों की बेड़ी या मनुष्य जीवन का बन्धन नहीं रहा। वह एक

---

७८. ज्योत्स्ना २ पृ० २६

७९. लोकायतन पृ० ५४, ८४

८०. लोकायतन, पृ० ५६

८१. लोकायतन, पृ० १६२

८२. ज्योत्स्ना, पृ० ७८

८३. ज्योत्स्ना, पृ० ८७

स्वाभाविक आत्मसमर्पण और जीवन की मुक्ति का साधन बन गया है।[८४] यह पौवात्य-पाश्चात्य विचारधारा के रूप में अद्भुत भारतीय समाज का सर्वश्रेष्ठ रूप है। इस समाज के निर्माण में कवि अतीत की ओर भी मुखापेक्षी है। उसके अनुसार प्राचीन संस्कृतियों के बुझते हुए अंगारों से हमारे नवीन प्रकाश की लौ उठी है, उन्हें हमें सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए, नहीं तो भारतीय समाज के इस अखंड पूर्ण जीवन के अलंघनीय सत्य को नहीं समझ सकेंगे।[८५] अत: कवि नव समाज के निर्माण का वैचारिक संकल्प रखता है। वह अतीत के मूल्यों की सहायता से वर्तमान भारतीय समाज की धारणा के अनुकूल समाज में नव समाजवादी धारणा की स्थापना करना चाहता है। जिसमें सभी सुख-सुविधा सम्पन्न रूढ़िमुक्त नव मानवता वादी स्तर तक जीवन बिता सके। यह कवि की वैचारिक उपलब्धि कही जायेगी।

पंत : निष्कर्ष

१. समाज की स्थिति गिरी हुई है।
२. कृषक की स्थिति अच्छी नहीं है। यह तभी सुधर सकती है जब सामूहिक खेती द्वारा कायाकल्प होगा और उन्हें अन्य दूसरीसुविधाएं उपलब्ध की जायेंगी।
३. शहर से ग्राम्य की स्थिति अधिक दयनीय है। वहां मानव शिशु पशु-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं।
४. स्त्री, पुरुष के समकक्ष हैं।
५. नये समाज के निर्माण के निमित्त विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष के लिए आह्वान किया गया है। कवि का दृढ़ विश्वास है कि समाज में परिवर्तन होगा।
६. नव-निर्माण बिना श्रमजीवियों के नहीं हो सकता क्योंकि श्रमिक ही भू के अधिकारी हैं।
७. पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में समाज में प्रतिहिंसा, तृष्णा एवं नाना जटिलताएं बढ़ती जा रही हैं।

---

८४. ज्योत्सना, पृ० ७३

८५. ज्योत्सना, पृ० ७१

८. पराधीनता के बंधन खुल गए हैं। पर देश की स्वतंत्रता के बाद भी समाज से अपेक्षित उन्नति पूरी नहीं हो सकी है।

९. भावी आदर्श समाज हर संकीर्णताओं से मुक्त होगा। वह नव-मानवतावादी मूल्यों पर स्थापित होगा।

निराला

निराला काव्य पर यदि एक सम्यक दृष्टि डाली जाय तो कहा जा सकता है कि वह सामाजिक विषमताओं के कट्टर विरोधी थे और सम-सामयिक समाज से संतुष्ट नहीं थे। उपेक्षित और दलित वर्ग के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। समाज में व्याप्त अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता को तोड़ने का उन्होंने वैचारिक संकल्प रक्खा क्योंकि इसके बिना समाज में गंगा-जल-धारा की प्राप्ति संभव नहीं[८६]। कवि की धारणा है कि समाज दीनता की स्थिति में है।[८७] यह 'दीन' पूरे समाज में मध्य और निम्न वर्ग का प्रतीक है। उत्पीड़न की नग्न निरंकुश सदा की जाने वाली क्रीड़ा से उसका हृदय भग्न हो गया है। पर 'अन्तिम आशा की प्रतीक्षा में स्पन्दित हम-सब के प्राणों में अपने उर की तप्त व्यथाएं, क्षीण कण्ठ की करुण कथाएं - इन सबका मूक होकर सहा जाना और अन्तर की स्फुट भाषा में कहा जाना कि यहां - उत्पीड़न का राज्य है, केवल दुःख ही दुःख उठाना है, क्रूर यहां शूर कहलाते हैं, समाज में केवल स्वार्थ ही स्वार्थ है, स्वार्थ की ही गहरी निद्रा में जगत का जागरण, अन्त, विराम और मरण होता है। यहां पारस्परिक संबंधों में घात-प्रतिघात, उत्पात यही दिन और रात का जग-जीवन है। यही मेरा इनका-उनका सबका स्पन्दन और हास्य से मिला हुआ क्रन्दन है।[८८] यह कवि की सामाजिक विचार-धारा का एक पक्ष विश्लेषित करता है।

रानी और कानी के माध्यम से समाज में विकलांग नारी की समस्या उठायी गयी है और उसकी दयनीयता प्रदर्शित करते हुए यह धारणा स्पष्ट की

---

८६. अनामिका, पृ० १३७

८७. अपरा, पृ० १२६

८८. अपरा, पृ० १२६

की गयी है कि विकलांग नारी का जीवन समाज के लिए एक बोझ की तरह है। पर कवि को ऐसे लोगों से पर्याप्त सहानुभूति है इसमें संदेह नहीं किया जा सकता[८६] समाज में इस तरह के लोग हैं जो मात्र दूसरों को धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। कवि ने ऐसे लोगों की मनोवृत्ति प्रदर्शित करने के लिए `मास्को डायेलाग्स ` के श्रीयुत गिडवानी जी को एक टाईप के रूप में चित्रित किया है। वे अपने को सोशलिस्ट कहते हैं। देश के पिछड़ेपन की बात करते हुए अपने को प्रबुद्ध नेता साबित करना चाहते हैं। साथ ही लोगों पर झूठा एहसान जताकर मनमाना रूपया ऐंठने की चाल सोचते हैं। साहित्य सेवा की आड़ में पूंजी जुटाने की बात सोचते हैं। पर स्वयं साहित्य की गतिविधि से नाममात्र से भी परिचित नहीं हैं। सीधी भाषा नहीं लिखने आती और दूसरों द्वारा संशोधित गंदा साहित्य छाप, साहित्य को पैसा ऐंठने का एक व्यवसाय बनाना चाहते हैं।[६०]

ग्राम समाज की स्थिति भी बड़ी दयनीय है। कवि के अनुसार गांव में अपढ़ जनता को सताया जाता है। उनसे पुलिस विभाग के लोग नाजायज फायदा उठाते हैं। सीधे-सादे ग्रामीणों पर अत्याचार कर उन्हें आक्रान्त करते हैं। इसे उसने `कुत्ता भौंकने लगा ` में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। कवि की विचारधारा में इन सताये ग्रामीणों के प्रति पर्याप्त सहानुभूति देखने को मिलती है। डिप्टी साहब के दौरे पर आने पर जमींदार के सिपाही जब बेगार वसूल करते हैं तो बात बढ़ने पर किसानों से झगड़ा हो जाता है और किसान बेगार नहीं देते तो थानेदार के सिपाही दाम दे-देकर माल ले जाते हैं।[६१] यहां कवि ने कदाचित यह दिखाया है कि समाज में अत्याचार तभी तक होता है जब तक उसे सहन किया जाता है। कवि ने वैचारिक उपलब्धि के रूप में तत्कालीन समाज पर होने वाले अत्याचार और उस अत्याचार के सहनशीलता के अनन्तर विद्रोह तथा उसका समाधानात्मक रूप भी कविताओं में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। अत्याचार का प्रतिकार और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष की निराला की वैचारिक उपलब्धि उनके पात्रों में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती हैं। उनके अनुसार अब जमींदार के सिपाहियों का गूला दरवाजे पर गढ़ा कर तो

---

८६. नए पत्ते, पृ० ६   ६०. नये पत्ते, पृ० ६८   ६१. नये पत्ते, पृ० ८७

जाता है। [६२] पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। किसानों में साहस और आत्म-विश्वास के कारण अब झींगुर जैसा व्यक्ति भी जमींदार के अत्याचार के विरुद्ध सत्य कह सकता है कि " जमींदार ने गोली चलवायी है"। [६३]

कवि के अनुसार भिक्षुक वर्ग समाज में अभिशाप की तरह है। उसने इस वर्ग के प्रति अपनी पूरी सहानुभूति व्यक्त की है। साथ ही उसकी स्थिति पर क्षोभ प्रकट किया है। [६४] स्त्री समाज पर दृष्टिपात करते हुए कवि कहता है कि उसे पति की तरह अधिकार नहीं प्राप्त है। वह चिरकालिक बंधनों में सीमित मात्र होने से अपने को संतोष रखती हुई गृह तक ही सीमित है। उसे अधिकार प्राप्त करने की भी अधीरता नहीं। उसे कोई चाह नहीं, विषय-वासना की उसे परवाह नहीं क्योंकि वे उसके लिए तुच्छ हैं। उसकी साधना का उत्कर्ष केवल पति तक ही सीमित है। [६५] "किसान की नयी बहू की आँखें" [६६] में भी कुछ ऐसी ही विवशता दीख पड़ती है। कदाचित आर्थिक स्थिति की दयनीयता के कारण वह कभी अपने सपने साकार नहीं कर सकी। भिक्षुक की तरह किसान की बहू भी समाज के एक वर्ग की दयनीयता का प्रतिनिधित्व करती है।

निराला ने समाज की न्याय व्यवस्था के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त किये। उसके अनुसार सामान्य व्यक्तियों को न्याय प्राप्त करने में परेशानी उठानी पड़ती है जिसके जिम्मेदार न्याय व्यवस्था से सम्बन्धित कर्मचारी हैं। वे मतलब के साथ होते हैं। जहाँ कहीं मौका देखते हैं लूटने से बाज नहीं आते हैं। [६७]

निराला के साहित्य में उनकी सामाजिक विचार धारा के साथ ही साथ उनकी राजनीतिक चेतना का रूप भी स्पष्ट मिलता है। उनके अनुसार तत्कालीन समाज में विदेशी शासन के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिक्रिया दीख पड़ती है। समाज जागृत हो रहा था। कांग्रेसी नेता गांव-गांव घूमकर स्वराज्य की चेतना भर रहे थे। [६८] पर कवि ने दो प्रकार के नेताओं का उल्लेख किया है। एक तो वे जो झींगुर और चतुरी चमार की तरह मध्यम वर्ग के हैं। गांव में रहते हैं। दूसरे

---

६२. नये पत्ते, पृ० ८४
६३. नये पत्ते, पृ० ५७
६४. अपरा, पृ० ६६
६५. परिमल, पृ० १६१
६६. अनामिका, पृ० १४६
६७. नये पत्ते, पृ० ११
६८. नये पत्ते, पृ० ५६

विदेशों में पढ़े हुए धनी मानी नेता जिनका जीवन शहरों में ही बीता है। वे राजनीति को उपेक्षा के रूप में देखते हैं और देश के प्रति सच्चा अनुराग नहीं रखते। पहले वर्ग के नेताओं में सच्चाई है, आत्मबल है। वे अत्याचार के विरुद्ध दो टूक बात करते हैं। जब कि दूसरे वर्ग के नेताओं में मात्र दिखावा और वाह्याडम्बर है। वे जमींदार के वाहन, परदेश में कोठियों के नौकर और महाजनों के दबैल हैं। स्वत्व खोकर विदेशी माल बेंचते हैं, भाषण देते हैं और घूस तथा डंडे से बचने के लिए जनता के बीच जाकर देश प्रेम की बातें करते हैं। नेता बनते हैं। इनके द्वारा मुल्क में अफीम, भांग, गांजा, चरस, चंडू, चाय तथा देशी और विदेशी शराब बिकती है।[९९] निराला की धारणा है कि जब तक देश की बागडोर ऐसे नेताओं के हाथ में रहेगी समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

अनामिका, बेला और कुकुरमुत्ता की कविताएं धनी वर्ग के प्रति निराला की आस्था को नहीं व्यक्त करतीं। कदाचित् इसका कारण यह है कि कवि की दृष्टि में वे शोषणकर्ता हैं। समाज की दयनीय स्थिति भी धनी वर्ग को अपनी ओर प्रभावित नहीं कर पातीं। एक ओर लोग भूखों मरते हैं, दूसरी ओर उनकी शान-शौकत में कोई फर्क नहीं पड़ता। नवाब फारस से अपनी बाड़ी के लिए गुलाब मंगवाते हैं। घर को ही गजनी का मनोहर बाग बनवाते हैं।[१००] राजपुत्रों के समक्ष विद्याधर अनुचर की तरह लगे रहते हैं। पत्रिकाओं में उनके जीवन चरित्र, अग्रलेख में विशाल चित्र सहित छपते हैं। मात्र लक्षपति का कुमार ही उच्चशिक्षा प्राप्त करता है। धनाढ्य लोग देश की नीति पर एकाधिकार रखते हैं। जनता उन्हें ही राष्ट्रपति चुनती है। साहित्य सम्मेलन भी ऐसे ही लोगों को सभापति पद देता है। विदेश में उनका लड़का लार्ड के साहबों के साथ दावतें दे विहार किया करता है। हजारों रुपए माहवारी खर्च करता है।[१०१] कवि ऐसे समाज से संतुष्ट नहीं है क्योंकि उसके रूढ़िग्रस्त रूप ने अपने विकास की संभावना खो दी है कदाचित यही कारण है कि वह समाज में प्रवैगिक परिवर्तन का वैचारिक संकल्प रखता है और "जागो फिर एक बार"[१०२] की कामना द्वारा समाज में एक नयी चेतना भरना चाहता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि - आज अमीरों की हवेली

---

९९. नये पत्ते, पृ० ९९

१००. नये पत्ते, पृ० १०१

१०१. कुकुरमुत्ता, पृ० १

१०२. अपरा, पृ० १६

किसानों की पाठशाला होगी और धोबी, पासी, चमार, तेली जैसे दलित लोग ही सामाजिक व्यवस्था का नया रूप देने के लिए अंधेरे का ताला खोलेंगे।"[१०३]

नव समाज की रचना में कवि ने नारी को भी सृजन में तत्पर दिखाया है। वह भावी समाज की अट्टालिका के ईंटों का निर्माण कर रही है। झुलसती धूप में पसीने से शलथ होकर भी अनवरत कर्म रत है।[१०४]

कवि समाज के प्रति आस्थावान् है। उसे समाज के सदस्यों से पर्याप्त सहानुभूति है। वह प्रार्थना-परक गीतों में भी " प्रभु, दलित जन पर करो करुणा"[१०५] की याचना करता है। नहीं तो " नाचो हे रुद्र ताल, आंचो जग ऋजु अराल। भरे जीव जीर्ण-शीर्ण। उद्भव हो नव प्रकीर्ण करने को पुन: तीर्ण हो गहरे अन्तराल "[१०६] — की कामना करता है जिससे गर्हित समाज का विनाश हो और प्रलय के अनन्तर — " फिर नूतन तन लहरें, कुकुल गन्ध-वन छहरें, उर तरु-तरु का छहरें, नव मन सायं-सकाल"[१०७] — द्वारा नव समाज की सृष्टि हो सके।

निराला ने अपने गद्य साहित्य में समाज पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभाव का भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वर्णन किया है। `सुकुल की बीवी` में — see the hunter.. has caught the Hindoo's fair head in a noose of hair (शिकारी ने हिन्दुओं के सर को बालों के फन्दे में फांस लिया है।)[१०८] से भी इसी मनोवृत्ति की ओर प्रकाश पड़ता है। अंग्रेजों के प्रभाव में विदेश जाकर उच्च-शिक्षा प्राप्त करना समाज में आदर की वस्तु थी। पर विदेश जाकर वे ही शिक्षा प्राप्त करते थे जो धनवान् थे क्योंकि सहस्रों के मासिक व्यय[१०९] सामान्य जन के लिए सुलभ नहीं था। निरुपमा का `कुमार` भी लंदन से डी-लिट् करके आता है पर अपनी साधनहीनता के कारण बेरोजगारी का शिकार होता है। यह समाज की विडम्बना ही कही जायगी। दूसरी ओर तत्कालीन समाज में विदेशियों से शिक्षा ग्रहण करना सम्मान की वस्तु होने के कारण ही सर्वेश्वरी ने कैथरिन

---

१०३. बेला, पृ० ७०
१०४. अपरा, पृ० २०,२१
१०५. अपरा, पृ० १८
१०६. आराधना, पृ० ५५
१०७. आराधना, पृ० ५५
१०८. देवी, पृ० ४८
१०९. अपरा, पृ० ६३

को कनक के अभिभावक के तौर पर कुछ दिनों के लिए नियुक्त कर दिया था। कैथरीन भी पश्चिमी आर्ट, नृत्य, गीत और अभिनय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कनक को योरप जाने की सिफारिश करती है।[११०] उपर्युक्त अंश उनकी दृष्टि में तत्कालीन सामाजिक मनोवृत्ति को व्यक्त करता है क्योंकि उस समय देश में उच्च-शिक्षा उपलब्ध नहीं थी। समाज शिक्षा के लिए शासित सरकार और उसकी नीति का ही मुखापेक्षी था। मानसिक रूप से गुलाम बनाने के लिए विदेशियों ने देश की उच्च शिक्षा प्रणाली एकदम नष्ट-सी कर दी थी। उस समय स्थिति यह थी कि — इटली, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैण्ड और अमेरिका आदि देशों से शिक्षोत्कीर्ण पदवियों से हीरे का हार पहनकर स्वदेश लौटे। बैरिस्टर हुए। दो करोड़ रुपया अर्जित किया अंत में दस लाख देश को दान कर कोने-कोने तक[१११] नाम की हवस ही समाज की मनोवृत्ति बन गयी थी। " जमींदार, पुलिस, कचेहरी, समाज में सभी जगह"[११२] मनुष्य उपकार के गुणों से हीन दीख पड़ता था। समाज विदेशियों की नकल कर रहा था। गुमराह भारतीय पदाधिकारी ही भारतीय समाज को पीस रहे थे।[११३]

कवि के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से भारतीय समाज को विदेशी सरकार ने पेटवाली जो मार दी है उससे वे अभी सदियों तक पेट पकड़े रहेंगे।[१०४] इसका कारण यह था कि स्वयं उन्हीं के शब्दों में आजादी के पूर्व " देश में विदेशी व्यापारियों के कारण अपना व्यवसाय नहीं रह गया। हम उन्हीं के दिए कपड़े से अपनी लाज ढकते हैं, उन्हीं के आइने में मुंह देखते हैं, उन्हीं के सेण्ट, पाउडर, लैवेण्डर, क्रीम लगाते हैं, उन्ही के जूते पहनते हैं, उनकी ही दियासलाई से आग जलाते हैं। ब्राह्मण की आन गई, क्षत्रिय का वीर्य गया, वैश्य का व्यापार चौपट हुआ।"[११५] तात्पर्य यह है कि आजादी के पूर्व विदेशी नीति के कारण समाज गरीब होता जाता था। देश वासियों के उद्योग छिटपुट थे परन्तु जो बड़े उद्योग थे उसका "अधिकांश मुनाफा विदेशियों के हाथ जाता था।"[११६] देश के थोड़े उद्योगपति अमीर होते जा रहे थे और शेष श्रमिक वर्ग गरीबी के प्रभाव में पिसते जा रहे थे।

---

११०. अप्सरा, पृ० १०८
१११. अलका, पृ० ४६
११२. अलका, पृ० ४७
११३. चोटी की पकड़, पृ० १५
११४. अलका, पृ० १७२
११५. चोटी की पकड़, पृ० १६७
११६. चोटी की पकड़, पृ० ४२

समाज में भाषा की दृष्टि से भी वही उच्चारण, वही अंग्रेजियत[११७] दीख पड़ती थी। स्वदेशीपन[११८] की अवहेलना हो रही थी । सुकुल जैसा भारतीय सामाजिक संस्कारों से प्रभावित व्यक्ति भी एम०ए० के अनन्तर क्रिश्चियन[११६] होने के अलावा दूसरा अस्तित्व ही नहीं रखता और उसके सामान्य व्यवहार में भी Good morning poet of vers libre [१२०] तथा अन्यत्र House of Commons[१२१] और Religion of man [१२२] जैसे अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार कदाचित मानसिक दासता का ही परिचायक है । निराला ने समाज में विदेशी सत्ता से चल रहे स्वतंत्रता संघर्ष तथा समाज की जागरूकता पर भी प्रकाश डाला ।[१२३] इस प्रकार उन्होंने नए समाज के निर्माण और समाज के जर्जरित रूप पर चोट कर उसमें एक सुधारात्मक दृष्टिकोण भी व्यक्त किया जो कि निराला की वैचारिक उपलब्धि कही जा सकती है ।

निराला : निष्कर्ष

१. सामाजिक विषमताओं का कट्टर विरोध मिलता है ।
२. दलित, पीड़ित और विकलांग व्यक्तियों से पूरी सहानुभूति व्यक्त की गयी है ।
३. कतिपय धूर्त साहित्य को मात्र पैसा ऐंठने का साधन बनाना चाहते हैं ।
४. जमींदार और पुलिस कर्मचारी ग्रामीण जनता पर अत्याचार करते हैं ।
५. नारी को पुरुष की तरह सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे और कालान्तर में उन्हें नये समाज के निर्माण में भी योगदान देते हुए चित्रित किया गया है ।
६. ग्रामीणों में अत्याचार के प्रति विद्रोह और शासन का डट कर विरोध उनके नैतिक साहस का परिचायक है ।
७. भिक्षुक वर्ग समाज के लिए अभिशाप है ।

---

११७. चोटी की पकड़, पृ० ४१
११८. चोटी की पकड़, पृ०६६
११६. देवी, पृ०५६
१२०. देवी, पृ० ५०
१२१. चतुरी चमार, पृ०६३
१२२. ,, ,, ६३
१२३. ,, ,, ६४

८. समाज में दो प्रकार के नेता हैं -- पहले भारतीय संस्कृति में पले देश प्रेमी। दूसरे विदेशी संस्कृति में पले नेतापन को ही पेशा मानने वाले स्वार्थी लोग। स्पष्ट धारणा व्यक्त की गई है कि जब तक ये स्वार्थी नेता रहेंगे तब तक देश का कल्याण नहीं हो सकता।

९. पुरानी रूढ़ियों से जर्जरित सामाजिक व्यवस्था में सुधारकर नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का वैचारिक संकल्प मिलता है।

१०. समाज विदेशी प्रभाव से आक्रान्त है पर सामाजिक चेतना से यह प्रभाव क्रमश: घटता जा रहा है।

११. कवि ईश्वर से भी प्रार्थना करता है कि वह समाज की बुराइयों को दूर कर दे।

महादेवी

महादेवी केकाव्य साहित्य को विश्लेषित करें तो उनकी समाज संबंधी धारणा स्पष्ट हो जाती है। उनके स्वर में तत्कालीन समाज के प्रति असंतोष की झलक दीख पड़ती है। यह असंतोष समाज की अव्यवस्था के प्रति है। `प्यासे सूखे अधर,`जर्जर जीवन,`मुरझायी हुई पलकों से झरते आंसू कण`, `दु:ख की घूटें पीती` ठंडी सांसों से युक्त जिंदगी और` तरसे जीवन शुक` की स्थिति अविकसित एवं त्रस्त समाज की स्थिति का द्योतन करता है।[१२४] कदाचित यही संकेत समाज की स्थिति से अपरिचित`बेसुध रंग रलियां` [१२५] मनाने वालोंके प्रति भी किया गया है। महादेवी समाज में ऊंच-नीच, वर्ग भेद या किसी भी विभाजन का विरोध करते हुए `सब आंखों के आंसू उजले, सबके नयनों में सत्य पला`[१२६] का ही समर्थन करती हैं।

काव्य के अतिरिक्त गद्य साहित्य से भी उनकी समाज विषयक धारणा पर प्रकाश पड़ता है। उनके अनुसार समाज में आजीविका के लिए छोटी

---

१२४. यामा, ९९

१२५. यामा, १५०

१२६. दीपशिखा, पृ० २७

से छोटी नौकरी करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति का जैसे कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं रह जाता। इतना होने पर भी व्यक्ति अपनी आय से पत्नी तक को संतुष्ट नहीं कर पाता।[१२७] समाज में "आभिजात्य वर्ग का गर्व"[१२८] और निम्नवर्ग की दयनीय स्थिति एक ऐसी विभाजक रेखा का काम करती है जिसके कारण नाना विषमताएं जन्म लेती हैं। महादेवी इससे असंतुष्ट दीख पड़ती हैं। अंधा अलोपी[१२९] बदलू कुम्हार[१३०] और लछमण की गरीबी[१३१] समाज की आर्थिक दयनीयता को प्रकट करती है। समाज में विधवा कुलवधू पर तरह तरह के अत्याचार किये जाते हैं।[१३२] पुरुष पत्नी रख कर दूसरी शादी करता है और पत्नी अपनी जिन्दगी पुरुष के हाथों में समर्पित कर देने के बाद भी किसी समानाधिकार की मांग नहीं कर सकती। यही बात वृद्ध विवाह के संबंध में भी कही जा सकती है।[१३३] वस्तुत: उपर्युक्त दोनों ही बातें सामाजिक अभिशाप की द्योतक हैं। ग

ग्राम समाज में शिक्षा की समस्या एक प्रश्न चिह्न की तरह है। इसके लिए जो कुछ भी हुआ वह अपर्याप्त-सा है।[१३४] जहां तक समाज पर विदेशी संस्कृति के प्रभाव का प्रश्न है महादेवी के अनुसार "शताब्दियों से विदेशी संस्कृतियों से प्रभावित होने के पर भी भारतीय समाज में कुछ ऐसे तत्व रह गए हैं जो भारतीय समाज के मूलभूत तत्वों की सुरक्षा में प्रयत्नशील हैं चाहे वह "सत्यं ब्रूयात को सिद्धान्त रूप में मान कर"[१३५] या "एक निर्दोष के प्राण बचाने वाला असत्य, उसकी हिंसा का कारण बनने वाले सत्य[१३६] की श्रेष्ठता की बात क्यों न हो। उनके अनुसार भारतीय समाज में एक क्रूर स्वामी की आज्ञा का पालन करने

---

१२७. अतीत के चलचित्र, पृ० ७
१२८. अतीत के चलचित्र, पृ० ८६
१२९. अतीत के चलचित्र, ६०
१३०. अतीत के चलचित्र, पृ० १०४
१३१. अतीत के चलचित्र, पृ० १३०
१३२. अतीत के चलचित्र, पृ० १६
१३३. अतीत के चलचित्र, पृ० ५४
१३४. अतीत के चलचित्र, पृ० ६७
१३५. शृंखला की कड़ियां, पृ० १४५
१३६. शृंखला की कड़ियां, पृ० १४५

वाले सेवक से उसका विरोध करने वाला अधिक स्वामिभक्त कहलायेगा और एक दुर्बल पर अन्याय करने वाले अत्याचारी को क्षमा कर देने वाले क्रोधाजिल से उसे दण्ड देने वाला संसार में अधिक उपकार कर सकेगा।"[१३७] म

महादेवी : निष्कर्ष

१. समाज के नैतिक मूल्यों में निष्ठा व्यक्त की गयी है।
२. समाज की आर्थिक स्थिति पर असंतोष व्यक्त किया गया है।
३. विषमताओं में पिसते लोगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी है।
४. समाज सुधार में विश्वास दीख पड़ता है। साथ ही इस पतनोन्मुख अवस्था में भी बेसुध रंग-रलियां मनाने वाले शोषक वर्ग की भर्त्सना की गयी है।
५. समाज में स्त्रियों को पुरुषों-सा अधिकार नहीं प्राप्त है। महादेवी ने समानाधिकार की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है।
६. ग्राम शिक्षा पर बल दिया है।

रामकुमार

रामकुमार वर्मा की कविताओं से भी उनकी समाज विषयक धारणा स्पष्ट हो जाती है। कदाचित् "भाग्य-सी बैठी अंधेरी रात"[१३८] "सुख न है संसार में वह है दु:खों की एक विस्मृति"[१३९] और "जागरण की ज्योति भर दो नींद के संसार में तुम"[१४०] सामाजिक धारणा और साथ ही "मैं जीवन में जाग गया"[१४१] सामाजिक चेतना की ओर संकेत करता है। "मैंने तो ....केवल

---

१३७. शृंखला की कड़ियां, १४५
१३८. आधुनिक कवि रामकुमार वर्मा, पृ० २२
१३९. आधुनिक कवि रामकुमार वर्मा, पृ० १०
१४०. आधुनिक कवि राम०, पृ०६
१४१. ,, ,, पृ० ५६

पृथ्वी पर रोते देखा है ।[१४२] देश की पराधीनता और तत्कालीन समाज की विडं-बनाओं की ओर इंगित करता है । कवि समाज में व्याप्त घृणा, वेदना, भीषण भय और पीड़ा के संघर्ष का अन्त चाहता है ।[१४३] तभी इस मलिन समाज का सुधार संभव है ।[१४४]

पराधीनता की लम्बी अवधि के अनन्तर कवि ने देश की स्वतंत्रता पर प्रसन्नता व्यक्त की क्योंकि समाज शोषकों की नीति से मुक्त हो गया ।[१४५] अब समाज उन्नति कर सकेगा क्योंकि " जब तक समाज व्यवस्थित नहीं होता तब तक किसी विचार या सिद्धान्त"[१४६] का प्रचार और उसकी उन्नति संभव नहीं । देश की स्वतंत्रता के अनन्तर कवि के दृष्टिकोण से सामाजिक व्यवस्था में सुधार अपेक्षित है ।

रामकुमार वर्मा की समाज विषयक धारणा उनके एकांकी साहित्य में अधिक उभर सकी है । उनके अनुसार समाज की दयनीय परिस्थिति में भी ऐसे व्यक्ति हैं जो कि समाज सुधार और न्याय व्यवस्था में पूर्ण विश्वास रखते हैं, साथ ही समाज को न्याय दिलाने के लिए प्रयत्नशील है ।[१४७] वे " पृथ्वी का स्वर्ग "[१४८] की कल्पना को साकार करना चाहते हैं । " प्रेम की आँखें " में पात्र-गत सहानुभूति के कारण परोक्ष रूप से डा० वर्मा की विचारधारा पर ही प्रकाश पड़ता है कि " आधुनिक सभ्यता जो नगरों में फैली है, भौतिक है जिसमें जीवन का अन्त:करण दबा कर इन्द्रियों को उभाड़ दिया है और इन्द्रियों ने उसकी शरीरिक इच्छाओं और वासनाओं में पंख लगा दिये हैं ।"[१४९]

समाज में स्त्रियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता । पढ़ी लिखी लड़कियां भी सम्मानपूर्वक जिन्दगी नहीं बिता सकतीं । उनकी नौकरी

---

१४२. चित्ररेखा, पृ० १८
१४३. चित्ररेखा, पृ० २९
१४४. चित्ररेखा, पृ० ३०
१४५. चित्र आकाशगंगा, पृ० ६०
१४६. अनुशीलन, पृ० ८७
१४७. मेरे सर्वश्रेष्ठ एकांकी, पृ० १५०
१४८. रिमझिम, २६
१४९. रिमझिम, पृ० १०३

की समस्या भी जटिलता धारण करती जा रही है।[१५०] साथ ही पुरुष भी शोषणकर्ताओं के बीच मात्र पच्चीस रुपये पर जिन्दगी गुजर-बसर करने के लिए विवश है।[१५१]

इस प्रकार रामकुमार वर्मा भी समाज से सन्तुष्ट नहीं दीख पड़ते। उन्होंने समाज में विषमताओं को दूर कर मानवीय समवेदनाओं को उभाड़ते हुए समाज में आदर्श सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का समर्थन किया। देश की स्वतन्त्रता पर उन्होंने प्रसन्नता भी व्यक्त की कि अब समाज उन्नति कर सकेगा क्योंकि शोषण का अन्त हो गया। पर उन्होंने कालान्तर में भी समाज की स्थिति पर संतोष नहीं व्यक्त किया। कदाचित उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता के अनन्तर भी आदर्श समाज की व्यवस्था की उपलब्धि नहीं हो सकी है, ऐसी धारणा है। पर उनके साहित्य में अनास्था का स्वर नहीं आया है न ही वे समाज के विघटन की बात करते हैं। वे मात्र समाज सुधार के पक्षपाती हैं। साथ ही उन्होंने पृथ्वी पर स्वर्ग की कल्पना में विषमता रहित सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की और मानवीय प्रवृत्तियों के विकास पर बल दिया।

रामकुमार : निष्कर्ष

१. विषम परिस्थितियों से समाज त्रसित है। कवि इन त्रासों से मुक्ति चाहता है। तभी समाज की उन्नति संभव हो सकेगी।

२. समाज में भौतिकता बढ़ती जा रही है और मानवीय प्रवृत्तियां घटती जा रही हैं।

३. समाज में सम्मानपूर्वक जीवन-यापन की सबको सुविधा मिलनी चाहिए

४. आर्थिक व्यवस्था में सुधार के प्रति आस्था दीख पड़ती है।

५. समाज सुधार में विश्वास दीख पड़ता है। यही कारण है कि वह समाज सुधार और न्याय व्यवस्था के माध्यम से पृथ्वी पर स्वर्ग की कल्पना का वैचारिक संकल्प रखता है।

---

१५०. मयूर-पंख, २६८

१५१. मयूरपंख, पृ० ३८६

समग्र निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के तत्कालीन छायावादी कवियों की दृष्टि में समाज में परम्परागत रूढ़ियाँ पनपकर विकासशील समाज के निर्माण में बाधा उपस्थित कर रही थीं। सामान्य लोगों के बीच वास्तविक समस्याओं को हल करने के बजाय स्थिति को झुठलाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। समाज पददलित और दुर्दशाग्रस्त था और धर्म,जाति, वर्ग एवं अन्य नाना संकीर्ण परिधियों में विभक्त होता जा रहा था। दासता की मनोवृत्ति के कारण सामाजिक चेतना कुंठाग्रस्त हो गयी थी। मनुष्य मात्र आहार, मैथुन और निद्रा की ही स्थिति में संतुष्ट था। अन्य जीवन के लक्ष्य उसके लिए उपेक्षित थे। वह अपनी जिम्मेदारी परिवार तक ही सीमित समझता था यही कारण है कि वह पत्नी प्रिय, यश कामी, व्यक्तित्व प्रसारक और दूसरों के हित की ओर से पूर्ण रूप से उदासीन दीख पड़ता है। उसे सामाजिक स्वाधीन चेतना और अपनी गिरी स्थिति पर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं महसूस होती थी। अथवा उसमें शक्ति ही न थी कि वह अपनी स्थिति का विश्लेषण कर सके।

छायावादी कवियों ने शहर की तरह ग्राम समाज की स्थिति पर भी अपने विचार व्यक्त किये। उनके अनुसार नगर जीवन की तरह ग्राम समाज भी कम त्रसित नहीं दीख पड़ता। जमींदार बेगार लेते हैं। सरकारी कर्मचारी अपने रौष से आक्रान्त कर मुफ्त वस्तुएं प्राप्त करना चाहते हैं। किसानों को डरा धमका कर उन्हें हर तरह से प्रताड़ित कर चूसने का प्रयत्न करते थे। उनको इससे बचने के लिए दूसरा रास्ता ही नहीं दीख पड़ता। अपनी गरीबी में कर्ज के कारण सूद व्याज के दलदल में वे गले तक निमग्न हैं। शिक्षा का प्रचार न होने से वे वास्तविक स्थिति से परिचित नहीं हो पाते और न अपनी गिरी स्थिति का प्रतिकार ही कर पाते हैं। ऋण-ग्रस्त पीढ़ियां आती और चली जाती हैं पर उनके जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं होने पाता।

जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी, महादेवी वर्मा

और रामकुमार वर्मा ने समाज के एवं ग्रसित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की साथ ही समाज की गिरी स्थिति के लिए बहुत कुछ विदेशी सरकार को जिम्मेदार ठहराया । समाज की गिरी दशा के सुधार के लिए जो आन्दोलन भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में शुरू हुए थे , कालान्तर में वे और भी क्रियाशील दीख पड़ते हैं, जिससे छायावादी कवियों के अनुसार सामाजिक चेतना फैली । शिक्षा सम्बन्धी विदेशी नीति के कारण शिक्षित युवक नौकरी की ओर उन्मुख हो रहे थे । वे सरकारी नौकरी में ही अपना कल्याण समझते थे । पर विदेशी सत्ता से मिलने वाले अपमान दुर्व्यवहार और स्वाभिमान पर निरंतर लगने वाले ठेस के कारण लोगों में आत्मसम्मान की भावना जग रही थी । आर्थिक दृष्टि से भी विदेशी सरकार की आयात-निर्यात नीति के कारण यह समाज के लिए त्रास का समय था । समाज गरीब होता जा रहा था और विदेशी व्यापार नीति के कारण धनराशि विदेश में खिंचती जा रही थी । समाज के उच्च , मध्यम, निम्न वर्ग पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर अपनी सामूहिक चेतना खो बैठे थे । मनुष्य-मनुष्य के सुख-दुख से सौदा करने लगा था और उनके सारे सम्बन्ध पैसे से सम्बन्धित हो गये थे ।

आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने व्यक्तिवादी चेतना में विश्वास रखने के कारण समाज सुधार के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की साथ ही इसके व्यावहारिक पक्ष के प्रति अपनी सक्रियता भी दिखाई । उन्होंने ऐसे नेताओं को समाज का अभिशाप भी कहा , जो कि कर्म-वचन से साम्य न रखते हुए मात्र अपने स्वार्थ के लिए राजनीति का बाना पहने हुए हैं । वस्तुत: इनके दुहरे चाल से समाज उन्नति नहीं पाता । वे समाज को एक भुलावे में रखना चाहते हैं । भारतीय समाज के प्रति इनमें कोई सहानुभूति नहीं होती क्योंकि ये विदेशी समाज और संस्कृति में पलते हैं और पूर्ण रूप से भारतीय समाज एवं संस्कृति के उपासक बनने का स्वांग रचते हैं । दूसरी ओर कुछ ऐसे नेता हैं जो स्वार्थपरता से दूर समाज में जागृति पर उसकी उन्नति करने का प्रयत्न करते हैं । अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और समाज को सुखी देखना चाहते हैं । छायावादी कवियों ने ऐसे ही नेताओं के प्रति अपनी सहानु-

भूति व्यक्त की है क्योंकि समाज इनकी देखरेख में उन्नति कर सकेगा ।

छायावादी कवियों ने भिक्षुक वर्ग को समाज का अभिशाप बताया साथ ही धर्म को रूढ़िगत रूप में ग्रहण करने वालों को भी जो मानव को घृणा से देखते हैं और उनकी गरीबी के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखते हुए असंतुलित व्यवहार प्रदर्शित करते हैं । उन्होंने समाज में मानव की समानता पर बल दिया एवं संकीर्ण रूढ़ियों और समाज को विभाजित करने वाली सभी प्रवृत्तियों की उपेक्षा की ।

छायावादी कवियों ने देश की स्वतंत्रता के पूर्व समाज पर पड़ने वाले विदेशी सत्ता के प्रभाव पर भी प्रकाश डाला है । उनके अनुसार भाषा, वेशभूषा, चिन्तन पद्धति, राजनीतिक एवं सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर विदेशी प्रभाव देखने को मिलता है । देश में विकसित हो रहे यातायात के साधन से फैल रही सामाजिक चेतना, रेल, डाक तार से प्राप्त सुविधाएं समाज को एक नया रूप दे रहे थे । पर कुटीर धन्धों का पतन, विदेशी पूंजीपतियों द्वारा स्थापित हो रहे देश में उद्योग धन्धे , एवं पाश्चात्य प्रभाव में समाज में फैल रही व्यक्तिवादी चेतना का स्पष्ट चित्रण एवं उसकी प्रतिक्रिया भी उपर्युक्त कवियों ने अपने साहित्य में व्यक्त की है जिससे पता चलता है एक ओर वे विदेशी शासन एवं उनकी नीति से संतुष्ट नहीं थे दूसरी ओर रूढ़िगत भारतीय सामाजिक व्यवस्था भी उन्हें स्वीकार नहीं थी । महायुद्ध को भारतीय समाज ने घृणा की दृष्टि से देखा कदाचित उसी की प्रतिक्रिया में सुख से जीने और दूसरों को भी सुख से जीने देने की कामना की गयी ।

उपर्युक्त कवियों ने विदेशी सभ्यता पर भारतीय समाज एवं संस्कृति की विजय दिखायी है । विदेशी भारतीय समाज से प्रभावित होकर आते हैं और यहां की कला, व्यापार, धर्म से प्रभावित होकर या समाज सुधारक के रूप में अपनी जिन्दगी गुजारते हैं । शैला, वाट्सन, पादरी, चीनी व्यापारी आदि इस मनोवृत्ति के प्रतीक कहे जा सकते हैं । पाश्चात्य भौतिक सभ्यता से ऊबकर ही कदाचित छायावादी कवियों ने इस मनोवृत्ति का चित्रण किया जिसमें लंदन की भीड़ से दबी मनुष्यता भी नितान्त भौतिकता से मुक्ति

पाने के लिए भारतीय समाज की ओर ही दृष्टिपात करती है। चर्च का पादरी भी हिन्दू धर्म का उपदेश सुनने आता है। भारतीय विवाह, रीति रिवाजों में विदेशी सहर्ष भाग लेने के लिए इच्छुक दीख पड़ते हैं। विदेशी सत्ता से स्वतंत्रता प्राप्त करने पर सभी छायावादी कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रसन्नता व्यक्त की। पर जयशंकर प्रसाद की मृत्यु (१६३७ ई०) स्वतंत्रता के पूर्व हो जाने से उनके साहित्य में यह प्रतिक्रिया नहीं दीख पड़ती।

आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों ने समाज की उन्नति के लिए सामूहिक कृषि तथा नवीन वैज्ञानिक उपकरणों से कृषि सम्बन्धी स्थिति के सुधार पर बल दिया। इससे पैदावार में वृद्धि होगी और आय के बढ़ने पर सामाजिक स्थिति में भी सुधार होगा। उन्होंने समाज के कायाकल्प का समर्थन किया। कदाचित इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर उन्होंने न्याय व्यवस्था के लिए पंचायत , नये बीज गोदाम, बैंक, चकबन्दी आदि की व्यवस्था का भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समर्थन किया।

स्त्रियों के सामाजिक अधिकारों के प्रति भी उनमें जागरूकता स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है। उनकी दृष्टि में स्त्री,समाज में पुरुष वर्ग के समकक्ष है, साथ ही वह उसकी तरह ही समाज के नव-निर्माण में योग दे रही हैं। उनकी कार्यक्षमता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता।

छायावादी कवियों ने मानव की कार्य क्षमता में विश्वास प्रकट करते हुए आदर्श सामाजिक व्यवस्था का एक वैचारिक संकल्प रक्खा। उनकी दृष्टि में यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात भी समाज अभी आशानुकूल उन्नति नहीं कर पाया है, पर समाज के नये रूप के सृजन का यही समय है, जिसमें प्राचीन रूढ़ियों एवं जर्जरित सामाजिक व्यवस्था संबंधी मूल्यों का कोई स्थान नहीं होगा ताकि समाज नव मानवतावादी मूल्यों पर आधारित आदर्श सामाजिक व्यवस्था का रूप ग्रहण कर सके और वर्ग विभाजन, शोषक-शोषित, ऊंच-नीच तथा सभी प्रकार की विषमताओं से मुक्त एक साथ रहते हुए सभी सुविधा सम्पन्न जीवन बिता सकेंगे। सभी के व्यक्तित्व के विकास की सुविधाएं उपलब्ध होंगी और समाज में त्रासों की कोई स्थान नहीं होगा। अतः प्रसाद, पंत,निराला, महादेवी

और रामकुमार वर्मा ने भी समाज विषयक धारणा में जिस लोकमंगल की अवतारणा की वह आदर्श सामाजिक उपयोगितावादी दृष्टि से भी खरा उतरता है। यह आदर्श समाज की धारणा छायावादी कवियों की सामाजिक उपलब्धि कही जायेगी ।

खण्ड २

अध्याय ६ — धर्म —

(परिभाषा, महत्व एवं उपयोगिता, धर्म और अध्यात्म, धर्म द्वारा भारतीय समाज के संगठन की चेष्टा, धर्म में व्यक्ति का स्थान, कर्म और जीव की व्याख्या, धर्म जीवन, धर्म निरपेक्ष मानवव्यक्तित्व की धारणा, धर्म: भारतीय प्रति पाश्चात्य प्रभाव, आदर्श धर्म की धारणा)

धर्म

परिभाषा

छायावादी कवियों का उद्देश्य प्राथमिक रूप से धर्म की व्याख्या और उसके तत्वों का निरूपण नहीं था, न हि उनका उद्देश्य मुख्य रूप से धर्म को पारिभाषित करना ही था। पर व्यक्ति और समाज के संदर्भ में जहाँ कहीं भी उन्होंने कर्म, कर्तव्य, मनोवृत्ति, इन्द्रिय, गुण की क्रिया, वृत्यानुसारिणी क्रिया, देश या श्रेणी भेद, पदार्थ गुण, काल-युगादि-भेद, व्यापार की समष्टि को स्मृति शास्त्र, पुराण तथा वर्तमान समाज में पढ़ने वाले दूसरे धर्मों के प्रभाव में, काव्य, नाटक एकांकी, कहानी या उपन्यास साहित्य में प्रासंगिक रूप से ही धर्म के सम्बन्ध में जो कुछ विचार व्यक्त किये उससे उनकी धर्म विषयक दृष्टि पर प्रकाश पड़ता है।

प्रसाद ने काव्य साहित्य में तो नहीं पर अपने गद्य साहित्य में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि -" जिस किसी आचार व्यवहार को समाज का एक बड़ा भाग उसे यदि व्यवहार्य बना दे, तो वही कर्म हो जाता है, धर्म हो जाता है।"[१] निराला के अनुसार-" धर्म तो वह है जिससे अर्थ, काम तथा मोक्ष तीनों मिल सके।"[२] पंत की दृष्टि में " त्याग, विराग, अहिंसा, क्षमा, दया आदि अनेक आदर्शों की धार्मिक प्रवृत्ति ही"[३] धर्म की संज्ञा से अभिहित की जा सकती है। पर धर्म को निरपेक्ष सत्य"[४] समझना तथा उसे मनुष्यों का धर्म न बनाकर आदर्शों का धर्म"[५] बना देना धर्म की उपयोगिता को कम कर देना है। महादेवी ने तो धर्म के संदर्भ में भारतीय संस्कृति के मूल धर्म की

---

१. कंकाल, पृ० ६४
२. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३४
३. ज्योत्सना, पृ० ८०
४. ज्योत्सना, पृ० ८०
५. .. पृ० ८०

भी व्याख्या स्पष्ट कर दी । उनके अनुसार धर्म अनेक युगों के अनेक तत्वचिन्तन ज्ञानियों और क्रान्तद्रष्टा ..... की स्वानुभुतियों का संघात है ।[६] पर रामकुमार वर्मा ने 'जो भावना पक्ष में प्रेम है वही साधना पक्ष में धर्म'[७] माना ।

उपर्युक्त परिभाषाओं पर यदि सम्यक दृष्टि डाली जाय तो कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने धर्म को सीमित दृष्टिकोण से नहीं ग्रहण किया । कारण उनकी वैचारिक पीठिका में 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य जायते महतो भयात् ।'[८] धारणाद्धर्म मित्याहु: धर्मो धारयेत प्रजा । यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इति निश्चय ।'[९] चोदना लक्षणोऽर्थो'[१०] धर्म:[११] का प्रभाव दीख पड़ता है । उनके साहित्य में शुभ , कर्म, पुण्य, श्रेय, सुकृत, आचार, उपमा, यज्ञ जिससे स्वर्ग की प्राप्ति हो, अहिंसा, उपनिषद, औचित्य, न्यायबुद्धि, विवेक, धर्मराज, धनुष, अमान, सोमपायी, तथा आत्मा के अर्थ में भी धर्म का अर्थगत प्रयोग मिलता है । पर जहां तक छायावादी कवियों के परिभाषा के विश्लेषण का प्रश्न है प्रसाद ने धर्म और कर्म को प्राय: समान अर्थों में प्रयोग किया, और धर्म निर्धारण का मापदंड समाज के व्यवहार को ही बताया । कदाचित उनका धर्म सम्बन्धी अर्थगत प्रयोग कर्त्तव्य के अधिक निकट था जबकि निराला ने धर्म को इहलोक और परलोक दोनों के लिए ही उपयोगिता परक दृष्टिकोण से देखा । क्योंकि उनकी धारणा थी कि धर्म से इहलोक में अर्थ और काम की प्राप्ति होती है और मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग ही नहीं मोक्ष भी उपलब्ध होता है । अत: धर्म भौतिक और अध्यात्म दोनों ही दृष्टियों से आवश्यक है । पर पंत ने मनुष्य की सद्वृत्तियों को ही धर्म की संज्ञा से अभिहित किया । उनकी धारणा है कि धर्म का अस्तित्व मानव जीवन से अलग अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता । इस प्रकार इन्होंने इसे परलोक से सम्बन्धित न करते हुए सामाजिक

---

६. सप्तपर्णा, पृ० १४
७. चारुमित्रा, पृ० १५५
८. प्रबन्ध प्रतिभा, पृ० ७६
९. महाभारत, पृ० ६६, ५६
१०. जैमिनी सूत्र, पृ० १।१।२
११. मनुस्मृति १।१।८

व्यवस्था और तत्सम्बन्धित मानवीय सद्प्रवृत्तियों से ही अधिक सम्बन्धित किया और ऐसे धर्म की उपयोगिता का उसके व्यावहारिक अस्तित्व पर संदेह प्रकट किया जिसमें मात्र आदर्शवादिता ही अधिक हो । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो पंत ने धर्म को मानव धर्म के ही अर्थ में ग्रहण किया जिससे मनुष्य में सद्वृत्तियों का विकास होगा और वह निर्दोष समाज या आदर्श समाज की रचना करने में समर्थ होगा । महादेवी ने धर्म को परम्परागत तत्वज्ञानियों के चिन्तन का सार तत्व बताया वह इस बात का संकेत करता है कि धर्म सम्बन्धी मूल्य मानव समाज के लिए शाश्वत है क्योंकि उसका परीक्षण और निर्धारण शताब्दियों तक चिन्तन-मनन और समस्याओं के व्यावहारिक समाधान के रूप में हुआ है । रामकुमार वर्मा की परिभाषा मानव मनोभूमि पर अधिक आधारित है इसमें मानव प्रेम का साधनात्मक रूप ही धर्म के रूप में प्रदर्शित किया गया है जिसके द्वारा संकीर्ण धर्म सम्बन्धी भावना से ऊपर उठकर एक विस्तृत मानव परिवार की कल्पना की जा सके । अत: उपर्युक्त किसी कवि ने भी धर्म को रूढ़िगत अर्थ में ग्रहण नहीं किया जिससे उनके दृष्टिकोण में तथाकथित संकीर्ण धर्म सम्बन्धी विभाजन नहीं आने पाया है । उन्होंने धर्म को अर्थविस्तार में प्रयुक्त किया है जिसमें नवमानवतावादी दृष्टिकोण से मानव धर्म का रूप परिलक्षित होता है, जिसे छायावादी कवियों की वैचारिक उपलब्धि भी कही जायेगी ।

महत्व एवं उपयोगिता

छायावादी कवियों की दृष्टि में धर्म का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भारतीय जीवन दर्शन का तो हर अंश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धर्म से सम्बन्धित रहा है । चाहे वह कर्मकाण्ड हो या लौकिक या पारलौकिक दृष्टि । प्रसाद , निराला, पंत या महादेवी ने प्रत्यक्ष रूप से धर्म के महत्व पर प्रकाश नहीं डाला पर रामकुमार वर्मा की धारणा है कि यदि यह कहा जाय कि जीवन में " धर्म का प्रमुख हाथ रहा है तो अत्युक्ति नहीं होगी । विदेशी साहित्य का आदि भी धर्म के क्रिया-कलापों से ही उद्भूत हुआ । हमारा देश धर्म प्रवण है और वेदों से साहित्य रचना का जो सूत्रपात हुआ वह

धार्मिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत है। धर्म की स्थिति जीवन की पवित्रता में है। यह पवित्रता श्रद्धा का रूप ग्रहण करती है। श्रद्धा अपने आप आगे चल कर क्रिया-कलापों में अवतरित होती है। यह क्रिया-कलाप चिन्तन को प्रश्रय देता है जिससे दर्शन की सृष्टि होती है। वह दर्शन कार्यों में प्रकट होता है और जीवन का संतुलन करता है। [१२] अत: धर्म की महत्ता जीवन को संतुलित रखने में है।

प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आलोच्य छायावादी कवियों ने धर्म की महत्ता पर जो भी प्रकाश डाला उसे किसी साम्प्रदायिक या संकीर्ण भावना के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता क्योंकि धर्म को उन्होंने सीमित अर्थ में नहीं प्रयोग किया था। उपर्युक्त कवियों ने यदा-कदा एक ओर हिन्दू धर्म के महत्व को स्वीकार किया है तो दूसरी ओर इस्लाम या ईसाई धर्म के महत्व को भी, क्योंकि उनकी दृष्टि में सच्चा धर्म किसी सीमा या भौगोलिक परिवेश में सीमित नहीं हुआ करता। सभी धर्मों के मूलभूत तत्वों में समानता है। इस दृष्टि से छायावादी कवियों ने धर्म के महत्व को स्वीकार करते हुए मानव धर्म के रूप में उसकी महत्ता प्रतिपादित की है।

जहाँ तक उपयोगितावादी दृष्टिकोण का प्रश्न है छायावादी कवियों के अनुसार धर्म की उपयोगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। पर यहाँ इन्होंने धर्म को किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित न कर उसे मानव धर्म के रूप में ग्रहण किया। सामाजिक व्यवस्था मात्र के लिए भी धार्मिक उपयोगिता निर्विवाद है। बालगंगाधर तिलक के अनुसार धर्म की उपयोगिता के सम्बन्ध में 'बालगंगाधर की (उनकी) धारणा है कि — 'यदि धर्म छूट जाय तो समझ लेना चाहिए कि सारे बंधन टूट गये, और यदि समाज के बंधन टूटे, तो आकर्षणशक्ति के बिना आकाश में सूर्यादि ग्रहमालाओं की जो दशा हो जाती है, अथवा समुद्र में मल्लाह के बिना नाव की जो दशा होती है, ठीक वही दशा समाज की भी हो' [१३] जायेगी। इससे यह पता चलता है कि धर्म की उपयोगिता जीवन में इसलिए भी

---

१२. साहित्य शास्त्र, पृ० ७६

१३. गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र, पृ० ६६

है कि वह डा० राधाकृष्णन् के शब्दों में " अनुशासन है, जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है, काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उन्मुक्त करता है, संसार को बचाने का महान् कार्य करने के लिए साहस प्रदान करता है। [१४] इस तरह की विचारधारा तिलक गाँधी आदि में भी प्रचलित थी क्योंकि जीवन में धर्म की उपयोगिता न केवल समाज संगठन के लिए वरन् नैतिकता, अनुशासन आत्मिक बल, आत्मिक शुद्धि तथा उन सभी वस्तुओं से सम्बन्धित है जो कि जीवन को उर्द्धमुखी पथ पर अग्रसर करने की प्रेरणा देती है। यह प्रेरणा अध्यात्म से जितना घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है उतना ही भौतिक जीवन के प्रति भी। धर्म के द्वारा ही व्यक्ति भौतिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर होता है।

कदाचित धर्म की इसी उपयोगिता परक भावना से प्रेरित होने के कारण कवि प्रसाद ने " भूले हम वह संदेश न जिसमें फेरी धर्म दुहाई थी"। [१५] की ओर संकेत किया है। साथ ही अपने उपन्यास कंकाल में इस धारणा की भी पुष्टि की है कि धर्म मानव की उपयोगिता 'मानव-संस्कृति के प्रचार' [१६] के निमित्त है।

यह कहा जा चुका है कि धर्म जीवन के प्रत्येक अंग से सम्बन्धित है। धर्म का सम्बन्ध केवल व्यक्ति से नहीं वरन् उसके नीति और समाज से भी घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। इसकी धारणा है कि मनुष्य अपनी सुविधा के लिए अपने और ईश्वर के सम्बन्ध को धर्म, अपने और अन्य मनुष्यों के सम्बन्ध को नीति और रोटी-बेटी के सम्बन्ध को समाज कहने लगता है।' [१७] पर नीति हो या समाज सभी में किसी न किसी अंश तक धर्म की उपयोगिता सुरक्षित है।

---

१४. धर्म और समाज, पृ० ४५

१५. लहर, पृ० ३३

१६. कंकाल, पृ० २६४

१७. कंकाल, पृ० २३६

भारतीय संस्कृति में नीति का निर्धारण भी धर्म के द्वारा ही होता था। क्योंकि उनकी सामाजिक उपयोगिता संदिग्ध थी। यही कारण है कि पूर्ववर्ती युगों में अधार्मिक कृत्यों की वर्जना की गई है। यह बात इस देश के प्राचीन संस्कृति के लिए भी सत्य थी और आज के संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है, क्योंकि समाज में नीति के निर्माण का एक ही मापदंड है और वह है धर्म की प्रेरणा से ही, ऐसी नीति का निर्माण होता है जिससे समाज में शान्ति, सुरक्षा, स्वास्थ्य और व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए सभी सुविधाएं सुलभ हो सकें। राष्ट्र ही समाज में धर्म की स्थापना हो सके। अपनी इसी उपयोगिता के कारण "धर्म मानवीय स्वभाव पर शासन करता है न कर सके तो मनुष्य और पशु में भेद क्या रह जाय ?"[१८] समाज में धर्म की जीवन के प्रति इसी उपयोगिता परक दृष्टिकोण केही कारण सज्जन नाटक में विद्याधरी द्वारा "धर्म के राज सदा जग होवे"[१९] की कामना की गई है।

निराला ने प्रत्यक्ष रूप से अपने काव्य साहित्य में धर्म की उपयोगिता की व्याख्या नहीं की पर साथ ही गद्य साहित्य में धर्म को जीवन में उपयोगिता परक दृष्टि से देखते हुए निराला ने उसे सामाजिक दायित्व के रूप में भी प्रयुक्त किया है, क्योंकि "बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां" शीर्षक निबंध में इस बात को उन्होंने स्पष्ट रूप से अंकित किया है कि सामाजिक दृष्टि से शासक का कर्तव्य है कि पुरुष और स्त्री दोनों को उनके व्यक्तित्व के विकास की समान सुविधाएं दे।" दोनों के लिए एक ही धर्म होना चाहिए।[२०]

निराला की धारणा है कि आधुनिक युग में धर्म की उपयोगिता व्यक्ति के मानसिक, धार्मिक, नैतिक विकास के लिए ही है। इसके साथ ही उसे दूसरों को समाज-सम्बन्धित उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है क्योंकि धर्म मात्र व्यक्ति के विकास, अधिकार और कर्तव्य या पाप-पुण्य की सीमारेखा तक नहीं समाहित है। "घर के कोने में..... धर्म की साधना

---

१८. कंकाल, पृ० ११०

१९. चित्राधार, पृ० ११३

२०. प्रबन्ध-प्रतिमा, पृ० १३०

नहीं हो सकेगी । [२१] इनके अनुसार धर्म की वास्तविक उपयोगिता उसके द्वारा अर्थ, काम तथा मोक्ष तीनों में मिल सकती है । [२२] पंत ने भी धर्म की उपयोगिता को स्वीकार किया है । पर समाज के रूढ़िगत अर्थ में धर्म का अर्थ लेने पर सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से हानि भी पहुंचती है । " त्याग, विराग अहिंसा, क्षमा, दया आदि अनेक आदर्शों को धार्मिक प्रवृत्ति के लोग पहले से निरपेक्ष सत्य समझते आए हैं । इसलिए उनका धर्म मनुष्यों का धर्म न बन कर आदर्शों का धर्म बन गया ।" [२३]

यदि जीवन में धर्म मात्र स्वप्निल वस्तु है तो वह जीवन की वस्तु नहीं रह जाती क्योंकि वास्तविकता एवं जीवन की संपूर्णता से मानव-जीवन को विच्छिन्न कर हम ऊंचे से ऊंचे आदर्श की ओर अग्रसर हों, तो वह अंत में अर्थ शून्य एवं सारहीन हो जाता है ।" [२४] कदाचित इन्हीं कारणों से पंत मध्यकालीन धर्म की उपयोगिता पर संदेह व्यक्त करते हैं । उनके अनुसार—

> धर्मों ने विधि नियमों में कर अवगुंठित
> प्रभु को दुरूह कर दिया, अगम्य, तिरोहित
> बहु मंत्र तंत्र वादों-पंथों में खंडित
> मानव-मानव के निकट न आया किंचित । [२५]

महादेवी ने यह स्वीकार किया है कि " धर्म का शासन हमारे जीवन पर वैसा ही प्रभावहीन होना चाहिए, जैसा हमारी इच्छाशक्ति के आचरण का होता है । सत्प्रयास धर्म जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है । न वह जीवन की गहराई तक पहुंच सकता है [२६] और न व्यक्ति या समाज के लिए उसकी कुछ उपयोगिता

---

२१. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३३
२२. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३५
२३. ज्योत्स्ना, पृ० ८०
२४. ज्योत्स्ना, पृ० २७
२५. लोकायतन, पृ० २२७
२६. शृंखला की कड़ियां, पृ० १४०

ही हो सकती है।

काव्य में तो नहीं पर अपने गद्य साहित्य में रामकुमार वर्मा ने शिवाजी एकांकी के काशी-बानू संवाद [२७] में इस बात पर विशेष बल दिया कि सच्चे धर्म की उपयोगिता यह नहीं कि संकीर्ण धार्मिक मनोवृत्ति से होने वाले दो धार्मिक सम्प्रदायों में युद्ध हो क्योंकि ऐसा करना धर्म को उसके नेताओं द्वारा गलत उपभोग करना कहा जायगा। कोई भी धर्म आपस में बैर करना नहीं सिखाता और वहीं पर धर्म की उपयोगिता है। यदि धर्म का दुरुपयोग होता होता तो वही धर्म जीवन का विष, वही धर्म जीवन का सबसे बड़ा अन्धकार है। [१८]

अत: उपर्युक्त छायावादी कवियों की दृष्टि से धर्म की उपयोगिता पर विचार करते हुए पता चलता है कि व्यक्ति और समाज के विकास के निमित्त धर्म की नितान्त आवश्यकता है। बिना इसके न केवल सामजिक संगठन वरन् व्यक्तिगत दृष्टि से भी जीवन परक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। दूसरी ओर समाज में यदि धर्म का वास्तविक रूप कर्मकांड से आक्रान्त है तो उस धर्म की उपयोगिता का ह्रास हो जाता है जिससे समाज का पतन भी होने लगता है। समाज का उत्थान भी धर्म से ही शुरू होता है, कदाचित इस अवसर की ओर संकेत करते हुए कृष्णा ने कहा था -" यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[२६]

धर्म और अध्यात्म

छायावादी कवियों ने भी धर्म को अध्यात्म से सम्बन्धित किया क्योंकि उनकी दृष्टि में धर्म की उच्चतम साधनात्मक अवस्था आध्यात्मिक दृष्टि के बिना संभव नहीं। पर धर्म और अध्यात्म के अर्थ में स्पष्ट भेद है धर्म की

---

२७. शिवाजी, पृ० ५१   २८. बालमित्रा (अंधकार) पृ० ९८२

२६. गीता ४।७ हे भारत। जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की प्रबलता

अगले पृष्ठ पर देखें-

स्थिति बहुत कुछ भौतिक जीवन से भी सम्बन्धित है जबकि अध्यात्म मूलत: पारलौकिक जीवन है । परन्तु भारतीय विचारधारा में भौतिक जीवन की कोई स्वतंत्रस्थिति नहीं है । यह किसी न किसी रूप में अध्यात्म से जुड़ा हुआ है । छायावादी कवियों की दृष्टि में अध्यात्म का अस्तित्व जीवन से अलग नहीं है । उनके अनुसार व्यक्ति समाज में रहकर अपनी अध्यात्मिक उन्नति कर सकने में समर्थ है और उसका फल भी जीवन से अलग नहीं है ।

अध्यात्मिक साधना ही व्यक्ति को सांसारिक कष्ट में भी सुख दे सकने में समर्थ है । प्रसाद की दृष्टि में यह स्वयं भी जीवन के आनन्द का साधन है । निराला के आराधना, बेला, अणिमा के गीत महादेवी की यामा, तथा रामकुमार वर्मा की चित्ररेखा, आकाशगंगा की कविताएं भी आध्यात्मिक जीवन की ओर संकेत एक करती हैं । पर पंत का अध्यात्मवाद उपर्युक्त चारों कवियों से भिन्न दीख पड़ता है । यद्यपि नक्षत्रों का निमंत्रण उन्हें ~~अधोमुखी सदृश~~ ऊर्ध्वोन्मुखी साधना की ओर आकर्षित करता है पर उनका अध्यात्म किसी मोक्ष की कामना नहीं करता । वह अध्यात्मिक उन्नति के द्वारा धरा पर ही एक नवल सृष्टि की रचना करना चाहता है । यही उसके धर्म और अध्यात्मिक साधना की परिणति है ।

अत: आलोच्य विषय के छायावादी कवियों की दृष्टि में आध्यात्मिकता मनुष्य के जीवन की आवश्यकता है जिसके द्वारा व्यक्ति की पाशविक वृत्तियों का परिष्कार कर उसे धर्म की ओर अग्रसर किया जा सकता है । उन्होंने इसे व्यक्ति में निहित सत्य का उद्घाटन उसका प्रकाश और विकास का साधन माना जिससे उसे आत्मिक शक्ति प्राप्त हो और समस्त समाज भी उससे लाभान्वित हो सके । इस प्रकार उपर्युक्त कवियों के साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है, कि धर्म से सम्बन्धित आध्यात्मिक जीवन का का अर्थ आत्मिक उन्नति है जिसके द्वारा जीवन में नव मानव मूल्यों का विकास-प्रसा हो ऐसी कामना की गयी है ।

पिछले पृष्ठ का शेष -

फैल जाती है, तब तब मैं स्वयं ही जन्म (अवतार) लिया करता हूँ । साधुओं की संरक्षा के निमित्त और दुष्टों का नाश करने के लिए युग युग में धर्म संस्थापना के अर्थ में जन्म लिया करता हूँ ।

धर्म द्वारा भारतीय समाज के संगठन की चेष्टा

छायावादी कवियों की दृष्टि में भारतीय समाज का संगठन धर्म द्वारा हुआ क्योंकि प्रारंभ से ही प्राय: समाज के विभिन्न अंग उपांगों के सूत्र धर्म द्वारा ही संचालित होते रहे । समाज के निमित्त निर्धारित पुनीत नीति, सूत्र ,व्यक्ति, परिवार,समाज राष्ट्र या सम्पूर्ण मानव समाज के प्रति कर्तव्य और न्याय सम्बन्धी सारी व्यवस्था पर मात्र धर्म का ही प्रभाव रहा अत: धर्म द्वारा समाज का संगठन भारतीय संस्कृति की एक विशेषता कही जा सकती है ।

भारतीय संस्कृति में धर्म की दृष्टि से समाज के संगठन के निमित्त ही मनु ने `मनुस्मृति` और मानव धर्म शास्त्र की रचना की और पूर्व मीमांसा में जैमिनी ने धर्म जिज्ञासा, कर्म भेद, शेषत्व, प्रयोज्य-प्रयोजन, भाव कर्मों के क्रम, अधिकार, सामान्य तथा विशेष अतिदेश, ऊह,बाध, तन्त्र तथा अन्य बातों पर विस्तार में विचार किया । पूर्व० मीमांसाशास्त्र में धर्म का न्याय दर्शन के समान प्रधान रूप व्यावहारिक दृष्टि का ही है । यह व्यक्ति और समाज का संगठनात्मक तत्वों पर प्रकाश डालते हुए धार्मिक प्रवृत्ति की ओर ही इंगित करने का प्रयत्न किया है ।

सामाजिक व्यवस्था में धर्म के महत्वपूर्ण स्थान के निमित्त ही—

कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ।
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमा: सुखदु:खादिभि: प्रजा: । [30]

की स्पष्ट व्याख्या की गयी । अर्थात् कर्मों की विवेचना के लिए धर्म (आवश्यक कर्तव्य यज्ञादि) और अधर्म (अवश्य त्याज्य प्राणि-हिंसादि) को पृथक्

---

30. मनुस्मृति : मणिप्रभा, १।२६

पृथक् बतलाया तथा इन प्रजाओं को सुख एवं दु:ख आदि (राग,द्वेष, शीत, उष्ण, भूख-प्यास आदि) द्वन्द्वों से संयुक्त किया अर्थात् धर्म से सुख तथा अधर्म से दु:ख होता है यह प्रजाओं के लिए निश्चय किया ।"

प्रसाद ने भी सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था के निमित्त ही धर्मनीति[३१] में 'भीति का नाशक हो तब धर्म' का उल्लेख किया है । क्योंकि समाज में जब तक भय या त्रास का अन्त नहीं होगा तब तक समाज की व्यवस्था अपने स्वाभाविक रूप में उपस्थित न हो सकेगी । इसी स्वाभाविक त्रासहीन सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा के निमित्त ही धर्म की सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी उपयोगिता को देखते हुए इसे भारतीय समाज के संगठन का मूल तत्व माना गया। समाज के संगठन की नीव नीति पर ही आश्रित रहती है और नीति को भी प्राचीन सामाजिक शास्त्रियों ने धर्म (नीति, धर्म)ही कहा है । साथ ही उसे कर्तव्य और कर्म से सम्बन्धित कर सदाचार की उद्भावना कर दी । यही कारण था कि प्राचीन साहित्य में कर्तव्य कर्म और सदाचार के विवेचन को 'धर्म प्रवचन ही कहा जाता था । संस्कृत साहित्य में तो विद्वानों ने सामाजिक व्यवस्था के निमित्त नीति और धर्म में अन्तर ही नहीं माना है और कर्तव्य-नीति-धर्म को प्राय: समान धर्म के रूप में प्रयुक्त किया है ।

निराला भी धर्म को सामाजिक संगठन का एक प्रमुख अंग मानते है क्योंकि उनकी दृष्टि में भी धर्म के साथ समाज और राजनीति के संगठनात्मक तत्व भी आवश्यक हैं । कदाचित यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में धर्म पर इतनी आस्था रही है कि कर्म और धर्म के लिए लोग- जान पर खेलते हैं ।"[३२]

साथ ही यह भी सही है कि यदि भारत में समाज का संगठनात्मक तत्व धर्म नहीं होता तो उसकी सामाजिक व्यवस्था विपरीत परिस्थितियों में भी इतनी सुदृढ़ नहीं रही होती ।

---

३१. कानन कुसुम, पृ० ८८

३२. नये पत्ते , पृ० ८६

पंत के अनुसार तो " मानव ने धर्म की सामाजिक संघटनात्मक आधारभूमि को " मन की आधिभौतिक सीमाएं तोड़कर उसे एक विस्तृत प्रकाश-पूर्ण आधिदैविक भूमि पर रख दिया है।"[३३] क्योंकि ऐसा न होने पर धर्म की वह सामाजिक उपयोगिता न रह जायेगी जो कि समाज के संगठन के लिए आवश्यक है। पर समाज के संगठन तत्व में आधुनिक युग में मात्र धर्म के द्वारा ही संगठन की चेष्टा की गई है। ऐसी बात नहीं। न हि आधुनिक युग में मात्र धर्म द्वारा ही समाज संगठन हो सकता है। वस्तुत: बात यह है कि समाज के धर्म के "अस्थिपंजर " में भूत या जड़-विज्ञान के रूप-रंग भर हमने नवीन युग की सापेक्षत: परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया।"[३४]

महादेवी के अनुसार प्रत्येक समाज में रूढ़िवादी भी होते हैं कुछ नवीन विचारधारा के और कुछ मात्र उग्रवादी भी। कभी कभी ऐसे समाज या सम्प्रदाय भी हो गये हैं जिनमें रूढ़गत अर्थ में धर्म के संगठनात्मक तत्व न थे। पर ऐसी अवस्था में भी उनका रूढ़ समाजगत धर्म का विरोध भी उनका कर्तव्य-गत नारा था। धर्म के इस विरोध में समाज में उसकी उपयोगिता का अभाव है अथवा व्यावहारिक की शून्यता[३५] वह भी इसका एक कारण कहा जा सकता है।

रामकुमार वर्मा समाज के लिए उसके संगठनात्मक मूल्य के निमित्त धर्म की महत्ता निर्विवाद मानते हैं क्योंकि समाज में विधि-निषेध करणीय, अकरणीय विषयों का भी अपना महत्व है। समाज में धर्म आचार शास्त्र के विधि-निषेध की भावना का रहना आवश्यक है।"[३६] पर

---

३३. ज्योत्सना, पृ० ८१

३४. ज्योत्स्ना, पृ० ७९

३५. शृंखला की कड़ियां, पृ० १४१

३६. एकांकी कला, पृ० १३

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों के कारण धार्मिक संगठनात्मक तत्व प्रधान नहीं कदाचित महादेवी के शब्दों में यही कारण है कि " जीवन का व्यावहारिक रूप विकृत सा होता जा रहा है । " [३७]

धर्म में व्यक्ति का स्थान : कर्म और जीव की व्याख्या

छायावादी कवियों की दृष्टि में धर्म में व्यक्ति के स्थान विषयक धारणा के अनुसार यह कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के कवि इस बात को स्वीकार करते हैं कि ईश्वरांशव्यक्ति में है और प्रत्येक व्यक्ति में धर्म-अधर्म के विवेक की शक्ति है । यही शक्ति व्यक्ति को धर्म की पवित्रता बताने में सहायक है जिससे व्यक्ति का जीवन सुखमय बनता है । सामान्यत: सभी धर्म व्यक्ति की इस महत्ता को स्वीकार करते हैं । जबकि मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार समाज का व्यक्ति पर एक सामान्य प्रभाव कहा जा सकता है । वहाँ धर्म को व्यक्ति के स्थान की अपेक्षा समाज की दृष्टि से मापा गया और कर्त्तव्य के अर्थ में ही स्वीकार किया गया है ।

वस्तुत: व्यक्ति के महत्व की दृष्टि में धर्म का महत्व निर्विवाद है । धर्म और उसके कृत्यों में व्यक्ति ही उसकी क्रिया संपादित करता है । समाज में तब तक व्यवस्थित व्यवस्था न हो सकेगी जबतक प्रत्येक व्यक्ति अपना धर्म धर्म और उस धर्म को संपादित करने की महत्ता न समझ जाय साथ ही उसे कार्य रूप में परिणत न कर दें ।

छायावादी कवियों की यह धारणा है कि धर्म के लिए व्यक्ति नहीं वरन् व्यक्ति के लिए धर्म है । जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने विकास को करने में सहायक है । अत: धर्म साधन है साध्य नहीं । साध्य तो परिणाम है जिन्हें धर्म के माध्यम से उपलब्ध किया जाता है । चाहे यह उपलब्धि की धारणा

३७, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० १५१

भौतिक जगत से सम्बन्धित हो या आध्यात्मिक जगत से ।

आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने व्यक्ति के जीवन में धर्म के निमित्त मात्र आस्था रखना ही पर्याप्त नहीं समझा वरन् उसके अनुसार कर्म की भी पूर्ण अपेक्षा की क्योंकि बिना कर्म के भक्ति का ज्ञान नहीं हो सकता और बिना धर्ममय कर्म के जीव का भी उत्थान संभव नहीं ।

धर्म से ही प्रेरित व्यक्ति के कर्मवाद की व्याख्या प्रसाद ने कंकाल में ज्ञानदत्त द्वारा की कि -- " आर्यों का कर्मवाद संसार के लिए विलक्षण कल्याण-दायक है[३८] । ईश्वर के प्रति विश्वास रखते हुए भी उसे स्वालम्बन का पाठ पढ़ाता है यही कारण है कि भारतीय धर्म दर्शन में कर्म को ही ईश्वर माना गया जिसे कमला के शब्दों में " जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझ कर करता है वही ईश्वर का अवतार है प्रसाद ने व्यक्ति के लिए जिस धर्म मय कर्म का रूप स्पष्ट किया उसे " कर्म यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा[३९] में देखा जा सकता है। व्यक्ति भी जीवन में कर्म (में) लगे[४०] रहने के निमित्त ही हैं क्योंकि " कर्म का भोग भोग का कर्म यही जड़ चेतन का आनन्द ही[४१] व्यक्ति की धर्मगत स्थिति की परिणति है । " यह विश्व ही कर्म रंगस्थल है ।[४२] और यह सच भी है कि व्यक्ति का धर्ममय कर्म का विस्तार व्यक्ति तक ही सीमित नहीं होना चाहिए । प्रसाद की धारणा है कि धर्म से प्रेरित कर्म व्यक्ति का बोधक हो जाता है । यदि व्यक्ति भी धर्म की भावना से कर्म में प्रवृत्त होने पर उसकी विस्तृत व्यक्तिगत परिधि में सारी मानवता और उसका समाज समाहित हो जायेगा । ऐसी स्थिति में ही " जीव " को अपना लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा ।

निराला ने धर्म और व्यक्ति को सम्बन्धित किया साथ ही उसके कर्मानुसार उसके जीव को फल-फल की प्राप्ति भी करायी क्योंकि जीव

---

३८. कंकाल, पृ० ४३
३९. कामायनी, पृ० ११३
४०. कामायनी, पृ० ३१
४१. कामायनी, पृ० ५६
४२. कामायनी, पृ० ७५

ने जैसा कर्म किया है उसी के अनुसार उसका जीवन भविष्य भी होगा । पर व्यक्ति के लिए यह धार्मिक कर्म भी अपने आप में निरर्थक है यदि वह अंधभक्ति का प्रमाण हो । अर्थात् यदि वह गलत कर्म धर्म से सम्बन्धित हुआ तो इससे जीव की उन्नति की अपेक्षा अवनति ही होगी । यही कारण है कि निराला ने अपनी दान[४३] शीर्षक कविता में व्यक्ति के अधार्मिक धर्म की भी स्पष्ट व्याख्या की है ।

निराला ने जीव के उत्थान के निमित्त धर्म मय कर्म की आवश्यकता बताई धर्म की महत्ता व्यक्ति के लिए नितान्त आवश्यक है । उनके अनुसार धर्म से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संगठन हुआ । इस सामाजिक व्यवस्था में कर्म का महत्व इसी से स्पष्ट हो जाता है कि कर्म के अनुसार व्यक्ति " बड़ा छोटा और छोटा बड़ा हो सकता है, उसे यह मानने में भी कोई आपत्ति न होगी कि शूद्र भी कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन सकते हैं । "[४४] जहाँ तक जीव का प्रश्न है निराला फलाफल में जीव को उसके धर्म और कर्म के भोगमय सत्ता से अलग नहीं मानते हैं ।

जीव, कर्म और धर्म के सम्बन्ध में पंत जी की धारणा है कि व्यक्ति की धर्म-मय कर्म की वृष्टि सूक्ष्म दृष्टि से सृजन करने में सहायक होती है । ये वृष्टि रूपी फल को चारो ओर घेरे हुए कठोर छिलके की तरह हैं जो जीवों के अज्ञान-जनित समस्त आघात-प्रतिघात सह कर अपने अंतस्तल में सात्विक-सूक्ष्म वृत्तियों को प्रेम, दया आदि का ही प्रतीक रूप बतलाते हैं । [४५] आज धर्म का व्यक्ति के संबंध और उसके कर्म और जीव का जो विस्तार दिया जाय वह अब दीर्घकाल के प्रयत्न एवं संग्राम के बाद, मानव जाति के हृदय में विश्व संस्कृति मानव प्रेम, सदाचार आदि सद्वृत्तियों के नवीन बीजों के अंकुरित हो उठने के कारण पिछले युग की समस्त स्थूल वृत्तियाँ [४६] के कारण ही ये अपने नये

---

४३. अनामिका, पृ० २२

४४. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ७७

४५. ज्योत्स्ना, पृ० १०५

४६. ज्योत्स्ना, पृ० १०५

सामाजिक धरातल पर उपस्थित हो रही हैं ।

यही कारण है कि महादेवी के अनुसार -" जीवन की सब ओर से स्पर्श करने वाली दृष्टि मूलत: और लक्ष्यत: सामंजस्यवादिनी ही होती है ।"[४७] ठीक इसी प्रकार धर्म भी व्यक्ति के कर्म के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । वह इस सम्बन्ध में व्यक्ति के कर्म के साथ सामंजस्यवादी दृष्टिकोण रखता है । जीव चाहे मुक्ति योग्य हो, तमोयोग्य हो या नित्य संसारी । धर्म से प्रभावित कर्म करने से वह नितान्त अलग नहीं हो सकता क्योंकि प्राय: सभी समाज में धर्म का व्यावहारिक मापदण्ड इनके सम्बन्धों की रक्षा करता है । इसका कारण यह है कि व्यक्ति संसारी होने से अज्ञान, दु:ख, मोह, भय आदि वासनाओं से ग्रसित है । यदि जीव को धर्म और कर्म को सापेक्षिक सहयोग न मिले तो वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता । चाहे वह लक्ष्य भौतिक जगत का हो या आध्यात्मिक जगत का ।

धर्म में व्यक्ति का स्थान और कर्म-जीव की दृष्टि से यदि रामकुमार वर्मा साहित्य पर एक समग्र दृटि डालें तो पायेंगे कि धर्म को साधना पक्ष का रूप मानने से व्यक्ति किसी निश्चित् उद्देश्य तक पहुंचने मात्र का माध्यम बन जाता है । डा० वर्मा कबीर से विशेष रूप से प्रभावित हैं । संतमत में धर्म का उपयोग विश्वधर्म के रूप में है । वहां व्यक्ति के हृदय की पवित्रता ही धर्म का संचालन करती है । जब तक जीव संसार की वासनाओं से लिप्त रहता है उसके कर्म में धर्म की पवित्रता नहीं आ सकती । डा० वर्मा ब्रह्म और जीव में संत मत के प्रभाव के कारण अन्तर नहीं मानते । इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्य विषय के सभी कवियों ने धर्म के ही दृष्टिकोण से कर्म और जीव की व्याख्या करते हुए उसमें व्यक्ति का स्थान निर्धारित किया । व्यक्ति के कर्म और जीव की सत्ता उसके धर्म से अलग नहीं कही जा सकती । अत: आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने धर्म में व्यक्ति का स्थान निर्धारित करते हुए कर्म और जीव की बहुत कुछ युगानुरूप व्याख्या की यह उनकी वैचारिक उपलब्धि कही जायेगी ।

---

४७. सप्तपर्णा, पृ० २०

धर्म : जीवन

धर्म और जीवन का ठीक वैसा ही सम्बन्ध है जैसे जीवन का आत्मा से । यह कथन कदाचित जीवन और धर्म के उचित सम्बन्ध को व्यक्त करने में समर्थ होगा । पर प्रश्न उठता है कि धर्म जीवन से किन आयामों से सम्बन्धित है । कणाद का कथन है कि " जिससे अभ्युदय(लौकिक सुख) और नि:श्रेयस (पारलौकिक सुख) की सिद्धि होती है, वह धर्म है । [४८] साथ ही " उस (धर्म) को कहने से वेद (आम्नाय) की प्रामाणिकता है । " [४९] दूसरी और इस्लाम के बू अली मस्कविया का कथन है कि जीवन में " धर्म लोगों को आचार की शिक्षा देने का तरीका है । " [५०] धर्म शब्द भारतीय दर्शन में बहुत व्यापकता में प्रयुक्त होता है । बाल गंगाधर तिलक के अनुसार धर्म शब्द को पृथक करके दिखाना हो तो पारलौकिक धर्म को मोक्ष धर्म अथवा सिर्फ " मोक्ष " और व्यावहारिक धर्म अथवा केवल नीति को केवल धर्म कह सकते हैं । [५१]

जीवन और धर्म के सम्बन्ध पर दृष्टिपात करते हुए धर्म की विभिन्न धर्मों में भिन्न भिन्न व्याख्यायें की गई हैं । पर सबका सम्बन्ध समाज - व्यक्ति और फलरूप ईश्वर से ही सम्बन्धित रहा । अत: सभी धर्मों में जीवन के लिए जो तत्वज्ञान के रूप में उपदेश पाये जाते हैं वे हैं — " बाहर देखो .... अन्दर देखो और ऊपर देखो । जिसमें बाहर देखने का तात्पर्य भौतिक ज्ञान की ओर दृष्टिपात करना , अन्दर देखो का अर्थ है आत्मिक उन्नति करना और ऊपर देखो का अर्थ है ईश्वर को समझना है । धर्म मात्र सैद्धान्तिक वस्तु नहीं । वरन् उसे जीवन का आत्मसिद्धि प्राप्त करने का ही माध्यम कहा जा सकता है ।

प्रसाद जी के अनुसार धर्म का तत्वज्ञान जीवन के एक अंश से

---

५८. वैशेषिक सूत्र, पृ० १ ।१।-२

४९. वैशेषिक सूत्र, १०।२।९

५०. दर्शन-दिग्दर्शन, ले० राहुल सांकृत्यायन, पृ० १२९

५१. गीता रहस्य, पृ० ६८

सम्बन्धित होता है। यह श्रद्धा और कर्म से भी सम्बन्धित है क्योंकि इसका उद्देश्य आत्मसिद्धि है। इसमें ज्ञान-इच्छा-क्रिया[५२] तीनों ही अपने परिवर्तित रूप में ज्ञान और कर्म के रूप में समाज के लिए पर्याप्त महत्व रखते हैं। प्रसाद नियतिवादी होते हुए भी जीवन को अकर्मण्यता का उपदेश नहीं देते। उन्होंने पाप की पराजय[५३] द्वारा भी जीवन में नकारात्मक ढंग से धर्म की महत्ता स्थापित की। प्रसाद की धारणा ठीक ही है कि प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति के कुछ उद्देश्य और कुछ नियम होते हैं। ये ` .... नियम प्राय: निषेधात्मक होते हैं, क्योंकि मानव अपने को सब कुछ करने का अधिकारी समझता है। कुछ थोड़े से सुकर्म हैं और पाप अधिक, जो निषेध के बिना नहीं रुक सकते।... हम किसी भी धार्मिक संस्था से अपना सम्बन्ध जोड़ ले तो हमें उसकी कुछ परम्पराओं का अनुकरण करना ही पड़ेगा। मूर्ति-पूजा के विरोधियों ने भी अपने अपने अहिन्दू सम्प्रदायों में धर्म-भावना के केन्द्र-स्वरूप कोई न कोई धर्म-चिह्न रख छोड़ा है।...... धर्म हृदय से संचालित होता है।[५४]

इससे पता चलता है कि प्रसाद जी के दृष्टिकोण में धर्म की सार्थकता जीवन की व्यवस्था से सम्बन्धित है। जिसका लक्ष्य बाहर देखो और ऊपर की ओर देखो` है।

निराला का यही `बाहर देखो` का रूप इतना विस्तार पा गया कि उसमें `आत्मवत सर्वभूतेषु` की भावना दीख पड़ती है। कदाचित निराला की यही भावना थी जिसने धर्म के कर्मकाण्ड को जीवन के लिए आवश्यक अंग नहीं माना। यही बात बौद्ध, जैन, वैष्णव धर्म और कबीर, नानक, रैदास, आदि पंथों में भी देखी जा सकती है। धर्म के मूल तत्व कालान्तर में कर्मकाण्ड की अधिकता से दब गये और कर्मकाण्ड ही धर्म के नाम से समाज में प्रचलित हो

---

५२. कामायनी, पृ० २७४

५३. प्रतिध्वनि, पृ०

५४. कंकाल, पृ० ७४

गया । निराला ऐसे धर्म को धर्म नहीं, धर्म ढकोसला है" [५५] कहा करते थे । कैलकी में गंगा स्नान की बड़ी उमंगे [५६] और शिव पर अदात की फोली चढ़ा कर, बंदरों की पेट सेवा करना कदाचित उनकी दृष्टि में धर्म का विकृत रूप ही है जिसने जीवन को भ्रम के आवरण में रख छोड़ा है । निराला धर्म सबसे पहले मानव सेवा की अपेक्षा करता है फिर प्रत्येक जीवधारियों की । कोई भी इस धर्म की सीमा से बाहर नहीं , यही समाज का सच्चा धर्म कहा जा सकता है ।

पतंजीकी दृष्टि में आज धर्म का प्राचीन स्वरूप मानव जीवन के लिए उपयोगिता नहीं रखता क्योंकि उसमें धर्म कम रूढ़िवादिता अधिक है । धर्म को आधुनिक जीवन के अनुकूल अपनी परिभाषा देनी होगी । अब धर्म का स्वरूप मोक्ष प्राप्त करना नहीं रहा क्योंकि अब समाज की दयनीय स्थिति कवि की दृष्टि में --

यहाँ सर्व नर (वानर) रहते युग-युग से अभिशापित ।
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि पंक में पालित ।
यह तो मानव लोक नहीं है, यह है नरक अपरिचित ।
यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित । [५७]

की स्थिति तक पहुंच गई है ।" द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद"सर्वधर्म - समन्वय, सांस्कृतिक समन्वय,ससीम-असीम तथा इहलोक-परलोक सम्बन्धी समन्वय की अमूर्त अपर्याप्त [५८] भावना का अर्थ विस्तार हुआ है कवि की दृष्टि में भौतिक - आध्यात्मिक दोनों दर्शनों से जीवनोपयोगी तत्वों को लेकर जड़ चेतन संबंधी एकांगी दृष्टिकोण का परित्याग कर, व्यापक सक्रिय सामंजस्य

---

५५. प्रभावती, पृ० १०३
५६. अपरा, पृ० १६८
५७. ग्राम्या, पृ० १६
५८. शिल्प और दर्शन (आधुनिक काल के प्रेरणा स्रोत) , पृ० १६६

के धरातल पर नवीन लोकजीवन के रूप में सर्वांगपूर्ण मनुष्यत्व अथवा मानवता का भाव-दर्शन प्रस्तुत[५८] करना ही जीवन में धर्म की सार्थकता है।

एकांगी और रूढ़िवादिता में जकड़ी हुई धार्मिक मान्यताएं न मानव जीवन के लिए लाभदायक हो सकती हैं और न स्वयं अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायक ही। क्योंकि " धर्म ग्रन्थों के लिए मनुष्य की एकांगी दृष्टि ऐसा अंधेरा बन्दीगृह बन जाती है जिसमें उसकी उज्ज्वल रेखाएं भी धूमिल हो जाती हैं। एक और धर्म विशेष के प्रति आस्थावान् तत्सम्बन्धी ग्रन्थों के चतुर्दिक अपने अन्धविश्वासों और रूढ़िवादिता की अग्निरेखा खींच देते हैं और दूसरी ओर भिन्न धर्मपद्धति के अनुयायी अपने चारों ओर उपेक्षा की इतनी ऊंची दीवारें खड़ी कर लेते हैं जिन्हें अन्य दिशा से आनेवाली वायु के पंख भी नहीं छू पाते। ऐसी स्थिति में ग्रन्थ अनजान कृपण की मंजूषा बन जाते हैं और जिसके यथार्थ मूल्यांकन में एक ओर मोहान्धता बाधक है और दूसरी ओर अपरिचयजनित उपेक्षा।[६०] इसीलिए महादेवी का धर्म सर्ववाद की पृष्ठ-भूमि पर आधारित है। रामकुमार जी की धारणा है धर्म किसी निश्चित समाज की निश्चित सीमा में नहीं पल सकता। वह सम्पूर्ण मानव समाज का परिचायक है। इसमें न तो किसी प्रकार कर्मकाण्ड है, न वर्ग और न वर्ण भेद है। मानव मात्र का स्वाभाविक और सात्विक आचरण ही धर्म है।"[६१]

अतः छायावादी कवियों की दृष्टि में धर्म मानवतावादी जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित समाज के निमित्त मात्र एक ऐसी आवश्यकता है जो समाज के व्यक्तियों में उनकी आत्म परिधि का व विस्तार कर सके। धर्म का स्वाभाविक रूप ही छायावादी कवियों को समाज के लिए मान्य था, जिसमें कर्मकाण्ड का कोई बाह्याडम्बर नहीं दीख पड़ता।

---

६०. सप्तपर्णा, पृ० १३

६१. अनुशीलन, पृ० ७५

धर्म निरपेक्ष मानव व्यक्तित्व की धारणा

छायावादी कवियों की धारणा है कि संकीर्ण धर्म सम्बन्धी विचारधारा और धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा समाज में एक विभाजक रेखा-सी खिचती दीख पड़ती है। यह भेदकारी प्रभाव मानव समाज के लिए घातक है। अपने पद्य साहित्य में तो नहीं पर गद्य साहित्य में प्रसाद ने कदाचित इसीलिए धर्म निरपेक्ष भारत संघ [६२] की स्थापना की। रामकुमार वर्मा ने विभिन्न धर्मों के भेद को मिटाने की अपेक्षा उनमें सामंजस्य पर अधिक बल दिया। उन्होंने भी इस विषय की अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य साहित्य को चुना। उनके शिवाजी (एकांकी) में काशी बानू संवाद इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि — " आपस की इस लड़ाई को बुरा क्यों नहीं कहती जिसने हिन्दू और मुसलमानों को आपस में लड़ा दिया है। दक्खिन में औरंगजेब की नीति को बुरा क्यों नहीं कहती जिसने हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद का बीज बो दिया है, दोनों को तलवार और ढाल की तरह लड़ा दिया है। [६३] इस विचार धारा को स्पष्ट करती है उसके अनुसार दोनों ही न कटें, दोनों ही न टूटें, लेकिन वे दोनों चांद और सूरज की तरह तो चमक सकते है। अगर मैं इस समय शाहंशाह की जगह दिल्ली की सुल्ताना होती तो कहती — ' हिन्दुओं और मुसलमानों तुम हिन्दुस्तान में न्याय की तराजू के दो पलड़े हो, एक दूसरे को संभाले रहो। इस तरह साधे रहो कि किसी के साथ किसी तरह का पक्षपात न हो। दोनों एक ही गीत के स्थायी और अन्तरा हो। इस तरह स्वर खींचो कि बेताल न हो सको। सांस के खींचने और छोड़ने की तरह तुम दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हो, जिन्दगी में कभी न रुकनेवाले हमेशा साथ ही साथ चलने और रहने वाले ऐसे ही तुम दोनो हो।" [६४]

---

६२. कंकाल, पृ० २३५

६३. शिवाजी, पृ० ५३

६४. शिवाजी, पृ० ५९

यह सही है कि धर्म अपने आप में किसी दूसरे धर्म का विरोध नहीं करता और अगर उसका सही दृष्टिकोण लिया जाय तो यह संघर्ष का प्रश्न ही नहीं उठता । पर उसके अनुयायियों की धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता का जो परिचय समय समय पर दिया , वह धार्मिक दृष्टि का दुरुपयोग कहा जा सकता है। यह दुरुपयोगधार्मिक महत्वाकांक्षियों के द्वारा संकीर्ण धर्म और संकीर्ण ईश्वर विषयक धारणा के ~~धारणा के~~ कारण ही हुआ । कदाचित इसी कारण पंत के अनुसार समाज में सर्वत्र अतृप्ति ही अतृप्ति है। घृणा से घृणा ही बढ़ती है। वैमनस्य से वैमनस्य ही पैदा होता है। स्नेह, समत्व, सहृदयता आदि मानव-स्वभाव की उच्च विभूतियों से उसका विश्वास ही उठ गया है।[६५] छायावादी कवियों ने व्यक्ति की संकीर्णता को ही महायुद्ध का परिणाम समझा। जिससे सम्पूर्ण मानवता को मंदी, सामाजिक , आर्थिक स्थिति का इतना त्रास सहना पड़ा । निराला के अनुसार धर्म और ईश्वर के प्रति अंधभ्रान्ति की " उच्छृंखलता के कारण देश और समाज की अधोगति हुई थी । अब उसी के विपरीत समाज के जन-समूह उससे सम्बद्ध होने लगे ।[६६] क्योंकि महादेवी की भी धारणा है कि हिन्दू समाज ने उसे अपनी प्राचीन गौरवगाथा का प्रदर्शन मात्र बना कर रख छोड़ा है। और वह भी मूक निरीह भाव से उसको वहन करती जा रही है। शताब्दियाँ पर शताब्दियाँ बीती चली जा रही हैं, समय की लहरों में परिवर्तन पर परिवर्तन बढ़ते जा रहे हैं परिस्थितियाँ बदल रही हैं।"[६७] ऐसी स्थिति में भी यदि मानव अपनी प्राचीन आस्थाओं पर ही दृढ़ रहा तो वह नये समाज के नये मूल्यों को कैसे ग्रहण कर सकता है। विकास शीलता के साथ अग्रसर होने के कारण स्वैतिकता आ जायेगी ऐसी अवस्था में मृत सभ्यता या संस्कृति जन्म लेगी ।

छायावादी कवि धर्म के द्वारा सामयिक समाज की दुर्दशा देखते हुए स्तम्भित रह गये । सामाजिक संघर्ष, विषमता और उन सबसे बढ़ कर

---

६५. ज्योत्स्ना, पृ० ४३

६६. प्रबन्ध प्रतिमा (हमारा समाज) , पृ० ३४५

६७. श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ० १४८

महायुद्ध का प्रभाव कवि को युगीन चेतना के प्रति एक चिन्ता का कारण बन जाता है। पंत की 'कवीन्द्र' रवीन्द्र कविता में उसी स्तंभित मानव का चित्रण मिलता है —

> विश्व कवे, तुम जिस मानवता के प्रतिनिध बन
> आए, वह तो चुकी हाय, मानुष्य परम धन। [६८]

रवीन्द्र के प्रति लिखी गयी कविता में कदाचित तत्कालीन सामाजिक चेतना से ही प्राप्त अभिव्यक्ति थी।

कदाचित व्यक्ति की श्रेष्ठता का कारण कवियों के अवचेतन में महायुद्ध के कारण हुआ भीषण नर संहार का ही पश्चाताप था। इस विचारधारा को और भी अधिक पुष्ट करने का दूसरा कारण या मार्क्सवाद से छायावादी कवियों का प्रेरित होना। पर आलोच्य विषय के अन्तर्गत प्रसाद पर गहरा मार्क्सवादी प्रभाव नहीं दीख पड़ता। महादेवी के पद्य या गद्य पर इसका कोई संकेत नहीं मिलता। पर निराला और पंत पर यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है।

धर्म और ईश्वर निरपेक्ष मानव की श्रेष्ठता का कारण व्यक्ति में विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास भी था। यह भावना कुछ तो पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के कारण थी क्योंकि इसके पूर्व इतने बड़े पैमाने पर पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के प्रभाव में देश कभी नहीं आया था साथ ही अपने देश में ही बंगला साहित्य में रवीन्द्र विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रचार कर रहे थे। जिसका प्रभाव, प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव ~~को~~ आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों पर देखा जा सकता है पर ~~धर्म की समानता के साथ~~ मात्र प्रसाद ही इसके अपवाद कहे जा सकते हैं।

~~-छायावादी~~छायावाद में धर्म की समानता के साथ मानव की एकता और वर्गगत समानता का भी भाव मिलता है। क्योंकि किसी धर्म या

---

६८. अणिमा, पृ० १३५

ईश्वर के प्रति आस्तिक या नास्तिक चाहे वह किसी देश का नागरिक हो पर उसकी भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता के कारण खान-पान की भिन्नता होने पर भी सब में एक समानता है। यह समानता मानव स्तर की समानता है। प्रसाद-पंत-निराला महादेवी और रामकुमार वर्मा की धारणा है कि धर्म भी व्यक्ति के निमित्त है। वह व्यक्ति का पथ प्रदर्शन करता रहे उसी में इसकी सार्थकता है। ईश्वर की धारणा जिन धर्मों में है या अस्वीकार है उनका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जिन धर्मों में यह स्वीकार्य भी है उनमें व्यक्ति के दंड या पुरस्कार के ही निमित्त ईश्वर की सत्ता मानी गयी है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कदाचित इसीलिए पंत ने मानव व्यक्तित्व की महत्ता को स्वीकार करते हुए इस बात की भी स्पष्टोक्ति की कि —

'मनुज धरा को छोड़ कहीं भी स्वर्ग नहीं संभव, यह निश्चित[६६]

और ईश्वर के प्रति यह पंक्ति पंत की अनास्था को भले ही व्यक्त करे पर इतना तो अवश्य है कि स्वर्ग से भू की मानवता को अधिक महत्व दिया गया। कदाचित यह मैथिलीशरण गुप्त के साकेत के "मैं भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया" — का एक सचेतन विकास है क्योंकि — आगे के काव्यात्मक विकास में भी इस बात को स्वीकार किया है कि —

> वैयक्तिक सामूहिक गति के दुस्तर द्वन्द्वों में जग खंडित,
> ओ अपुष्ट जन, भीतर देखो, समाधान भीतर, यह निश्चित।

और यह आत्म निरीक्षण की प्रवृत्ति ही अपनी शक्तियों से जब परिचित हो गई तब उसके समक्ष विभिन्न देशों में रहने वाले भिन्न भिन्न ईश्वर या धर्मों के नाम से उस एक ही सत्य के अन्वेषकों में कोई अन्तर नहीं दीख पड़ा। जीवन के प्रति अनास्था रखने वाले भी उन्हें एक ही लक्ष्य पर जाने वाले राह भटके पथिक की तरह दीख पड़े। छायावादी कवि भी यह युग बोध दे सका कि धर्म निरपेक्ष मानव युग की चेतना का प्रतीक है। ~~व्यक्तित्व~~ वह सत्य की प्राप्ति है। जीवन के विकास का एक अंग है। तभी वह आत्मविश्वास के साथ

---

६६. अतिमा, पृ० १३४

कह सका कि —

देश खंड भू मानव का परिचय देने का क्या ताणा यह,
मानवता में देश जाति हो लीन, नए युग का सत्याग्रह ।[७०]

यदि फिर भी मानव चेतना नहीं तो वह निराला द्वारा वर्णित 'दान' सा ही हास्यास्पद है जिसमें भू जीर्ण शीर्ण-भूखे को दुलार कर धर्म और ईश्वर से पुण्य प्राप्ति के निमित्त लोग बारहों मास शिव और नारायण जाप करने वाले बन्दरों को पुआ खिलाते हैं और मनुष्य से घृणा करते हैं ।[७१]

धर्म : भारतीय स्रोत - पाश्चात्य प्रभाव

आलोच्य विषय के छायावादी कवि सामान्यत: संस्कार और धर्म सम्बन्धी विचारधारा के रूप में या तो शैव-धर्म से प्रभावित थे या वैष्णव धर्म से । पर यदि उनके साहित्य के आधार पर उपर्युक्त धर्म सम्बन्धी संस्कार औ कालान्तर में पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण-विवेचन करें तो कहा जा सकता है कि प्रसाद पर शैव और बौद्ध धर्म, निराला पर शाक्त, पर भौतिकवाद , पंत पर भौतिकवाद, निरीश्वरवाद, महादेवी पर बौद्ध और वैष्णव धर्म, और रामकुमार वर्मा पर वैष्णव धर्म और कबीर की विचारधारा का प्रभाव देखने को मिलता है पर इसका अर्थ यह नहीं कि उपर्युक्त छायावादी कवियों पर अन्य दूसरे धर्मों का प्रभाव था ही नहीं ।

व्यक्ति स्वातंत्र्य और नारी अधिकारों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में छायावादी कवियों पर परोक्ष रूप से ईसाई मत का प्रभाव दीख पड़ता है । देश छायावादी प्रवृत्ति के उदय होने के समय अंग्रेजी सत्ता के अधीन था । समाज, आचार-विचारधारा पर ईसाइयत का प्रभाव दीख पड़ता है । ऐसी अवस्था में मात्र ईसाई धर्म सम्बन्धी विचारधारा से वे प्रभावित न होते ऐसा

---

७०. अणिमा, पृ० १३४

७१. अपरा, पृ० १३१

संभव न था । पर छायावादी कवियों ने ईसाई धर्म को अंग्रेजी सत्ता का पर्याय नहीं माना । यही कारण है कि उन्होंने अंग्रेजी सत्ता का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से विरोध करते हुए ईसाई धर्म के प्रति अपना रोष नहीं प्रकट किया बल्कि करुणा प्रधान विचारधारा होने के कारण वे बौद्ध धर्म की तरह ईसाई धर्म के प्रति भी आकर्षित से दीख पड़ते हैं । छायावादी कवियों ने सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखा इस दृष्टि से भी ईसाई धर्म अपवाद नहीं कहा जा सकता । अपने काव्य साहित्य में तो नहीं पर प्रसाद ने अपने गद्य साहित्य में ईसाई धर्म को भी आर्य धर्म से सम्बन्धित किया इस दृष्टि से कदाचित रामनाथ का शैला से यह कथन प्रसाद की ही विचारधारा का समर्थन करता है कि —

" आज सब लोग यही कहते हैं कि ईसाई धर्म सेमेटिक है, किन्तु तुम जानती हो कि यह सेमेटिक धर्म क्यों सेमेटिक जाति के द्वारा अस्वीकृत हुआ ? नहीं ? वास्तव में वह विदेशी था, उनके लिए वह, वह आर्य सन्देश था । और कभी इस पर भी विचार किया है तुमने कि वह क्यों आर्य-जाति की शाखा में फूला-फला ? वह धर्म उसी जाति के आर्य-संस्कारों के साथ विकसित हुआ क्योंकि तुम लोगों के जीवन में ग्रीक और रोम की आर्य-संस्कृति का प्रभाव सोलहो आने था ही, उसी का यह परिवर्तित रूप संसार की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है ।" ७२

इतना ही नही प्रसाद ने ईसाई धर्म के मानने वाली तितली की शैला, और वाट्सन, कंकाल के बामन , पादरी आदि को भारतीय धर्म के प्रति आकर्षित भी दिखाया है । निराला ने अपने काव्य साहित्य में ईसाई धर्म और संस्कृति से प्रभावित होकर तत्कालीन समाज में विदेश जाकर शिक्षा ग्रहण करने का संकेत उस समय की धर्म संस्कृति विषयक मनोवृत्ति को भी चित्रित करता है । ७३ पर इसका अर्थ यह नहीं कि निराला अपने धर्म की अपेक्षा अधिक ईसाई धर्म के प्रति आकर्षित थे । अपने धर्म के प्रति उनमें सम्मान

---

७२. तितली, पृ० ९६

७३. अपरा, पृ० ६३

की भावना थी । अप्सरा में ही कनक कैथरिन संवाद से यह पता चलता है जिसमें कैथरिन कनक को ईसाई धर्म स्वीकार करने का प्रस्ताव करती है । [७४] कनक उसे संकेत रूप में ही अपनी धर्म सम्बन्धी विचारधारा का स्पष्टीकरण कर देती है कि उसे ईसाई धर्म स्वीकार नहीं । वह अपने धर्म का आदर करती है ।

महादेवी ने उपर्युक्त विषय के संदर्भ में अपने काव्य साहित्य में कोई संकेत नहीं किया पर अपने गद्य साहित्य में विदेशी चीनी व्यापारी के प्रति जिस सहानुभूति का परिचय दिया है उससे पता चलता है उनकी दृष्टि में धार्मिक संकीर्णता का कोई स्थान नहीं था । रामकुमार वर्मा ने प्रत्यक्ष रूप से ईसाई धर्म के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की पर इस्लाम के प्रति जो अपनी विचारधारा व्यक्त की उससे धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण का पता चलता है । उन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म दोनों को समान रूप से देखते हुए काशी-बानू संवाद के माध्यम से दोनों धर्मों को हिन्दुस्तान में न्याय की तराजू के दो पलड़े कहा है । [७५] जिससे उनकी दोनों धर्मों के प्रति समान आस्था का बोध होता है ।

पर पंत की विचारधारा पर धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण से भारतीय धर्म का पूर्ण समर्थन नहीं मिलता उन्होंने परम्परागत धर्म की रूढ़ियों से असंतुष्ट होकर निरीश्वरवाद की विचारधारा का समर्थन किया है और पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता से प्रभावित होकर कवि ने धर्म को संकीर्ण अर्थ में न ग्रहण कर `मानव धर्म ` के अर्थ में लिया है । उन पर ईसाई धर्म का व्यक्ति स्वतंत्र निरीश्वरवादी धर्म और कालान्तर में अरविन्द वादी विचारधारा का प्रभाव दीख पड़ता है ।

इस प्रकार छायावादी कवियों की वैचारिक पृष्ठभूमि में भारतीय धर्म का जो भी स्वरूप मिलता है उस पर पाश्चात्य धार्मिक विचारधारा का

---

७४. अप्सरा, पृ० १०१

७५. शिवाजी, पृ० ५३

का भी प्रभाव दीख पड़ता है ।

छायावादी कवियों में भारतीय विचारधारा के अनुसार समाज पर धर्म का प्रभाव आत्मा, ईश्वर पुनर्जन्म , कर्म सिद्धान्त और जातिगत व्यवस्था के आन्तरिक मंच पर दीख पड़ते हैं । पहले धर्म का भारतीय पक्ष 'स्व' पर ही केन्द्रित था चाहे वह सत्य-प्रेम , सत्य या परमसौन्दर्य की प्राप्ति के प्रयास के निमित्त साधन मात्र हो या आस्था और उसकी चरम सन्तुष्टि के लिए ही पर भारतीय धर्म के अनुसार ऐसा विश्वास है कि उसका सम्बन्ध किसी अज्ञाय दैवी तत्व से ही सम्बन्धित है । यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में धर्म को व्यक्ति के आध्यात्मिक परिष्कार का साधान माना गया । यह उसका बौद्धिक पक्ष न होकर मात्र आस्था पक्ष ही था । उसमें यदि बौद्धिक पक्ष था भी तो आस्था पक्ष के समक्ष उसका अनुपात न्यून था ।

प्रसाद महादेवी और रामकुमार वर्मा के काव्य साहित्य में भारतीय धर्म के प्रभाव की अधिकता होने से कवियों की मन की सत्ता पर शैवों का आनन्दवाद बौद्धों की शांति और करुणा, कबीर का रहस्यवाद से तादात्म्य विचार-चिंतन एवं साधक का लक्ष्य प्राप्ति का उल्लास तथा दिव्य सत्य की प्राप्ति के प्रति आकर्षण दीख पड़ता है । जबकी प्रसाद के ही कंकाल, तितली, निराला के काव्य और गद्य साहित्य , तथा पंत के पूरे काव्य साहित्य में धर्म के पाश्चात्य संबोध (Concept) के प्रभाव के कारण धर्म को सामाजिक तत्व के रूप में स्वीकार किया है । जिसमें यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि छायावादी कवियों की धार्मिक दृष्टि जो पहले 'स्व' पर केन्द्रित थी वही अब समाज के धर्म मंडल के रूप में विकसित हुई दीख पड़ती है । अर्थात् धर्म पहले 'स्व' का विषय था अब वह समुदाय से सम्बन्धित हो गया । यद्यपि धर्म का सामाजिक संबोध (Concept) प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में " सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया " के रूप में मिलता है । यह आलोच्य विषय के कवियों ने उपर्युक्त वर्णित साहित्य की विधाओं में जो प्रयोग किया उस पर पाश्चात्य धर्म का ही प्रभाव कहा जा सकता है । क्योंकि पश्चिम में धर्म सामाजिक स्थायित्व का एक साधन है और नई बातों के प्रचलन के विरुद्ध

एक ढाल के रूप में प्रयुक्त होता है। कवियों ने भी धर्म को प्रस्तुत कथन के का पूर्वार्द्ध ही ग्रहण किया, कथन का उत्तरार्द्ध कदाचित उनकी प्रकृति के अनुकूल न था वे प्राचीन रूढ़ियों की अपेक्षा समाज की नई मान्यताओं का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत था उन्होंने —धर्म का राजनीति से वैसे ही सम्मिश्रण किया जैसे यूननी धर्म में था। कदाचित यह उस काल की प्रकृति थी जो तत्कालीन कवियों को राष्ट्रीयता की चेतना दे रही थी। यही बात आलोच्य विषय के कवियों में भी दीख पड़ती है। इन दोनों से सम्बन्धित जन चेतना पर पड़ने वाले प्रभाव से आलोच्य विषय के कवि भी बिना प्रभावित हुए न रह सके। यह प्रभाव उनके तत्कालीन सामाजिक परिवेश की एक सशक्त प्रकृति कही जा सकती है, जो आलोच्य विषय के प्राय: सभी कवियों में किसी न किसी रूप में देखी जा सकती है।

फिर भी प्रभाव की स्पष्टतका के निमित्त पूर्व और पश्चिम के धर्म विषयक दृष्टि में स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। डा० राधाकृष्णानन के शब्दों में " पूर्वीय धर्मों में परलोक परायणता की ओर झुकाव है जबकि पश्चिम के धर्मों की विशेषता इहलोक परायणता है। पूर्वीय धर्मों का लक्ष्य सन्तों और नायकों को तैयार करना है : पश्चिमी धर्मों का लक्ष्य ऐसे मनुष्य तैयार करना है, जो समझदार और सुखी हों। पूर्वी धर्म समाज के बनाये रखने की अपेक्षा व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील है। पश्चिम के धर्म को सामाजिक सुव्यवस्था के लिए एक प्रकार पुलिस व्यवस्था के रूप में बदल देती है।[७६] कदाचित इसका कारण कर्तव्य से सम्बन्धित होना ही है। इतना ही नहीं धर्म में मानवतावादी विचारधारा, समाज में एक समानता, धर्म का राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा बौद्धिक पक्ष से धर्म का विश्लेषण पाश्चात्य मनोवृत्ति का ही परिचायक है जो आलोच्य विषय के छायावादी कवियों में पूर्व और पश्चिम के धर्म के प्रति मिश्रित प्रभाव के रूप में दीख पड़ता है।

---

७६. धर्म : तुलनात्मक दृष्टि से, पृ० ५०

आदर्श धर्म की धारणा

धर्म को यद्यपि कतिपय विद्वान् इतिहास के परिणाम के अनुसार आमतौर पर भेद जनक मानते हैं। [७७] पर छायावादी कवियों की धारणा है कि सच्चा धर्म कभी मनुष्य का मनुष्य से विरोध करना नहीं सिखाता, नहीं उसका उद्देश्य किसी धर्म का विरोध करना है। यदि मनुष्य धर्म की आड़ में स्वार्थ साधना करता है, धर्म का संकीर्ण अर्थ लेकर मनुष्यता में भेद उत्कीर्ण करता है तो यह धर्म की त्रुटि नहीं, नहीं यह धार्मिक मनोवृत्ति का परिचायक है।

आज के वैज्ञानिक युग में समय और दूरी पर नियंत्रण होने के कारण पूरा विश्व और उसके विभिन्न धर्म निकटतम बिन्दु पर उपस्थित दीख पड़ते हैं। यही कारण है कि छायावादी कवियों ने किसी एक धर्म को प्रधानता नहीं दी। यद्यपि सभी धर्मों में कुछ न कुछ सार तत्व है। पर सभी एवं विभिन्न मतमतान्तरों में उनके सत्य परक वस्तुओं को भी विश्लेषण की प्रवृत्ति भिन्न है। इसी से धर्म सत्य परक दृष्टि की विचारधारा में भी आ जाता है। यह मानव मन की दुर्बलता को उसकी अन्य सम्भावनाओं से ऊपर कर लेता है तब उसकी स्वाभाविक गति लकड़ी-सी बन जाती है। [७८] यहीकारण था कि छायावादी कवियों ने आदर्श धर्म की धारणा से प्रेरित होकर 'मानव धर्म' की स्थापना का प्रयत्न किया जिससे पूरा मानव समाज धर्म के वास्तविक रूप के निकट आया। धर्म की परिधि युगानुरूप विस्तृत हो सके और मानव धर्म में सभी धर्म जाति तथा समाज की संकीर्ण परिधि में रहने वाले एक मानव धर्म के सदस्य हो जायें। धर्म यहाँ सम्पूर्ण मानवता का परिचायक होगा। धर्म की परिचायक मानवता नहीं क्योंकि मनुष्य की उन्नति प्रगति एवं विकास के लिए ही धर्म की स्थापना या उपयोगिता है। जिसका संबंध

---

७७. मानवता और शिक्षा : पूरब और पश्चिम के देशों में — यूनेस्को द्वारा आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय चर्चा की रिपोर्ट। पृ० ११

७८. इरावती, पृ० १०२

बाह्य वृत्तियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मानदण्डों से सम्बन्धित है और धर्म मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के विकास से आदर्श धर्म समस्त मानव संसार के लिए उपयोगी धर्म होगा , जिसमें पंत के अनुसार` धर्म नीति से मुक्त विश्व मानव` [७९] विश्वबन्धुत्व की पीठिका पर नये युग का सृजन हो सकेगा । पर अब तक अपने अपने धर्म की महानता बताने वाले ` धर्म के संकीर्ण तत्व को लिए जो पंथ धर्म के महाजन बन गये हैं उनकी कोई उपयोगिता नहीं रही भले ही वे यह कहते रहे कि उसी पर चलने में कल्याण है और सभी शास्त्र, सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं । [८०] क्योंकि उन्होंने ही अपने धर्मों के विधि नियमों से धर्म की वास्तविकता को दुरूह, अगम्य एवं बहु मंत्र-तंत्र वादों पंथों में खंडित धर्म की अभिव्यक्ति की । इससे मानव-मानव के लिपट आने की जगह दूर कर दिया । [८१]

पर वर्तमान युग अपनी परिस्थिति में`संस्कृति धर्म के नूतन कल्प [८२] की ओर देख रहा है । जहाँ शापित तापित या पापी कोई न होगा । सम्पूर्ण मानवता को विकास के लिए सुविधाएं प्रदान रहेंगी` जीवन की वसुधा` समरस समतल होकर बहेगी । [८३]

मानवतावादी आदर्श धर्म की स्थापना की पृष्ठभूमि प्रसाद साहित्य में बीज रूप में दीख पड़ती है । पर उसका विकास नहीं हो सका । निराला भी अपने समसामयिक धर्म के बाह्य आडम्बर की भावना से संतुष्ट नहीं थे । इस बात की स्पष्ट धारणा मिलती है कि उनके अनुसार यदि धर्मसेबाह्या-डम्बर हटा लिये जायं तो धर्म अपने आदर्श रूप में उपस्थित होगा । पर धर्म की इस उपयोगिता परक दृष्टि महादेवी और रामकुमार वर्मा में भी मिलती है ।

---

७९. लोकायतन, पृ० ४७२
८०. लोकायतन, पृ० ३१४
८१. लोकायतन, पृ० ३२७
८२. अपरा, पृ० १२६
८३. कामायनी, पृ० ३००

यद्यपि किन्हीं अंशों में समसामयिक समाज से धर्म के बाह्याडम्बरों से ये सभी संतुष्ट नहीं थे।

प्रसाद और निराला की आदर्श एवं आडम्बरहीन धर्म की धारणा का विकास पंत में मानव धर्म के रूप में पूर्ण रूप से हुआ। पंत में इस भावना का प्रचार प्रसार ज्योत्स्ना के अनन्तर लोकायतन तक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पंत में इस भावना का प्रचार-प्रसार मानव धर्म में सभी मानव एक होंगे और उनके मध्य किसी आडम्बरात्मक धर्म की विभाजक रेखा एवं प्रतिस्पर्द्धा नहीं होगी। उसमें सभी के आत्मोन्नति के साधन उपलब्ध होंगे। संपूर्ण मानव समाज आदर्श धर्म की संगठनात्मक धर्म की प्रक्रिया से संचालित होगा। यह धर्म जितना आत्मिक उन्नति में सहायक होगा उतना ही भौतिक उन्नति में भी। इसका मुख्य कारण यह है कि अपने अर्थ विस्तार में अब आदर्श धर्म का सम्बन्ध केवल आकस्मिक उन्नति से ही नहीं वरन् सामाजिक उन्नति से भी सम्बन्धित होगा।

अत: वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों के साथ संकीर्णता से परे समाज में आदर्श मानव धर्म की स्थापना छायावादी कवियों की वैचारिक उपलब्धि कही जायेगी, जिसकी स्थापना के लिए उन्होंने समाज के सभी रूढ़िग्रस्त धर्मों की भर्त्सना की और आदर्श धर्म की सहायता से आदर्श समाज की स्थापना की योजना का वैचारिक संकल्प रखा।

खण्ड २

अध्याय १०--दर्शन -

प्रसाद- आनन्दवाद, समरसता, रहस्य, शून्यवाद, दु:खवाद, क्षणिकवाद, करुणा, परमाणुवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, रहस्यवाद ।

पंत- रहस्यवाद, मार्क्सवाद, गांधीवाद, अरविन्द दर्शन का प्रभाव ।

निराला- रहस्यवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, प्रगतिवाद, रामकृष्ण मिशन का प्रभाव , भक्ति दर्शन, शाक्त मत।

महादेवी- दु:खवाद, करुणा, मायावाद (अद्वैत) , रहस्यवाद ।

रामकुमार-- कबीर दर्शन का प्रभाव, बौद्ध दर्शन का प्रभाव, रहस्यवाद ।

दर्शन

दर्शन शब्द 'दृश' (देखना) धातु से करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय लगा कर बना है जिसका अर्थ होता है 'दृश्यते अनेन इति' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय। इस देखा जाय का अर्थ यदि छायावादी कवियों के साहित्य के आधार पर कहा जाय तो तत्व चिन्तन द्वारा जीवन के सारभूत तत्व का ज्ञान है जिसके माध्यम से वह सत्य की प्राप्ति में समर्थ होता है, चाहे वह सत्य व्यक्ति, समाज के भौतिक जीवन से सम्बन्धित हो या आध्यात्मिक जीवन से। आलोच्य छायावादी कवियों ने दर्शन की कोई परिभाषा नहीं दी। पर उन्होंने प्रचलित एवं सामान्य धारणा का अनुसरण किया है। फिर भी उनकी विचारधारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि दर्शन साध्य नहीं साधन मात्र है जिसका लक्ष्य सूक्ष्म और स्थूल जगत के आन्तरिक सत्य का साक्षात्कार है। दर्शन के सम्बन्ध में उन छायावादी कवियों की विचारधारा में किसी नयी व्याख्या का प्रयत्न नहीं मिलता किन्तु यह अवश्य है कि दर्शन के शास्त्रीय भेद एवं विभाजन के स्थान पर उन्होंने उसके तात्विक चिन्तन पक्ष पर बल दिया है। प्रसाद और पंत ने तो दर्शन की महत्ता भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की। कदाचित इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर प्रसाद ने 'भूख भरी दर्शन की प्यास'[1] की अभिव्यक्ति की। यह इस बात का द्योतक है कि दर्शन प्रसाद की दृष्टि में मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। पंत के अनुसार भी इसका महत्व इसलिए है कि यह 'ज्ञान, विज्ञान, भावना, कल्पना एवं गुणों की अंतिम और ठोस परिणति'[2] दे सकने में प्रयत्नशील है साथ ही समर्थ भी।

पर जहाँ तक प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा के जीवन दर्शन एवं उन पर प्रभाव का प्रश्न है उन्हें क्रमशः विश्लेषित करना ही अभीष्ट होगा।

---

१. कामायनी, पृ० २२
२. ज्योत्स्ना, पृ० १३४

प्रसाद

साहित्यगत साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रसाद की शैव दर्शन पर आस्था थी और वे शैव थे।[३] `शिवो देवता अस्य शैव:` काव्य से इस धारणा की पुष्टि होती है साथही काव्येतर साहित्य से भी। परन्तु देखना यह है कि प्रसाद के जीवनगत दार्शनिक विचारधारा का स्वरूप उनके साहित्य में किस प्रकार प्राप्त होता है। प्रेम पथिक में उन्होंने ` शिव को ही समष्टि `[४] रूप माना है साथ ही वह` विश्व का कल्याण कारक` है, विश्वमय है, विश्वेस` है।[५] अत: शैव दर्शन के अनुसार देखें तो सर्व प्रथम आनन्दवाद का विश्लेषण ही अभीष्ट होगा।

आनन्दवाद

प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए उनकी दृष्टि में आनन्दवाद के स्वरूप को भी विश्लेषित करना होगा। शैव दर्शन के-- शैव और शाक्त दोनों ही प्रमुख शाखाओं में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है। शैव `आत्मा` शाक्त, जगत् की प्रमुखता लेकर शिव से तादात्म्य की स्थिति में आनन्द

---

३. शिव-- १. हे शिव धन्य तुम्हारी महिमा, चित्राधार, पृ० २६, ३०

२. शिव रूप संसार क, चित्राधार, पृ० ७२

३. शिवरूप (जग पालक), चित्राधार, पृ० ७३

४. नान्दीपाठ, चित्राधार, पृ० ६१

५. शिव और शारदा, चित्राधार, पृ० १५४

६. स्तुति और विनय , चित्राधार, पृ० ५५

७. प्रेम पथिक, पृ० २३

८. कामायनी, पृ० २५२, २५३ (दर्शन सर्ग)

६. इरावती, पृ० १

४. प्रेम पथिक, पृ० २३

५. प्रेम पथिक, पृ० २३

प्राप्ति का सन्देश देते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् का "अयमात्मा परमानन्दः" शैव दर्शन में आनन्दवाद के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। वेदान्त में भी सत्-चित्-आनन्द की कल्पना की गयी थी पर शैव दर्शन में आनन्द पर विशेष रूप से बल दिया गया। सृष्टि ही शिव की कृपा द्वारा उत्पन्न है अतः यह आनन्दमय है। शिव के पांच स्वरूप हैं। वे हैं — (१) चित् शक्ति — परा प्रावेशिका[६] के अनुसार प्रकाश रूप है। इसी के द्वारा शिव स्वप्रकाशवान् हैं। (२) आनन्द-शक्ति — इसके द्वारा शिव आनन्दमय है। (३) इच्छा शक्ति — इसके द्वारा जगत्-सृष्टि व संहार करते हैं। (४) ज्ञान शक्ति — से शिव स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं। (५) क्रिया शक्ति — जिससे शिव सभी रूपों को धारण करते हैं। आनन्द में इन पांचों शक्तियों का सम्मिलन है।

प्रसाद के अनुसार आनन्द ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है क्योंकि सृष्टि का समस्त ज्ञान कर्म, इच्छा क्रिया आनन्द की प्राप्ति के निमित्त ही है। प्रसाद ने आनन्द को शिव के रूप में माना है दूसरी ओर आनन्द ही शिव की अभिव्यक्ति है जो कि उसकी कृपा के रूप में प्राप्त होती है। कामायनी का उद्देश्य सृष्टि में शैवागम के आनन्दवाद का प्रतिपादन है। "नित्य नूतनता का आनन्द"[७] और उसकी उपयोगिता जीवन से अलग कोई महत्व नहीं रखती। श्रद्धा सर्ग में इसका स्पष्टीकरण स्वयं हो जाता है जब प्रसाद —

एक तुम यह विस्तृत भू-खण्ड
प्रकृति वैभव से भरा अमन्द,
कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही
यही जड़ चेतन का आनन्द।[८]

कह कर उसकी सार्थकता व्यक्त करते हैं। इससे स्पष्ट है कि आनन्द की स्थिति चेतन के लिए जितनी महत्वपूर्ण है उतनी जड़ के लिए भी। यह जीव की ऊर्ध्वोन्मुखी स्वाभाविक स्थिति है। यही कारण है कि प्रकृति द्वारा उल्लास, काकली के स्वर में जीवन दिगन्त के अम्बर में आनन्द की प्रतिध्वनि गूंजा करती है।[९]

---

६. पराप्रावेशिका, पृ० १२
७. कामायनी, पृ० ६५
८. कामायनी, पृ० ६६
९. कामायनी, पृ० ६४

" कल्याण रूप में आनन्द सुमन" [१०] विकासमान हैं । "जिसमें दु:ख-सुख मिलकर मनके उत्सव आनन्द" [११] मनाया करते हैं, पर उसे अपनी अनभिज्ञता से " कुचल" [१२] देना या उपेक्षित करना शैव दर्शन में "आणव" का प्रभाव या अपनी अनभिज्ञता का द्योतक कहा जा सकता है । वस्तुत: यह आनन्द ही, " उच्छ्वसित शक्ति प्रोत जीवन का विकास" [१३] कर " चित का स्वरूप यह नित्य जगत.... उल्लासपूर्ण आनन्द सतत" [१४] करने में समर्थ होता है ।

कामायनी के दर्शन सर्ग के अनुसार -- " मिटते असत्य से ज्ञान लेश, समरस अखण्ड आनन्द वेश " [१५] और आनन्द की स्थिति में जड़ चेतन की समरसता सुन्दर साकार रूपमें, चेतना के विलास रूप में घने आनन्द अखण्ड रूप, [१६] की स्थिति प्राप्त कराती है । कामायनी भी इस स्थिति को प्राप्त करती है और मनु भी । कदाचित यही कारण है कि प्रसाद ने श्रद्धा के द्वारा श्रद्धा के लिए " भगवती " [१७] का सम्बोधन दिया और ---

" मनु ने कुछ कुछ मुसक्या कर कैलास ओर दिखलाया ,
बोले" देखो कि यहां पर, कोई भी नहीं पराया ।
हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो , जिसमें कुछ नहीं कमी है ।" [१८]

कहते हुए सारी सृष्टि को ही अपने रूप में देखा । यह शिव का ही विस्तार है । साथ ही प्रतिभिज्ञा दर्शन के अनुसार शिव की तादात्म्य स्थिति भी और प्रतिभिज्ञा की चरम आनन्द उपलब्धि भी । " नेत्रतंत्र" के अनुसार भी शिव का रूप

---

१०. कामायनी, पृ० १०१
११. कामायनी, पृ० १०२
१२. कामायनी, पृ० १३६
१३. कामायनी, पृ० १६१
१४. कामायनी, पृ० २४२
१५. कामायनी, पृ० २५४
१६. कामायनी, पृ० २६४
१७. कामायनी, पृ० २८७
१८. कामायनी, पृ० २८७

परमानन्द ही है।[१६] 'तंत्रालोक' से भी इसी मत की पुष्टि होती है कि "अनुत्तरा-अवस्था के भीतर आनन्द की उपलब्धि होती है।"[२०]

आलोचकों को प्राय: यह भ्रम है कि प्रसाद ने मात्र कामायनी में ही आनन्दवाद की अभिव्यक्ति की है। सच तो यह है कि उनके काव्य साहित्य में ही प्रेम पथिक के "आनन्द नगर", "आनन्द स्रोत",[२१] झरना के विश्व-विमल आनन्द-भवन,[२२] करुणालय के आनन्द "पूर्ण आनन्द",[२३] तथा कानन कुसुम[२४] और चित्राधार,[२५] मे भी आनन्दवाद की स्थिति का क्रमिक विकास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रसाद के गद्य साहित्य में भी "अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्वलित करो। सब मलिन कर्म उसमें भस्म हो जायेंगे। - उस आनन्द के समीप पाप आने से डरेगा।"[२६] "बौद्धिक दम्भ" के अवसाद को आर्य जाति से हटाने के लिए आनन्द की प्रतिष्ठा करनी होगी,"[२७] आनन्द की सीमा में .... प्रसन्नता प्रत्येक अवस्था में बहने वाले प्राणियों के विरुद्ध न होगी,"[२८] क्योंकि "आनन्द का अन्तरंग सरलता और बहिरंग सौन्दर्य है, इसी में वह स्वस्थ रहता है।"[२९]

---

१९. नेत्रतंत्र, भाग २, पृ० २५
२०. तंत्रालोक, २-३-१६०
२१. प्रेमपथिक, पृ० ६
२२. झरना, पृ० १६, २०, ३८, ४१, ७।८६
२३. करुणालय, पृ० ८, १६
२४. काननकुसुम, पृ० १६, २७, २६, ३०, ३१, ३३, ४७,६३,८६, ६६, ११६,१८४
२५. चित्राधार, ६,१७,६०, ६२, ७३, १३६, १४३
२६. इरावती, पृ० ५६
२७. इरावती, पृ० २२
२८. इरावती, पृ० १०४
२९. एक घूंट, पृ० १५

"...... विश्व की कामना का मूल रहस्य आनन्द ही है।"[30] "अहा, कितना सुन्दर जीवन हो, यदि मनुष्य को इस बात का विश्वास हो जाय कि मानवजीवन की मूल सत्ता में आनन्द है।[31]— आनन्दवाद की ही स्थिति पर प्रकाश डालता है।

प्रसाद साहित्य में पद्य की तरह गद्य साहित्य में भी प्रतिभिज्ञा दर्शन, आनन्दवाद के जीवन दर्शन का द्योतक है। उनका आनन्दवाद दर्शन का आनन्दवाद ही नहीं जीवन का आनन्दवाद भी है जिसमें तत्कालीन विश्वयुद्ध की विभीषिका से लेकर देश की राजनीतिक – आर्थिक – सामाजिक– भौतिक तथा अध्यात्मिक कितनी ही समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। यह ज्ञान,इच्छा,क्रिया का समन्वय ही नहीं जीवन की उपलब्धि का सत्य है। अन्य भारतीय दर्शन में भी ब्रह्म की स्थिति आनन्द में ही मानी गयी है, पर अन्तर केवल यहाँ इतना है कि ~~प्रसाद ने~~ शैव दर्शन में सच्चिदानन्द परमसुख को ही जीवन का लक्ष्य माना है। सौन्दर्य लहरी के अनुसार भीनिम्नलिखित श्लोक से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है

त्वमेव स्वात्मानं परिणामयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिव युवति भावेन विभृषे।[32]

कामायनी में परमशिव की प्राप्ति ही कामायनीकार का लक्ष्य है।

समरसता

प्रसाद ने कामायनी में ही नहीं उससे पूर्व 'एक घूंट'[33] (गद्य) में भी समरसता की स्थिति को साधक की चरम उपलब्धि माना है। शैव दर्शन में साधक

---

३०. एक घूंट, पृ० १७

३१. एक घूंट, पृ० १७

३२. सौन्दर्य लहरी, पृ० ३५

३३. एक घूंट, पृ० ६३

समरसता की स्थिति में पहुंचकर अपने अस्तित्व को परम शिव में तादात्म्य कर लेता है। पर परम शिव में लीन होने पर भी अपने तात्विक स्वरूप को नष्ट नहीं करता। सच तो यह है साधक के सभी तत्व परम शिव में लीन होकर 'चिन्मय' हो जाते हैं। यही स्थिति कामायनी में भी प्रदर्शित की गयी है।

कामायनी में समरसता की जो स्थिति वर्णित है उसके अनुसार समरसता के अखंड आनंदावेश में असत्य, सेअज्ञानक्लेश मिट जाता है। समरसता की स्थिति में कोई शापित या तापित नहीं रहता। जीवन 'वसुधा समतल' सतह पर गतिमान होता है, इसका कारण है कि ऐसी अवस्था में हर समय समरसता की स्थिति रहती है।[३५] यही कारण है कि मनु और श्रद्धा जब समरसता की स्थिति प्राप्त करते हैं तो उन्हें प्रकृति से सम्बन्धित जिस एक रसता का बोध होता है वह है —

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती। आनन्द अखंड घना था।[३६]

सुख-दुःख, व्यक्ति-समाज, अधिकारी-अधिकृत शिव और शक्ति प्रकृति पुरुष में समरसता की स्थिति में ठीक वैसे ही आनन्द की प्राप्ति करते हैं जैसे मनु और श्रद्धा को प्राप्त हुआ था। यही शिव-शक्ति की समरसता है।

यद्यपि प्रसाद ने 'आणव' शब्द का प्रयोग नहीं कियातथापि मनु को भी 'आणव' की स्थिति में चित्रित किया गया है। प्रतिभिज्ञा दर्शन के अनुसार ज्ञान, इच्छा, क्रिया में सामंजस्य आए बिना समरसता की प्राप्ति नहीं हो सकती। यथा —

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।[३७]

में यही आणव की स्थिति है। यह विभेदक है। 'आणव' ही मनुष्य को दुष्कर्म

---

३५. कामायनी, पृ० २८८
३६. कामायनी, पृ० २६४
३७. कामायनी, पृ० २८४

की ओर प्रवृत्त करता है । वह इच्छा से इन्द्रियों की लालसा अर्थात् शब्द,रूपस्पर्श, रूप-रस-गन्ध, ज्ञान में बुद्धि के भेदों का कारण बनता है और कर्म सतत संघर्ष की प्रेरणा देता है । `आणव` से मुक्ति मिलते ही मनु समरसता की स्थिति प्राप्त करते हैं । इसी से समरसता की पूर्व स्थिति में साधक की ज्ञान इच्छा, क्रिया तीनों का सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है जिसका निर्देश कामायनी में किया गया है ।

समरसता का उद्देश्य विरोधी शक्तियों को परस्पर सामंजस्य करना है मनु को समरसता इस `त्रिदिक विश्व`, ~~आलोकबिन्दु~~ को मात्र दर्शन कर लेने से नहीं प्राप्त हो जाती, जब तक कि श्रद्धा उन्हें तीनों शक्तियों से परिचित नहीं कराती । कदाचित् प्रसाद ने इसी से ` त्रिदिक विश्व, आलोक बिन्दु[३८] भी `तीन दिखायी पड़े अलग वे -- कहला कर इस स्थिति का बोध कराया है । मनु -- ` इस त्रिकोण के मध्यबिन्दु तुम` की स्थिति का बोध हो जाने पर ही `आणव` की स्थिति से छुटकारा पाते हैं ।

समरसता के अभाव में जीवन संघर्ष पूर्ण तथा क्लेश युक्त रहता है । कदाचित् मनु की मानव से ईर्ष्या, इड़ा पर आधिपत्य की भावना और सारस्वत प्रदेश में होने वाले युद्ध के अनन्तर अनुभूत हुए क्लेश का यही कारण था । सामान्य जीवन के लिए भी प्रसाद ने समरसता के महत्व की ओर इंगित किया है । प्रसाद के अनुसार शैव दर्शन की समरसता केवल दार्शनिक और आध्यात्मिक जीवन के लिए नहीं वरन् सामान्य जीवन को भी अपने में समाहित कर लेती है । समरसता की परिधिगत व्यापकता के कारण ही श्रद्धा मानव को समरसता के प्रचार की शिक्षा देती है --

" सबकी समरसता कर प्रचार, मेरे सुत सुन माँ की पुकार ।"[३९]

मनु श्रद्धा के आशिर्वाद रूप में प्राप्त समरसता के प्रचार की आज्ञा भी ~~समरसता के प्रचार की आज्ञा भी~~ समरसता के मूल आधार शक्ति, शिव के अनुग्रह का द्योतक है । ~~[illegible]~~

---

३८. कामायनी, २७३

३९. कामायनी , पृ० २५६

प्रसाद के दृष्टिकोण में समरसता का महत्वपूर्ण स्थान है और कामायनी में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की समरसता व्यापक मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित हुई है जिसमें विश्व की सारी असंगतियाँ और वर्तमान जीवन के संघर्षमय स्थिति का समाहार कर दिया गया है। प्रारंभ से ही कथावस्तु का घटनाक्रम ऊर्ध्वोन्मुखी दीख पड़ता है जिसका लक्ष्य समरसता प्राप्त करना है। `आणव` के नष्ट होते ही कामायनी के अन्तिम तीन सर्ग-दर्शन, रहस्य और आनन्द में प्रत्यभिज्ञा दर्शन समरसता की रूपरेखा क्रमश: साधनात्मक स्थिति की तरह स्पष्ट हो जाती है।

`स्वच्छन्द तंत्र` में समरसता नदी, समुद्र संयोग के रूप में स्वीकार की गयी है।[४०] अभिनव गुप्ताचार्य के तन्त्रालोक के अनुसार आनन्द शक्ति में विश्रान्ति पाने के बाद योगी को समरसता की स्थिति प्राप्त हो जाती है।[४१] प्रसाद की कामायनी में भी मनु और श्रद्धा के चेतनात्मक तत्व समरसता में लय हो जाते हैं और इस समरसता का बोध भी उन्हें आनन्द सर्ग में ही प्राप्त हो जाता है।

रहस्य

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में अज्ञान और माया की भी स्थिति है किन्तु यह माया और अज्ञान शैव दर्शन की तरह स्वतंत्र नहीं है। यह परम तत्व शिव के अधीन है। शिव की ही लीला से इस अज्ञान का रहस्य खुलता है और समरसता के अनन्तर आनन्द की स्थिति प्राप्त होती है।

सामान्यत: रहस्य के तीन प्रकार है। धर्म रहस्य, अर्थ रहस्य और काम रहस्य। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार प्रसाद ने कामायनी में धर्म रहस्य का ही विशेष वर्णन किया है।

---

४०. स्वच्छन्द तंत्र, भाग २, पृ० २७६, २७७

४१. तन्त्रालोक, भाग १, पृ० २६

जगत की स्थिति "अन्तरिक्ष में गुप्त रहस्य"[४२] की तरह है। "सृष्टि के कण कण में.... रहस्य.... नित्य"[४३] रूप से उपस्थित है। सामान्य जीव इस "अतीन्द्रिय स्वप्नलोक (के मधुर रहस्य" में "उलझता"[४४] चला जाता है और "तम के सुन्दरतम रहस्य"[४५] को ही ईश का रहस्यमय वरदान समझने लगता है। सृष्टि के हर कारण -कार्य सम्बन्ध में "सुनिहित"[४७] रहस्य की सत्ता रहती है। कामायनी श्रद्धा सर्ग में इस बात का प्रसाद ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि "अपने स्वार्थों से आवृत हो मंगल रहस्य सकुचे सभीत"[४८] की स्थिति प्राप्त करता है। सामान्य व्यक्ति "कल्याण- भूमि यह लोक" यही श्रद्धा रहस्य जाने न प्रजा" की[४६] स्थिति में रहता है। पर यह यथार्थ जान लेने पर- इस रहस्य"[५०] का खुलना आसान हो जाता है। तब यह "रहस्य..... शुभ्र संयम बन[५१] में प्रकट होता है। पर यह स्थिति भी तभी आती है जब शिव द्वारा इस बात की कृपा दृष्टि होती है कि "सोये संसार से जाग पड़ो तो मैं अपनी लीला तुम्हें दिखाऊंगा। इस गुप्त रहस्य को जिसको सोकर स्वप्न देखते हो अभी"[५२]। ऐसी स्थिति में ही प्रत्यभिज्ञाहृदय के अनुसार "उन्मीलनम् अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्"[५३] अर्थात् जो कुछ स्थिति है उसका अनावरण ही प्रकटीकरण है, की स्थिति प्राप्त होती है।

प्रसाद ने कामायनी में रहस्य के अनन्तर ही समरसता और आनन्द के-अनन्तर-ही की स्थिति बतायी है। अतः रहस्य समरसता और आनन्द के पूर्व की स्थिति है। पर इस रहस्य का द्वार बिना शिव की कृपा के ठीक वैसे ही नहीं खुल सकता जैसे पुष्टि मार्ग में कृष्ण की कृपा के बिना भक्ति-भाव का उदय नहीं हो सकता।

---

४२. प्रेम पथिक, पृ० ५
४३. कामायनी, पृ० १६
४४. कामायनी, पृ० ३५
४५. कामायनी, पृ० ३७
४६. कामायनी, पृ० ५३
४७. कामायनी, पृ० ११७
४८. कामायनी, पृ० १६५
४६. कामायनी, पृ० १६६
५०. कामायनी, पृ० १७६
५१. कामायनी, पृ० २५७
५२. कानन-कुसुम, पृ० १२५
५३. प्रत्यभिज्ञा-हृदय, पृ० ६

शून्यवाद

प्रसाद साहित्य में 'शून्य' का प्रयोग अनेक बार हुआ है, पर देखना यह है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से यह शून्य [५४], शून्यता, [५५] शून्यता-सा, [५६] शून्यते, [५७] शून्य-प्रान्त, [५८] शून्य-भेदिनी, [५९] या शून्य-शून्य, [६०] शब्द बौद्ध दर्शन के शून्यवाद से कहाँ तक प्रभावित है।

झरना में प्रसाद ने जीवन को " शून्य-पथ[६१] " की ओर अग्रसर होता बताया। उनकी दृष्टि में भौतिक जीवन के शून्य गगन, [६२] में नाना स्वच्छन्द जीवन की गतिविधियाँ को प्रभावित करते हैं। पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि प्रेम पथिक में शून्य मार्ग और विचरणाकारी जिस पवन[६३] रूपी द्रव्य का वर्णन है वह अर्थ संगति की दृष्टि से बौद्धों की शून्यवाद की अपेक्षा प्रत्यभिज्ञा दर्शन के द्रव्य से अधिक मेल रखता कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन के प्रभाव-रूप में नागार्जुन के शून्यवाद की स्थापना की छाया भी कामायनी में यदाकदा देखने को मिलती है। 'शून्य का प्रकट अभाव[६४] ' शून्य में फिरता हूँ असहाय [६५] ' ' शून्यता का उजड़ा-सा राज'[६६] किस लक्ष्यभेद को शून्य चीर [६७] हँस पड़ा गगन वह शून्य लोक'[६८] शून्य के महाविवर'[६९] और ' शून्य असत् या अन्धकार' [७०]

---

५४. आँसू, पृ० ८, १५, ४१, ७६ काननकुसुम पृ० ७४, ६३, कामायनी, ६, १८ ५५, ५८, १५७, १७१, १९०, २०७, २०८ २४५, २५०, २५१, चित्राधार- १३९, १६०, १६६, झरना, १६, २६, ३८, ८२, प्रेमपथिक पृ० ३

५५. कानन कुसुम, ५३, ८०, कामायनी, ४८, १५८

५६. कामायनी, पृ० १७६, ५७; -१५६

५७. कामायनी, पृ० ३८

५८. कामायनी, पृ० १५४

५९. कामायनी, पृ० १५२

६०. कामायनी, पृ० २०८

६१. झरना, पृ० २६

६२. झरना, पृ० ३८

६३. प्रेम पथिक, पृ० ३

६४. कामायनी, पृ० १८

६५. कामायनी, पृ० ४८

६६. कामायनी, पृ ०४६

६७. कामायनी, पृ० १५७

६८. ,, पृ० १७१

६९. ,, १९०

७०. कामा०, पृ० २२०

का प्रयोग क्रमशः रिक्त, आकाश, ईश्वर, स्वर्ग, शून्य का भाव या धर्म, तथा निस्तब्धता के अर्थ में प्रयोग किया गया है वहाँ यह शून्यवाद के निकट दीख पड़ता है। इसके विपरीत जहाँ हृदय की रिक्तता का उल्लेख है वहाँ उपेक्षित हृदय के अर्थ में शून्य का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत संदर्भ में दार्शनिक शून्यवाद का विचार ही अभीष्ट होगा।

सैद्धान्तिक दृष्टि से दुःख, गति, बन्धन, उत्पत्ति, निर्वाण आदि सभी वस्तुओं की परीक्षा के अनन्तर यह सिद्ध हुआ है कि सभी में विरोधी धर्मों की स्थिति इस बात की द्योतक है कि सभी शून्य हैं। नागार्जुन के अनुसार शून्य ही एकमात्र तत्त्व है, माध्यमिक कारिका[७१] के अनुसार इस दृष्टि में न सत है, न असत् है, न सत् और असत् दोनों की स्थिति है। इस प्रकार इन चारों कोटियों से शून्य एक विलक्षण तत्त्व है जिसे माध्यमिकों ने "परम तत्त्व" कहा है। इसे अलक्षण भी कहा गया है। नागार्जुन ने इसी शून्यता को प्रतीत्यसमुत्पाद की संज्ञा से अभिहित किया है जिसमें उसने प्रतिपादित किया है कि विश्व और उसकी सारी जड़-चेतन वस्तुएं किसी स्थिर अचलतत्त्व आत्मा द्रव्यादि से बिलकुल शून्य हैं।[७२] प्रसाद ने शून्यवाद की स्थिति का वर्णन किया है पर उनके उनके पूरे जीवन दृष्टि की ओर दृष्टिपात करें तो बौद्ध धर्म के शून्यवाद का पूरा समर्थन नहीं मिलता। उनका यह शून्यवाद उपनिषदों के नेति, नेति के अधिक निकट दीख पड़ता है।

दुःख वाद

बौद्धों के शून्यवाद के अतिरिक्त दुःखवाद, क्षणिक-वाद और करुणा के प्रभाव को भी विश्लेषित करना अभीष्ट होगा। दुखवाद के सन्दर्भ में यदि देखा जाय तो — आँसू के कवि प्रसाद की विकल वेदना में चौदहों भुवन में सुख का अभाव दिखायी देता है।[७३] कामायनी में भी देव-सृष्टि

---

७१. माध्यमिक कारिका, पृ० १।७

७२. विग्रह व्यावर्तनी, पृ० २२

७३. आँसू, पृ० ५५

पर दु:ख-जलधि का अपार नद उमड़ता चित्रित किया गया है। [७४] जिसमें व्यथा की नीली लहरों में सुख के दुतिमान मणिगण सब कुछ बिखरे दीख रहे हैं। [७५] सारा विश्व ही दुख की आंधी से पीड़ित है। [७६] संसार ही दु:खमय है। [७७] जब यहाँ सब लालसा क्रन्दन करती है, दुखानुभूति हँसती है और नियति..... मिट्टी के पुतलों के साथ अपना क्रूर मनोविनोद करती है,[७८] तो इस जीवन में सुख की कल्पना ही क्या की जा सकती है। यही कारण है कि विशाख की चन्द्रलेखा का सारा जीवन ही दुख सहते बीत रहा है [७९] सब दु:ख है, सब क्षणिक है, सब अनित्य है[८०], दिवाकर की धारणा है कि प्राणी दु:खों में भगवान् के समीप होता है। [८१] भगवान् दुखियों से अत्यन्त स्नेह करते हैं। दु:ख भगवान् का सात्विक दान है, मंगलमय उपहार है।[८२]

उपर्युक्त सन्दर्भ में बौद्ध दर्शन को देखें तो उसके अनुसार समस्त जगत् दुखमय है। भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्य दु:ख पर ही आधारित हैं। १. सर्वदु:खम्--(संसार दु:खमय है), २. दु:ख समुदय: --(वह दु:ख का कारण है), दु:ख से पीड़ित होकर उसके नाश का उपाय लोग ढूंढ़ा करते हैं। ३. दु:ख निरोध --इन्हें विश्वास है कि दु:ख का नाश होता है।)४. दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपद --(इसके अनुसार दु:खों के नाश के लिए उपाय भी हैं।) यही बुद्ध के चार आर्य सत्य हैं जो दुखवाद के आधारशिला के रूप में प्रसाद को भी प्रभावित करते हैं। कदाचित यही कारण था कि उपर्युक्त संदर्भों में प्रसाद ने संसार को ही दुखमय चित्रित किया है। पर जैसा दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपद के अनुसार कहा जा चुका है दु:खों के नाश का उपाय भी है, प्रसाद यहीं इससे

---

७४. कामायनी, पृ० ८
७५. कामायनी, पृ० ५४
७६. कामायनी, पृ० २२२
७७. देवरथ (कहानी)
७८. आंधी
७९. विशाख, १-१
~~८०. स्वर्ग के खंडहर में~~ -
८१. राज्यश्री, ३-५
८२. कंकाल, पृ० १५६

आगे बढ़ कर दु:ख के नाश का उपाय अपनी साधना द्वारा शैवागम के समरसता और आनन्दवाद में ढूंढ़ते हैं ।

क्षणिक वाद

जहाँ तक क्षणिक वाद का सम्बन्ध है प्रसाद ने जीवन को क्षणिक[८३] की संज्ञा से अभिहित करते हुए एक घूंट में " क्षणिक सुखों पर सतत झूलती शोकमयी ज्वाला,[८४] के रूप में चित्रित किया है क्योंकि इस नश्वर जीवन में क्षण भर का सुख ,[८५] भले ही अच्छा लगे पर वस्तुत: यह सुख भी भ्रान्ति है । जीवन कली का" अभिलाषा--मकरन्द सूख जायगा वह मुरझा जावेगी ,[८६] " मौन , नाश, विध्वंस, अंधेरा और मृत्यु की चिर-निद्रा,[८७] ही इस क्षणिक सृष्टि की ओर ही संकेत करती है ।

बौद्ध धर्म में संस्कार अनित्य हैं,[८८] साथ ही सम्पूर्ण भव अनित्य दु:खी और परिवर्तनशील है[८९] क्योंकि सभी नष्ट हो जाने वाले हैं,[९०] सब संस्कार अनित्य हैं, यह जब प्रज्ञा से मनुष्य देखता है तो वह दु:खों में निर्वेद प्राप्त करता है --यही मार्ग विशुद्धि का है ।[९१] बुद्ध की दृष्टि में अनित्यता या क्षणिकता का यही अर्थ था क्योंकि बौद्ध दर्शन के अनुसार यह सिद्धान्त ही है कि सृष्टि की कोई वस्तु स्थिर नहीं सब कुछ प्रगतिशील है । उसमें उत्पत्ति और निरोध है । प्रसाद ने बौद्धों के क्षणिकवाद को तो ग्रहण किया है पर यह उनका सम्पूर्ण जीवन दर्शन नहीं बन सका ।

---

८३. कामायनी, पृ० १६
८४. एक घूंट, पृ० २४-२५
८५. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २०१
८६. प्रेमपथिक, पृ० १३
८७. कामायनी, पृ० ६८
८८. "अनिच्चा वत संखारा"
८९. सब्बे भवा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा -- अंगुत्तर-निकाय ४।१६।५
९०. "वयधम्मा संखारा"
९१. धम्मपद, २०।५

करुणा

प्रसाद पर बौद्धों के दु:ख वाद और क्षणिक भव्वाद के प्रभाव को विश्लेषित करने के अनन्तर बौद्धों की करुणा के प्रभाव को देखना भी युक्ति-संगत होगा । बौद्धों ने करुणा को विशेष महत्व देते हुए उसे महाकरुणा-संज्ञा से अभिहित किया है । ऐसे तो वैष्णवों ने भी करुणा को मानवीय जीवन का विशिष्ट अंग माना । पर बौद्धों द्वारा करुणा को विशेष उत्कर्ष-प्रकर्ष दिए जाने के कारण यह उस धर्म का विशिष्ट अंग बन गया ।

प्रेम पथिक में प्रसाद ने करुणा को गंगा-यमुना की तरह पवित्र और मनुष्य की महानता का साधन बताया है[६२] साथ ही उन्होंने करुणा को कामायनी के कर्म सर्ग में किलातआकुली के पौरोहित्य में किए गए मनु द्वारा पालित पशुओं की बलि के सन्दर्भ में उसे विशेष रूप से उभारा है । [६३] यज्ञ की शेष गाथा के रूप में " रुधिर के छींटे", "अस्थि खण्ड की माला", "पशुओं की कातरवाणी" एक करुण दृश्य उपस्थित करती है जिसमें उनका दृष्टिकोण कदाचित यह प्रतिपादित करना था कि "मानवीय सृष्टि करुणा के लिए है ।[६४] क्योंकि यही वह शक्ति है जो "विश्व भर में..... प्राणिमात्र में समदृष्टि रखती है ।[६५] कानन कुसुम में तो " स्वयं " विश्वेश्वर"[६६] को भी करुणामय बताया गया है । राज्यश्री का दिवाकर दु:खपूर्ण धरती को चिरकालिक शान्ति प्रदान करने की कामना करता है[६७] क्योंकि इसके बिना "विश्व-वेदना" को सुख की उपलब्धि नहीं हो सकती ।[६८] प्रसाद के गौतम की धारणा है कि

---

६२. प्रेम पथिक, पृ० २२
६३. कामायनी, पृ० ११६
६४. अजातशत्रु , १-१
६५ अजातशत्रु , १-२
६६. काननकुसुम, पृ०
६७. राज्यश्री, पृ० ४६
६८. अजातशत्रु , १-२

" विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा ही है जो प्राणिमात्र में समदृष्टि रखती है। इसी के द्वारा पशु सृष्टि में मानवता का विकास हुआ "।[९९] अतः भू-मण्डल पर स्नेह का, करुणा का, क्षमा का, शासन है। प्राणिमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो। [१००] यह उद्देश्य होना चाहिए। जनमेजय का नागयज्ञ ' में प्रार्थना में भी प्रभु के करुणा-कटाक्ष की ही अभिलाषा की गयी है। [१०१] अजातशत्रु में तो करुणा से ही स्वर्ग की सृष्टि मानी गयी है।

इस प्रकार देखते हैं कि प्रसाद के पद्य साहित्य में स्थापित करुणा की महत्ता की उनके गद्य साहित्य से भी पुष्टि मिलती है। प्रसाद की कृतियों में करुणा का स्वर मुखर है क्योंकि उसकी विस्तृत परिधि में उन्होंने दूसरे के दुःख या पीड़ा निवारण की इच्छा, दया, कृपा, सहानुभूति, स्नेह, विश्वप्रेम, कर्त्तव्यपरायणता, मानवीय धर्म के अर्थ के साथ करुणा, करुणाकर, करुणा दृष्टि, करुणानिधान, करुणानिधि, करुणामय, करुणाद्र और करुणा-युक्त जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया है।

इसे मानने से इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रसाद की कृतियों में करुणा का स्वर मुखर है और वह मानव धर्म के एक आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। कामायनी के साथ गद्य साहित्य में विशाख, राज्यश्री, अजातशत्रु और जनमेजय का नागयज्ञ में प्रसाद की करुणा सम्बन्धी विचारधारा एक विशेष दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में मिलती है। जहाँ वे ईश्वर से करुणा की प्रार्थना करते हैं वहाँ वैष्णव करुणा तथा जहाँ गौतम बुद्ध के प्रभाव में करुणा का उल्लेख है वहाँ बौद्धों की करुणा का प्रभाव कहा जा सकता है। कामायनी में करुणाप्रेरित श्रद्धा द्वारा मनु को उपदेश करुणा के दार्शनिक पृष्ठभूमि का ही समर्थन करता है।[१०२] श्रद्धा के अतिरिक्त उनके

---

९९. अजातशत्रु, १-२

१००. अजातशत्रु, पृ० १३२

१०१. जनमेजय का नागयज्ञ, ३-६

१०२. कामायनी, पृ० १३२

गद्य साहित्य में गौतमबुद्ध दिवाकर मित्र और प्रेमानन्द इसके मुख्य आख्याता हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रसाद की दृष्टि में जीवन के नैतिक मापदण्डों में करुणा का भी महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उससे हृदय में विशालता का प्रादुर्भाव होता है, अहिंसा, जीवनगत ध्येय बनता है। बिना इसके उनके अनुसार न भौतिक जीवन सुलभ्य हो सकेगा न आध्यात्मिक ही। यही कारण है कि प्रसाद ने करुणा की उपयोगिता परक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है।

परमाणु वाद

प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा पर शैवागम और बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यह प्रभाव काननकुसुम से ही दीख पड़ता है जिसमें उन्होंने एक विशेष स्थिति में 'परमाणु' की [१०३] स्तब्धता का उल्लेख किया है। साथ ही झरना और लहर में भी क्रमशः "अणु [१०४] परमाणु" से सृष्टि की रचना का संकेत मिलता है। [१०५] पर प्रसाद की विचारधारा पर वैशेषिक दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से कामायनी में ही देखने को मिलता है।

सृष्टि के प्रलय से ही कामायनी की कथावस्तु का प्रारम्भ होता है जिसमें कामायनीकार के अनुसार प्रलयावस्था में एक तत्व की ही प्रधानता [१०६] सर्वत्र दीख पड़ती थी वह है जल। वैशेषिक दर्शन के अनुसार पृथ्वी जल, तेजस और वायु इन चार द्रव्यों के द्वारा ही सृष्टि का कार्य रूप में अस्तित्व है।

---

१०३. कानन कुसुम, पृ० २६

१०४. झरना, पृ० ३८

१०५. लहर, पृ० ३३

१०६. कामायनी, पृ० १३

प्रलय में इन्हीं कार्यद्रव्यों का नाश हो जाता है। पर द्रव्यों के नाश की अवस्था में भी वे द्रव्य परमाणु रूप में आकाश में स्थित रहते हैं। मनु के समक्ष केवल जल ही जल दीखने का मूल कारण यह है कि पृथ्वी लय थी। वायु और तैजस् दर्शनीय नहीं होते। उनकी स्थिति आकाश में स्थित थी और सर्वत्र जल ही जल दीख रहा था। प्रलय के साथ प्रत्येक जीवात्मा की मनःस्थिति, पूर्व जन्म के कर्म और संस्कार के साथ धर्म-अधर्म की उपलब्धि के रूप में वर्तमान रहती है। कदाचित देव सभ्यता का विवेचन-विश्लेषण, सुख-दुःख और उसकी बोध गाथा के रूप में स्वयं मनु की उपलब्धि इसी ओर संकेत करती है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार प्रलय की स्थिति में सृष्टि का कोई भी कार्य नहीं होता। परमाणु भी अपनी स्वतंत्र सत्ता में जड़वत स्थित रहते हैं। कदाचित् कामायनी में पवन का घनीभूत होने के कारण स्वास्थ्य गतिरुद्ध होने और सृष्टि की विफलता [१०७] का भी यही कारण था। जिसमें नाश, अंधेरा, विध्वंस, शून्य की स्थिति में भी मनु का जीवन उनकी अमरता के कारण ही बच सका। [१०८] पर श्रद्धा और इड़ा के जीवित रहने के कारण के सन्दर्भ में इस ओर कोई संकेत नहीं मिलता कि प्रलय में भी उनका जीवन कैसे सुरक्षित रहा।

वैशेषिक दर्शन में प्रलय के अनन्तर सभी परमाणु पुनः सक्रिय होने के लिए तत्पर रहते हैं और वे कार्य भी तभी करते हैं जब जीव कल्याण के निमित्त परमात्मा को सृष्टि-रचना की इच्छा उत्पन्न होती है। एक परमाणु दूसरे विजातीय परिमाणु से संयुक्त होता है और इन दोनों के संयोग से सृष्टि रचना प्रारम्भ होती है। 'परमाणु रूपी पराग से शरीर की रचना होती है। [११०] पर इसके लिए आवश्यक है मूलशक्ति की इच्छा। काम सर्ग में मूल शक्ति के आलस्य त्याग कर उठ खड़े होने पर ही परमाणु की क्रियाशीलता का

---

१०७. कामायनी, पृ० १७

१०८. कामायनी, पृ० १८

१०९. कामायनी, पृ० १८

११० कामायनी, पृ० ५८

उल्लेख किया गया है । [१११] सृजन कार्य में अणुओं के कार्य में स्थिरता नहीं आती [११२] क्योंकि परमाणुओं में गति के लयात्मक क्रम में बाधा पड़ने पर विकर्षणमयी शक्ति के त्रास से सभी व्याकुल हो जाते हैं । [११३] कदाचित् परमसत्ता के संकेत पर ही सारस्वत नगर का पतन हुआ पर उसकी प्रलय की इच्छा न होने के कारण 'अणु-अणु' [११४] सृजन के लिए मचल रहे थे । कालान्तर में यही अनन्त 'अणु' [११५] 'परमाणु', [११६] पुन: क्रियाशीलता में सक्रिय होकर सारस्वत प्रदेश की सृष्टि करते हैं । अस्ति-नास्ति के निरंकुश तर्कयुक्ति से कुछ भी प्रतिपादित हो पर अणु की सत्ता में सन्देह नहीं किया जासकता । [११७] सन्देह हो तो यही विस्मृति की अवस्था है क्योंकि कण-कण , अणु अणु इसी तत्व से सृजित है । [११८] जब व्यक्ति सृष्टि का रहस्य मनु की तरह ज्ञात कर लेता है तो इस विश्व रूपी कमल का अणु, परमाणु उसे आनन्दसुधा रस का बोध देने लगता है । इस सृष्टि के रहस्य को ज्ञात करना ही साधना की उच्चतमस्थिति है । परमाणु अनित्य हैं । वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं होते । जगत के नित्य पदार्थ आकाश, दिग्, काल , मन, आत्मा और भौतिक परमाणु की न सृष्टि होती है न संहार । बल्कि अणुओं के संयोग योग सम्बन्ध पर ही वस्तु द्रव्य की उत्पत्ति और विनाश निर्भर करता है । वैशेषिक दर्शन में परमसत्ता के सम्बन्ध में शैव दर्शन से साम्य है। पर इसमें ईश्वर सृष्टिकर्ता और कर्म फलदाता के रूप में है पर परमाणुओं के सृष्टि कर्ता के रूप में नहीं

वैशेषिक दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय यह छ: [११९] पदार्थ और अभाव सप्तम [१२०] पदार्थ है । महर्षि कणाद षट्-

---

१११. कामायनी, पृ० ७२

११२. कामायनी, पृ० ६५

११३. कामायनी, पृ० २००

११४. कामायनी, पृ० २०५

११५. कामायनी, पृ० २६६

११६. कामायनी, पृ० २५३

११७. कामायनी, पृ० २७०

११८. कामायनी, पृ० २८६

११९. " न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत"
(सांख्य दर्शन १ अ०)

१२०. प्रशस्तपाद के अनुसार- 'गुणकर्म सामान्य विशेषसमवायानां षण्णां पदार्थानामभाव सप्तमानामित्यादि

पदार्थवादी थे या सप्तपदार्थवादी थे या सप्तपदार्थवादी इसमें भी बहुत मतभेद है किन्तु (वैशेषिक १।१।४) उनके उद्देशसूत्र में ६ पदार्थों का ही उल्लेख दीख पड़ता है । वस्तुतः इस संदर्भ में इनका स्वतंत्र विवेचन न कर प्रसाद की विचारधारा के संदर्भ में ही देखना अभीष्ट है । कामायनी के इड़ा सर्ग में नभ, अनिल, अनल क्षिति और नीर[१२१] के विशेष उल्लेख पर वैशेषिक दर्शन का ही प्रभाव दीख पड़ता है । वैशेषिक दर्शन के अनुसार ये सभी द्रव्य हैं कार्य के समवाईकरण को द्रव्य कहते हैं यह गुणों का आश्रय होता है । द्रव्य नव हैं -- क्षिति, अपु, तेज, वायु और आकाश बे-द्रव्य काल दिक् आत्मा और मन: । इसमें क्षिति, अप:, तेज, वायु और आकाश ये द्रव्य पंचभूत के नाम से अभिहित किये जाते हैं जिन्हें प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा के रूप में एक एक कर देखना अधिक उपयुक्त होगा

क्षिति पदार्थ के दो प्रकार हैं -- नित्य और अनित्य । परमाणु क्षिति का नित्य पदार्थ है, जिसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता । वह स्वयं सिद्ध है । इसके सिवा समस्त पृथ्वी अनित्य है । यह अविभाज्य है साथ ही इसका अवयव संयोग ही उत्पत्ति का कारण है । अनित्य क्षिति के भी तीन प्रकार हैं वे हैं शरीर, इन्द्रिय और विषय । शरीर के द्वारा विषय की उपलब्धि भोग है । मनु , श्रद्धा, इड़ा और सारस्वत प्रदेश के निवासियों के निर्मित की गयी सृष्टि इसी भोगवाद से ही प्रेरित है । साथ ही शरीर के योनिज और अयोनिज प्रकार में , योनिज के जरायुज और अंडज रूप में कामायनी के सारे पात्र योनिज के जरायुज रूप से ही सम्बन्धित हैं ।

क्षितिज के अनन्तर नीर की स्थिति है । नीर का अर्थ है जल । यह स्नेह गुण विशिष्ट पदार्थ है । इसके दो प्रकार हैं नित्य और अनित्य । जलीय परमाणु नित्य है शेष जल अनित्य है । अनित्य के भी तीन प्रकार हैं -- शरीर, इन्द्रिय और विषय । इस नीर तत्व की प्रधानता से प्रसाद ने कामायनी में प्रलय की स्थिति का वर्णन किया है।

---

१२१. कामायनी, पृ० १५७

कामायनी में जिस अनल का उल्लेख किया गया है वह 'तेज:' का ही रूप है । इस द्रव्य में तैजस्त्व है उसे ही 'तेज:' कहा जाता है । इसके दो प्रकार हैं नित्य और अनित्य । मात्र परमाणु तेज: ही नित्य है शेष सब अनित्य । अनित्य तेज: के भी शरीर, इन्द्रिय और विषय तीन प्रकार हैं । आनन्द सर्ग में प्रसाद ने मनु में इसी तत्त्व की प्रधानता दिखायी है जिसके कारण मनु अपनी साधनात्मक अवस्था में ऊर्ध्वोन्मुखी दीख पड़ते हैं ।

जहाँ तक अनल का प्रश्न है जिस द्रव्य में रूप स्पर्श नहीं उसे ही अनल कहते हैं । जल, तेज: और पृथ्वी द्रव्य के रूप में है । आकाश द्रव्य में स्पर्श नहीं है । यही कारण है कि इसे अनिल की संज्ञा में अभिहित किया जा सकता है । अनल के दो प्रकार होते हैं नित्य और अनित्य । जिसमें अनित्य अनल के भी शरीर इन्द्रिय और विषय तीन विभाग किए जा सकते हैं । प्रलय में अनिल की घनीभूतता के कारण मनु का दम चिन्ता सर्ग में घुटता-सा प्रतीत होता है ।

पाँचवाँ द्रव्य है नभ । नभ का अर्थ है आकाश । यह शब्दाश्रय है । प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति वायु सापेक्ष होने पर भी आकाश वायु शब्द का आश्रय नहीं है यह वायु से भिन्न है क्योंकि वायु में स्पर्श गुण है साथ ही वायु के रहने पर शब्द नष्ट हो सकता है । इसके विपरीत आकाश में ऐसा नहीं है । आकाश की तरह काल [१२२] और दिक् [१२३] भी प्रत्यक्ष नहीं हैं ।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार कामायनी इड़ा सर्ग के " नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर" [१२४] के संदर्भ में यदि सृष्टि का निर्माण देखा जाय तो नभ सृष्टि के निर्माण में सक्रिय नहीं रहता । शेष अनिल, अनल, क्षिति और

---

१२२. जिस द्रव्य से ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व का व्यवहार निर्धारित हो वही काल है ।

१२३. दूरत्व या नैकट्य या पूर्व-पश्चिम आदि व्यवहार के द्रव्य विशेष का नाम दिक् है ।

१२४. कामायनी, पृ० १६६

नीर से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है । नभ की उपयोगिता इन चारों तत्वों को यथा स्थान समाहित करने में ही है । पर कामायनी में इन पांचों द्रव्य को ही सृष्टि के निर्माण का कारण बताया गया है । यह प्रसाद दर्शन की विशेषता कही जा सकती है ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

प्रसाद ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विचारधारा को भी कामायनी में व्यक्त किया है पर इसका प्रभाव मूलत: इड़ा सर्ग में ही है । इड़ा के सारस्वत नगर का विकास मूलत: भौतिकवादी सभ्यता की आधारशिला पर हुआ था जिसे मनु ने स्वीकार किया है कि " द्वन्द्वों " का उद्गम तो सदैव शाश्वत है"।[१२५] यह सृष्टि के विकास का मूल "मंत्र " है ।[१२६] उसके साथ विरोध की एकता, विरोध का आपसी संघर्ष, इस संघर्ष से नयी समन्वित परिस्थिति का जन्म और वाद से सम्वाद तक का परिवर्तन ये द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के मूलतत्व कहे जा सकते हैं क्योंकि यह मात्रा से गुणों तक अग्रसर होने वाला परिवर्तन है ।

कामायनी की इड़ा ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि सृष्टि के पीछे कोई चेतन सत्ता नहीं है मनुष्य को अपने बाहुबल से ही कार्य करना चाहिए । इतना ही नहीं जीवन की समस्याओं के उद्भूत होते ही उनके समाधान में विपरीत मूल्य के स्वत: उपलब्धि का निहित होना ,[१२७] तथा सुख में भी प्रकृति तत्व के साथ " अविरत विषाद "[१२८] का निहित होना , प्रसाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विचारधारा का ही द्योतन करता है । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद आशा से युक्त आदर्श व्यवस्था प्रस्तुत करता और क्रान्ति की सफलता पर विश्वास करता है । इसके अनुसार जगत् के पदार्थों की उत्पत्ति द्रव्य (मैटर)

---

१२५. कामायनी, पृ० १६३
१२६. कामायनी, पृ० १६३
१२७. कामायनी, पृ० १६४
१२८. कामायनी, पृ० १७०

और गति (मोशन) से हुई है । निर्माण का उपादान द्रव्य है जिसके द्वारा मानव शरीर मन और अन्य भौतिक पदार्थों की रचना हुई । चिन्ता सर्ग के देवताओं का भोगवाद भी इसी विचारधारा का समर्थन करता है ।[१२९]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार सृष्टि के मूल तत्व "मैटर" का निरन्तर रूप परिवर्तन होता रहता है । इस परिवर्तन की प्रकृति द्वन्द्वात्मक है क्योंकि हर परिवर्तन के मूल में संघर्ष स्थित है । अपनी संघर्षमय परिस्थिति में ही कालान्तर में नयी संघर्षात्मक व्यवस्था का उदय होता है । यह विकास की प्रक्रिया है । इसका मूल कारण भौतिक परिस्थितियाँ हैं जिससे ऐतिहासिक , सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण होता है । यही कारण है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विचारधारा में व्यक्ति की ठोस परिस्थिति की सापेक्षता को देखा जाता है और परिवर्तन भी आन्तरिक संघर्षात्मक शक्ति के निमित्त ही माना जाता है । वास्तव में यह विचारधारा उस भारतीय अध्यात्मिक विचारधारा के बिलकुल विलोम है जो सृष्टि का उद्गम और विकास चेतन-शक्ति से मानता है । प्रसाद के कामायनी पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की छाया नहीं दीख पड़ती है,। जहाँ पर मनु इड़ा से प्रभावित है । इस सर्ग में बुद्धि पक्ष की प्रबलता के कारण प्रसाद पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की छाया भले ही देख ली जाय पर यह जीवन दर्शन न कामायनी का अभीष्ट है,न प्रसाद का । प्रसाद ने इस विचारधारा को मनु पर उनकी जड़ भौतिक सभ्यता के प्रभाव-रूप में दिखाया । साथ ही कालान्तर में उसकी सारहीनता भी प्रमाणित कर दी , क्योंकि अध्यात्मवाद से इसका सामंजस्य नहीं हो पाया ।

रहस्यवाद

प्रसाद के अनुसार " काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है ।"[१३०] जहाँ तक प्रसाद साहित्य में रहस्यवाद

---

१२९. कामायनी, पृ० ८६

१३०. काव्य कला और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ४६

की स्थिति का प्रश्न है झरना के प्रथम संस्करण (संवत् १९७५) तक उनकी रचनाओं में इस विचारधारा के दर्शन नहीं होते । पर इसके दूसरे संस्करण (संवत् १९८४) में प्रथम संस्करण से पर्याप्त भिन्नता दीख पड़ता है इसमें ३१ कविताएं जोड़ी गयी जिनमें पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भी " पूरा रहस्यवाद, अभिव्यंजना का अनूठापन, व्यंजक चित्रविधान सब कुछ मिल जाता है ।"[१३१] परन्तु यदि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो कानन कुसुम से ही रहस्यवाद की अनूठी झलक मिलती है । इसकी अनेक कविताएं भौतिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने में अग्रसर हैं ।

जयति प्रेमनिधि ! जिसकी करुणा नौका पार लगाती है ।
जयति महासंगीत ! विश्व-वीणा जिसकी ध्वनि गाती है । [१३२]

कवि ईश्वर के निराकार रूप की वंदना करते हुए उसकी दया, प्रेम, करुणा के भावों का स्मरण करता है । साथ ही निर्गुण ईश्वर के प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करता है जिसकी उपासना व्यक्ति कहीं भी कर सकता है । [१३३] पर दूसरे ही क्षण वह ईश्वर के सौन्दर्य को देखकर जीभर तृप्त होने की बात करता है -

देख लो जी भर इसे देखा करो, इस कलम से चित्र पर रेखा करो ।
लिखते लिखते वह चित्र वह बन जाय गा, सत्य, सुन्दर तब प्रकटहोजायगा [१३४]

दर्शन के अनन्तर तो अपनी सत्ता ही मिट जाती है पर उसके पूर्व इस अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम स्वत: हो जाता है और बिना दर्शन के स्वयं अपनी सत्ता भी पीड़ा-मय हो जाती है । कदाचित् इसी ओर कवि ने संकेत किया है कि -

मैं तो तुमको भूल गया हूँ पाकर प्रेममयी पीड़ा । [१३५]

कवि ने यहाँ प्रेम-परक रहस्यवाद की ओर निर्देश किया है ।

---

१३१. हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृ० ६२४

१३२. कानन कुसुम, पृ० ३

१३३. कानन कुसुम, पृ० ४

१३४. कानन कुसुम, पृ० ५१

१३५. कानन कुसुम, पृ० २३

ऐसे तो रहस्यवाद की व्याप्ति ही प्रेम में है क्योंकि रहस्यवादी की दृष्टि प्रेम की दृष्टि होती है और प्रेम-परक रहस्यवाद में प्रेम ही ईश्वर है। उसी का सहारा लेकर आत्मा अपने लक्ष्य की ओर मुड़ती है। इस प्रकार व प्रेम साधन और साध्य दोनों हैं। जीवन और जीवन से परे प्रेम से मधुर, सुन्दर, उच्च, बड़ा तथा पूरा कुछ भी नहीं है। ईश्वर के समस्त चमत्कार प्रेम के ही चमत्कार हैं और अध्यात्म प्रेम का ही अट्टहास है।[१३६] प्रसाद ने उपर्युक्त पंक्तियों में इसी ओर संकेत किया है क्योंकि प्रेम पथिक में उन्होंने इस ओर निर्देश किया है कि --लीलामय की अद्भुत लीला किससे जानी जाती है।[१३७]

आंसू में भी कतिपय स्थलों पर कवि ने अलौकिक सौन्दर्य से सम्पन्न अव्यक्त सत्ता की ओर संकेत किया है।[१३८] जो उसकी दृष्टि में साध्य-सा दीख पड़ता है। इसमें अलौकिक व्यंजना को अन्तिम रूप में रहस्यवादी संकेत दे दिया गया है। अत: इस प्रौढ़ रहस्यवादी काव्य में —

" मैं अपलक इन नयनों में देखा करता उस छवि को" के रूप में प्रत्यक्ष दर्शन का भी आभास दिया गया है। भरना के 'खोलो द्वार'[१३९] किरण,[१४०] आदि कविताओं के अनन्तर विषाद पर दृष्टिपात करें तो

कौन प्रकृति के करुण काव्य-सा, वृक्ष-पत्र की मधु छाया में।
लिखा हुआ-सा अचल पड़ा है, अमृत सदृश नश्वर काया में।[१४१]

इसमें प्रकृति-रहस्यवाद की झलक मिलती है। कदाचित् इसका कारण यह है कि प्रकृति की अनेकता में तारतम्य खोजने का प्रयास किया गया। जिसका एक छोर ससीम और दूसरा असीम था। तब प्रकृति का एक अंग उस अव्यक्त की प्रेरणा से अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा और कवि को सर्वत्र-अपने उसके दर्शन होने लगे।

---

१३६. Poets and Mystics by E. I. Watkin p.59.

१३७. प्रेम पथिक, पृ० ३

१३८. आंसू, पृ० २०, २४, २३, १६, २९,

१३९. भरना, पृ० १६

१४०. भरना, पृ० २६

१४१. भरना, पृ० २८

लहर में कवि की विचार धारा रहस्य भावना की ओर अधिक उन्मुक्त दीख पड़ती है । वह नाविक से वहाँ ले चलने को कहता है जहाँ वह इस संसार से विश्राम पासके । [१४२] दूसरी ओर प्रकृति भी विश्राम माँगती है । कदाचित वह इसीलिए सागर की ओर अग्रसर हो रही है । कवि ने इसे " विश्राम माँगती अपना, जिसका देखा था सपना [१४३] के रूप में व्यक्त किया है । कवि ने उसकी आँखों की पुतली में प्राण बन समा जाने की याचना की है । [१४४] क्योंकि ऐसा होने के अनन्तर ही वह-" स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो " तथा " जीवन धन इसे जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो " का आनन्द प्राप्त कर सकेगा ।

कामायनी में भी रहस्य भावना की अभिव्यक्ति प्रकृति के विविध उपादानों के माध्यम से होती है । कवि ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्रकृति के समस्त शक्तियों का संचालन किसी एक अव्यक्त सत्ता द्वारा होता है जिसे उसने –

" विश्वदेव, सविता या पूषा, सोम, मरुत, चंचल पवमान
वरुण आदि सब घूम रहे हैं, किसके शासन में अम्लान ?
किसका था भ्रू-भंग प्रलय-सा जिसमें ये सब विकल रहे,
अरे ! प्रकृति के शक्ति-चिह्न ये फिर भी कितने निबल रहे । [१४६]

में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है । यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्रकृति के सभी तत्व उस अव्यक्त की ओर संकेत करते हैं पर उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि कोई नहीं जानता है कि वह कैसा है मात्र सभी उसकी सत्ता को सिर नीचा कर स्वीकार करते हैं । उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में मौन प्रवचन करते हैं । स्वयं

---

१४२. लहर, पृ० १४
१४३. लहर, पृ० १६
१४४. लहर, पृ० २८
१४५. लहर, पृ० २९
१४६. कामायनी, पृ० ३५

वह भी " हे अनन्त ! रमणीय कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता ।
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ।
हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो ऐसा होता भान

•.........."

और इसके अनन्तर " देव बता दो अमर वेदना लेकर कब मरना होगा" [१४७] में भी कवि उसी अव्यक्त सत्ता के प्रति आस्था प्रकट करता है ।

" तम के सुन्दरतम रहस्य, हे अनन्त की गणना देते तुम कितना मधुमय संदेश" [१४८] के अनन्तर — " चल चक्र वरुण के ज्योति भरे व्याकुल तू क्यों देता फेरी
तारों के फूल बिखरते हैं लुटती है असफलता तेरी । [१४९]

के रूप में चन्द्रमा का रहस्य भेदन के निमित्त दिनरात प्रयत्नशील होकर भी असफल होना —" इस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है कि — क्या तुम्हें मैं भी न पहचान सकूंगा । पर मनु को इस बात का स्पष्ट भान हो जाता है कि दर्शन या तर्क के बाल पर उसका दर्शन नहीं हो सकता । [१५०]

कामायनी में रहस्य सत्ता के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते हैं जो कि सामान्य रहस्यवादी प्रकार के हैं । संकेतों की प्राप्ति, उनका प्रकाशन और उनकी योजना अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक है । डा० विश्वनाथ गौड़ के अनुसार कामायनी के रहस्यवाद के अनुसार कामायनी के रहस्यवाद पर शैवागम का प्रभाव भी ..... है । [१५१] साथ ही उन्होंने उसके अन्तिम भाग में तांत्रिक रहस्य भावना उपलब्ध मानी है । कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि शैव-तन्त्र

---

१४७. कामायनी, पृ० ३६

१४८. कामायनी, पृ० ४५, ४६

१४९. कामायनी, पृ० ७३

१५० . कामायनी, पृ० ७६

१५१. आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद , पृ० १४३ (डा० विश्वनाथ गौड़)

प्रत्यभिज्ञा है । उसके आरम्भ में तो सामान्य अव्यक्त सत्ता से सम्बन्धित रहस्य-भावना ही दृष्टिगोचर होती है, परन्तु अन्त में नटराज के रूप में जिस परम शिव-तत्त्व का दर्शन होता है, वह प्रत्यभिज्ञा-शास्त्र के आधार पर ही है ।[१५२] रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति प्रकृति के विविध उपादानों के माध्यम से, होती है । श्रद्धा के मार्ग दर्शन में मनु को हिमालय के शुभ्र-शिखर पर नटराज के दिव्य दर्शन होते हैं । वह शून्य असत् अन्धकार पटल के पार भी मनु के सौमन को अनन्त शून्य सार सा महसूस होता था जिसके परे कुछ भी नहीं दीख पड़ता था ।[१५३] इसके अनन्तर ही मनु को रहस्य, (रोमांच, भय, विस्मय आदि) भावों के बाद धीरे धीरे प्रकाश की किरणों के दर्शन होते हैं जो कि कालान्तर में एक दिव्य आकृति बन जाती है । केवल प्रकाश की किरणें लहरें मार रही थीं ।[१५४]

नटराज स्वयं नित्य निरत था । अन्तरिम, प्रहसित मुखरित था ।[१५५]

इस दर्शन के अनन्तर मनु भी उसमें लीन होने की कामना करता है और इसी आशय से वह श्रद्धा से कहता है कि वह उसे वहाँ ले चले जहाँ असत्य का ज्ञानलेश, मिटे, समरस अखण्ड आनन्द वेश[१५६] की प्राप्ति हो सके । श्रद्धा वहाँ उसे ले जाती है जहाँ उन्हें सामरस्यवाद के रूप में ज्ञान, इच्छा, क्रिया का मिलन बिन्दु है । मनु भी वहाँ पहुंच कर —

> स्वप्न, स्वाप, जागरण, भस्म हो, इच्छा क्रिया, ज्ञान मिल लयथे ,
> दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ।

की स्थिति प्राप्त करते हैं । और सब आनन्द व में लय हो जाता है । यह तन्त्र समस्त रहस्यवाद के स्वरूप से साम्य रखता है जिसमें समरसता में लय की स्थिति भाव-भोग की साधना के अनन्तर ही प्राप्त होती है । संतों की साधना में भी इसी प्रकार की रहस्यात्मक अनुभूति की स्थिति के वर्णन प्राप्त होते हैं । लेकिन कामायनी में लय सिद्धि की स्थिति कुछ अधिक दीख पड़ती है । प्रसाद की

---

१५२. आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद, पृ० १४० (डा० विश्वनाथ गौड़)
१५३. कामायनी, पृ० २५६
१५४. कामायनी, पृ० २६०
१५५. कामायनी, पृ० २६०
१५६. कामायनी, पृ० २६२

रहस्यवादी विचारधारा में उपनिषद् एक तंत्र से मिली साथ ही सौन्दर्य दर्शन की गहरी प्रेमानुभूति ने इन्हें समरसता के सिद्धान्त से प्रभावित कर मनु को लय की स्थिति का बोध किया।

इस प्रकृतिरहस्यवाद के सम्बन्ध में जहाँ तक प्रसाद की धारणा का प्रश्न है उन्हीं के अनुसार "साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य-लहरी के "शरीरं त्वं शम्भो" का केवल अनुकरण मात्र मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद की स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, वर्तमान विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर उसमें सम्मिलित है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।[१५७]

---

१५७. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ६८

पंत

रहस्यवाद

वर्गीकरण की दृष्टि से यदि पंत के रहस्यवाद की ओर देखें तो डा० केशरीनारायण शुक्ल के शब्दों में -- " रहस्यवाद के प्रतीकों का रहस्यवाद की विचारधारा के अनुकूल तीन समुदायों में विभक्त हो सकता है। जो रहस्य-वादी उस पूर्ण सत्ता को अपने से पृथक एवं बाह्य समझते हैं तथा जिनकी उपासना बहिर्मुखी होती है और जिनका "उद्भव के सिद्धान्त" में विश्वास है, उन्हें उस सत्ता का साक्षात्कार --भौतिक से आध्यात्मिक कठिन यात्रा प्रतीत होती है। वे उस भूले घर के पथिक होते हैं। संसार उनके लिए सराय है उनका घर नहीं। ऐसे रहस्यवादियों के प्रिय प्रतीक यात्रा और खोज से सम्बन्धित होते हैं।

जो उस सत्ता को प्रेममय देखते हैं वे अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए लौकिक प्रेम के प्रतीकों का उपयोग करते हैं। उन्हें मानव प्रेम और विवाह का साम्य अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। पति- पत्नी की प्रतीकात्मकता सभी के लिए बोधगम्य है। इससे उनके द्वारा प्रेम की पुकार पर आत्मा के समर्पण की भी व्यंजना होती है।.....

जिनकी साधना अन्तर्मुखी होती है जो उसे अपने हृदय में बैठा हुआ देखते हैं और जो उसे संसार के बीच छिपा हुआ पाते हैं । वे उसे बाहर न ढूंढ़ कर आत्मिक उन्नति के द्वारा अपने अन्दर ही पाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे रहस्यवादियों का जीवन बाह्य अन्वेषण न होकर आन्तरिक परिवर्तन बन जाता है। उनके प्रिय प्रतीक विकास तथा परिवर्तन के दृश्यों से चुने जाते हैं।"[१५८] इसमें "रहस्य" की खोज" ही पंत को अधिक प्रिय है वह प्रकृति के कण-कण में इस रहस्यमय सत्ता की झांकी पाता है। उसे नक्षत्रों से आमंत्रण का आभास

---

१५८. आधुनिक काव्यधारा, पृ० २३६, १६६

मिलता है —

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन ।[१५९]

प्रकृति के व्यक्त रूप में पंत के रहस्यवाद सम्बन्धी अभिव्यक्ति के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की धारणा है कि पंत की रहस्यभावना स्वाभाविक है साम्प्रदायिक (डागमैटिक) नहीं । ऐसी रहस्यभावना इस रहस्यमय जगत के नाना रूपों को देख प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के मन में कभी कभी उठा करती है । व्यक्त जगत के नाना रूपों और व्यापारों के भीतर किसी अज्ञात चेतन-सत्ता का अनुभव-सा करता हुआ कवि केवल अतिरिक्त जिज्ञासा के रूप में प्रकट करता है ।[१६०] यही बात पल्लव की अन्य कविताओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । " उसे न जाने कौन अगोध अज्ञान जानकर किसी अनजान पथ पर आने को निमंत्रण देता है ।"[१६१] यह आमंत्रण भी सत्य है क्योंकि उसके प्रभाव से —

बन कौन जग में लुक छिपकर विंधते सब अनजान ।[१६२]

कहीं कवि ने परोक्ष सत्ता के प्रतिकभी माँ का सम्बोधन किया है और कभी प्रेयसी का । जहाँ माँ का सम्बोधन है वहाँ राम-कृष्ण एवं रवीन्द्र का प्रभाव दीख पड़ता है । माँ यहाँ विराट सत्ता के रूप में प्रयुक्त की गयी है । पल्लव और वीणा की कविताएं इसी भाव से प्रेरित कही जा सकती हैं । जिसमें शिशु-सा भोलापन और प्रकृति के रहस्यमय सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना

---

१५९. पल्लव, पृ० ३८
१६०. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४४
१६१. पल्लव, पृ० ४०
१६२. आधुनिक पंत , पृ० १४४

मिलती है —

" माँ मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय हार हो अश्रु कणों का यह उपहार ।"[१६३] और

अब तेरी छाया सुखमय
अन्धकार में नीरवता बन
माँ उपजाती है विस्मय।[१६४]

उस विरह माँ (ईश्वर) से उत्पन्न जीव उस-सा ही निर्मल है । पर भौतिकता का आवरण होने से आत्म का बोध नहीं होने पाता । किन्तु जीव का आवरण हटते ही पुन: जीव उसी स्थिति में चला जाता है जिससे वह पहले था यथा —

" मैं वैसी ही उज्ज्वल हूँ माँ, काला तो यह बादल है ।
मेरा मानस तो शशि-हासिनि
तेरी क्रीड़ा का स्थल है ।
तेरे मेरे अन्तर में माँ, काला तो यह बादल है ।[१६५]

कालान्तर में उसके रहस्य दर्शन की जिज्ञासा " माँ, वह दिन कब आयेगा जब मैं तेरी छवि देखूंगी, जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा मन के निर्मल दर्पण में ?"[१६६] दीख पड़ती है । यहाँ कवि की विचारधारा पर वेदान्त का प्रभाव दीख पड़ता है । इसने उसमें सर्वत्र माँ का ही प्रतिबिम्ब देखा है । चाहे बुदबुद किरण के रूप में हो या ऊषा की लाली या तरल तरंगों के रूप में ।[१६७] पल्लव और वीणा के अतिरिक्त उत्तरा में भी ' अन्तर्यामी से अपने स्वर्गिक वातायन को खोलने की कामना की गयी है ।[१६८] अतिमा में तो माँ अतिमा के रूप में भी प्रकट होती दीख पड़ती है ।[१६९] जिससे समस्त भू-मण्डल में सर्व मंगल कामना

---

१६३. पल्लव, पृ० ३३
१६४. वीणा, पृ० १६
१६५. वीणा, पृ० १०
१६६. वीणा, पृ० ५८
१६७. वीणा, पृ० ३
१६८. उत्तरा, पृ० ११५
१६९. अतिमा, पृ० ४५

अत्यन्त उदार दृष्टिकोण से प्रस्फुटित हुई है।

माँ रूप के अनन्तर प्रकृति के रहस्यवादी संकेतों में प्रियतम रूप की झलक पल्लव में ही मिलती है जिसके आकर्षण से आकर्षित होकर वह " छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया बाले। तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन " — कहता है क्योंकि उस दिव्य आकर्षण के समक्ष सारे भौतिक आकर्षण नगण्य हैं। उसका प्रियतम कण-कण में व्याप्त है।[१७०] साथ ही अपना संकेत कर उसे अपने पास आने का आमंत्रण देता है जिसे कवि ने बढ़ा कर लहरों के निज हाथ, बुलाते फिर मुझको उस पार — "[१७१] में व्यक्त किया है। उसी अव्यक्त सत्ता के लिए उसने स्वर्ण किरण में कहा है कि — " वाद विवाद शास्त्र षड्दर्शन "[१७२] — भी पार नहीं पाते।

पंत की कविताओं में डा० नगेन्द्र के अनुसार " कुछ रहस्यात्मक रचनाओं के भी दर्शन होते हैं।"[१७३] पर पंत की समस्त रचनाओं में उनकी रहस्य भावना अभिव्यक्त हुई है, कहना न्याय संगत नहीं प्रतीत होता। स्वर्ण किरण के अनन्तर लोकायतन तक की समस्त रचनाओं में रहस्यभावना की अभिव्यक्ति नहीं दीख पड़ती। वह कालान्तर में वह रहस्यदर्शन की अपेक्षा धरती पर ही नवमानवता वाद की स्थापना करना चाहता है और मानव को ही सृष्टि की सुन्दरतम उपलब्धि मानता है।

---

१७०. वीणा, पृ० १६

१७१. वीणा, पृ० ६०

१७२. स्वर्णकिरण, पृ० ५८

१७३. सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १२२

मार्क्सवाद

वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन और ज्योत्स्ना के पश्चात् पंत की दार्शनिक विचारधारा एक नवीन धरातल पर दीख पड़ती है। यहाँ कवि की विचारधारा रहस्यवाद से भिन्न मार्क्सवादी धरातल पर उपस्थित है। जिसे एक क्रमागत विकास के रूप में युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है।

पंत ने मार्क्स के इस बात को स्वीकार किया है कि 'मानवीय चेतना उत्पादन के सम्बन्धों पर आश्रित समाज के आर्थिक जीवन से संचालित होती है और वस्तु जगत से ही भाव जगत सृजित होता है।[१७४] कवि दार्शनिक दृष्टि-कोण से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से भी प्रभावित है। युगान्त की पहली कविता में ही कवि अब तक के सारी जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था के प्रति अनास्था व्यक्त करता हुआ उसके पतन की कामना करता है क्योंकि वह 'जड़ पुरातीन, निष्प्राण, विगत-युग, और श्वासहीन'[१७५] का प्रतीक हो गया है। कवि कंकाल जाल से जग में फैले युग जीवन में नवल रुधिर के संचार की अपेक्षा करता है ताकि जीवन की मांसल हरियाली उपलब्ध हो और व्यक्ति अपने जीवनगत आस्था की उपलब्धि प्राप्त कर सके। व्यक्ति के मुक्ति की यही कल्पना मार्क्सवाद की मुख्य प्रेरणा है। इसमें शोषक और शोषित के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से उद्भूत सभ्यता, संस्कृति और जीर्ण सामाजिक व्यवस्था का अन्त और अर्थनीति पर आधारित नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लक्ष्य के निमित्त जिस बहुमुखी विप्लव की आवश्यकता है वह पंत की विचारधारा में सर्वत्र दीख पड़ती है। जिसके लिए उसने परम्परागत मूढ़ संस्कार, हीन ग्रन्थियाँ, शून्य मान्यताएं, रूढ़िग्रस्त संस्कार, आचार-विचार व्यवहार से उत्पन्न नयी व्यवस्था की बाधक अनु-भूतियों से कवि देश की सारी सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित रखने के निमित्त इन विरोधी शक्तियों के विघटन की कामना करता है।[१७६] साथ ही अन-

---

१७४. मार्क्स, सेलेक्टेड वर्क्स, भा० १, पृ० ३५७

१७५. युगपथ, पृ० ११

१७६. युगपथ, पृ० २

जीवन में जागरूकता के निमित्त एक निश्चित योजना से धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, न्याय शास्त्र, साहित्य तथा संस्कृति के संघटन के निमित्त अर्थ व्यवस्था, मानव-मूल्य की पुनर्व्यवस्था की ओर संगठित अग्रसर होता है। प्रस्तुत विश्लेषण में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित बौद्धिक सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर स्थापित पंत की काव्यगत तार्किक प्रतिपत्तियों को ही देखना अभीष्ट होगा।

युगान्त में ही कवि ने पहली बार श्रमजीवियों की समस्या को उठाते हुए उनके " भारी है जीवन भारी पग "[१७७] की ओर दृष्टिपात किया है। इसका कारण कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि वह प्रौढ़ता के स्तर पर जगजीवन में जो कुछ क्षणिक है उससे दूर चिर महान्, सौन्दर्यपूर्ण, सत्यप्राण,[१७८] का प्रेमी है। उसी के उद्धार में वह रत है क्योंकि " सुन्दरता का नवल संसार उसके मन में अंकुरित हो गया है।[१७९] अब वह " नग्न क्षुधातर वास विहीन " लोगों के जीवन के प्रति भी अधिक चिन्तित है।[१८०] उसकी चेतना में —

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर मानव तुम सबसे सुन्दरतम[१८१] — का प्रादुर्भाव हो गया है। वह शोषक, शोषित, शासक-शासित और पूंजीपति - सर्वहारा का वर्गगत भेद मिटाने का वैचारिक संकल्प रखते हुए केवल यही कामना करता है कि सबको अपने श्रम का उचित मूल्य मिले। समाज की यह विषमता मानवजीवन के लिए अभिशाप है क्योंकि " क्या कभी तुम्हे है यदि त्रिभुवन मैं यदि बने रह सको तुम मानव।"[१८२]

युगवाणी में भी कवि ने युगजीवन को वाणी देने का प्रयत्न किया है।[१८३] युग उपकरण,[१८४] नव संस्कृति,[१८५] दो लड़के,[१८६] भूतदर्शन,[१८७] साम्राज्यवाद,[१८८] धनपति,[१८९] मध्यवर्ग,[१९०] श्रमजीवी,[१९१] जननाद,[१९२]

---

१७७. युगपथ, पृ० २७
१७८. युगपथ, पृ० २६
१७९. युगपथ, पृ० ३४
१८०. युगपथ, पृ० ४६,
१८१. युगपथ, पृ० ५०
१८२. युगपथ, पृ० ५१
१८३. युगवाणी, पृ०विज्ञापन
१८४. युगवाणी, पृ० १७
१८५. पृ०युगवाणी, पृ० १८
१८६. युगवाणी, पृ० १८६
१८७. युगवाणी, पृ० ३६
१८८. युगवाणी, पृ० ४०
१८९. युगवाणी, पृ० ४३
१९०. युगवाणी, पृ० ४४
१९१. युगवाणी, पृ० ४६
१९२. युगवाणी, पृ० ४७

और मानव पशु,[१९३] में मार्क्सवादी जीवन दर्शन अधिक स्पष्ट रूप से उभर सका है। इन कविताओं से इस बात की भी पुष्टि होती है कि कवि के इस विचार धारा से समाज में एक नया धरातल सृजन करना चाहता है। "मार्क्स के प्रति"[१९४] "श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उसने यह धारणा व्यक्त की कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुन: युगान्तर होने का समय आ गया।

उत्पादन यन्त्रों पर श्रमिकों का शासन होगा। वर्ग हीन सामाजिकता सबको जीवन के निमित साधन उपलब्ध करेगी जिससे जन को भव जीवन के प्रलोभन उपलब्ध होंगे। तभी जन संस्कृति का भू पर नव विराट प्रासाद उठ सकेगा।[१९५] भू के अधिकारी श्रमिक जन ही हैं। इसलिए कवि को धन नाद में भी " जागो, श्रमिको बनो सचेतन " का स्वर सुनायी पड़ता है क्योंकि वही निर्माता होने पर भी श्रेणी, वर्ग, धन बल से शोषित है। यह धननाद[१९६] शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह का द्योतक है।

युगवाणी में कवि मध्यम वर्ग और श्रमजीवी वर्ग को मार्क्सवादी व्यवस्था के प्रति सन्देश देता है पर ग्राम्या में कवि की यह विचारधारा ग्राम्य व्यवस्था पर छा-सी गयी है। कवि के शब्दों में मजदूर की तरह किसान वर्ग भी शोषित है। ग्राम का कृषक समुदाय भी "मानव के पाशव पीड़न का निर्मम विज्ञापन है।" युग-युग का जर्जर जीवन भी कवि के शब्दों में "छाया-घट सा झूल रहा है। वहाँ की महाजनी व्यवस्था के प्रति कवि के मन में घोर असंतोष है। वह गाँव के लड़के[१९७] वह बुड्ढा,[१९८] को शोषित जनता के टाइप रूप में स्वीकार करता हुआ ग्रामीण जन समाज में फैली दूर व्यवस्था का मूल कारण आर्थिक व्यवस्था मानता है। इसने दैवोचित मनुष्य में भी पशु का प्रमाद भर दिया है।[१९९] दूसरा कारण यह भी है कि आज की मानवीय संस्कृतियाँ वर्ग जंग से पीड़ित हैं।[२००] यही कारण है कि कवि मजदूरिनी के प्रति[२०१]

---

१९३. युगवाणी, पृ० ५७

१९४. युगवाणी, पृ० ३८

१९५. युगवाणी, पृ० ४७

१९६. ग्राम्या, पृ० २४

१९७. ग्राम्या, पृ० २४

१९८. ग्राम्या, पृ० २७

१९९. ग्राम्या, पृ० ५९

२००. ग्राम्या, पृ० ७७

२०१. ग्राम्या, पृ० ८४

भी उसी श्रद्धाभाव से श्रद्धांजलि अर्पित करता है जैसे भारत ग्राम्य को ।[२०२]

कवि मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने पर भी संकीर्ण भौतिकवादी विचार धारा से मेल नहीं खाता क्योंकि उसकी यह धारणा है कि मानवता की मूर्ति मात्र वाह्यावरण को संवारने से नहीं गढ़ी जा सकती । भौतिकता एकांगी सत्य है, उसका दूसरा पक्ष आध्यात्मिकता है । व्यक्ति के लिए विश्व में स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य का मूल मात्र एक भ्रान्ति है[२०३] ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

इस प्रकार देखते हैं कि एक ओर पंतवादी दर्शन भौतिकता से भी प्रभावित रहा है दूसरी ओर आध्यात्मिकता से भी । पंत की मार्क्सवादी विचारधारा के विषय में भी यही सत्य दीख पड़ता है, दोनों के प्रति समान रूप से आस्था पंत के जीवन दर्शन की अपनी विशेषता कही जा सकती है । मार्क्सवादी और भौतिकता में भी वे आध्यात्मवाद की निश्चित मान्यताओं के प्रति अपनी आस्था नहीं खोते और न ही पूर्व निर्धारित आस्थाओं में ही कुछ विशेष अन्तर आता है । ऐसा प्रतीत होता है कि पंत की जीवनगत मान्यताओं के क्रम में एक विकास होता चलता है ।

उनकी विचारधारा में भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का भी सामंजस्य है क्योंकि युगांत, युगपथ और ग्राम्या की रचनाओं में एक ओर मार्क्सवाद के प्रभाव में जहाँ घोर भौतिकतावादी रचनाएं हैं दूसरी ओर आध्यात्मिक कविताएं भी ।

गांधीवाद

पंत साहित्य पर जिन महान् व्यक्तियों और उनकी विचाराधारा ने प्रभाव डाला उनमें से एक गांधीवाद और उनकी विचारधारा भी है ।

---

२०२. ग्राम्या, पृ० ८४

२०३. युगवाणी, पृ० ४२ (पंत)

पंत गांधी की विचारधारा से प्रभावित हैं जिसे उन्होंने स्वयं भी `गांधी जी के संस्मरण` [२०४] नामक लेख में स्वीकार किया है । गांधीवाद की विचारधारा पंत को कितना प्रभावित कर सकी इसे विश्लेषित करना ही यहाँ अभीष्ट होगा ।

पंत का विश्वास है कि गांधी के` सत्य अहिंसा के ताने बानों से मानवपन [२०५] जन्य होगा । ये अन्तर्राष्ट्रीय जागरण के प्रति मानवीय स्पर्शों से ` भ्रू व्रण` को भरने में समर्थ हैं । कदाचित् यही कारण है कि ` झुका तड़ित अणु के अश्वों को कर आरोहण नव-मानवता गांधी का जयघोष कर रही है ।[२०६] अब उसकी विचारधारा` राम, कृष्ण , चैतन्य, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद[२०७] की मानवतावादी विचारधारा से मेल खाती है, क्योंकि गांधी दर्शन में वर्तमान भारत की परिस्थिति के अनुकूल लगभग सभी दर्शन का समन्वय है । प्राय: सभी महानुतत्व ज्ञानियों और धर्मोपदेशकर्ताओं ने युग सापेक्ष आचार को मापदण्ड रखा जिसमें नीति, दर्शन, मानव शरीर और समाज शास्त्र सब कुछ समाहार हो जाता है । गान्धी जी ने भी धर्म दर्शन के स्थायी तथ्यों को लेकर जो प्रयोग तत्कालीन समाज पर किया --कवि के शब्दों में वह बड़ा सफल था । पर इस `हिंस्र धरा पर प्रथम अहिंसक मानव को भी' कम संघर्ष[२०८] नहीं झेलना पड़ा पर उनका तप आज सफली भूत हो गया है । [२०९]

गांधी जी की दृष्टि में अहिंसा का अर्थ हत्या मात्र का न होना ही नहीं है । उन्होंने बुद्ध की करुणा, वैष्णव की दया के ही स्तर पर अहिंसा को रखा । पर उनकी विशेषता सामाजिक राष्ट्रीय तथा राजनीतिक स्तर पर भी इसका प्रयोग करने में है । पंत की दृष्टि में भी सत्य अहिंसामय है और अहिंसा सत्यमय है । अहिंसा का अर्थ है सर्वव्यापी प्रेम तथा किसी को दु:ख पहुंचाना ही हिंसा है । [२१०]

---

२०४. शिल्प और दर्शन, पृ० २२७

२०५. पल्लविनी, पृ० २५४

२०६. युगांतर, पृ० ७७

२०७. युगान्तर, पृ० ७८

२०८. युगान्तर, पृ० ८८

२०९. ग्राम्या, पृ० ४६ -- पंत

२१०. ग्राम्या(अहिंसा) पृ० ६६(पंत

`चरखागीत` [२११] में कवि ने भारत माँ के लिए खादी को समृद्धि की राका बताया जिससे देश की दरिद्रता का तम दूर होगा । उसके अनुसार आधुनिक यंत्र युग और उससे फैली कुरीतियों को दूर करने का एक मात्र उपाय चरखा ही है । यह शोषित जन का सेवक और पालक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से स्वदेश का धन-रक्षक है ।

आज जग में विज्ञान ज्ञान के चरमोन्नत युग में जहाँ भौतिक साधन, यंत्र-यान का वैभव, विद्युत वाष्पशक्ति तथा अन्य दूसरे सक्रिय साधन उपलब्ध हैं[२१२] वहाँ कवि ने गांधी दर्शन की उपयोगिता भी स्वीकार की है । इसका कारण यह है कि यद्यपि `मानव ने देश काल पर जय पाई है फिर भी मानव का हृदय आज मानव के पास नहीं है । इस हृदय परिवर्तन का कार्य गांधी और उनके दर्शन के माध्यम से ही हो सकता है, गांधी दर्शन में आस्थापित सत्य-अहिंसा मानव मन को आलोकित करने वाले हैं । इससे आत्मा का उद्धार होता है । [२१३]

गांधी दर्शन के व्यक्ति के प्रति कवि की आस्था 'साठ वर्ष एवं रेखांकन' के अतिरिक्त[२१४] नोआखाली के महात्मा के प्रति,[२१५] में भी ठीक वैसे ही व्यक्त है जैसे गांधी जी के प्रति[२१६] ` ग्राम देवता की [२१७] कविताओं में । ` खादी के फूल ` के भी प्रथम पन्द्रह गीत पंत पर गांधी के प्रभाव के द्योतक हैं । इस देश पर गांधी के प्रभाव को उन्होंने उत्तरा की भूमिका में स्वयं भी स्वीकार किया है कि हमारा देश ...... गांधी की ऐतिहासिक भूमि है । भारत का दान विश्व को राजनी-

---

२११. ग्राम्या, पृ० ५०--पंत

२१२. ग्राम्या, पृ० ६५

२१३. युगवाणी (बापू) , पृ० १३

२१४. स्वर्णकिरण, पृ० ३५

२१५. स्वर्णकिरण, पृ० ३५

२१६. ग्राम्या, पृ० ५२

२१७. ग्राम्या, पृ० ५७

तिक तंत्र या वैज्ञानिक यंत्र का दान नहीं हो सकता वह संस्कृति तथा विकसित मनोयंत्र की भेंट होगी । इस युग के महापुरुष गांधी जी भी अहिंसा को एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक के ही रूप में दे गए हैं, जिसे हम मानव चेतन का नव-नीत अथवा विश्व मान्यता का एक मात्र सार कहसकते हैं । महात्मा जी अपने व्यक्तित्व से राजनीतिक संघर्ष कंटक-पुलकित कलेवर को संस्कृति का लिबास पहनाकर भारतीय बना गए हैं । उनका दान हम भुला भी दें, किन्तु संसार नहीं भुला सकेगा क्योंकि अणु-भूत मानव-जाति के पास अहिंसा ही एक मात्र जीवन अवलम्ब तथा संजीवन है ।" [२१८] पंत का कथन है कि प्रभाव रूप में" सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों को भी मैं अंत: संगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूँ । अहिंसा मानवीय सत्य का ही सक्रिय गुण है । अहिंसात्मक होना व्यापक अर्थ में संस्कृत होना, मानव बनना है । सत्य का दृष्टिकोण मान्यताओं का दृष्टिकोण है और ये मान्यताएं दो प्रकार की हैं । एक उर्ध्व अथवा आध्यात्मिक और दूसरी समदिक्, जो हमारे नैतिक, सामाजिक आदर्शों के रूप में विकास-क्रम में उपलब्ध होती हैं । ऊर्ध्व मान्यताएं उस अंतस्थ सूत्र की तरह है जो हमारे बहिर्गत आदर्शों को सामंजस्य के हार में पिरो कर हृदय में धारण करने योग्य बना देती हैं ।" [२१९]

अत: गांधी दर्शन के प्रभाव के रूप में स्वयं उन्हीं के शब्दों में कहें तो प्रेरणारूप में — पंत ने उनसे उनके आदर्श व्यक्तित्व से प्रभाव ग्रहण किया तब से उनके काव्य में गांधीवाद का एक स्वर सदैव विद्यमान रहा है । गांधी जी के तप:पूत व्यक्तित्व से जिस ओजस्वी सात्विक चैतन्य का जन्म उनके भीतर हुआ था उसे युग की विघातक शक्तियों से टकराकर संघर्ष करना पड़ा, इसी संघर्ष में वे युग-जीवन में व्याप्त प्रच्छन्न विष के स्वरूप को समझ सका । उनके हृदय को नव युग में मंगल के लिए एक सर्वांगपूर्ण रससिद्ध चैतन्य की खोज थी, जिसकी प्राप्ति के लिए गांधी जी का अत: स्पर्श [२२०] पर्याप्त सहायक हुआ ।

---

२१८. उत्तरा भूमिका, पृ० १३— पंत

२१९. उत्तरा भूमिका, पृ० १३ — पंत

२२०. साठवर्ष एक रेखांकन, पृ० ५२— पंत

इसमें संदेह नहीं किया जा सकता ।

अरविन्द दर्शन का प्रभाव

गांधीवाद की विचारधारा के अतिरिक्त पंत पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव दीख पड़ता है । कदाचित ब्रूस्टर ने भी विचार साम्य के ही आधार पर कहा था `तुम्हारे विचार श्री अरविन्द से बहुत-मिलते-जुलते हैं । [२२१] स्वयं पंत ने भी अपने साहित्य पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव मानते हुए यह स्वीकार किया है कि `प्राकृतिक ऐश्वर्य से ...... किशोरावस्था में प्रभावित हुआ हूँ.... युवावस्था में गांधी जी तथा मार्क्स से और मध्य वयस में श्री अरविन्द के दर्शन की वैचारिक पृष्ठभूमि और व्यक्तित्व से । यहाँ अरविन्द दर्शन की वैचारिक पृष्ठभूमि उनके साहित्यगत दृष्टिकोण से विश्लेषित करना ही अभीष्ट है ।

पंत साहित्य में प्राप्त नव मानवतावादी विचारधारा अरविन्द द्वारा निर्दिष्ट नवमानवतावाद से पर्याप्त साम्य रखता है कदाचित अरविन्द की इस विचारधारा से प्रभावित होकर ही कवि ने मानवता को चिरन्तन विकसनशील तत्व माना जिसके आधार पर अतिमानव (Super man) की उद्भावना उसके साहित्य में देखने को मिलती है । स्वयं उसी के शब्दों में " आने वाला मानव निश्चय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का । वह देशों (दिशा) की सीमाओं एवं विभेदों को अतिक्रमण कर काल के शिखर की ओर आरोहण करने को उत्सुक होगा । [२२२] अरविन्द की तरह ही कवि ने भौतिक और आध्यात्मिक जगत में सामंजस्य उपस्थित किया है क्योंकि वह आध्यात्मिकता के विकास को सामाजिक जीवन से पृथक् वैराग्य के स्फटिक शीत मंदिर में रह कर, संभव नहीं मानता ।" [२२३] इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि उसकी दृष्टि में ज्ञान

---

२२१. साठ वर्ष एक रेखांकन, : पंत पृ० ६५

२२२. चिदंबरा, पंत, पृ० ३४

२२३. चिदंबरा, पंत, पृ० २६

को सदैव विज्ञान ने वास्तविकता प्रदान की है । आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान भी मानव जाति की नवीन जीवन कल्पना को पृथ्वी पर अवतरित करने के प्रयत्न में संलग्न है । जिस संक्रान्ति काल से मानव सभ्यता गुजर रही है उसके परिणाम के हेतु आशावादी बने रहने के लिए विज्ञान की ही हमारे पास अमोघ शक्ति है इस विश्वव्यापी युद्ध के रूप में, जैसे, विज्ञान भिन्न-भिन्न जातियों, वर्गों और स्वार्थों में विभक्त `आदिम मानव` का संहार कर रहा है । वह भविष्य में नवीन मानव के लिए लोकोपयोगी समाज का भी निर्माण कर सकेगा ।[224] आज के तर्क, संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान, स्वप्न-कल्पना सब घुल मिल कर एक सजीव सामाजिकता और सांस्कृतिक चेतना के रूप में वास्तविक एवं साकार हो जायेंगे ।"[225] तभी नव मानव का जन्म होगा ।

कवि पंत ने अरविन्द दर्शन के सम्पूर्ण सैद्धान्तिक पक्ष को अपने काव्य तथा काव्येतर साहित्य में समाहित नहीं किया और न सम्पूर्ण अरविन्द दर्शन का काव्यगत समाहार ही पंत का उद्देश्य था । यही कारण है कि विश्लेषण के अनन्तर अरविन्द दर्शन के चार सैद्धान्तिक पक्ष ही पंत साहित्य में देखने को मिलता है —ये हैं :— (१) ऊर्ध्व जीवन के प्रति सम्पूर्ण आस्था (२) भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का समन्वय और (३) अतिमानव (Super human) के विकास सिद्धान्त पर आस्था रखते हुए भावी मानव की कल्पना (४) साथ ही वैयक्तिक साधना और उपलब्धि की जगह सामाजिक उपलब्धि पर बल । यही कारण है कि व्यक्ति के मोक्ष की कल्पना न कर धरती पर स्वर्ग की कल्पना ही पंत के काव्य दर्शन पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव कहा जा सकता है । अरविन्द का यह प्रभाव स्वर्णकिरण (१९४६-४७), स्वर्ण धूलि (१९४७) उत्तरा (१९४९) तथा काव्य रूपक के रूप में रजतशिखर (१९५१) शिल्पी और अतिमा (१९५५) पर स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है । इनमें से एक एक को विश्लेषित करना अधिक उपयुक्त होगा । स्वर्ण किरण के प्रारम्भ में ही कवि धरा पर स्वर्ण ज्योति का `अभिवादन` करता है जिससे धरा की धूल

---

२२४. आधुनिक कवि पंत, भूमिका पृ० २१

२२५. आधुनिक कवि पंत, भूमिका, ४२

तक नव चेतनता से सिक्त हो जाय और युग-युगान्तरों का तमस हरण । [२२६] भावी मानव की विजय ध्वजा तम पर अंकित हो जाय ' [२२७] क्योंकि इस भू पर विश्व संस्कृति प्रतिष्ठित करनी है । मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से मानव निर्मित करना है । उसमें जातिगत मन में मानवीय एकता स्थापित करनी है । [२२८]

मानव की उन्नति बिना अंतर्विकास [२२९] के सम्भव नहीं और इस उन्नति के निमित्त--ईश्वर पर भी आस्था रखनी होगी, [२३०] तभी ' स्वर्ण चेतना से जग जीवन आलोकित हो [२३१] हो सकेगा । व्यक्ति केन्द्र है, विश्व परिधि है, और ईश्वर की सत्ता अपाय है । इसमें व्यक्ति के विकास में सृजनशील परिवर्तन नियम सनातन है [२३२] यही कारण है कि कवि मनुष्य को विकास की परम्परा में मनुष्य से देवों के योग्य और मर्त्य से अमर बनने की प्रेरणा देता है । यही प्रार्थना स्वर्णधूलि के प्रारंभ में ही की गई है जिसमें कवि असत् से सत, तमस से ज्योति , मृत्यु से अमृत ही नहीं --बार बार अंतर में है चिर परिचित दक्षिण मुख से रुद्र, करो मेरी रक्षा नित --की कामना करता है ।

मानवता का यह रूप जाति, वर्ग, धर्म, अर्थर संस्कृति की संकीर्णता से दूर व्यापक मनुष्यत्व की सीमारेखा में ही संभव है । [२३३] कवि का दृष्टिकोण जीवन में भाव सत्य और वस्तु सत्य का ' सामंजस्य [२३४] है जिससे पूर्ण मानवता की उद्भावना हो सकेगी । सैद्धान्तिक दृष्टि से कवि ने यह प्रेरणा अरविन्द दर्शन के अन्तर्बाह्य संगठन सिद्धान्त से ली है ।

साथ ही अरविन्द दर्शन के ही आधार पर कवि ने अपने काव्यगत

---

२२६. स्वर्णकिरण, पृ० १
२२७. स्वर्णकिरण, पृ० २३
२२८. स्वर्णकिरण, पृ० १६
२२९. स्वर्णधूलि, पृ० ८६
२३०. स्वर्णधूलि, पृ० ६२
२३१. स्वर्णधूलि , पृ० ६६
२३२. स्वर्णधूलि, पृ० ११८
२३३. स्वर्णधूलि, पृ० ११५
२३४. स्वर्णधूलि, पृ० ६

जीवन दर्शन में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय प्रस्तुत किया । जिसे उसने `लोक सत्य` [२३५] में स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है । यही सत्य मानव जीवन का परिचालन कर सकता है जिसका मूलवाद तन हो, प्राणिवाद मन हो और अध्यात्मवाद जिसका हृदय हो जिसमें गंभीर चिरन्तन मूल सृजन के विकास के साथ विश्व प्रगति का गोपन रहस्य अपनी सृजनात्मक प्रक्रिया में गतिशील हो `स्वप्न निर्वत` में मूल की शक्ति की चर्चा है जिसमें पंत ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि जीवन शक्ति का सागर प्रतिक्षण जो उद्वेलित हो रहा है, वही कभी शंभु, कभी राम के युग चेतना के रूप में विश्व चेतना के संकीर्ण बंधनों को तोड़ मानवता का पथ प्रशस्त करता है । कदाचित इसी भावना से प्रेरित होकर उसने मृत्युंजय में `वह फिर जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो, वह क्षण क्षण मरता जी उठता, ईश्वर को नित नव स्वरूप धरने दो` । ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो ।` [२३६] की कल्पना करता है । साथ ही चौथी भूख,[२३७] अमृतधन[२३८] और `छायाभा` [२३९] में उसने अरविन्द दर्शन के प्रभाव में इस बात का भी स्पष्टीकरण किया है कि मानव मन में तन की भूख के साथ मन की भी भूख होती है जिसमें भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय से ही संतुलित जीवन व्यवस्था हो सकती है । साथ ही मनुष्य का सुख दु:ख समान रूप से ग्राह्यकर अति मानस की उद्भावना हो सकती है ।

जहाँ तक उत्तरा का प्रश्न है उत्तरा पंत की मनोभूमि की एक ऐसी भावभूमि प्रकट करती है जहाँ से स्वयं उसने मार्क्सवाद की विचारधारा को एकांगी सिद्ध कर [२४०] अरविन्द दर्शन में ही पूर्णता ढूँढने का प्रयत्न किया है ।[२४१]

---

२३५. स्वर्ण धूलि पृ० १३
२३६. ,, , पृ० ६४
२३७. ,, पृ० ३३
२३८. ,, , पृ०
२३९. ,, पृ० ४६
२४०. उत्तरा, पृ० २१
२४१. उत्तरा, पृ० १९

कवि के अनुसार वह जिस युग में है उसमें उसकी — ' विश्व संघर्ष के युग में सांस्कृतिक संतुलन स्थापित करना .... जागृत चैतन्य मानव का कर्तव्य समझता '[२४२] है, ऐसी स्थिति में ' पूर्व- पश्चिम की सभ्यताओं की जीवन अनुभूतियों को, जिन्हें ऐतिहासिक विकास के लिए मानव अदृष्ट (भावी) का भौगोलिक वितरण कहना अनुचित न होगा, निकट भविष्य में विश्व संतुलन तथा बहिरंतर संगठित भू-चेतना एवं मन के रूप में संयोजित होना ही होगा। पश्चिम को पूर्व, विशेषकर भारत जो अंतर्मन तथा अन्तर्जगत का सिद्ध वैज्ञानिक है, मानव तथा विश्व के अंतर्विधान में (काल में) अंतर्दृष्टि देगा और पूर्व को पश्चिम जीवन के दिक् प्रसरित बहिर्विधान का वैभव सौष्ठव प्रदान करेगा। आनेवाली सांस्कृतिक चेतना का स्वर्गनिम्न सेतु पूर्व तथा पश्चिम के संयुक्त छोरों पर भूलकर धरती के जीवन एवं विश्व मन को एक तथा अखण्ड बना देगा। तब दोनों के, विरोधी अस्तित्व नवीन मानव चेतना के ज्वार में डूब जायेंगे और विश्व-मानवता एक ही सिन्धु की अगणित लहरों की तरह भू-जीवन की आरपार-व्यापी सौन्दर्य-गरिमा वहन कर सकेगी। '[२४३] आज के संक्रान्ति युग में कवि यह आवश्य समझता है कि ' युग-संघर्ष के भीतर जो नवीन लोक-मानवता जन्म ले रही है, वर्तमान के कोलाहल के बधिर पट से आच्छादित मानव हृदय के मंच पर जिन विश्व निर्माण, विश्व एकीकरण की नवीन सांस्कृतिक शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा अंत:क्रीड़ा हो रही है उन्हें वाणी द्वारा अभिव्यक्ति देकर जीवन संगीत में झंकृत कर सके और थोथी बौद्धिकता तथा सैद्धान्तिकता के मृगजल मरु में भटकी हुई अन्त: शून्य मनुष्यता का ध्यान फिर उपेक्षित अंतर्जगत् तथा अंतर्जीवन की ओर आकर्षित कर सके। [२४४] कदाचित इसीलिए कवि ' विश्व कल्याण के लिए श्री अरविन्द को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानते हैं। [२४५]

---

२४२. उत्तरा, पृ० २६

२४३. उत्तरा, पृ० २३

२४४. उत्तरा, पृ० २३

२४५. उत्तरा, पृ० १६

इस प्रकार पन्त के दृष्टिकोण से उनके साहित्य में यदि अरविन्द वादी दृष्टिकोण का विश्लेषण करें तो सैद्धान्तिक रूप में अरविन्दवाद के एक ही सिद्धान्त की पुनरावृत्ति भी काव्य साहित्य में एकाधिक बार देखने को मिलती है पर कवि के वैचारिक प्रक्रिया का रूप व्याख्या रूप में भी अरविन्द के सिद्धान्त से आगे नहीं बढ़ पाया है। कवि ने अरविन्द की अन्तर्चेतना (Intuition) का व्यापक धरातल पर अपने काव्य में उपयोग किया है। कवि की धारणा है कि यह अन्तर्चेतना ब्रह्म की शक्ति है जो जीव जगत् से सम्बन्ध स्थापित करती है। मानव के लिए उसकी उपयोगिता को देखते हुए ही इस अन्त:चेतना का स्वागत करता है। जहाँ तक "मानव ईश्वर"[२४६] का प्रश्न है वह अरविन्द के अतिमानव का ही रूप है। उसने अतिमानस के उच्च शक्तियाँ को धरती पर लाने का प्रयत्न किया है जिसे प्राप्त कर विकास की परम्परा में मानव ईश्वर की संज्ञा से अभिहित होगा।

कवि ने अरविन्द द्वारा वर्णित विभिन्न चेतन स्तरों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। साथ ही ऊर्ध्व चेतना (Supermind) की काल्पनिक स्थितियों का प्राप्त कर उसने उसकी विभिन्न उपलब्धियों पर भी प्रकाश डाला जो कि मानवता के विकास में एक आदर्श स्थिति कही जा सकती है। पंत ने अरविन्द दर्शन की जीवनगत आस्था तथा इसके भौतिक और आध्यात्मिक प्रकृति को पूर्ण रूप से सामन्जस्य करने का प्रयत्न किया है। पंत व्यक्ति के मोक्ष को स्वीकार नहीं करते। उनकी दृष्टि में समाज में ही स्वर्ग की सृष्टि अपेक्षित है यह तभी होगा जब समाज में सभी सुखी रहेंगे। इसलिए पंत ने प्राचीन समाज की जर्जरित अवस्था को दूर भगा जगत के जीर्ण पत्र" की कामना की है। नितान्त विज्ञानवाद और बुद्धिवाद में भी कवि आस्था नहीं रखता क्योंकि वे जीवन के प्रति एकांगी दृष्टिकोण रखते हैं। कवि ने विश्व - शन्ति, जन कल्याण, को मानव के मानसिक ऊर्ध्वोमुखी स्थिति माना है। साथ ही जीवन के आन्तरिक और बाह्य संगठन की अनिवार्यता की ओर संकेत

---

२४६. उत्तरा, पृ० ११७

किया । यही कारण है कि अरविन्द मत के चेतन, उपचेतन, अवचेतन विज्ञान का बुद्धिवाद, ब्रह्म की सत्ता की स्वीकारोक्ति तथा मार्क्सवादी भौतिकता की विचारधारा को पंत ने अरविन्द दर्शन के समन्वयवाद के निष्कर्ष रूप में ग्रहण किया है। जिसमें उन्होंने अतीत की मान्यताओं पर भविष्य के स्वरूप-निर्माण की योजना रक्खी । साथ ही लोकायतन में इस बात का स्पष्टीकरण भी कर दिया कि नये युग का प्रादुर्भाव हुआ धरा पर स्वर्ग की कल्पना साकार हुई ।[२४७] इस तरह अपने काव्य साहित्य में धरा पर नव मानव की अवतारणा की कल्पना पंत की वैचारिक उपलब्धि कही जायगी ।

निराला

रहस्यवाद

साहित्य के आधार पर यदि निराला के रहस्यवाद सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण करें तो कहा जा सकता है कि उन्होंने रहस्यवाद को साहित्य की सर्वोच्च परमनिधि माना । स्वयं उन्हीं के शब्दों में " तमाम आर्य संस्कृति रहस्यवाद पर प्रतिष्ठित है , रामायण, महाभारत रहस्यवाद के ग्रन्थ हैं, सब ऋषि कवि रहस्यवादी थे ।"[२४८] रहस्यवाद ही सर्वोच्च साहित्य है ।" प्रस्तुत कथन में " तमाम आर्य संस्कृति " और सभी ऋषियों को रहस्यवादी कथन कहने में थोड़ी अतिशयोक्ति भले ही हो पर इसे मानने से इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्राचीन ग्रन्थों में भी रहस्यवादी विचारधारा का स्वरूप पर्याप्त मिलता है ।

निराला की दार्शनिक विचारधारा का एक रूप रहस्यवादी भी है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से

---

२४७. लोकायतन, पृ० ६८०

२४८. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ८६

उनके गीत उज्ज्वल हैं। रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की जो बहुविधि चेष्टाएं आधुनिक हिन्दी में की गई हैं उनमें निराला जी की कृतियां विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ कवियों ने तो रहस्यपूर्ण कल्पनाएं की हैं, किन्तु निराला जी के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकांश पदों में मानवीय जीवन के ही चित्र हैं सही, किन्तु वे सब के सब रहस्यानुभूति से अनुरंजित हैं।" [२४९]

कवि की कविताओं को विश्लेषित करें तो -- कौन तम के पार (रे कह) [२५०] में असीम सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना दीख पड़ती है। यह स्थिति मात्र जिज्ञासा तक ही नहीं दीख पड़ती वरन् वह परम तत्व के प्रेम में सारी सृष्टि ही विरह से ओत-प्रोत हो रही है -- " प्राण धन को स्मरण करते नयन झरते नयन झरते ।" [२५१] वह केवल यही कामना करता है कि " कुछ न हुआ, न हो, मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल मेरे पास तुम रहो।" साथ ही वह प्रिय से अपने अस्तित्व की चेतना मांगता है। जिससे उसे अपने वंचित गेह की याद रहे।" [२५३] वह कभी अव्यक्त का आह्वान कर जगत को ही नन्दन वन बनाने की कामना करता है। [२५४] यों तो निराला के काव्य साहित्य में नन्ददुलारेवाजपेयी के शब्दों में कवि का स्वर सर्वत्र व्याप्त है।" [२५५] पर उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त " तरंगों के प्रति", [२५६] सन्ध्या सुन्दरी; [२५७] में भी रहस्य वातावरण से विशेष रूप से सम्बन्धित है। कवि ने तुलसीदास में रहस्यवाद की सहायता से कथा-रूप में एक नया चित्र खींचा है। [२५८]

---

२४९. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी, पृ० १४७

२५०. गीतिका, पृ० १४

२५१. गीतिका, पृ० ५२

२५२. अपरा, पृ० १३१

२५३. अपरा, पृ० १३४

२५५. आराधना, पृ० ४१

२५५. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १४८

२५६. अपरा, पृ० ७२

२५७. अपरा, पृ० १२

२५८. तुलसीदास भूमिका,

पन्द्रहवें छन्द में तुलसीदास को प्रकृति के रूप में दिव्य सत्य की छाया के दर्शन "जल में अस्फुट छवि छायाधर यों देख " [२५९] के रूप में कराता है प्रकृति का प्रत्येक कण अपनी वेदना कह उसको परम सत्ता की खोज के लिए प्रेरणा देती है। [२६०] तुलसीदास प्रकृति के इस सन्देश को सुन कर उन्मत्त से होते हैं। [२६१] और कवि के ऊर्ध्वमुखी मन की प्रक्रिया क्रमश: अपनी साधनात्मक अवस्था में ऊपर ही ऊपर उठती है और मन के संस्कारों को पार करती जाती है। जिसे उसने "दूर, दूरतर, दूरतम, शेष", कर रहा पार मन नभोदेश" में व्यक्त किया है।" कालान्तर में वह --

करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार--
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय--
लड़ना विरोध से द्वन्द्व-समर,
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर --" [२६२]

के निश्चय के अनन्तर विभिन्न स्थितियों से गुजर कर सत्य की स्थिति से तादात्म्य करता है। इस प्रकार निराला ने रहस्यवाद की योजना कथानक के मिश्रण से की है। पर प्रसाद की कामायनी और निराला के तुलसीदास को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो वस्तु योजना के भीतर रहस्यवाद का संकेत दोनों में सफलतापूर्वक दीख पड़ता है। पर प्रसाद कामायनी में शैवागम के आधार पर रहस्यभावना का उपयोग किया है जबकि निराला ने तुलसीदास में सामान्य रूप में। किन्तु यह अवश्य है कि वस्तु विस्तार की दृष्टि से

---

२५९. तुलसीदास, पृ० १९
२६०. तुलसीदास, पृ० १९
२६१. तुलसीदास, पृ० २२
२६२. तुलसीदास, पृ० २८

कामायनी की अपेक्षा तुलसीदास में रहस्यवाद की वैचारिक अभिव्यक्ति का अवसर अपेक्षाकृत कम मिला है ।

विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो आत्म परक काव्य की रहस्योन्मुखता एक प्रामाणिक तथ्य है । दार्शनिक भूमि पर अज्ञात भूमि पर अज्ञात-सत्ता को केन्द्र बनाकर प्रतकी मानकर उसके प्रति जो भाव निवेदन होता है वह सब रहस्यवाद की सीमा है । रहस्यवादी काव्य वह है जिसके प्रतीक की सत्ता होती है, जो आध्यात्मिक तथ्य का व्यक्त रूप होता है । जहाँ काल में प्रतीक और आध्यात्मिक केन्द्र की अर्थ स्थिति से भावनाएं निःसृत होती हैं, उसे रहस्यवादी काव्य का क्षेत्र कहना चाहिए । व्यक्त प्रसार में किसी आध्यात्मिक तत्व का भान, आभास पाना और दिव्य सौन्दर्य की झांकी से उसे व्यक्त करना छायावादी भूमि है, लेकिन जब दृष्टा पूरे दर्शन को देखकर उसे प्रगाढ़ करता है और उस अव्यक्त सत्ता को प्रतीक मानकर काव्य सृजन करता है तब वह रहस्यवादी भाव भूमि कहलाती है । ज्ञान, प्रेम और सौन्दर्य की भावभूमियाँ पर रहस्यवाद का प्रकाशन होता है । जिनमें अन्तिम तत्व छायावाद के अधिक निकट पड़ता है । आधुनिक रहस्यवादियों में निराला का स्थान ज्ञानात्मक रहस्यवाद से है । साथ ही उनमें अन्तः सत्ता या मिस्टिक (पाश्चात्य) कवियों की तरह से धुंधला वातावरण नहीं मिलता । साधना की उपलब्धि का स्पष्ट चित्रण निराला के रहस्यवाद की विशेषता का ही द्योतक है । रहस्यभावना की स्थिति में आध्यात्मिक, अद्वैत या अव्यक्त के प्रति गीत गाकर भी काव्य साहित्य में निराला, लोक और युग की यथार्थवादिता से पलायनवादी नहीं हैं ।

विशिष्टाद्वैत

निराला की विचारधारा पर विशिष्टाद्वैत का भी प्रभाव दीख पड़ता है । दार्शनिक विचारधारा के प्रभाव रूप में `तुम और मैं` [२६३] शीर्षक

---

२६३. अपरा, पृ० ७०

कविता का विशेष उल्लेख किया जा सकता है । प्रस्तुत कविता में तुम और मैं के माध्यम से आत्मा चित् और जड़ अचित् को विशिष्ट भावभूमि में स्थूल चेतनता तथा अचेतनता से विशिष्ट जीव और सूक्ष्म चेतनता तथा अचेतनता से विशिष्ट परमात्मा के विशिष्टाद्वैत के रूप में देखने का प्रयत्न किया है । कवि ने `तुम` को कारण ब्रह्म और मैं को कार्य ब्रह्म माना है । यही कारण है कि तुम की विशालता तुंग हिमालय श्रृंग, विमल हृदय-उच्छ्वास, `प्रेम`, दिनकर, योग, रागानुग, मानस के भाव, नन्दनवन, प्राण, शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म और-`-मैं-`-को कण्ठहार, करपाल, झंकृत सितार, मनमोहन, पथिक दूर के श्रांत, भव सागर दुस्तार, नभ, शरद काल,के बाल-इन्दु, पराग मुक्त पुरुष, शिव, रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मधुमास, अम्बर, चित्रकार, नृत्य, नादवेद-ओंकार-सार, यश, कुन्द, इन्दु-अरविन्दु के शुभ्र नाम से सम्बोधित किया है तो ` मैं ` को सुरसरि, कविता, शान्ति, अन्धकार, माया, भ्रान्ति, मुसकान, पल्लान, सिद्धि, समृद्धि, भाषा, आशा, अभिलाषा, काया, वेणी, व्याकुल-रागिनी, रेणु, वेणु, नीलिमा, निशीथ-मधुरिमा समीर, प्रकृति, शक्ति, सीता, तान, मुग्धा, दिग्वासना, तड़ित्-लिका रचना, नूपुर-ध्वनि, प्राप्ति, और व्याप्ति की संज्ञा से अभिहित किया है । पर दोनों का कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म , एक चित और अचित है , विशिष्टाद्वैत से ही सम्बन्धित है क्योंकि इसमें द्वैत नियम्य है और अद्वैत नियामक । चित और अचित, विशेषण या अंश है और ईश्वर प्रधान अंगी है । यही कारण है कि दोनों ही ईश्वराश्रित हैं । निराला ने विशिष्टाद्वैत के चित, अचित का विश्लेषण करते हुए भी ईश्वर का विश्लेषण नहीं किया ।

एक स्थल पर उन्होंने सत तत्त्व को` मुक्त ` की संज्ञा से भी अभिहित किया है । पर उनका यह` मुक्त` विश्लेषणात्मक दृष्टि से बद्ध, मुक्त और नित्य की संज्ञा में नहीं आता क्योंकि उपर्युक्त तीन भेद विशिष्टाद्वैत की दृष्टि से जीवात्मा के तीन भेद हैं । और सत के साथ इस वर्गीकरण का प्रश्न नहीं उठता । साथ ही प्रस्तुत कविता में [२६४] एक

---

२६४. अपरा, पृ० ७०

स्थल पर इन्होंने " मैं " को ' सीता अथवा भक्ति' भी माना , पर उसमें ज्ञान, कर्म या भक्तियोग से मुमुक्षा का भाव नहीं देखने को मिलता है कदाचित निराला का दृष्टिकोण सत्-असत्, नियम्य - नियामक,कारण-कार्य ब्रह्म का विश्लेषण मात्र था जिसमें विशिष्टाद्वैत का वैचारिक प्रभाव दीख पड़ता है ।

प्रगतिवाद

निराला के काव्य और काव्येतर साहित्य में प्रगतिवाद के जो तत्व मिलते हैं उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि प्रगतिवादी जीवन-दर्शन का प्रभाव कुकुरमुत्ता (१९४२) बेला (१९४३) , अणिमा (१९४३) , नये पत्ते (१९४६) और उसके गद्य साहित्य बिल्लेसुर, बकरिहा और कुल्लीभाट पर दीख पड़ता है । यद्यपि निराला ने प्रगतिवाद की सैद्धान्तिक व्याख्या नहीं की फिर भी उनके साहित्य में व्यावहारिक दृष्टि-कोण से प्रयुक्त प्रगतिवादी जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण अपेक्षित है ।

भौतिकवाद से प्रभावित होने के कारण निराला ने मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार ही प्रत्ययगौण और मैटर को प्रधान माना । साथ ही हीगेल के द्वन्द्वात्मक आदर्शवाद की अपेक्षा उनकी विचारधारा मार्क्स के द्वन्द्वा-भौतिकवाद से अधिक प्रभावित दीख पड़ती है ।

निराला के तोड़ती पत्थर में शासक और शासित के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा दीख पड़ती है । शोषित होते हुए भी सर्वहारा वर्ग के प्रतीक रूप में वह श्रमजीवी महिला..... तोड़ती पत्थर, श्याम तन, भर बंधा यौवन, नत नयन, प्रियकर्म रत मन, गुरु हथौड़ा हाथ",[२९५] से सामने तरु-मालिका

---

२९५. अपरा, पृ० २१

अट्टालिका" — प्राकार पर करती बार-बार प्रहार" [२६६] कदाचित पूंजीवादी व्यवस्था को ही ध्वंस करने की रचनात्मक प्रक्रिया है जिसे अपने बच्चों के लिए, दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता, पेट-पीठ दोनों मिल कर एक हुए, मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को मुंह फटी-पुरानी झोली को फैलाये हुए लोग हों [२६७] उसके परिवर्तन की आवश्यकता कवि की दृष्टि में नितान्त अपेक्षित है। यहाँ निराला क्रान्ति का समर्थक है। इसलिए कुकुरमुत्ता के माध्यम से पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतीक गुलाम को कवि ने स्पष्ट शब्दों में सम्बोधित किया है —

" अबे, सुन बे, गुलाम,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब ,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट,
बहुतों को तूने बनाया है गुलाम ,.... [२६८]

में उन्होंने इस बात की भी स्पष्टोक्ति की है कि आधुनिक युग शोषित वर्ग का है। शोषण का युग समाप्त हो गया। यही कारण है कि प्राय: हर क्षेत्र में ही शोषित मध्यम और निम्न वर्ग की जनता की उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। [२६९]

बेला तक आते आते निराला का दृष्टिकोण मार्क्सवादी विचार-धारा के प्रभाव में क्रान्ति की ओर अग्रसर होता है। समाज की ओर देखते हुए इसका उल्लेख —" जिन्होंने ठोकरें खाईं, गरीबी में पड़े, उनके स्वार्थों-

---

२६६. अपरा, पृ० २१
२६७. अपरा, पृ० ६६
२६८. कुकुरमुत्ता, पृ० ३
२६९. कुकुरमुत्ता, पृ० ८

हजारों हाथ के उठते समर देखे ।" [२७०] के रूप में उल्लेख किया है । भले ही ही वह आज भीख माँगता है .... राह पर , मुट्ठी भर हड्डी का यह नर" [२७१] पर उनकी दृढ़ धारणा है कि " बढ़ी हैं आँखें जहाँ की उतार लायेंगी । बढ़े हुओं को गिराकर संवार लायेंगी ।" [२७२] में समाज अपनी स्थिति की दयनीयता को समझ गया है । यही कारण है समाज ने सर उठाया है -- राज बदला है, [२७३] यदि मनुष्य डर कर पीछे हट गया तो यह शोषकों द्वारा शासित सामाजिक व्यवस्था कभी नहीं मिटा सकता है । कदाचित इसीलिए कवि सारे समाज में क्रियाशीलता की प्रेरणा देकर यह उद्घोष करता है कि "आज अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला होगी । सेठ के घर में किसानों के लिए बैंक खुलेंगे । सारी सम्पत्ति देश की होगी क्योंकि कांटे से ही कांटा निकलता है । यही निराला साहित्य में पहली बार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त रूप में क्रमश: विरोधों की एकता, विरोधों का आपसी संघर्ष इस संघर्ष से समन्वित परिस्थिति का जन्म, और वाद से संवाद तक का परिवर्तन एक सूत्रबद्ध विचारधारा के रूप में दीख पड़ता है । यहाँ कवि की विचारधारा विषय की दृष्टि से मनुष्य को ही दर्शन का केन्द्र और उसकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक परम्परा को प्रतिफल के रूप में स्वीकार करती है ।

जहाँ तक अणिमा का प्रश्न है अणिमा में प्रगतिवाद का खुला रूप इसलिए नहीं देखने को मिलता क्योंकि ये सब -- आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले ही गीत हैं फिर भी " सड़क के किनारे दुकान है " [२७५] और चूंकि यहाँ दाना है इसलिए दीन है दीवाना है । [२७६] में प्रगतिवादी

---

२७०. बेला, गीत- ५५

२७१. बेला, गीत, ४५

२७२. बेला, गीत, ५०

२७३. बेला, गीत, ५०

२७४. बेला, गीत, ५७

२७५. अणिमा , पृ० १००

२७६. अणिमा, पृ० १०३

स्वर मुड़ने नहीं पाया है `नये पत्ते` में निराला के मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव का उग्र रूप पुन: दीख पड़ता है। यह प्रभाव `मास्को डायेलाग्स` [२७६] के रूप में देखा जा सकता है। फिर भी निराला की विचारधारा मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रभावित होने पर भी झूठे प्रगतिवादी नेताओं पर करारा व्यंग्य करने में नहीं चूकती, यह व्यंग्य गिडवानी जी के माध्यम से किया गया है। जो समाज में प्रगतिवादी सिद्धान्त पक्ष से दूर मात्र प्रचार पक्ष से अपना मतलब गाँठते हैं। `थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा`, [२७८] `राजे ने अपनी रखवाली की` [२७६] में प्रगतिवादी विचारधारा से आभास मिलता है कि समाजवादी क्रान्ति केवल सर्वनाश ही कर सकती है।

काव्येतर साहित्य में स्वयं निराला के ही शब्दों में बिल्लेसुर-बकरिहा प्रगतिशील साहित्य का नमूना है।` [२८०] जिसमें उन्होंने ग्राम समाज में एक ऐसे व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की है जो नियतिवाद से दूर मात्र अपनी कर्मठता और श्रम तथा उसके उचित प्रतिफल के कारण भौतिक सुखों की उपलब्धि में समर्थ हो सका है।

कुल्लीभाट और चतुरी चमार भी सर्वहारा वर्ग के हैं। इसमें कुल्ली को तो देखते देखते ही एक आदर्श सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि बना दिया है। पर उसका मूल्यांकन उसकी मृत्यु के अनन्तर होता है जहाँ तक चतुरी का का प्रश्न है उसमें प्रगतिवादी विचारधारा की अपेक्षा गांधीवादी विचारधारा ही अधिक मिलती है।

अत: उपर्युक्त निराला साहित्य के आधार पर यदि उनकी प्रगतिवादी दार्शनिक विचारधारा का विश्लेषण किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने समाज के परिवर्तन का रूप द्वन्द्वात्मक माना है। उनकी दृष्टि

---

२७६. अणिमा, पृ० १०३

२७७. नये पत्ते, पृ० १८

२७८. नये पत्ते, पृ० २२

२७६. नये पत्ते, पृ० २५

२८०. बिल्लेसुर बकरिहा, भूमिका, निराला

में सृष्टि का तत्व मैटर हो जाता है। इसका रूप परिवर्तनशील है। कदाचित यही कारण है कि प्रत्येक स्थिति के मूल में संघर्ष की सत्ता रहती है इसे बेला के गीत ५५ में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साथ ही इस बात की भी पुष्टि होती है की उस विशेष परिस्थिति में भी उसके नाश के उपकरण सदैव तत्पर रहते हैं। क्योंकि संघर्ष से ही विकास की स्थिति है। निराला को तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में विश्वास नहीं था और वे उसे स्थायी नहीं मानते यही कारण है कि वे उसके परिवर्तन के पक्ष में हैं। पर यहाँ द्रष्टव्य है कि उन्होंने व्यक्ति को महत्ता न देते हुए सामूहिक उत्पादन, प्रबन्ध, उपभोग के सिद्धान्त पर आधारित समाज-व्यवस्था का भी समर्थन किया है।

रामकृष्ण मिशन का प्रभाव

समन्वय के सम्पादन काल में निराला पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। इसकाल में निराला की प्रवृत्ति अद्वैतवादी और दार्शनिक चिंतन की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हुई। उन पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का अद्वैतवादी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रभाव का यह रूप 'श्री देव रामकृष्ण परमहंस[स८१] युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण[स८२] भारत में श्री रामकृष्णावतार,[स८३] वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द,[स८४] के निबंधों से भी स्पष्ट है। काव्य की दृष्टि से अनामिका का रचनाकाल समन्वय सम्पादन काल था। अनामिका में भी स्वामी विवेकानन्द की 'गाह गीत सुनाते तोमाय का' गाता हूं गीत तुम्हें सुनाने को —[स८५] 'नाकुक ताहाते श्यामा' का नाचे

स८१. संग्रह (निराला) पृ० ३२

स८२. संग्रह(निराला) पृ० ४०

स८३. संग्रह (निराला) पृ० ६५

स८४. संग्रह निराला पृ० ६७

स८५. अनामिका, पृ० ८५

उस पर श्यामा[२८६] का अनुवाद तथा सेवा प्रारम्भ`[२८७] में रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी सारदानन्द का "ज्ञान- योग- भक्ति-कर्म-धर्म- नर्मदा " [२८८] के रूप में इनका उल्लेख कवि की आस्था को प्रकट करता है।

विवेकानन्द या मिशन के प्रति कवि की कोरी आस्था न थी और न इस आस्था का सम्बन्ध `समन्वय` से ही था। अनामिका में इस बात का स्पष्ट संकेत है कि यह आस्था बहुत कुछ इसलिए भी थी कि " जब इस देश में देश के ही लोगों या संस्था द्वारा किसी प्रकार की सेवा प्रचलित न हुई थी यह कार्य श्री रामकृष्ण मिशन शुरू करता है। ... संघबद्ध रूप से श्री रामकृष्ण मिशन लोकसेवा करता है। इसके बाद अन्यान्य सेवा दल संगठित होते हैं। स्वामी अखण्डानन्द जी की इस सेवा के समय स्वामी विवेकानन्द जी थे। स्वामी अखण्डानन्द जी ने ही स्वामी विवेकानन्द जी को पीड़ित जन नारायणों की सेवा के लिए प्रवृत्त किया था। "[२८९] कदाचित यही कारण है कि स्वामी अखण्डानन्द जी को चरित नायक बना कर सेवा प्रारम्भ की रचना की। पर यह यदि सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाय तो " स्वामी शारदानन्द जी महराज और मैं" [२९०] नामक कहानी में भी रामकृष्ण मिशन से उनके सम्बन्ध का तो पता चलता है पर गुरुमन्त्र लेने के अनन्तर भी दार्शनिक दृष्टि से भी निराला की सारी आस्था मिशन तक ही सीमित हो ऐसी बात नहीं दीख पड़ती। यद्यपि निराला ने रामकृष्णवचनामृत का हिन्दी अनुवाद चार भागों में प्रस्तुत किया, मिशन सम्बन्धी सेवाओं के प्रशंसक रहे और रामकृष्ण के प्रमुख शिष्यों पर लिखा भी, पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि निराला पर दार्शनिक दृष्टिकोण से रामकृष्ण का प्रभाव अधिक गहराई नहीं व्यक्त करता, इसे निराला दर्शन का मात्र एक पक्ष कहा जा सकता है जिसका प्रभाव मात्र समन्वय सम्पादन काल तक ही रहा।

---

२८६. अनामिका, पृ० १०४
२८७. अनामिका, पृ० १७४
२८८. अनामिका, पृ० १७४
२८९. अनामिका, पृ० १७०
२९०. चतुरी चमार, पृ० ५०

भक्ति दर्शन

विद्रोही काव्य रचना के उत्कर्ष के अनन्तर अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में निराला की दार्शनिक विचारधारा भक्ति दर्शन की ओर और उन्मुख हो गयी थी और उनका विद्रोही रूप ईश्वर के समक्ष तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था से क्षुब्ध हो अपनी सारी आस्थाओं को समेट कर के शांडिल्य 'भक्ति सूत्र' सा परानुरक्ति: ईश्वरे' की संज्ञा दे रखा था । पर भक्ति को कवि ने वर्गीकरण की दृष्टि से नवधा या दशधा के रूप में नहीं देखा वरन् उसे एक समष्टि के रूप में गृहीत किया था । निराला का यह भक्ति-दर्शन गीतिका , अर्चना और आराधना में देखा जा सकता है ।

गीतिका के " मौन रही हार.... और उन चरणों को छोड़ और शरण कहां जाऊं ? "[२६१] से ही भक्ति दर्शन की झलक मिलती है । कौन तम के पार ?[२६२] में अदृश्य सत्ता के प्रति जिज्ञासा प्रकट की गई है क्योंकि " विभिन्न मार्गों से चलकर भी जीवन लक्ष्य रूप में एक ही गन्तव्य पर पहुँचना है ।[२६३] कवि अज्ञान में भ्रांत लोगों को पास ही रे हीरे की खान, खोजता कहां और नादान ?" सम्बोधित करता है । वह स्वयं भी " आओ मेरे आतुर उर पर, नव जीवन के आलोक सुघर कह कर उसे आमंत्रित करता है और तृप्ति के अनन्तर - " देख दिव्य छवि लोचन हारे । रूप अतन्द्र, चन्द्र मुख अमरुचि, पलक रतल-तम , मृग-दृग-तारे[२६४] की स्थिति आ जाती है । फिर भी वह आराध्य के स्नेह का चिर अभिलाषी है ।[२६५]

---

२६१. गीतिका- गीत-६

२६२. गीतिका,गीत १२

२६३. गीतिका, गीत, ३०

२६४. गीतिका, गीत, २५

२६५. गीतिका, गीत ३८

जिससे उसके दृगों के द्वार खुल सकें ।[२९७] प्राण सार्थक हो सकें ।[२९८]

गीतिका के अनन्तर `अर्चना` में निराला का विगलित विद्रोह `ईश्वर की इच्छा ` के समक्ष नत है । यहाँ वह पूर्ण नियतिवादी और एकदम भक्त कवि हो गया है । वह गीता पर आस्था प्रकट करता है ।[२९९] गंगा की वंदना करता है[३००] । अपनी सफलता का भी श्रेय परम सत्ता को देता है ।[३०१] मनको हरि शरण में लीन रहने का उपदेश देता है ।[३०२] साथ ही हरि के नयनों पर न्योछावर होने की बात करता है ।[३०३] दूसरा पक्ष उसके आर्तनाद का भी है जिसमें ` पतित हुआ हूँ भव से तार`[३०४] अशरण हूँ हरो हाय ,[३०५] भव-सागर से पार करो है ।[३०६] जब से उसने ईश्वर भक्ति का रसास्वादन किया है तब से उसने चैन नहीं पायी ।[३०७] वह सदा उसके सत्संग की आशा करता है ।[३०८] अन्त में वह ईश्वर के विराटरूप की कल्पना करता है जिसमें सारा ब्रह्माण्ड उद्भूत है ।[३०९]

गीतिका और अर्चना का भक्त कवि आराधना में परम सत्ता के प्रति और भी आस्थावान् हो गया । जहाँ तक वैचारिक प्रक्रिया का प्रश्न है निराला की विचारधारा यहाँ एक दूसरे धरातल पर स्पष्ट दीख पड़ती है । वह अपनी जीवनगत सारी आस्था को हार में परिणित देखता है ।[३१०] यही कारण है कि उसका जी छोटा हो जाता है,[३११] और उसे स्वयं इस बात में अनास्था होती है कि — `दुलता रहता है अब जीवन `[३१२] । पर

---

२९७. गीतिका, गीत ४३
२९८. गीतिका, गीत ५३
२९९. अर्चना, पृ० १
३००. अर्चना, पृ० ९६
३०१. अर्चना, पृ० ६३
३०२. अर्चना, पृ० ७८
३०३. अर्चना, पृ० ९०
३०४. अर्चना, पृ० ९५
३०५. अर्चना, पृ० ६
३०६. अर्चना, पृ० ७
३०७. अर्चना, पृ० २०
३०८. अर्चना, पृ० २१
३०९. अर्चना, पृ० १०३
३१०. आराधना, पृ० १५
३११. आराधना, पृ० ९८
३१२. आराधना, पृ० २२

जब वह अपनी हार की प्रक्रिया पर चिन्तनशील होता है तो परम सत्ता के प्रति नतमस्तक हो " कृष्ण कृष्ण राम राम । जपे हैं हजार नाम ," [३१३] " राम के हुए तो बने काम संवरे सारे धन, धान धामे", [३१४] " विपदा हरण हर हरि वे करो पार", [३१५] " अशरण शरण राम" [३१६], तुम से लाग लगी जो मन की ; [३१७] हरि भजन करो भू भार हरो", [३१८] में नाम महात्म्य पर ही बल देता है । [३१९]

भक्त कवि ईश्वर से अपनी सेवा ग्रहण करने के लिए कहता है [३१९] ताकि उसका दुःख दूर हो जाय । [३२०] जीवन साज सूना न रहे । [३२१] और जब विश्वाधार उसकी मन की कामनाओं का समाहार कर देता है [३२२] तो रचनाक्रम की दृष्टि से आराधना की अन्तिम कविताओं में अपने गन्तव्य की प्राप्ति का उल्लेख —मरा हूं हजार मरण पाई तब चरण-शरण [३२३] — के शब्दों में व्यक्त किया गया है । अब उसकी केवल एक ही आकांक्षा है और वह है " —" निष्प्राणों को रसमय कर दो " [३२४] ताकि जीवन की सारी असफलताओं को भूल अपने आराध्य तक पहुंचने में सफल हो सके । अतः यहां निराला भक्ति की उपलब्धि रूप में ईश्वर के चरणों में स्थान पाना स्वीकार करता है । यह उसकी वैचारिक उपलब्धि कही जायगी ।

---

३१३. अर्चना, पृ० १२
३१४. अर्चना, पृ० २०
३१५. अर्चना, पृ० २१
३१६. अर्चना, पृ० ४८
३१७. आराधना, पृ० ५०
३१८. आराधना, पृ० ५१
३१९. आराधना, पृ० २४
३२०. आराधना, पृ० २८
३२१. आराधना, पृ० ३१
३२२. आराधना, पृ० ४६
३२३. आराधना, पृ० ६
३२४. आराधना, पृ० ८

शाक्त मत

बंगाल में शक्ति पूजा की प्रथा है। वहाँ बहुत दिनों तक रहने के कारण निराला पर शाक्त मत का प्रभाव पड़ा जो कि उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष रूप से दीख पड़ता है।

'राम की शक्ति पूजा' में निराला ने राम से रावण वध से पूर्व शक्ति की पूजा कराई है। जिसकी कथा कृत्तिवास रामायण से बहुत कुछ मिलती है। उसमें भी राम देवी पूजा करते हैं। फलस्वरूप चंडिका रावण को दिए गए अभयदान का ध्यान न रखकर राम को विजय प्रदान करती है।[334 क] निराला के राम जब रावण के पराक्रम के समक्ष हताश हो जाते हैं तो उनका मन असमर्थता में अपनी हार देता है। यहाँ कवि के 'सीता ध्यान-लीन -राम' तथा श्यामा के वर्णन पर शाक्त प्रभाव की छाया दीख पड़ती है।

युद्ध भूमि में सायंकालीन सभा में राम इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि रावण की विजय होगी क्योंकि — "उतरी पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण अन्याय जिधर है उधर शक्ति।" जाम्बवन्त की सलाह पर राम भी शक्ति पूजा करते हैं। अन्त में एक सौ आठ कमल में से 'शक्ति', परीक्षा हेतु एक कमल चुरा लेती है। पर जब राम उसकी पूर्ति के लिए अपने कमल-नयन को चढ़ाने को तत्पर होते हैं तो महाशक्ति प्रसन्न हो प्रकट होकर उन्हें विजय का वरदान देती है और उनके वदन में लीन हो जाती है।[334 ख]

"शक्ति शिव से अभिन्न होने पर भी विश्व सृष्टि की मूलभूत है। इसका परिणाम नहीं होता, परन्तु प्रसार तथा संकोच होता है। शक्ति ही जगत का रूप लेकर प्रकट होती है। भोक्ता और भोग्य दोनों ही शक्ति रूप है। इनकी नियामिका भी शक्ति ही है। ... अभिनय भी शक्ति ही करती है और अभिनय की प्रेक्षिका भी शक्ति ही है।"[334 ग] यही कारण है वह रावण को अभयदान देकर भी वह कालान्तर में राम पर प्रसन्न हो उसे विजय दिलाती है।

कवि ने तुलसीदास में भी कतिपय स्थलों पर रत्नावली की छवि में तुलसीदास को शारदा, तारा वामा शक्ति के दर्शन कराये हैं।[334 घ] उसे प्रकृति के कण कण में स्त्री (शक्ति) की छवि दीख पड़ती है।

एक बार बस और नाच तू श्यामा, नाचे उस पर श्यामा' तथा आवाहन नामक कविताओं में भी कवि ने शक्ति की उपासना का स्पष्ट संकेत किया है।

३३४(क) रामकथा, पृ० २१६

३३४(ख) अपरा, पृ० ४३

३३४(ग) तांत्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि, पृ० ३ प्रस्तावना

३३४(घ) तुलसीदास, छंद, ३७,८७

३३४(ङ) तुलसीदास, छंद ४१

महादेवी

दुःखवाद

महादेवी साहित्य में जीवन दर्शन का आधार है भारतीय दर्शन । जिसमें जीवन और जगत सत्य की अखण्ड सत्ता की ओर संकेत करता है । महादेवी के अनुसार जगत के खण्ड-खण्ड में अखण्डता प्राप्त कर लेना ही सत्य है और उसकी विषमता में सामंजस्य देखना ही सौन्दर्य है । महादेवी ने उपर्युक्त दो तथ्यों के आधार पर ही अपने जीवन दर्शन का निरूपण किया है । पर प्रभाव की दृष्टि से यदि महादेवी की विचारधारा का विश्लेषण करें तो इनकी साहित्यगत विचारधारा पर दुःखवाद का प्रभाव दीख पड़ता है और यह दुःखवाद बौद्ध दर्शन से प्रभावित है इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

कवियित्री ने बुद्ध के `सर्व दुःखम्` की भावना को ग्रहण किया है । इस दुःख का भी कारण (समुदाय:) यही कारण है कि वह कातर, `दुःख निरोध:` के लिए भी सोचती है कि `दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद :` के ~~लिए भी सोचती है क्यों~~ अनुसार दुःख के नाश का उपाय भी है । ये ही बुद्ध के चार आर्य सत्य हैं ।[325]

" प्राणों के अन्तिम पाहुन" [326] में कवियित्री ने दुःख के ही चरम उत्कर्ष का दर्शन किया है । यहाँ सब कुछ ही `दुःख आवर्त` के रूप में है क्योंकि वस्तु भी, रूप भी और रूप का विज्ञान वेदनाएं तथा सब संस्कार दुःख से यहाँ चल रहे हैं । समस्त संस्कार के साथ जीवन के तीन लक्षण अनित्य दुःख और अनात्म भी इससे प्रभावित है का जन्म जरा मृत्यु कवियित्री के लिए दुःख ही दुःख है । जहाँ तक दुःख के वर्गीकरण

---

३२५. क्षणदा, पृ० १४

३२६. यामा, पृ० १९८

का सम्बन्ध है इसके दो रूप हो सकते हैं — एक जीवन की विषमता की अनुभूति से उत्पन्न करुणा भाव, दूसरा जीवन के स्थूल धरातल पर व्यक्तिगत असफलताओं से उत्पन्न विषाद।"[३२७] महादेवी काव्य-साहित्य में दुःख का उपर्युक्त दोनों ही रूप देखने को मिलता है।

पर काव्य और काव्येतर निष्कर्ष के पूर्व कवयित्रीकी विचार गत मान्यताओं पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। जीवन और साहित्य पर दुःख की छाया के सम्बन्ध में महादेवी की अपनी धारणा है कि "जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"[३२८] साथ ही "बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण, उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।"[३२९] दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँट कर — विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"[३३०]

उपर्युक्त कथन के आधार पर दो महत्वपूर्ण तथ्य निकलते हैं। दुःख की सर्वव्यापकता और उसकी प्रभावशीलता। कदाचित इसी कारण से

---

३२७. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—पृ० ६५

३२८. यामा, भूमिका, पृ० २

३२९. यामा, भूमिका, पृ० १२

३३०. यामा, पृ० १

यामा और दीपशिखा के गीतों पर दुख की एक व्यापक छाया दीख पड़ती है। उसके युग जीवन से उद्भूत बीते पीड़ा में [३३१] डूब गये हैं। 'नीरव रोदन' [३३२] पर मंडराती अभिलाषायें [३३३] करुणा का उपहार [३३४] ही पा सकी है। जीवन दुःखमय है और यह मिटने का अधिकारभी स्वाभाविक है[३३५]। कदाचित यही सोचकर कवियित्री अपना घायल मन लेकर सो जाती है[३३६]। क्योंकि सर्वत्र ही तो घोर तम छाया हुआ है।[३३७] जन्म-जन्मान्तरों के उलझे अतीत को सुलझाना अपनी आँसू की लड़ियों से अतीत के मन का गिनना [३३८] उनके शून्य से टकराकर सुकुमार पीड़ाओं के हाहाकार [३३९] के साथ बस एक बूँद आँसू में भी साम्राज्य बहा देने की क्षमता रखता है।" [३४०] पर जीवन का उद्देश्य मात्र सांसारिकता नहीं है, क्योंकि स्थिति में वह स्वयं अपनी निष्फलता देख चुकी है [३४१] कि उसमें मात्र निराशा के सार तत्व के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।[३४२] जीवन शून्यवत् निद्रा की तरह है [३४३] और निर्वाण जीवनवत सत्य की तरह।

महादेवी ने "अपना सुषमा का सृजन विनाश यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास" [३४४] कह कर एक तथ्य की ओर संकेत किया है। यहीं महादेवी अरविन्द अरविन्द के अतिमानस के सिद्धान्त के ठीक विपरीत एक नये जीवन दर्शन की स्थापना करती हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में -" धरा से ले परमाणु उधार किया जिसने मानव साकार[३४५] एक प्रश्न चिह्न की तरह है। यह बुद्ध के दुःखवादी दर्शन से अलग दीख पड़ता है। यही इसकी परिणति है क्योंकि दूसरे मतवाद, जीवन पर क्यों अभाव छाये लेता है।"[३४६] उत्तर देने में पूर्ण या आंशिक असमर्थ से दीख पड़ते हैं।

---

३३१. यामा, पृ० १
३३२. यामा, पृ० ३
३३३. यामा, पृ० ६
३३४. यामा, पृ० ७
३३५. यामा, पृ० ७
३३६. यामा, पृ० १४
३३७. यामा, पृ० १८
३३८. यामा, पृ० २०
३३९. यामा, पृ० १८
३४०. यामा, पृ० ३२
३४१. यामा, पृ० ३४
३४२. यामा, पृ० ४०
३४३. यामा, पृ० ७१
३४४. ,, पृ० ७२

महादेवी की धारणा है कि `नाश के निश्वास से, सारे चिह्न मिट जायेंगे[३४७] क्योंकि सब कुछ `नीर भरी दुख की बदली की तरह ,[३४८] दुखमय विरह का जलजात है[३४९] अपनी इस दृष्टि के विस्तार के कारण वह` जग की आँसू की लड़ियाँ[३५०] को देखने में समर्थ हुई । उनकी धारणा है कि दुख के दल-दल[३५१] से ही निकल कर सुख की सृष्टि हो सकेगी क्योंकि सृष्टि सुख-दुःख के डोरों के से निर्मित है ।[३५२] जीवन इन्हीं दो किनारों एक-को-ही-सत्य बहता चला आया है ।[३५३] पर इनमें से एक को ही सत्य समझ लेना जीवन की लघुता और उसकी हार है ।`[३५४] साधना द्वारा निर्वाणकी प्राप्ति होती है और यही इस जीवन की पूर्णता है ।

पर यहाँ यह पुनः स्पष्ट कर देना होगा कि दुःख, दुःख समुदाय दुःख निरोध और दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा , ये दुःख न किसी आध्यात्मिक जगत् के दुःख हैं और न सूक्ष्म दार्शनिक जगत के असंतोष के पर्याय हैं, प्रत्युत ये प्रत्यक्ष जीवन को दुःख हैं ।.... जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, चिन्ता भी दुःख है, किसी चीज की इच्छा करके न पाना भी दुःख है । जो उसे तृष्णा का त्याग, विराग, विरोध, मुक्ति हैं वह दुखनिरोध कहा जाता है । जहाँ तक आवुसो दुःख निरोध-

---

पिछले पृष्ठ का शेष --

३४५. यामा, पृ० ८१

३४६. यामा, पृ० १०८

---

३४७. यामा, पृ० १७४

३४८. यामा, पृ० २२७

३४९. यामा, पृ० १३८

३५०. यामा, पृ० १५०

३५१. यामा, पृ० ११६

३५२. यामा, पृ० १६६

३५३. यामा, पृ० १२६

३५४. यामा, पृ० ११४

गामिनी प्रतिपदा' का प्रश्न है, यह अष्टांगिक मार्ग है इसमें सम्यग् आजीव, सम्यग व्यायाम, सम्यग समाधि है [सम्मादिट्ठि सुत्तन्त]

उपर्युक्त दु:ख के सभी रूप भौतिक जीवन से संबंध रखते हैं। उनसे दूर होने का उपाय आचरण का परिष्कार और चित्त की शुद्धि है।" [३५५] महादेवी की भी यही धारणा है। पर इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना उचित है कि प्रत्येक कल्याण प्रतिपादक की स्थिति दोहरी होती है। वह अकल्याण की स्थिति को मानता है अन्यथा कल्याण की चर्चा ही व्यर्थ हो जाती है। इस तरह अकल्याण मूलक दु:ख पर केन्द्रित रहने के कारण उसकी स्थिति दु:खवादिनी रहे, यह स्वाभाविक है। पर यह स्थिति कल्याण में बदल सकती है -- इसमें इसका अटूट विश्वास रहता है, अन्यथा उसके प्रयत्न में कोई सार्थकता ही नहीं रहेगी। इस तरह कल्याण पर आश्रित उसका दृष्टि-कोण आशावादी ही रहेगा।" [३५६]

अत: यहां यह स्पष्ट है कि बुद्ध की विचारधारा से प्रभावित हो कर महादेवी की काव्यधारा मात्र करुणा पर आधारित दु:खवाद का ही समर्थन नहीं करती वरन् इस दु:खवाद के अनन्तर सुख की भी सत्ता को स्वीकार करती है जिसकी प्राप्ति दर्शन में `निर्वाण` द्वारा है। जिसमें राग, द्वेष मोह का क्षय तथा जन्म, जरा, मरण और शोक से विमुक्ति हो जाती है।

करुणा

महादेवी के साहित्य में दु:खवाद के अतिरिक्त करुणा का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। पर उनके साहित्य में करुणा एक व्यापक पृष्ठभूमि पर प्रयुक्त हुई है। काव्य और जीवन के सम्बन्ध में उन्होंने

---

३५५. यामा, पृ० १५
३५६. क्षणदा, पृ० १६

स्वयं भी स्वीकार किया है कि "करुणा हमारे जीवन और काव्य से बहुत गहरा सम्बन्ध रखती है।"[३५७] करुणा की प्रभावशाली अभिव्यक्ति जीवन की विषमता की अनुभूति से उत्पन्न "[३५८] होने के कारण ही है।

काल क्रम की दृष्टि से विचार करें तो वैदिक काल ही में एक ओर आनन्द-उल्लास की उपासना होती थी और दूसरी ओर इस प्रवृत्ति के विरुद्ध एक करुणा भाव भी विकास पा रहा था। एक ओर यज्ञ सम्बन्धी पशुबलि थी और दूसरी ओर : मा हिंस्यात् सर्वभूतानि " का प्रचार हो रहा था। इस प्रवृत्ति ने आगे विकास पाकर जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों को रूपरेखा दी। बुद्ध द्वारा स्थापित संसार का सबसे बड़ा करुणा का धर्म भी इसी प्रवृत्ति का परिष्कृत फल कहा जायगा।[३५९]

महादेवी ने करुणा को साहित्य क्षेत्र में एक व्यापक प्रभाव के रूप में देखा है। अन्य विधाओं के अतिरिक्त काव्य में करुणा को विशेष महत्व दिया। उनके अनुसार हमारे दो महान् काव्यों में से एक को करुणा-भाव से ही प्रेरणा मिली है और दूसरा अपने संघर्ष के अन्त में करुणा-भाव ही में चरम परिणति पा लेता है। संस्कृत के उत्कृष्ट काव्यों में भी कवि अपने संस्कार को नहीं छोड़ता। भवभूति तो करुणा के अतिरिक्त कोई रस ही नहीं मानता और कालिदास के काव्यों में करुणा श्वासोच्छ्वास के समान मिली हुई है। अग्निवर्ण के दुखद अन्त में समाप्त होने वाला रघुवंश, जीवन के सब उल्लास-उमंगों की राख पर दुष्यन्त से साक्षात् करने वाली शकुन्तला यदि करुणा-भाव न जगा सके तो आश्चर्य है।

हमारे इस करुणा-भाव के भी कारण हैं। जहाँ भी चिन्तन प्रणाली इतनी विकसित और जीवन की एकता की भावना इतनी सामान्य

---

३५७. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० ८७
३५८. ,, ,, ,, पृ० ८७
३५९. ,, ,, ,, पृ० ८७

होगी, वहाँ इस प्रकार का करुणा-भाव अनायास और स्वाभाविक पा लेता है। `आत्मवत्सर्वभूतेषु` की धारणा जब जीवन पर व्यापक प्रभाव डालेगी तब उसका बाह्य अन्तर, पग पग पर असन्तोष को जन्म देता रहेगा।

करुणाका रंग ऐसा है, जो जीवन की बाह्य रेखाओं को एक कोमल दीप्ति दे देता है, सम्भवत: इसी कारण लौकिक काव्य भी विप्रलम्भ शृंगार को बहुत महत्व और विस्तार देते रहे हैं। जब यह करुणा-भावना व्यक्तिगत सुख-दु:ख के साथ मिल जाती है। तब उन दोनों के बीच में विभाजन के लिए बहुत सूक्ष्म रेखा रहती है।

जहाँ तक पौराणिक चरित्रों के सम्बन्ध का प्रश्न है पौराणिक चरित्रों की खोज करुणा--भावना की सामान्यता के लिए होती है और देश, समाज आदि का यथार्थ चित्रण व्यक्तिगत विषाद को विस्तार देता है।

छायायुग का काव्य स्वानुभूतिमयी रचनाओं पर आश्रित है, अत: व्यापक करुणा भाव और व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा और भी अस्पष्ट हो जाती है। गीत में गाया हुआ पराया दु:ख भी अपना हो जाता है और अपना भी सबका, इसी से व्यक्तिगत हार से उत्पन्न व्यथा एक समष्टि-गत करुणा-भाव में एक रस जान पड़ती है। [३६०]

कवियित्री की धारणा है कि` करुणा भाव के प्रति कवियों का झुकाव भारतीय संस्कार के कारण है पर उसे और अधिक बल सामयिक परि-स्थितियों से मिला [३६१] सका है। जीवन में विषाद वह है, व्यक्तिगत दु:खों का का प्रकटीकरण न होकर उस शाश्वत करुणा की ओर संकेत है जो जीवन को सब ओर से स्पर्श कर एक स्निग्ध उज्ज्वलता देती है।

---

३६०. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० ८८

३६१. ,, ,, ,, पृ० ८९

करुणा भावभूमि व्यक्तियों के हृदय पर कितना गहरा प्रभाव डाल सकती है यह "करुणा के सन्देश वाहक"[३६२] से स्वत: स्पष्ट है पर छायावादी जीवन दर्शन की धारणा के सम्बन्ध में महादेवी का कथन है कि "छायावाद तो करुणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ही रहा है और उसी रूप में उसकी उपयोगिता है। उस रूप में उसका किसी विचारधारा या भावधारा से विरोध नहीं"[३६३]

बौद्ध धर्म के महान् आदर्श के रूप में करुणा का स्थान है यह सम्पूर्ण मानवता के लिए तथ्यगत सत्य के रूप में स्थित है। क्योंकि क्षणिक जगत् में दु:खवाद का मूल उद्देश्य है। भागवत में जो स्थान भक्ति का है वही बौद्ध दर्शन में करुणा का है। अत: बुद्ध के कारण ही करुणा का इनके साहित्य में विशेष प्रभाव दीख पड़ता है जिसे कवयित्री ने आधुनिक कवि महादेवी की भूमिका में स्वयं भी स्वीकार किया है।

मायावाद (अद्वैत)

यदि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखें तो दार्शनिक प्रभाव के रूप में महादेवी की कुछ कविताओं पर शांकरद्वैत के मायावाद की छाया भी स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है। स्वयं उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि "यह माया का देश है। यहाँ मेरा तेरा संग क्षणिक है।" माया के वशीभूत होने के कारण ही यहाँ काँटों में भी सजीले फूलों का सा रंग दीख पड़ता है। कूल से विच्छेद सहन करना पड़ता है।"[३६४] माया ने अपने साम्राज्य से सारी सृष्टि को ही अज्ञानमय बना डाला है।" इसी से जीव नैराश्य-वाद के सुहावने सपनों के बीच इस मायावी संसार में भ्रमित रहता है।[३६५]

---

३६२. क्षणदा, पृ० ६

३६३. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० ६०

३६४. यामा, पृ० ४३

३६५. यामा, पृ० ४२

उपर्युक्त कथन की पुष्टि वेदान्त से भी होती है। माया के प्रभाव से अघटन घटना होती है जिसके द्वारा ब्रह्म में जगत्प्रपंच अध्यस्त होता है। वेदान्तियों के अनुसार माया का स्वरूप निर्देश करना संभव नहीं। महादेवी भी इस धारणा से सम्मत दीख पड़ती हैं। माया न सत्य है न मिथ्या।[३६६] आवरण और विक्षेप अपनी पूर्ण शक्ति से जीव को भ्रम में रखता है। यह माया की दो प्रमुख शक्ति सामर्थ्य हैं जो उसके कार्य में सहायता देती हैं।

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ, कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ, दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ तथा नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी"[३६७] आदि पंक्तियाँ उपर्युक्त मायावाद की ही सैद्धान्तिक पुष्टि करती हैं। माया का पर्दा हटते ही जीव ब्रह्म में भूल अधूरा खेल तुम्ही में अन्तर्धान +[३६८] हो जाता है क्योंकि तब प्रभात होते ही कुहरे का संसार धुल सा जाता है।[३६९] जीव का मोहमय आवरण हटते ही उसे ब्रह्म के साथ अभेद की स्थिति उपलब्ध हो जाती है। मुक्ति पाने वाला जीव ब्रह्म में मिल जाता है, नाम, रूप विलीन हो जाता है तब 'ब्रह्म एव इदं सर्व्वम्' - श्रुतिवाक्य की सार्थकता परिलक्षित होने लगती है।

महादेवी रहस्यवाद

रहस्यवाद के सम्बन्ध में यदि महादेवी की धारणा पर दृष्टि-पात करें तो उनके अनुसार" जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता

---

३६६. अव्यक्ता हि सा माया (भ्रमयान सर्वभूतानि यंत्रा रूढ़ानि मायया - गीता) तत्वान्यत्वनिरूपणस्य अशक्यत्वात्। सूत्र का शंकर-भाष्य।१।४।३

३६७. यामा, पृ० १३६

३६८. यामा, पृ० १०१

३६९. यामा, पृ० १०३

में कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतना और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा । परन्तु इस सम्बन्ध में जब तक अनुराग-जनित आत्म विसर्जन भाव नहीं घुल जाता तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता । इसी से इस अनेकरूपता के कारण ऊ पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया ।" [३७०]

यों तो प्राचीन भारतीय साहित्य में भी परा या ब्रह्म विद्या में रहस्यवाद का अंकुर मिलता है पर उसमें रागात्मक स्वरूप के लिए स्थान नहीं था । छायावादी कवियों के रहस्यवाद पर विभिन्न विचारधाराओं की रहस्यात्मक उपलब्धि का प्रभाव दीख पड़ता है क्योंकि उसने यह चिन्तन की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैतकी छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भवसूत्र में बांध कर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका ।" [३७१]

प्रकृति का रहस्यवाद को जहां तक सम्बन्ध है महादेवी की धारणा है कि प्रकृति के अस्तव्यस्त सौन्दर्य में रूप प्रतिष्ठा, बिखरे रूपों में गुण-प्रतिष्ठा फिर इनकी समष्टि में एक व्यापक चेतना की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जैसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीन काव्य देता है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा । [३७२] इसके लिए ऋग्वेद ३-६१-२ , ५-५४-११ ५-८३-३, ७-८८-३, ७-८८-५, ७-८६-७, ७-८६-२, ७-८६-३, अथर्ववेद — १०-७-६, १०-७-४, १०-७-३३, १०-७-३२, १०-८-२५, १०-८-३८, १०-८-२१

---

३७०. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, संकलनकर्ता गंगाप्रसाद पाण्डेय- पृ० १०५

३७१. ,, ,, ,, पृ० १०६

३७२. ,, ,, ,, पृ० ११४

तथा अन्य दूसरे उपनिषदों से भी उदाहरण के लिए इस बात की पुष्टि होती है। यह भी स्वीकार किया गया है कि भारतीय रहस्यसाधना मूलत: बुद्धि और हृदय के सन्धि में स्थिति रखती है।[३७३]

महादेवी ने रहस्यवाद और धर्म के तुलनात्मक स्थिति पर भी प्रकाश डाला। धर्म को उन्होंने बाह्य जीवन में सामंजस्य लाने का एक साधन बताया वह निषेधात्मक सिद्धान्त द्वारा जीवन को एक व्यवस्थित रूप देता है जबकि रहस्यका स्थान धर्म के बाद माना गया। "रहस्य का अन्त वहाँ होता है जहाँ धर्म की इति है।"[३७४] रहस्यवादी- नरक, स्वर्ग, मृत्यु, अमरत्व, परलोक, पुनर्जन्म आदि का कोई महत्व नहीं। उसकी स्थिति में केवल इतना ही परिवर्तन सम्भव है कि वह अपनी सीमा को अपने असीम तत्व में डा सके।[३७५]

महादेवी की रहस्यवाद सम्बन्धी विचारधारा को देखने के अनन्तर उनके काव्य में रहस्यवाद की स्थिति पर भी विचार करना असंगत न होगा।

> नहीं अब गाया जाता देव। थकी उँगली, हैं ढीले तार,
> विश्व वीणा में अपनी आज मिला लो यह अस्फुट झंकार।[३७६]

यामा के प्रारम्भिक गीत में ही महादेवी ने मिलन की आकुलता प्रकट की है क्योंकि उसकी उँगलियाँ नितान्त थकी हैं उसके तार भी ढीले हो गये हैं। इस अवस्था में भी वह विश्व वीणा के स्वर में अपना स्वर मिलाने को कहती है। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर दी जाय कि ~~महादेवी की~~ महादेवी की अभिव्यक्ति रहस्यवाद के दृष्टिकोण से साधना की न होकर आराधना की और अधिक अनुरक्त है। कवियित्री निराश नहीं है। पर प्रिय प्रतीक्षा का दृश्य करुण अवश्य है। मलयानिल जीवन अपनी करुण कहानी कह जाता है तो अवनी का सूना अंचल भी आँसुओं से भर जाता है।[३७७]

---

३७३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, सं०गंगाप्रसादपाण्डेय, पृ० १२८

३७४. ,, ,, ,, पृ० १३२

३७५. ,, ,, ,, पृ० १३२

३७६. यामा, पृ० १

दूसरी ओर तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ कर उसने काली रात , नारी और निराशा को सूना निर्माल्य चढ़ाकर ही परमतत्व की भावना को विराट नारी रूप में महादेवी ने चित्रित किया है जिसमें उसके अनुसार प्रकृति में नाना मौलिक खंड हैं। जो सभी उस रूप एक ही अंश की विभूतियों से विभूषित है।

रूपसि ! तेरा घन केश पाश
सौरभ-भीना गीला, लिपटा मृदु अंचल सा दुकूल
चल अंचल से झर-झर झरते पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल
दीपक से देता बार बार तेरा उज्ज्वल चितवन विलास,
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है बग पाँतों का अरविन्द हार। [३७९]

और —

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन, पुलकित अंकों से भर विशाल, [३८०]

झुक सस्मित शीतल चुम्बन से अंकित कर इसका मृदुल भाल।
में प्रकृति के हर रूप में सजीवता देख लेना ही रहस्यानुभूति नहीं है, क्योंकि रहस्य में प्रकृति की इस खंडशः सजीवता का एक व्यापक परम तत्व की अखण्ड सजीवता पर अंकित रहता है जो आत्मा का प्रेम है। सजीव जन्तुओं का समूह शरीर नहीं कहा जायगा पर जब अनेक अंग एक ही सजीवता में सजीव हों तब वह शरीर है। रहस्यवादी के लिए विश्व में ऐसी ही स्थिति में ही रहता है।" [३८१]

महादेवी की निम्नांकित पंक्तियों में ससीम सत्ता में असीम सत्ता की जलती ज्योति, विरह दीपक से रहस्यमय असीम की खोज और विरह में जलने के प्रयत्न को ही रहस्य समझना कदाचित् उनकी साधनात्मक वैचारिक उपलब्धि की ओर संकेत करता है। [३८२] वह रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा बन कर आता है और कवि ने विदग्ध मानस में करुणा के प्रति

---

३७९. यामा, पृ० ४१
३८०. यामा, पृ० १४१
३८१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ११३४
३८२. यामा, पृ० ७८

कहा जाता है । [३८३] उसमें वेदना में भी सांत्वना का स्वर दीख पड़ता है । असीम सत्ता में वै न मिल पा सकने की स्थिति में भी उसमें असफलता से निराशा का उदय नहीं होता वह इस आशा में अपने निष्फल स्वप्नों को लिए चिर प्रतीक्षित है कि कभी उन अधरों से स्पर्श पा कल्पना साकार होगी । [३८४] विरह का जलजात जीवन या 'सान्ध्य गगन मेरा जीवन' [३८५] सन्ध्या के नभ से मुक्त मिलन की स्थिति प्राप्त करेगा । [३८६]

कवियित्री को अपने प्रिय की पहचान है । क्योंकि उसने इस बात का स्पष्टीकरण भी कर दिया है कि " जो न प्रिय पहचान पाती । दौड़ती क्यों प्रतिशिरा में प्यास विद्युत-सी तरल बन ।" [३८७] वह अब यह भी नहीं पूछना चाहती कि " मैं क्यों पूछूं यह विरह-निशा कितनी बीती क्या शेष रही ?" [३८८] क्योंकि वह अपनी साधना में लीन है । मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का" [३८९] कदाचित इसी ओर संकेत करता है । अंत में कवियित्री ने मिलन और तादात्म्य की ओर भी संकेत किया है । जिसमें वह परम सत्ता से तादात्म्य की प्राप्ति कर ली है । [३९०]

दीपशिखा की भूमिका में उसने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि रहस्यगीतों का मूलाधार भी आत्मानुभूति अथवा चेतन है पर वह, साधक की मिलन विरह की मार्मिक अनुभूतियों में इस प्रकार घुलमिल सका कि उसकी अलौकिक स्थिति भी लोक सामान्य हो गयी । रहस्यगीतों में आनन्द की अभिव्यक्ति के सहारे ही हम चित् और सत् तक पहुँचते हैं ।" [३९१] उपर्युक्त विवेचन में भी कवियित्री ने साधक का रूप उतना नहीं उभार पाया है जितना

---

३८३. यामा, पृ० ७४
३८४. यामा, पृ० १२७
३८५. यामा, पृ० २०२
३८६. यामा, पृ० २०३
३८७. दीपशिखा, पृ० ६४
३८८. दीपशिखा, पृ० ११४
३८९. दीपशिखा, पृ० १२६
३९०. यामा, पृ० १०१,३६,१४२
१३
३९१. दीपशिखा, भूमिका, पृ० ५६

कि आराधक का । वह अपनी अटूट निष्ठा में परमसत्ता से तादात्म्य के लिए प्रयत्नशील है । हर असफलता उसके लिए अपने प्रयत्न में रुकावट नहीं डालती और अंतत: वह आराध्य की परम सत्ता को प्राप्त कर लेती है । प्रकृति की प्रत्येक वस्तुओं में परम सत्ता का आभास, उस परम सत्ता से मिलन के निमित्त विरह की वेदना, अनन्य लगन , तथा तादात्म्य पर सारी साधना की थकान को भूल जाना महादेवी के रहस्यवाद की परम परिणति कही जा सकती है ।

रामकुमार

कबीर दर्शन का प्रभाव

डा० रामकुमार वर्मा के जीवन दर्शन पर कबीर की विचारधारा का प्रभाव है इसे स्वयं उन्होंने भी स्वीकार किया है कि 'कबीर के काव्य के प्रभाव में — मैं धीरे धीरे अनजाने ही दार्शनिक हो चला था । '[३५७] उनके प्रभाव के कारण ही कदाचित ये भौतिक शृंगार की रचनाओं से विरत[३५८] रहे । या जीवन की उन बातों पर से कम काव्य की विधा में स्पर्श भी नहीं आ पाया जो उन-बातें पार्थिव जीवन के क्रोड़ में अपनी दैनिक गति से घटित होती रहती हैं ।'[३५९]

कबीर के दर्शन में चार बातों की प्रधानता है । सबसे प्रथम ब्रह्म, दूसरा साधना, तीसरा जीवात्मा की शुद्ध रूप की अनुभूति और चौथा स्थान माया का है । डॉ० वर्मा ने भी कबीर की विचारधारा को क्रमश: इसी रूप में ग्रहण किया है । ज्ञानी पुरुष जो संसार के माया में नहीं पड़ते कबीर के अनुसार जगत को ब्रह्ममय देखते हैं।उनके लिए भ्रम है न माया और न ईश्वर ही है ।[३६०] कदाचित इसी लिए संसार के अणु-अणु और कण कण में वे ..... अपने व्यक्तित्व का आभास पाते हैं । सर्वत्र उस प्रकृति पुरुष में

---

३५७. अनुशीलन, पृ० १६५

३५८. अनुशीलन, पृ० १६४

३५९. अनुशीलन, पृ० १४१

३६०. कबीर ग्रन्थावली, पृ० ११६ (संपा० डा० श्यामसुन्दरदास)

अपने व्यक्तित्व को देखना, आत्मीयता की अनुभूति करना"[३६१] साधना की उच्चतम स्थिति की सत्ता कही जा सकती है, जिसमें जीवात्मा के शुद्ध रूप की अनुभूति आवश्यक है। डॉ० वर्मा साधना के दो रूप मानते हैं। भक्ति जिसके अन्तर्गत रहस्यवाद है। और योग जिसके अन्तर्गत एक ओर तो नाड़ी साधना और षट्चक्र है तो दूसरी ओर सत्व समाधि है जो अनन्त रहस्यवाद के समीप पहुँचती है। जहाँ तक माया का प्रश्न है डॉ० वर्मा ने यह स्वीकार किया है कि उनकी दृष्टि में भी कबीर की माया अद्वैतवाद की माया की भाँति भ्रमात्मक और मिथ्या तो है ही, किन्तु इसके अतिरिक्त वह सक्रिय रूप से जीव को सत्पथ से हटाने वाली भी है।.... सम्भवत: यह सूफीमत के शैतान का ही प्रतिरूप है, इस माया की सत्ता समस्त सृष्टि में है। पाँच इंद्रियाँ और पचीस प्रवृत्तियाँ का इसको सहारा है। इन्हीं से वह जीव को संसार के मिथ्या उपभोगों में नष्ट करती है।[३६२] यही कारण है कि आपने अपने गद्य साहित्य में अंधकार शीर्षक एकांकी में माया द्वारा स्वयं ही इस बात की पुष्टि करा दी कि "अंधकार ~~शीर्षक-एकांकी-में-माया~~ में ही मेरा निर्माण कार्य होगा। अंधकार का रहना आवश्यक है। अंधकार तो जैसे प्रकृति का विश्राम होगा।[३६३] माया से सृजित होने के कारण जगत चंचल है, गतिशील है। उसमें स्थिरता नहीं है वह नश्वर है। माया ने ही उसका निर्माण किया है, इसलिए वह भ्रमात्मक है। धन वैभव, आडम्बर, विलास, सुख, दु:ख ये सब जगत के रूप हैं। मयूर पंख का ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया`[३६४] और` मन मस्त हुआ तो क्या बोले` शीर्षक के एकांकियों में लेखक के जीवन दर्शन पर कबीर के जीवन दर्शन का प्रभाव अपने स्पष्ट रूप में दीख पड़ता है।

---

३६१. वीणा, मई १९३५,१९५५ लेख `रूपराशि और मधुकण, ले० महाराजकुमार श्री रघुवीर सिंह जी

३६२. अनुशीलन, पृ० ७९

३६३. बालमित्रा, पृ० २१२

३६४. अनुशीलन, पृ० ८१

डॉ० वर्मा जी पर कबीर के अतिरिक्त गीता और तुलसी दर्शन का भी प्रभाव दीख पड़ता है। यद्यपि " भ्रमयान सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया" और बंधे कीट मरकट की नाईं, सबहिं नचावहिं राम गोसाईं में माया द्वारा केन्द्राभिसारी भ्रमात्मक स्थिति का वर्णन है। पर साथ ही जब अपनी साधनात्मक अवस्था के कारण जीव सत्य की स्थिति देख लेता है तो उस पर माया का प्रभाव नहीं पड़ता। यही एकलव्य का मूल जीवन दर्शन है।

सत्य देखा जिसने है कैसे वह भ्रांति में,
हो सकेगा भूल कर यंत्रारूढ़ मायया।
इसलिए मैं ले रहा हूँ तुमसे भी विदा
जाऊँगा वहाँ कि जहाँ सिद्धि पड़ी सोती है।
उसको जगाऊँगा, कहूँगा मेरे योग में,
केवल दिवस ही है, रात नहीं होती है।[३६५]

यह साधना की वह अवस्था है जब साधक रात्रि रूपी माया के बन्धनों को काट कर केवल दिवस यानी सत्य के प्रकाश से साक्षात्कार करता है। इस स्थिति के पूर्व सम्पूर्ण जगत् माया रूपी अन्धकार के भीतर सोता रहता है।[३६६] तुलसी ने भी इस स्थिति को "मैं अरु मोर तो तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।"[३६७] के रूप में प्रकट किया है। डॉ० वर्मा ने रहस्यात्मक भाषा में "छिपा उर में कोई अनजान"[३६८] में पश्यान की चेष्टा — विभिन्न वाद और मत मतान्तरों में से भी सत्य की ओर संकेत करता है जो-

" कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरइ तीन भ्रम सो आपुन पहिचानै।।"

---

३६५. एकलव्य, पृ० १४१
३६६. चित्ररेखा, पृ० १०
३६७. विनयपत्रिका, पद १३४
३६८. चित्ररेखा, पृ० ४

में भी दीख पड़ती है ।

अपने एकांकी नाटक अंधकार में रामकुमार वर्मा ने माया के सम्बन्ध में यह विचार किया है कि -" माया, मेरी प्रेरणाओं को तुम अच्छा आकार दे सकती हो । तुम्हें मेरा वरदान है कि तुम्हारे चित्र मिथ्या होते हुएभी सत्य के समान प्रतीत होंगे ।[369] यही तुलसी के मानस में 'माया ईस न आपु कहे जानि कहिय सो जीव । बंध मोक्षप्रद सबे पर माया प्रेरक सीव' के रूप में व्यक्त है । [370] अत: स्पष्ट है जीव मायाधीश नहीं ईश्वर मायाधीश है । ईश मोक्ष दाता है । सबसे परे है, सबकी मर्यादा है । पर जीव में यह सामर्थ्य नहीं है । माया से प्रेरित अविनाशी जीव जगत के मिथ्या चित्रों को भी सत्य समझ काल, कर्म, स्वभाव और गुणों के चक्कर में पड़कर चौरासी लख योनियों में निरन्तर भ्रमता है । [371]

बौद्ध दर्शन

रामकुमार जी पर केवल एक दर्शन का प्रभाव हो ऐसी बात नहीं क्योंकि उसने उन सारे बन्धनों को तोड़ दिये हैं जिनसे जीवन संकीर्ण बनता है । [372] उन्होंने अपनी वैचारिक प्रौढ़ता के निमित्त विभिन्न वाद और जीवन दर्शन के सार तत्व ग्रहण कर लिये हैं ।

डा० वर्मा का विश्वास [373] और मत कहो ' शीर्षक कविताओं पर बौद्ध दर्शन के दु:खवाद की छाया दीख पड़ती है क्योंकि उन्होंने नश्वरता का नृत्य ही संसार का उत्सव माना है । इस उत्सव में स्थिरता असंभव है । इस व

---

३६९. चारुमित्रा, पृ० १६१

३७०. रामचरित मानस (अरण्यकाण्ड), पृ० ३५

३७१. ,, ,, (उत्तरकाण्ड) , पृ० ४३,५

३७२. आकाश गंगा, पृ० ८१

३७३. आकाश गंगा, पृ० १४

संसार में सुख नहीं है वह दुखों की एक विस्मृति मात्र है । [३७५]

इस संसार का " समस्त विषय दु:ख है, दु:ख का घर है और दु:ख का साधन है इस प्रकार जानकर उसके निरोधका उपाय" [३७६] आवश्यक है । " आंसुओं में ढलते [३७८] संसार से त्राण पाने पर ही सुख की उपलब्धि हो सकेगी , जीवन में छाई विकलता और विवशता [३७९]से मुक्ति मिल सकेगी । यही `निर्वाण` [३८०] की कल्पना की अवस्था है । पर डा० वर्मा की दृष्टि में बौद्ध दर्शन दु:खवादी नहीं क्योंकि` संसार का दु:ख भी सुख का सहायक है । [३८१]

रहस्यवाद

डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में यदि कहा जाय तो — रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रकृति का प्रकाशन है, और यह संबंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता । जीवात्मा की सारी शक्तियां इसी शक्ति के अनंत वैभव से ओत-प्रोत हो जाती है । जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का अनन्त तेज अंतर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सी जाती है । एक भावना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों से प्रकाशित होती रहती है । यही दिव्य संयोग है । आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है, । परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन । [३८२]

इस संयोग में एक प्रकार का उन्माद होता है, मादकता है ।

---

३७५. आकाश गंगा, पृ० ५७

३७६. सर्वदर्शन संग्रह, पृ० ४०

३७७. आकाशगंगा, पृ० २२

३७८. ,, पृ० ६

३७९. ,, पृ० १३

३८०. आकाश गंगा, पृ० २५

३८१. आकाश गंगा, पृ० ५७

३८२. हिन्दी के दो प्रमुख वाद रहस्यवाद और छायावाद, संपा० प्रेमनारायण टण्डन, पृ० २७.

उस एक सत्य से, दिव्य शक्ति से, जीव का ऐसा प्रेम हो जाता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता में अंतर्हित कर देता है। उस प्रेम में चंचलता नहीं रहती, स्थिरता नहीं रहती। वह प्रेम अमर होता है। ऐसे प्रेम में जीव की सारी इन्द्रियों का एकीकरण हो जाता है सारी इन्द्रियों से एक स्वर निकलता है और उनमें प्रेम की वस्तु के पाने की लालसा समान रूप से होने लगती है। इन्द्रियाँ अपने अपने आराध्य के प्रेम को पाने के लिए उत्सुक हो जाती हैं और उनकी उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि वे उसके विविध गुणों का ग्रहण समान रूप से करती हैं।" [८३]

रहस्यवाद के उन्माद में जीव इन्द्रिय जगत से बहुत ऊपर उठ कर विचार शक्ति और भावनाओं का एकीकरण कर अनंत और अन्तिम प्रेम के आधार से मिल जाना चाहता है। यही उसकी साधना है, यही उसका उद्देश्य है। उसमें जीव अपनी सत्ता को खो देता है। [८४]

उपर्युक्त कथन के अनन्तर यदि उनकी कविताओं पर एक विश्लेषणात्मक दृष्टि डालें तो कह सकते हैं कि उनमें रहस्यवाद का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। "ओसों के बिखरे वैभव" [८५] तथा तारों के हार को लेकर अभिसार के लिए जा रही रात से" कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारों वाले ?" [८६] कहना प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप कर उससे तादात्म्य की स्थिति को प्रकट करती है/वैसी अनुभूति की दशा में हमारा व्यक्तित्व किसी सीमारहित सत्ता के साथ एकाकार होकर उसके साथ आनन्द का अनुभव करता है।

पर वह इस बात से विकल है कि" नश्वर स्वर से वह अनश्वर गीत कैसे गाये और जीवन के इस प्रथम हार में जीत की सृष्टि कैसे करे।" [८७]

---

८३. हिन्दी के दो प्रमुख वाद " रहस्यवाद और छायावाद" ,संपा० प्रेमनारायण टण्डन, पृ० ८८

८४ ,, ,, ,, पृ० २६

८५. आधुनिक कवि, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६३, ६४

८६. ,, ,, पृ० ६६

८७. ,, ,, पृ० ८३

क्योंकि वह नाना बन्धनों में लिपटा असमर्थता में अपने गन्तव्य तक नहीं पहुंच पाता । पर वह अपने प्रयत्न में सतत् तत्पर है + और यही साधनात्मक रहस्यवाद की स्थिति का द्योतक है । कदाचित इस साधनात्मक रहस्यवाद के कारण ही कवि को प्रिय के अनन्त "रूपराशि" की भलक मिलने लगती है और वह उत्साह के साथ इस बात को स्वीकार करता है कि " यौवन के अवलम्बन से ही वह नश्वरता से भी लड़ता है ।" [३८८] रहस्यवाद की विशेषताओं में अबाध रूप से प्रेम की भावना प्रवाहित होने के कारण वह साधना के अनन्तर भी " देव मैं अब भी हूँ अज्ञात " [३८९] की स्थिति प्राप्त करता है और क्रमश: " यह तुम्हारा हास आया " [३९०] और ओसों का हंसता बाल-रूप यह किसका है छविमय विलास, विहंगों के कंठों में समोद यह कौन भर रहा है मिठास । [३९१] इन्हीं में क्रमश: उसके सृष्टि के प्रति विस्मय का भाव देखने को मिलता है । इसी प्रकार रहस्यवादी अवस्था का मानसिक अशान्ति की आकुलता का आभास "मैं खोज रहा हूँ कोकिल स्वर" [३९२] और मेरे जीवन में एक बार तुम देखो तो अपना स्वरूप" [३९३] में देखा जा सकता है । अंत में कवि ने यह भी संकेत किया है कि उसने प्रेम के प्रकाश की प्राप्ति कर ली । कदाचित इसी भावना से प्रेरित होकर उसने –

> मैं ससीम, असीम सुख से खींचकर संसार सारा ।
> साँस की विरुदावली से गा रहा हूँ यश तुम्हारा ।" [३९४]

" मैं तुमको पाकर गया भूल" [३९५] में उस असीम सत्ता से एकाकार होने का भी संकेत किया है और यहीं उनकी पीड़ा का अन्त हो जाता है ।

---

३८८. आधुनिक कवि , डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६४
३८९. चित्ररेखा, पृ० १०१
३९०. चित्ररेखा, पृ० ३
३९१. चित्ररेखा, पृ० १०
३९२. चित्ररेखा, पृ० ३१
३९३. चन्द्रकिरण, पृ० ५८
३९४. आधुनिक कवि, डा० राम-कुमार वर्मा, पृ० १३
३९५. चन्द्रकिरण, पृ० ३०

डा० वर्मा के रहस्यवाद पर कबीर के रहस्यवाद का प्रभाव है जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। कवि के विरह में भी अनेक उसके अस्तित्व का पूर्ण विनाश नहीं होने पाता। मिलन की भावना से ही उसमें एक नवीन जागृति देखने को मिलती है। इसमें आत्मा के विरह में विवेक या ज्ञान का आग्रह नहीं दीख पड़ता,[३९६] जितना कि आत्मा में आध्यात्मिक दृष्टि से अनुभूति की क्षमता हो उसमें अपने आराध्य से मिलने की भावना का स्मरण रहे साथ ही आत्मा और आराध्य में प्रेम निश्छल रूप से प्रगतिशील रहे।[३९७] रहस्यवाद की कविता इन तीनों तत्वों को लेकर एक आनन्दानुभूति को जन्म देती है यह आत्मा की सबसे पवित्र अभिव्यक्ति है। कवि के शब्दों में मेरी कविता के दृष्टिकोण में यही रहस्यवाद रहा है और इसी में मेरी भावनाओं का विकास हुआ है।[३९८] जहाँ कभी निराशा का स्वर भी आया है उस पर भौतिकवाद की निराशा की छाया न होकर रहस्यवाद की ही निराशा का प्रभाव है।[३९९]

—

---

३९६. साहित्य चिन्तन, पृ० १९४

३९७. साहित्य चिन्तन, पृ० १९७

३९८. साहित्य चिन्तन, पृ० १९७

३९९. साहित्य चिंतन, पृ० १९९

खण्ड २

अध्याय ११ — व्यक्ति—

(व्यक्ति के प्रति नवीन धारणा, पाश्चात्य दृष्टि, भारतीय दृष्टि, नव-मानवतावादी दृष्टि , बाह्य प्रभाव, व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि की स्थापना एवं सीमाएं, व्यक्ति : समाज की सापेक्षता में महत्व, विषय के रूप में व्यक्ति की अनुभूतियों की महत्ता, व्यक्ति:कर्तव्य और दायित्व, व्यक्ति:जीवन के अन्तरंग रूप के उद्घाटन का क्रम, व्यक्ति : मुक्त प्रेम , दार्शनिक भूमिका में स्वतंत्र की भावना और व्यक्ति, दार्शनिक भूमिका में मोक्ष और व्यक्ति ।)

व्यक्ति

व्यक्ति के प्रति नवीन धारणा

आलोच्यकाल के छायावादी कवियों में व्यक्तिवादी पीठिका का निर्णय हो सका वह अपने आप में पर्याप्त महत्व रखता है क्योंकि इसके पूर्व व्यक्ति के स्वतंत्र व्यक्तित्व की महत्ता नहीं स्थापित हुई थी । व्यक्ति के मूल्य-गत प्रतिष्ठा की दृष्टि से छायावाद हिन्दी साहित्य के इतिहास में संधिकालके प्रथम चरण का द्योतक कहा जा सकता है । इसके पूर्व व्यक्तिवाद की स्थापना ऐसे रूप में नहीं हो पाई थी । भक्ति काल में व्यक्ति का जो व्यक्तित्व है वह ईश्वर के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित भक्तिकाल का व्यक्तित्व है । शुद्ध सामाजिक लौकिक प्राणी का व्यक्तित्व नहीं । रीतिकाल में भी व्यक्तिवाद मुखर नहीं पा सकता । इतना ही नहीं, भारतेन्दु और द्विवेदी युग में कवि जिस व्यक्ति-वाद की प्रतिष्ठा कर सका वह धर्मभीरु ईश्वर विश्वासी रूप है । जिसमें इस लोक में चिंता के साथ परलोक की भी चिंता प्रधान थी । कालान्तर में परलोक चिंता गौण हो गई और भौतिक लोक की ओर झुकाव अधिक दीख पड़ता है । पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें परलोक के प्रतिअविश्वास दीख पड़ता है । यही कारण है कि साकेत में मैथिलीशरण गुप्त राम का मानवीकरण करके भी उनके ईश्वरत्व पर अविश्वास प्रकट न कर सकने के कारण ही — राम तुम मानव नहीं ईश्वर नहीं हो क्या ? ' और संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया । ' कह कर उसकी लौकिक, अलौकिक दोनों ही अवस्थाओं को स्वीकार करते हैं ।

छायावादी काल के पूर्व में लोक जीवन में समाज का महत्व स्थापित था । इसके प्रभाव में विदेशी विचारधाराओं का भी प्रवेश था क्योंकि इससे छायावाद की पृष्ठ भूमि बन रही थी । इस दृष्टि से 'फ्रान्स की राज्य क्रान्ति ' का महत्वपूर्ण हाथ रहा है । जिसके कारण स्वतंत्रता,

समता और विश्वबन्धुत्व मानवीय मूल्यों के रूप में एक साथ प्रतिष्ठित हो सका। व्यक्ति की दृष्टि में एक साथ कर्तव्य प्रधान हुआ। उसमें लोक परलोक के प्रति लालच भरी दृष्टि न थी। कर्तव्य की यह भावना कुछ युगीन परिस्थितियों की देन थी, कुछ गीता की और उस पर कुछ विदेशी विचारधारा का प्रभाव कहा जा सकता है।

साहित्यगत परम्परा की लम्बी कड़ी के बाद छायावादी कवियों में निवृत्तिमूलक मुद्रा शेष रही। निवृत्ति लुप्त हो गई। वैयक्तिक प्रवृत्ति को बल पूर्वक स्वीकार न करके उसे बलात रहस्यात्मकता प्रदान की जा रही थी। अध्यात्म का भी रहस्य के रूप में आभास दिया गया। दूसरे शब्दों में अपनी पूर्व धारणाओं की सीमा, तत्कालीन आध्यात्मिक पुनर्जागरण के कारण और राष्ट्रीय चेतना में उत्सर्गवृत्ति के कारण वैयक्तिक दमित इच्छाओं की मुक्त अभिव्यक्ति न हो सकी और न वे अपने स्वाभाविक रूप में साहित्य में ही प्रयुक्त हो सके। वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से काव्य में अवतरित हुई जिसमें लाक्षणिकता ने भी सहायता की। पर वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यक्ति काव्य में अधिक उन्मुक्त रूप से नहीं हो सकी।

उत्तर छायावादी कवियों में इस बात की आवश्यकता महसूस होती दीख पड़ी है समाज प्रेम मय जीवन के विरुद्ध है और काव्य में सामान्य प्रेममय जीवन की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती क्योंकि यह सामाजिक सहिष्णुता और मर्यादा के विरुद्ध समझा जाता था। फिर भी वैयक्तिक जीवन को काव्य का विषय बनाया गया और बच्चन ने भी भी स्पष्ट शब्दों में कहा " मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता।"

अत: छायावाद के प्रारम्भ से ही छायावादी कवियों में व्यक्ति में तेजस्विता आने लगी थी और वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यक्ति समाज के बंधनों को तोड़ कर उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छन्द रूप से अपनी अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल हो रही थी।

पाश्चात्य दृष्टि

छायावादी कवियों की वैचारिक पृष्ठभूमि की ओर देखें तो यूरप

में सर्वप्रथम `फ्रान्स की राज्य क्रान्ति के द्वारा मानव अधिकारों की घोषणा हुई जिसमें राज्य में जनता के प्राकृतिक अधिकारों का विशेष ध्यान रक्खा गया । साथ ही समाज और राजनीति सम्बन्धी अधिकार भी व्यक्ति की उसकी महत्ता को स्वीकृत करते हुए मिले । जिसमें सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों की समानता भी पर्याप्त महत्व रखती है । व्यक्ति की महत्ता देखते हुए किसी भी व्यक्ति को पीड़ा देना और राजाज्ञा से भी किसी को बन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया । यह जातिवाद की महत्ता की स्थापना का कदाचित पाश्चात्य देशों में पहला कदम था जिसमें राज्य व्यवस्था , समाज व्यवस्था और आर्थिक योजना भी व्यक्ति की आवश्यकता, सहूलियत और उसके व्यक्तित्व की सीमा रेखाओं को देखते हुए की गई । जिसे फ्रान्स की राज्यक्रान्ति में बने नवीन विधान में आधारभूत अधिकारों की घोषणा के रूप में देखा जा सकता है कि — स्वतंत्रता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है । इसलिए मानव समाज के प्रत्येक प्राणी को समान रूप से स्वतंत्रता मिलनी चाहिए । मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करने को पूर्ण स्वतंत्र है क्योंकि वह अपने इच्छानुसार कार्य करता हुआ भी दूसरों के हित का विरोध नहीं करता । राजा किसी दैवी शक्ति का प्रतीक न होकर प्रजा का सेवक है और स्वामित्व शक्ति जन-सत्ता के हाथ, में है । राजा के अपने अधिकारों के दुरुपयोग पर उसे जनता बदलने में समर्थ है । प्रकृति की ओर से सभी मनुष्य समान उत्पन्न होते हैं इसलिए व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से भी समान रूप से ही सभी सुविधा के अधिकारी हैं । सभी मनुष्य या अधिकांश जनता जिस चीज को सामान्य हित की दृष्टि से उपयोगी समझे वही उसके लिए कानून हो । कानून के निर्माण में भी जनता के प्रतिनिधियों का हाथ हो जिससे जन सामान्य की भलाई के निमित्त कानून बन सके । वैधानिक दृष्टि-कोण से जब तक अपराध स्पष्ट न हो जाय तब तक व्यक्ति को दंडित नहीं किया जाय और न उसे करने की पूर्ण स्वतंत्रता हो चाहे वे विचार मौखिक हों या मुद्रित रूप में । जनता को यह भी अधिकार मिला कि वे शासन व्यवस्था सम्बन्धी हर तरह की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा आर्थिक दृष्टिकोण से जनता राजकीय आय-व्यय का निरीक्षण करते हुए उसके बजट

पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए शासन को सुझाव दे सकती है ।

फ्रान्स की इस राज्यक्रान्ति से उत्पन्न व्यक्ति की महत्ता का प्रभाव छायावादी कवियों पर भी दीख पड़ता है ।

भारतीय दृष्टि

भारतीय काव्य में व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति की परम्परा नहीं थी । यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में वैयक्तिक प्रेम या सुख-दुःख की अभिव्यक्ति नहीं दीख पड़ती । भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण से भी व्यक्ति के स्वतंत्र सत्ता का उल्लेख नहीं मिलता । यहाँ व्यक्ति की सत्ता ब्रह्म के एक अंश रूप में ही देखी गई चाहे वह सत या असत माया के रूप में हो, या अंशी ब्रह्म रूप में । सभी भारतीय दार्शनिक मतवादों ने व्यक्ति की अन्तिम परिणति भगवान् की लीलाओं का गुण-गान करते हुए उसकी परम सत्ता में अपने व्यक्तित्व को विलीन करना ही बताया । यही कारण है कि रीतिकाल तक व्यक्तिवाद की सार्थकता को व्यक्त करने वाली साहित्य में ऐसी कोई चेतना नहीं मिलती । पर भारतेन्दु युग में व्यक्तिवादी चेतना नहीं वरन् सामाजिक चेतना का उदय हुआ और यही सामाजिक चेतना अपने विकासात्मक क्रम में द्विवेदी युग में भी देखी जा सकती है ।

सामाजिक चेतना की अपेक्षा वैयक्तिक चेतना अधिक सूक्ष्म कही जा सकती है । यही कारण है किकिसी भी मूल्य के विकास में सर्वप्रथम स्थूल से सूक्ष्म की प्रक्रिया होती है । हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु और द्विवेदी युग में सामाजिक मूल्य की खोज हुई । जिसमें नारी की स्थिति विधवा, श्रमिक , राष्ट्रप्रेम, स्वाधीनता, सामाजिक अधिकार सम्बन्धी विषयों पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला गया और उनकी जीवनगत स्थिति के सम्बन्ध में उनके जीवन स्तर पर असन्तोष प्रकट किया गया । उपर्युक्त दोनों युग की पीठिका के अनन्तर छायावाद युग में व्यक्तिवादी चेतना का उद्भव संभव हुआ । छायावाद युग में व्यक्ति चेतना के बीज अंकुरित होने लगे जिसमें पूर्वोक्त सारे युगों के वातावरण को तोड़ कवि अपने वैयक्तिक

प्रेम , सुख, दु:ख समाज और जीवन की अभिव्यक्ति को उन्मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सका । वैयक्तिक कुंठाओं को तोड़ वह यह स्वच्छन्द निर्भीक रूप में प्रसाद भी यह कहने में समर्थ हो सके कि —

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आँसू बन कर
वह आज बरसने आयी । [१]

साथ ही वैयक्तिक स्तर पर अपनी सारी सजीवता भरी अनुभूतियों के साथ आँसू की सृष्टि हो सकी ।

निराला के वैयक्तिक जीवन के ' चिरकालिक क्रन्दन को भी वाणी[२] मिली और दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कही । ' [३] के साथ उसे यह भी स्वीकारना पड़ा कि —

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार ।
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी । ' [४]

पंत के व्यक्तिगत चेतना ने यह स्वीकार किया कि उनके जीवन में मात्र सुख ही सुख या मात्र दु:ख ही दु:ख न हो । उनकी यह कामना है सुख - दु:ख की आँख मिचौनी में जीवन के नेत्रों का स्फुटन हो क्योंकि —

---

१. आंसू, पृ० १४
२. अपरा, पृ० ७१
३. अपरा, पृ० १५८
४. अपरा, पृ० ६३

अविरल दुख है उत्पीड़न,
अविरल सुख भी उत्पीड़न ।
सुख-दु:ख की निशा-दिवा में
सोता-जगता जग जीवन । [५]

महादेवी ने यह स्वीकार किया कि " मेरे गीत मेरा आत्मनिवेदन मात्र है " [६] - यह आत्मनिवेदन भी वैयक्तिक जीवन से अलग नहीं हो सकता । चाहे वह " मैं नीर भरी दुख की बदली ..... परिचय इतना इतिहास यही उमड़ी कल थी मिट आज चली हो या " कौन तुम मेरे हृदय में ? " [७] सब में पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में " उनकी शब्दकला, वासनात्मक प्रणयोद्गार, वेदना विवृत्ति के अवसाद , विषाद और नैराश्य की फलक " [८] मिलती है । रामकुमार जी भी इस मत से सहमत हैं कि " जीवन की स्वाभाविक प्रेरणाएं जब अन्तर्मुखी हो जाती हैं तो उनके स्पन्दन में विश्व-संगीत सुनाई देने लगता है । " [९]

इस प्रकार प्रसाद, निराला, पंत , महादेवी और रामकुमार वर्मा ने छायावादी काल में व्यक्तिवाद की महत्ता को स्वीकार किया । पर इन कवियों में व्यक्तिवाद से सम्बन्धित इस कथन की ही पुष्टि हो पाती है कि साहित्य के इतिहास में पहली बार व्यक्ति की व्यक्तिगत चेतना को स्वीकार किया गया और वह आदिकाल से रीतिकाल तक तथा भारतेन्दु और द्विवेदी काल के अनन्तर व्यक्ति को उठा, कुंठाओं को तोड़ सकने में समर्थ हुआ जोकि उस पर धर्म और समाज द्वारा एक बाह्य आवरण के रूप में थी । इस तरह

---

५. आधुनिक कवि (पंत) , पृ० ५०
६. यामा, भूमिका, पृ० ६
७. यामा, पृ० १३५
८. हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६१६
९. आकाश गंगा - पृ० १

छायावादी कवियों में व्यक्ति के प्रति एक नवीन धारणा मिलती है जो इसके पूर्व के कवियों में नहीं देखने को मिलती ।

नव मानवतावादी दृष्टि

प्रसाद, निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा समाज के गर्हित रूप में सुधार करना चाहते हैं । इसके लिए वे प्रयत्नशील भी हैं । यह प्रयत्न प्रसाद के काव्य साहित्य में तो नहीं पर उनके तितली, कंकाल के भारत संघ निर्माण में[10], निराला के काव्य के अतिरिक्त चतुरी चमार, बिल्लेसुर बकरिहा और कुल्लीभाट में महादेवी के गद्य साहित्य में गांवों में शिक्षा के प्रयत्न[11] तथा रामकुमार वर्मा के सामाजिक नाटकों में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है । उपर्युक्त सभी की दृष्टि मात्र सुधार तक ही सीमित है क्योंकि उनका विश्वास है कि व्यक्ति में सत-असत् प्रवृत्तियाँ सदैव रहती हैं । जब व्यक्तियों में असत् प्रवृत्तियों का रूप सदैव रहता है । जब व्यक्तियों में असत् प्रवृत्तियों का प्रभाव रहता है तब समाज पतन की ओर अग्रसर होता है । पंत की धारणा उपर्युक्त कवियों से कुछ भिन्न दीख पड़ती है । यह सुधार की ओर दृष्टिपात नहीं करता । कदाचित् इसका कारण कवि का सामंत युग की संस्कृति पर विश्वास का न होना ही है । यही कारण है कि —

" द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र ।
मैं त्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप पीत मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़ पुराचीन ।[12]

की कामना करता हुआ व्यक्ति में नव मानवतावादी दृष्टि की स्थापना करना ~~कुछ व्यक्ति में~~ चाहता है । कदाचित पंत की नवमानवतावादी दृष्टि

---

१०. कंकाल, पृ० २३५

११. स्मृति की रेखाएं, पृ० ७०

१२. आधुनिक कवि (पंत), पृ० ६२

अरविन्द के अतिरिक्त अतिमानव (Super human) का ही परिवर्तित रूप है जो आगामी युग में व्यक्ति के विकसित रूप में अवतरित होगा या यह नव मानवतावादी दृष्टि विवेकानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द और गान्धी के प्रभाव का सम्मिलित रूप है जिस पर मार्क्स का प्रभाव भी मिश्रित रूप से दीख पड़ता है क्योंकि पंत ने इसे स्वयं स्वीकार किया है, " जब नव मानवतावाद की दृष्टि से मैं विश्व जीवन के बाह्य पत्र की समस्याओं पर विचार करता हूँ तो मार्क्सवाद की उपयोगिता मुझे स्वयं सिद्ध प्रतीत होती है।[१३]

पंत के मानव में रूपान्तर की इस भावना का उदय 'ज्योत्स्ना' काल से ही दीख पड़ता है जिसमें कवि के मानस पर अनेक नवीन शक्तियों का उदय हुआ। जिसे मन-स्वर्ग के अधिवासी जन जीवन के शुभ अभिलाषी के विकसित, वर्धित, नामहीन, नवीन, नवयुग अधिनायक, आदि विशेषणों में देख सकते हैं। कदाचित नव व्यक्ति में नव मानवतावादी धारणा के स्पष्टीकरण के निमित्त ही 'स्वप्न और कल्पना,[१४] द्वारा यह जिज्ञासा उठाई गई कि " इस मानवीय भावनाओं के वस्त्र पहनाकर एवं मानवीय रूप रंग आकार ग्रहण कराकर हमें अपने उन्मुक्त निःसीम से किस दिव्य प्रयोजन के लिए अवतीर्ण करवाया ...... और इसी दृश्य में कदाचित व्याख्या के निमित्त ही पंत ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि " पूर्व की प्राचीन सभ्यता अपने एकांगी तत्वालोचन के दुष्परिणाम स्वरूप काल्पनिक मुक्ति के फेरे में पड़कर .... जिन समाज की ऐहिक उन्नति के लिए बाधक हुई उसी प्रकार पश्चिमी सभ्यता एकांगी जड़वाद के दुष्परिणाम स्वरूप ..... विनाश दल दल में डूब गयी।"[१५] पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थि-पंजर में जड़ विज्ञान के रूप रंग भर कर हमने नवयुगकी सापेक्षतः परिपूर्णमूर्तिका निर्माणकिया है उसीपूर्ण मूर्ति

के

---

१३. चिदंबरा, पृ० १५

१४. ज्योत्स्ना, पृ० ४६

१५ .. पृ० ६६

विविध अंग स्वरूप पिछले युगों के अनेक वाद विवाद यथोचित रूप ग्रहण कर सके हैं।" [१६]

नव मानवतावादी व्यक्ति का स्वरूप कालान्तर में पंत की उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा, वाणी और लोकायतन में दीख पड़ती है। क्योंकि उत्तरा के पूर्व की रचनाओं में चाहे पल्लव, युगान्त, युगवाणी हो या ग्राम्या उसमें पंत की व्यक्तिके मानवतावादी मूल्यों की खोज मात्र मिलती है। उन्होंने चिदंबरा की भूमिका में स्पष्टरूप से स्वीकार किया है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दर्शनों के मिश्रित मार्ग से उन्होंने व्यक्ति में नव मानवतावादी दृष्टि के द्वारा" व्यापक सक्रिय सामंजस्य के धरातल पर नवीन लोक जीवन के रूप में, भरे पूरे मनुष्यत्व अथवा मानवता का निर्माण करने का प्रयत्न किया क्योंकि (यह) युग की सर्वोपरि आवश्यकता थी। [१७] पर इस सर्वोपरि आवश्यकता का प्रादुर्भाव पंत ने सुधारले ने करके ध्वंसशेष, [१८] के द्वारा अणुयुद्ध के अनन्तर नवीन मानवता के निर्माण के रूप में किया। कदाचित् पंत की धारणा थी कि सुधार में रूढ़ियों की छाया रह ही जाती है। पर नव मानवता की सृष्टि में व्यक्ति में रूढ़ियों के लिए कोई स्थान नहीं बचेगा जिससे व्यक्ति में नव मानवतावादी विचारधारा का पूर्ण रूप से प्रादुर्भाव हो सकेगा। यह व्यक्ति में उद्भुत मानवता का उच्चतम रूप होगा। कवि को मानव चेतना पर विश्वास है। यही कारण है कि उसकी धारणा " समस्त ज्ञान विज्ञान, अर्थ तंत्र आदि का संचय एवं नव मानवता के लिए धरा-स्वर्ग की शुभ रचना करने ही में सार्थकता प्राप्त कर सकता है।" [१९] जिसमें आज के भू-व्यापी संघर्ष, विरोध, अनास्था निराशा, विषाद तथा संहार" [२०] में लीन हो जायेंगे क्योंकि आनन्द के सुधारवाद, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के दार्शनिक जागरण, अरविन्द के पूर्ण मानव और रवीन्द्र के विश्वव्यापी सांस्कृतिक समन्वय का युग आ गया है। यही कारण कवि को " मानव समाज का भविष्य उज्ज्वल और प्रकाशमय जान पड़ता है।" [२१] और वह आस्थावादी रूप से विश्व निर्माण में निरत" [२२] रहने की कामना करता है। जैसे —

देखिए अगले पृष्ठ पर

शेषहजिवनी की : जगत स्वर्ग –
जीवन का घर नव-मानव को दो प्रभु —

अब मानवता का घर[23] कवि को यह निश्चित विश्वास है कि कि "धरा को छोड़ कहीं भी स्वर्ग संभव नहीं।"[24] अत: भू स्तर पर व्यक्ति में नव मानवताका विकास हो। व्यक्ति विकास की यह रेखा व्यक्ति की चेतना पर ही निर्भर है। जिसमें दैन्य तन, मन से गर्हित जीवन का सदा के लिए अन्त होगा और ज्योतिवाह के रूप में नवगत पीढ़ी भू- स्तर पर हृष्ट, पुष्ट स्मित, शक्ति, संस्कृत पारिवारिक इकाई का रूप नियोजित कर सकेगा।[25] साथ ही शताब्दियों से चली आ रही पूर्वाग्रहों से पीड़ित इस खोखली नैतिकता का सदा के लिए अन्त हो जायेगा।

बाह्य प्रभाव

सामान्यत: छायावाद के व्यक्तिवादी होने और अपनी प्रवृत्तिगत समानता के कारण उसका सम्बन्ध रोमांटिक (स्वच्छन्दतावाद) से जोड़ा जाता है। पर रोमांटिसिज्म १६ शती के अंग्रेजी काव्य की प्रवृत्ति और १७८६ ई०

पिछले पृष्ठ का शेष –

१६. ज्योत्स्ना, पृ० ७०
१७. चिदंबरा, पृ० १६
१८. चिदंबरा (सर्वसशेष) पृ० १६
१९. चिदंबरा, पृ० ३२
२०. चिदंबरा, पृ० ३३
२१. आधुनिक कवि पंत, पृ० ४१
२२. ,, पृ० ४१
~~२३. ग्राम्या, पृ०~~

---

२३. ग्राम्या, पृ० ४१
२४. वाणी, पृ० १७३
२५. वाणी, पृ० १७३

की और फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का परिणाम है। वहां प्राचीनधर्म परम्परागत सामाजिक संस्कार आदि समाप्त कर रोमाण्टिसिज्म का जन्म हुआ। उसे साहित्य की सीमा, नियम आदर्श उद्देश्य आदि से निकलकर व्यापक बनाया गया। साहित्य जीवन की तरह ही गतिशील है तथा युग एवं परिवेश के अनुकूल परिवर्तन शील। इसका अनुकरण होते ही साहित्यकारों ने परम्परा के प्रति विद्रोह किया तथा अनुकरण के पहले आन्तरिकप्रेरणा को महत्व दिया।[२६] आलोचकों की धारणा है कि छायावादी कवि अपनी विचार पद्धति और रूप विधान दोनों के लिए रोमाण्टिसिज्म (के) अत्यधिक ऋणी हैं। आध्यात्मिक स्तर का प्रकृति प्रेम, उदार मानवतावाद तथा काव्य की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति प्रणाली -- रोमाण्टिसिज्म की ये तीनों ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ छायावाद तथा रहस्यवाद में मिलती हैं। छायावाद में रोमाण्टिसिज्म का यह प्रभाव कुछ तो प्रत्यक्ष था और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के माध्यम से आया था।[२७] पर ऐसी तुलनात्मक स्थिति में समानता के बल पर प्रभाव मानते हुए यह कह देना की ` छायावाद मूलत: रोमानी कविता है और दोनों की परिस्थितियों में भी जागरण और कुंठा का मिश्रण है,+`[२८] ठीक नहीं + क्योंकि डॉ० नगेन्द्र के अनुसार यह कैसे भुलाया जा सकता है। जहाँ छायावाद के पीछे सर्वथा भिन्न देश काल की सृष्टि है। जहाँ छायावाद के पीछे असफल सत्याग्रह था वहाँ रोमाण्टिक काल के पीछे फ्रांस का सफल विद्रोह था, जिसमें जनता की विजयिनी सत्ता समस्त जागृत देशों में एक नवीन आत्म-विश्वास की लहर दौड़ा दी थी। फलस्वरूप वहाँ के रोमानी काव्य का आधार अपेक्षाकृत अधिक निश्चित और ठोस था, उसकी दुनिया अधिक मूर्त थी, उसकी आशा और स्वप्न अधिक निश्चित और स्पष्ट थे, उनकी अनुभूति अधिक तीक्ष्ण थी। छायावाद की अपेक्षा वह निश्चय ही कम चतुर्मुखी एवं वायवी था।[२९]

---

२६. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६७६

२७. ,, पृ० ६७६

२८. आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० १४

२९. ,, ,, पृ० १४

छायावादी कवियों में व्यक्ति के प्रति स्वच्छन्दतावादी दृष्टि-कोण का प्रादुर्भाव किसी एक प्रतिक्रिया के स्वरूप नहीं प्रस्फुटित हुआ था और न ही छायावादी साहित्य प्रतिक्रियावादी साहित्य की संज्ञा से अभि-हित किया जा सकता । जो आलोचक छायावादी कवियों को मात्र स्थूल के प्रति सूक्ष्म द्रष्टा या एकांगी रूप से प्रभाव रूप में यूरोप के १६ वीं शती के अंग्रेजी कवि ब्लेक, कालिन्स, ग्रे, कूपर वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, शैली, कीट्स, बायरन, काऊ-पर ब्राउनिंग आदि प्रमुख कवियों का प्रभाव मानते हैं वे छायावादी कवियों के दृष्टिकोण से उनके काव्य का विश्लेषण नहीं करते और न वे इस देश के उन परिस्थितियों को ही दृष्टिगत करते हैं जिसका प्रभाव किसी भी युग के साहित्य पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य पड़ता है ।

युग के दृष्टिकोण से छायावाद को महायुद्धों के बीच का काल माना गया है यह विचार धारा कालान्तर में भी विकास पाती गयी और मात्र काव्य के अतिरिक्त गद्य साहित्य में भी इसकी झलक मिलती है । साथ ही इस काल में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से साहित्य, समाज, राजनीति और संस्कृति में एक नवीन चेतना दीख पड़ती है । १६१४ के पूर्व का भारत अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के प्रति पूर्ण अवगत नहीं था । यद्यपि यूरोप के वैज्ञानिक और मशीन युग की क्रान्ति का उन्हें मात्र परिचय मिल गया था पर वे उसके प्रत्यक्षत: प्रभाव में न आने के कारण उसके परिणाम से भिज्ञ नहीं थे । यह प्रभाव उन्होंने महायुद्ध के समय से ही प्रभावित करने लगा । जापान ऐसे छोटे देश की रूस पर विजय (सन् १६०४) भी तत्कालीन पराधीन भारत के देशवासियों में एक आत्मिक बल दे रहा था । अनेक युद्धों में भारतीय सेनाओं की विजय भारतीयों के लिए एक गौरव की वस्तु थी, क्योंकि इस बात ने यह सिद्ध कर दिया था कि कतिपय अर्थों में भारतीय सैनिक यूरोपियन सैनिकों से हीन नहीं हैं । युद्ध के अनन्तर युद्ध की विभीषिका का आर्थिक रूप से जो प्रभाव भारत पर पड़ा वह निर्विवाद है । इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि जब तक देश के वैज्ञानिक उत्पादन के साधन पूंजीपतियों के हाथ में रहेंगे तब तक देश की आर्थिक स्थिति में सुधार संभव नहीं और न ही किसी देश की बेकारी, गुलामी और गरीबी मिट सकेगी ।

१९१२ की चीन और १९१७ की रूस की जनक्रान्ति में भी भारतीयों में वैयक्तिक चेतना और उसकी महत्ता का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ा । देश की सामान्य चेतना वाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों से सतत् संघर्षशील होने के कारण पर्याप्त मात्रा में बदल गई थी ।

ऐसे सामन्ती प्रवृत्तियों के प्रति देश में एक दबा विद्रोह पनप रहा था क्योंकि ऐसी सामन्ती व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रहता सामन्ती व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना रूढ़िवादिता या भाग्य से प्रभावित होती है और इस भाग्यवादी विचारधारा पर धार्मिक प्रवृत्तियों का विशेष प्रभाव रहा ता है । इस काल में व्यक्ति के भाग्यवाद के प्रति एक अविश्वास की भावना विकसित होती दीख पड़ती है । यह भावना युग की बौद्धिकता से सम्बन्धित थी जिसने भाग्यवाद और कर्मवाद पर एक नये दृष्टिकोण से सोचने के लिए आकर्षित किया । तत्कालीन युग में एक साथ ही देश में अनेक शक्तियाँ भारतीय समाज , धर्म विचार, संस्कार को प्रभावित करने का प्रयत्न कर रही थीं । धार्मिक दृष्टिकोण से केशवचन्द्र सेन, और राजाराममोहन-राय का ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज, एनी-वेसेन्ट की थियोसोफिकल सोसायटी, राजनीतिक दृष्टिकोण से इण्डियन नैशनल-कांग्रेस, सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी के हो रहे क्रिया-कलाप, प्रेस ऐक्ट , अलबर्ट बिल , डाण्डी यात्री की हलचल, नरम-गरमदल की स्थापना, स्वायत्त-शासन और जन शिक्षा के प्रति बढ़ती हुई हर वर्ग की आस्था एक जागृति की प्रतीक थी । दूसरे विदेशियों द्वारा भारतीय दर्शन और साहित्य का अध्ययन और उनकी प्रतिपादित मान्यताओं से दूसरे देशों में भी भारत की बढ़ती हुई आस्था को देखकर देशवासियों में एक सम्मान की भावना का उदय हो रहा था। पुरातत्व विभागों द्वारा खुदाई में प्राप्त वस्तुओं से अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की भावना बढ़ रही थी । साथ ही रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महादेव गोविन्द रानाडे , ईश्वरचन्द विद्यासागर और गांधी जी का प्रभाव धार्मिक क्षेत्र में, साहित्यिक क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ आदि का प्रभाव कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए प्रत्येक व्यक्ति में पुनरुत्थान का प्रयत्न कर रहा था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवियों के सम्मुख विशेष युगीन परिस्थितियाँ थीं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनकी रचना प्रक्रिया को प्रभावित कर रही थी जिसे तत्कालीन चेतना के रूप में छायावादी कवियों के काव्य पर देखा जा सकता है –

१. व्यक्ति की स्वतंत्रता या महत्ता का प्रतिपादन
२. बौद्धिक प्रक्रिया के रूखापन के विपरीत हृदयगत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का विकास
३. तत्कालीन सामाजिक भौतिकता के प्रति उपेक्षा का भाव
४. पूंजीवादी सभ्यता के प्रति घृणा का दृष्टिकोण
५. कवियों में सामंती दृष्टिकोण के प्रति अनास्थावादी अभिव्यक्ति
६. साहित्यगत रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह

हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में छायावाद बाह्य प्रभाव की प्रतिक्रिया नहीं है। वरन् इसे स्वाभाविक विकास कहा जा सकता है। मेरी तो धारणा है यदि रोमांटिसिज्म का समस्त बाह्य प्रभाव नकारात्मक प्रभाव के रूप में होता तो भी छायावाद में उप उपर्युक्त भावनाओं का उदय अवश्य होता। इसकी तीव्रता के विषय में जहां तक भारतीय समाज के प्रभाव का प्रश्न है तत्कालीन सामाजिक भौतिकता के प्रति उपेक्षा का भाव, पूंजीवादी सभ्यता के प्रति घृणा का दृष्टिकोण सामंती दृष्टिकोण के प्रति अनास्थावादी अभिव्यक्ति मुख्यत: राजनीतिक प्रभाव का प्रतिफल था जबकि बौद्धिक प्रक्रिया के रूखापन के विपरीत मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, साहित्यगत रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह द्विवेदी युग के शुष्कता की प्रतिक्रिया थी। व्यक्ति की स्वतंत्रता की महत्ता पर राजनीतिक और द्विवेदी युगीन नैतिक बन्धनों से जकड़ी नैतिक कविता की प्रक्रिया के प्रति एक सम्मिलित विद्रोह छायावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी तथा रामकुमार की कृतियों में स्पष्टत: देखा जा सकता है।

व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की स्थापना एवं सीमाएं

हिन्दी साहित्य में व्यक्तिवादी जीवनदर्शन की स्थापना साहित्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। इस जीवन दर्शन की स्थापना में

आलोच्य विषय के कवियों का भी बहुत बड़ा हाथ था । छायावादी कवियों से पूर्व द्विवेदी, भारतेन्दु या इसके भी पूर्व व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की स्थापना नहीं हुई थी । वीरगाथा काल में व्यक्ति को की राजनीतिक एकतंत्र वाद से मापा गया, साथ ही भक्तिकाल में जीव के दार्शनिक दृष्टिकोण एवं रीतिकाल में पुन: उसी एकतंत्र के दृष्टिकोण से । आधुनिक युग में भी भारतेन्दु काल में व्यक्तिवाद की स्थापना इसलिए नहीं हो सकी क्योंकि वह राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल का युग था साथ ही भाषा की दृष्टि से उन पर संक्रान्ति के प्रभाव काम कर रहे थे द्विवेदी युग में सामाजिक एवं राष्ट्रीय मान्यताओं से व्यक्ति को मापा जा सकता था । अत: उपर्युक्त कालों में व्यक्तिवाद के क्रमिक विकास को देखा जा सकता है । छायावाद के पूर्व व्यक्तिवाद की विचार-धारा की स्थापना इसलिए नहीं हो सकी क्योंकि उनमें किसी भी काल में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा के निमित्त उपर्युक्त पृष्ठभूमि का निर्माण नहीं हो पाया था ।

छायावादी कवियों द्वारा जिस व्यक्तिवाद की स्थापना हो सकी उन पर धार्मिक दृष्टि से ईसाई धर्म की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन, राधा स्वामी सम्प्रदाय, देव समाज, भारत समाज, और राजनीतिक दृष्टि से दो महायुद्धों (पहला - दूसरा) का तथा दूसरे दशों में भारतीय सेनाओं की और उससे देशवासियों के अहं की संतुष्टि, जापान पर रूस की विजय द्वारा भारतीयों पर होने वाला मनोवैज्ञानिक प्रभाव, साथ ही राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्या सागर, केशवचन्द सेन, दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, रामकृष्ण परमहंस, विवेका-नन्द, अरविन्द, रमण महर्षि रानाडे, गांधी, मदनमोहन मालवीय, आदि द्वारा भारतीय जन जागरण के निमित्त घोषित की गयी राष्ट्रीय चेतना और वैज्ञानिक नये आविष्कार समाचार तथा यातायात की सुविधा से भारतीयों का पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होना -- आदि इस देश में व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि का निर्माण कर रहे थे ।

छायावादी कवियों ने व्यक्ति की महत्ता (समाज के प्रति)

नकारात्मक (Negative) ढंग से स्वीकार की । उन्होंने उनकी दृष्टि में साहित्य जीवन के वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है जिसे पद्य में इसके आत्मकथाओं के अतिरिक्त , ग्रन्थि उच्छ्वास, लोकायतन, सरोज स्मृति , वनबेला और गद्य में अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं और मयूर पंख की भूमिका में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । प्रसाद निराला महादेवी और रामकुमार वर्मा का व्यक्तिवाद भी उनके साहित्य में आ गया है । व्यक्तिवादी जीवन दर्शन के कारण ही इस युग में आलोचकों द्वारा भी यह मान्यता दी गई कि सा० साहित्यकार से अलग उसका कृतित्व नहीं वरन् उसका व्यक्तित्व भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में साहित्य में उपस्थित रहता है । आलोचकों की यह मान्यता छायावादी कवियों के साहित्य के आधार पर ही बनी थी ।

छायावादी कवियों ने व्यक्तिवाद के दूसरे तत्व रूप में कवि की स्वतंत्रता को स्वीकार किया । कदाचित यह गोखले के "स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है का ही परिवर्तित रूप है । व्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से अपने को विकसित करने में सहायक हुई तो दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी आत्मा और तत्सम्बन्धी विश्वास को भी छायावादी कवियों के द्वारा बहुत कुछ स्वतंत्र दृष्टियों से देखा जाने लगा । स्वतंत्रता और मोक्ष सम्बन्धी छायावादी कवियों की धारणा उस पर व्यक्तिवाद के प्रभाव को स्वातंत्र और मोक्ष उपशीर्षक में स्पष्ट किया जायेगा । व्यक्ति की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में भारतीय विचारधारा में मनुस्मृति पराशर,याज्ञवल्क्य,जैमिनी, जीमूत वाहन तथा गौतम , बौधायन, वशिष्ठ द्वारा दिये गये व्यक्ति को सामाजिक अधिकार उनकी स्वतंत्रता छायावादी कवियों में व्यक्ति स्वातंत्र की धारणा में परोक्ष रूप से सहायक हुए । पर इन प्राचीन समाज शास्त्रियों से आधुनिक छायावादी कवियों का अंतर यह है कि उनके समक्ष व्यक्ति की सत्ता तो थी पर व्यक्ति स्वतंत्रता की स्पष्ट कल्पना नहीं मिलती ।

जबकि पाश्चात्य विचारकों मे हिगेल, जे०एस० मिल , बर्ट्रेण्ड रसेल और मार्क्स आदि का वैचारिक प्रभाव छायावादी कवियों में व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना पर देखा जा सकता है जिससे इनके व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के निर्धारण में सहायता मिलेगी ।

व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण ही छायावादी कवियों ने धर्म और धर्म सम्बन्धी देवी देवताओं की आराधना के विपरीत राष्ट्र की चेतना पर बल दिया । कदाचित व्यक्तिवाद में धर्म की आस्था का ही परिवर्तित रूप राष्ट्र प्रेम के रूप में परिवर्तित हो गया था । व्यक्तिवाद का राष्ट्र के प्रति यह रूप ' प्रसाद ' के ' अरुण यह मधुमय देश हमारा ', निराला के ' जागो फिर एक बार ' पंत की ' भारत माता, महादेवी के 'हिमालय के प्रति' और 'यामा' में की गयी अभिव्यक्ति तथा रामकुमार के राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी गीत इस कथन के प्रमाण कहे जा सकते हैं । कदाचित राष्ट्रप्रेम की ही भावना से प्रभावित होकर राष्ट्र नेताओं के प्रति छायावादी कवियों ने आस्था व्यक्त की जिसे अलग विश्लेषित किया जायेगा ।

अत: कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों के व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की स्थापना में व्यक्ति की महत्ता और व्यक्ति की स्वतंत्रता का बहुत बड़ा हाथ था । उनके दृष्टिकोण से बिना व्यक्ति की स्वतंत्रता के व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता । बीज को रखते हुए व्यक्ति का विकास विपरीत परिस्थिति या किसी प्रकार के सामाजिक बंधन की वजह से न हो सके यह आधुनिक युग की स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती । व्यक्तिवाद के इस युग में छायावादी कवियों को यह विचारधारा मिली है कि यदि मानव व्यक्तित्व किसी बंधन में रहा तो उसके विकास की अनन्त संभावनाएं समाप्त हो जायेंगी । इस अवस्था में उन्हें व्यक्तित्व के विकास सम्बन्धी परिस्थितियाँ न मिल सकेंगी ।

पंत की धारणा है कि यह एक कर्तव्य है कि वह विश्व मानवता के पक्ष को युग जीवन के वैषम्यों तथा विरोधों से मुक्तकर, इस-

इस पृथ्वी के देशों को एक दूसरे के निकट लाकर उन्हें चिर स्थायी मानव-प्रेम, जीवन-सौन्दर्य तथा लोक कल्याण की ओर अग्रसर करें ।

व्यक्तिवादी जीवन दर्शन को ही अपनाने के कारण साहित्य में निराला द्वारा 'मैं' की शैली अपनायी गयी और इस 'मैं' के द्वारा व्यक्तिवादी विचारधारा की पुष्टि की । स्वच्छन्द रूप से प्रेम का चित्रण हुआ जिससे साहित्य में सजीव आत्मीयता के दर्शन हुए । साथ ही व्यक्ति की कुंठा का बहुत कुछ अंत हो गया । अब उसकी निर्वैयक्तिकता में पलती हुई वैयक्तिकता को अभिव्यक्ति का अवसर मिला ।

धार्मिक जीवन की कृत्रिमता को समाप्त करने में इसी व्यक्तिवादी विचारधारा का बहुत बड़ा हाथ था । साथ ही व्यक्ति के विकास में बाधक आडम्बरपूर्ण कृत्रिम सामाजिक और नैतिक मान्यताओं का बहुत कुछ अन्त हो गया । अब वह व्यक्ति प्रधान जीवन की[30अ] अभिव्यक्ति में उसने अपने को हीन अनुभव नहीं किया । अपनी दुर्बलताओं को वह उसी प्रकार खोलकर रखता है, जिस प्रकार अपने प्रेम की पावनता को दृढ़ता के साथ प्रमाणित करता है । उसे इस कार्य में कहीं भी अनैतिकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि वह जानता है कि यह तो मानवीयता अथवा मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है ।

तत्कालीन व्यक्तिवादी विचारधारा के ही कारण संस्मरण, और जीवनी का लिखित रूप उपलब्ध हो सका । जीवनी लिखने की यह परम्परा ही चल गई जिसे रवीन्द्र, श्रद्धानन्द, श्यामसुन्दरदास,महावीरप्रसाद द्विवेदी, वियोगीहरि, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन , गांधी जी, डॉ० राजेन्द्र-प्रसाद , नेहरू जी , प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, रामकुमार ने आत्मकथा या संस्मरण के रूप में निबाहा ।[31]

---

३०. शिल्प और दर्शन— पंत (मेरी कविता का परिचय), पृ० ५७

३० अ . यामा, पृ० ७

३१. इनमें से सभी के आत्मकथा या अधिकांश संस्मरण के १९१२ के अनन्तर ही लिखे गये ।

छायावादी कवियों के साहित्य में व्यक्तिवादी विचारधारा का अर्थ उनकी दृष्टि में यह नहीं था कि व्यक्ति उच्छृंखल हो । उनके समक्ष ऐसे नैतिक बन्धन का कोई मूल्य नहीं था जो अपने कार्य का लक्ष्य वह स्वयं ही न हो छायावादी कवियों द्वारा स्थापित व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का लक्ष्य है व्यक्ति अपने प्रेम, सुख, दु:ख तक सीमित और स्वार्थी हो । फिर भी आलोचकों ने छायावादी कवियों में प्रसाद पंत, निराला, महादेवी या रामकुमार --की रचनाओं पर सामाजिक चेतना और दायित्व को न वहन करने की असमर्थता और समाज के यथार्थ की उपेक्षा का आरोप लगाया है । पर इतना स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक लगता है कि अब तक आलोच्य विषय के सभी कवियों के जीवन दर्शन सम्बन्धी मान्यताएं उनके काव्य साहित्य पर ही आधारित थीं । ऐसी अवस्था में काव्येतर लिखित उनके जीवन दर्शन की मान्यताएं उपेक्षित रह जाती थीं । यही कारण है कि छायावादी कवियों का अबतक जीवनदर्शन सम्बन्धी उपस्थापन मात्र उनकी काव्य रचना को ही ग्रहण करने के कारण एकांगी दृष्टिकोण प्रतिपादित करता है । आज का साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी प्रत्येक सांस लिख कर इतिहास लिख देना चाहता है । इसलिए उसके प्रत्येक सांस का निष्कर्ष देने के लिए उसके द्वारा रचित हर विधा को ही अध्ययन का आधार बनाना पड़ेगा ।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों द्वारा व्यक्ति की अनुभूतियों पर आधारित आध्यात्मिक रहस्यात्मक प्रवृत्तियों में व्यक्तिवादी विचार धारा की ही अभिव्यक्ति हुई है । व्यक्तिवाद का प्रारम्भ प्रारम्भ१६१३ --१४ ई० से छायावाद युग के प्रारंभ से ही हुआ ।

१६०५ के आस पास की भी रचनाओं में व्यक्तिवाद की

पृष्ठभूमि बननी शुरू हो गयी थी + और १६३६ - १६३७ तक ~~अंत~~ अंत पूर्ण रूप से छायावादी कवियों द्वारा व्यक्तिवादी विचारधारा की स्थापना हो गई थी । कालान्तर में प्रकाशित होने वाली पंत और निराला की कृतियों में भी व्यक्तिवाद का विकास ही दीख पड़ता है ।

यही बात अन्य छायावादी कवियों के लिए भी कही जा सकती है । यह व्यक्तिवाद व्यक्ति की विराटता का बोध देता है जिसमें तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों की भी समानता हो जाती है । यह " अहं ब्रह्मास्मि " का ही विकसित रूप है जिसमें समाज और व्यक्ति की सीमाओं में संघर्ष नहीं, सामंजस्य दीख पड़ता है और " स्व " भी " पर " की भावना से प्रेरित रहता है । ~~पर~~ यह भावना इन पंक्तियों से भी स्पष्ट है —

आत्म मुक्ति के लिए क्या अमित यह ग्रंथ ग्रथित रंग भव सर्जित
प्रकृति इन्द्रियों का है वैभव मानव तप कर मुक्त बने नित ।
यही सन्त कुल हुआ सन्त रे, जीव प्रकृति के सब जग निश्चित
लोक मुक्ति ही ध्येय प्रकृति का, मनुज करे जग जीवन निर्मित ।।[31]

पंत ने " आत्म मुक्ति " को अर्थ विस्तार में प्रयुक्त किया है जिससे प्रकृति के मध्य मानव इन्द्रियों का विकास हो सके और वह तप कर अपनी उपलब्धि में खरा बन सके क्योंकि अंतत: लोक मुक्ति ही नव मानवता वाद का ध्येय है ।

---

३१. शिल्प और दर्शन, पृ० १३२

व्यक्ति की सापेक्षता में समाज की स्थिति

जब व्यक्ति और समाज की स्थिति की ओर संकेत किया जाता है तो हमारा तात्पर्य दो अलग अलग वस्तुओं से न होकर एक ही वस्तु के दो विभिन्न पक्षों से होता है। अतः छायावादी कवियों की दृष्टि में यदि व्यक्ति की सापेक्षता में समाज की स्थिति का विचार करें तो महादेवी की धारणा है कि – आज का युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रंग चढ़ाये (सामाजिक) यथार्थ का चित्र दे परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नहीं क्योंकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता।[३३] यही कारण है कि सामाजिक अनुभूतियों से " कवि की रचना भी ऐसे क्षण में होती है जिसमें वह जीवित ही नहीं अपने सम्पूर्ण प्राण - प्रवेग से वस्तु विशेष के साथ जीवित रहता है, इसी से उसका शब्दगत चित्र अपनी परिचित इकाई में भी नवीनता के स्तर पर और एक स्थिति में भी मार्मिकता के दल दल पर दल खोलता चलता है। कवि जीवन के निम्नतम स्तर से भी काव्य के उपादान ला सकता है परन्तु वे उसी के होकर सफल अभिव्यक्ति करेंगे और उसके रागात्मक दृष्टिकोण से ही सजीवता पा सकेंगे।[३४]

छायावाद को पलायन वाद कहने वाले आलोचकों की दृष्टि में कदाचित यह स्पष्ट नहीं था कि " छायावाद के जन्म में मध्यम वर्ग की ऐसी क्रान्ति नहीं थी। आर्थिक प्रश्न इतना उग्र नहीं था.... । हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर असंतोष का इतना स्याह रंग भी नहीं चढ़ा था। तब हम कैसे कह सकते हैं कि केवल संघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन के लिए ही उस वर्ग के कवियों ने एक सूक्ष्म भाव जगत को अपनाया।[३५]

यदि पलायन का अर्थ व्यक्ति, समाज के अनुपातात्मक दृष्टिकोण

---

३४. आधुनिक कवि (महादेवी वर्मा) भूमिका, पृ० १४

३५. 'महादेवी', पृ० ७५

से मूल्यांकित करना है, तब हमें यही कहना पड़ेगा कि छायावाद की पलायन वृत्ति सिद्धार्थ की पलायन वृत्ति है, वह जीवन के प्रति परिचय से जगी पूर्णत्व की वासना (सामाजिक यथार्थ की पूर्ति) का रूप है।[३६] यह पलायन शब्द-गत रूढ़ अर्थ को व्यक्त नहीं करता। क्योंकि स्वयं जयशंकर प्रसाद की धारणा है कि जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने कार्य न किया हो, तबतक केवल उपमा और शब्दवैचित्र्य तथा अलंकारों पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नहीं बैठा सकते जिसे कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियों को सम्पादित करके उसमें जीवन डालने का उद्योग न किया हो।[३७] इससे स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी कवियों की दृष्टि में व्यक्ति की तरह समाज की महत्ता भी स्वीकार्य थी।

साहित्यकार व्यक्ति का होकर भी समाज का होता है यही कारण है कि वह सब तक पहुँच सकता है। वह एक उजले भविष्य का सुन्दर स्वप्न है। ..... हमारा युग दुर्बलताओं और ध्वंस का युग है और दुर्बलता तथा ध्वंस जितने प्रसारगामी होते हैं, शक्ति और निर्माण उतने नहीं हो सकते। हमारा युग स्वान्त: सुखाय की सात्विकता पर चाहे विश्वास न करे पर स्वस्वार्थ्य पर उसकी निष्ठा अपूर्व है। व्यक्तिगत रूप से स्वान्त: सुखाय की मंगल भावना पर भी मेरा विश्वास है और उसके लिए आवश्यक आत्म निरीक्षण पर भी।[३८]

कवि, कलाकार, साहित्यकार सब, समष्टिगत विशेषताओं को नव-नव रूपों में साकार करने के लिए ही उसमें कुछ पृथक जान पड़ते हैं, परन्तु यदि वे अपनी असाधारण स्थिति को जीवन की व्यापकता में साधारण न बना सकें तो आश्चर्य की वस्तु मात्र रह जायँगे।"[३९]

---

३६. छायावाद का पतन, ले० डॉ० देवराज, पृ० ११६

३७. इन्दु कला, पृ० ३, किरण, पृ० ५

३८. दीपशिखा—भूमिका, पृ० २३

३९. दीपशिखा—भूमिका, पृ० १५

महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्ति की सापेक्षता में समाज की स्थिति पर जो प्रकाश पड़ता है वह उन्हीं के साहित्य की अभिव्यक्ति में मेल नहीं खाता । " सब आँखों में आँसू उजले " सबकी आँखों में सत्य पला " और " मेरे हँसते अधर नहीं जग के आँसू की लड़ियाँ देखो " को छोड़ उनके समस्त काव्य साहित्य में व्यक्ति की सापेक्षता में समाज की अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है । जबकि इसके विपरीत उनके गद्य साहित्य में " स्मृति की रेखाएं " और " अतीत के चलचित्र " व्यक्ति के परिवेश में समाज की यथार्थता अपने पूर्ण रूप से प्रकट हुई है ।

पंतने इस युग के " विकसित व्यक्तिवाद के साथ ही विकसित समाजवाद को विशेष महत्व दिया है, जिससे देव बनने के एकांगी प्रयत्न में हम मनुजत्व से विरत होकर सामाजिक जीवन में पशुओं से भी नीचे न गिर जायँ । देवत्व को आत्मसात कर हम मनुष्य बने रहे और मानव दुर्बलताओं के भीतर से अपना निर्माण एवं विकास कर सकें । नवीन समाज की परिस्थितियाँ हमें आदर्शों की ओर ले जाने वाली हों । हमारा मन युग-युग के छायाभावों से संत्रस्त न रहे, हम आज के मनुष्य की चेतना का, जो खंड युगों की चेतना है, विकसित विश्व परिस्थितियों के अनुरूप संगठन एवं निर्माण कर सकें । देश में जन साधारण के मन में जीवन के प्रति जो खोखले वैराग्य की भावना घर कर गई है उसका विरोध कर नवीन परिस्थितियों पर जोर दिया गया है । [४०]

यही कारण है उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया है कि " मेरे ~~संघर्ष और हार्दिकता~~ पल्लव काल की रचनाओं में तुलनात्मक दृष्टि से मानसिक संघर्ष और हार्दिकता अधिक मिलती है और बाद की रचनाओं में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा[४१] जहाँ तक सामाजिक अभ्युदय की इच्छा

---

४०. युगवाणी – भूमिका से

४१. गद्य पथ – पर्यालोचन

का प्रश्न है वह `लोकायतन` में पूर्ण रूप से उभर आई है जिसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज की ही महत्ता का प्रतिपादन अधिक है। व्यक्ति गौण और समाज प्रमुख हो गया है।

निराला के काव्य और इसके अतिरिक्त उपन्यास और कहानी साहित्य पर यदि सम्यक दृष्टि डाली जाय तो यह ज्ञात होगा कि उनके साहित्य में प्रारंभ से ही व्यक्ति की सापेक्षता की महत्ता स्वीकृत है। `वन बेला`[४२] और सरोज स्मृति `[४३] जैसी व्यक्ति परक कविताओं के परिपेक्ष में भी समाज की झलक मिल जाती है। अत: हम यह कह सकते हैं कि निराला की दृष्टि में व्यक्ति की स्थिति समाज की सापेक्षता परक स्थितियों में कम न थी। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने व्यक्ति परक साहित्य लिखा ही नहीं। यदि लिखा है भी तो वह समाज और उसकी विचारधारा के विपरीत नहीं जाता, क्योंकि निराला की वैयक्तिक वेदना ही उनके साहित्य में युगीन चेतना के रूप में परिवर्तित हो गई है।

रामकुमार वर्मा की धारणा है कि "जब तक जीवन में समस्या नहीं आती तब तक जीवन सक्रिय नहीं होता और सक्रिय जीवन के चित्रण के बिना साहित्य में प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं होती। इसलिए समस्या ही साहित्य का निखार है और उसकी निर्मिति एक ओर यथार्थ में इंगित है दूसरी ओर आदर्श से आकृष्ट है।[४४] इससे पता चलता है कि साहित्य के परिपेक्ष में सम्पूर्ण जीवन की समस्याएं निहित हैं। पर डा० वर्मा का काव्य साहित्य जीवन की यथार्थ समस्याओं की अभिव्यक्ति नहीं करता यद्यपि एकलव्य इसका अपवाद कहा जा सकता है। एकलव्य में एकलव्य कालीन सामाजिक स्थिति का जिस परिपेक्ष में चित्रण किया गया है वह तत्कालीन

---

४२. अपरा, पृ० ८१

४३. अपरा, पृ० १८६

४४. साहित्य शास्त्र (साहित्य की प्रेरणा और सृजन), पृ० ५०
(डॉ० रामकुमार वर्मा)

स्थिति में व्यक्ति के परिपेक्ष में समाज का मूल्यांकन करता है। पर यह मूल्यांकन भी ठीक वैसे ही है जैसे पंत का लोकायतन वर्तमान युग के संदर्भ में

काव्य की अपेक्षा रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों में व्यक्ति में सापेक्षता में समाज की स्थिति अच्छी उभर सकी है। इसका कारण है कि समाज की समस्याओं को जिस तरह एकांकी या नाटक में उभारा जा सकता है उतना कदाचित काव्य में नहीं। समाज की महत्ता को स्वीकार करने के कारण ही उन्होंने यह स्वीकार किया है कि "साहित्य समस्त मानवता का कल्याण विधायक है।"[४५]

अत: उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के सभी कवियों ने व्यक्ति की सापेक्षता में समाज की स्थिति को स्वीकार करते हुए उसे अपने साहित्य में चित्रित किया है।

व्यक्ति : समाज की सापेक्षता में महत्व

समाज की सापेक्षता में व्यक्ति का महत्व और उसकी स्वतंत्रता मूलत: चार प्रधान रूपों में छायावादी कवियों द्वारा प्रकट हुई। वे रूप हैं -- धार्मिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और आर्थिक। पर यह रूप उनके काव्य की अपेक्षा गद्य साहित्य में अधिक देखने को मिलता है।

यदि प्रारम्भ से व्यक्ति के धार्मिक दृष्टि से विचार करें तो मध्य युग के तुलसी, सूर, कबीर और सूफियों में यह भावना देखी जा सकती है। पर ऐसे ईसाई धर्म में व्यक्तिवाद का धार्मिक स्रोत प्राप्त होता है। इस स्रोत की दो मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं। एक यह कि ईसाई कैथलिक चर्च को बड़ा मानते हैं और शेष सबको समाज का सदस्य मानते हैं। दूसरा प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह अपने पूर्ण आत्म विश्वास से आत्म विकास के लिए किसी भी धार्मिक पूजा-पाठ की पद्धति या साधना को ग्रहण कर सकता है।

---

४५ साहित्य शास्त्र, पृ० ६६

प्रसाद जी के कंकाल में व्यक्ति स्वतंत्रता से प्रभावित होकर ही कदाचित घंटी और विजय ईसाई धर्म की ओर आकर्षित होते हैं । विजय ^ अज्ञात कुलशीला घण्टी से व्याह करना चाहता है ।[४६] यदि गोस्वामी प्रेम की महत्ता का आख्यान धार्मिक दृष्टिकोण से न करते तो विजय ईसाई हो जाता । पर गोस्वामी जी ने व्यक्ति स्वातंत्र्य और धार्मिक दृष्टिकोण से कृष्ण सुभद्रा के सम्बन्ध में जो आख्यान दियाउससे पता चलता है कि व्यक्ति के महत्व और उसकी स्वतंत्रता का भारतीय धर्म दर्शन में भी महत्वपूर्ण स्थान है । यह धार्मिक स्वतंत्रता मात्र ईसाई धर्म की सृष्टि नहीं है । निराला ने अपने काव्य साहित्य के अतिरिक्त गद्य साहित्य में भी व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता की महत्ता से प्रेरित होकर सुकुल की शादी मुसलमान औरत से करा दी ।[४७]

व्यक्ति के महत्व विषयक धारणा में पंत ने सीमित, धर्म क्षेत्र का आचार नहीं ग्रहण किया । यह इस बात का प्रमाण है कि पंत भी व्यक्ति को धार्मिक परिपेक्ष में उसके आचार को निश्चत करने की आवश्यकता नहीं समझते । समाज में प्रत्येक व्यक्ति इस दृष्टिकोण से स्वतंत्र है । रामकुमार वर्मा ने धार्मिक स्वतंत्रता के महत्व को शिवाजी, एकांकी के संवाद में व्यक्त किया है ।[४८] इससे पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति वह हिन्दू हो या मुसलमान पर उसके अपने धार्मिक आचार का महत्व है । वह इसके लिए स्वतंत्र है क्योंकि उसमें वह पूरी आस्था रख सकता है और वह किसी भी दृष्टिकोण से समाज के लिए घातक नहीं हो सकता है । पर महादेवी में व्यक्ति का समाज की सापेक्षता में धार्मिक स्वतंत्रता का महत्व गद्य या पद्य साहित्य में देखने को नहीं मिलता ।

यदि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो समाज में

---

४६. कंकाल, पृ० १५०

४७. सुकुल की बीबी, पृ० ७

४८. शिवाजी, पृ० ५३

व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता का महत्व ही कालान्तर में वैज्ञानिक व्यक्तिवाद की महत्ता को व्यक्त करता है क्योंकि वैज्ञानिक अणु-परमाणु सम्बन्धी अन्वेषणों से समस्त चराचर में हर अणु की स्वतंत्र महत्ता प्रतिपादित की । पहले व्यक्ति को समाज का एक सामूहिक रूप समझा जाता था । इस भावना का अन्त हो गया । छायावादी कवियों ने व्यक्ति को समाज का एक अंग मानते हुए भी व्यक्ति के `स्व ` की सत्ता को स्वीकार किया यह काल की अपेक्षा, उनके नाटक उपन्यास, कहानी और रेखा चित्रों में समान रूप से देखा जा सकता है ।

आर्थिक दृष्टिकोण से समाज में व्यक्ति की महत्ता औद्योगिक युग से प्रारम्भ हुई । इसके पूर्व व्यक्ति अपनी आर्थिक दयनीयता का कारण भी ईश्वर की कृपा मानता था । पर पूंजीवाद युग में समाज की ओर से व्यक्ति की आर्थिक व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था । अर्थात व्यक्ति समाज में अपनी आर्थिक स्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार है । यदि वह चाहे तो अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छी बना सकता है । समाज द्वारा के व्यक्तिवाद के इस पक्ष का समर्थन करता है यही छायावादी कवियों का भी अभीष्ट दीख पड़ता है । प्रसाद ने तितली में तितली औरमधुवन को इसी भावना से प्रेरित होकर परिस्थितियों पर उन्हें खरा उतारा । समाज में व्यक्ति की स्वतंत्र महत्ता के कारण ही बहुत कुछ विपरीत परिस्थिति में तितली अपनी आर्थिक स्थिति के सुधार में समर्थ हो सकी । पर के `दैवी` का होटल मैनेजरकर्ज से लद जाता है और वह अपने श्रम शक्ति का उचित प्रयोग न करके होटल को ही बंद कर देता है ।[४६] यह समाज में व्यक्ति के अर्जन करने वाली स्वतंत्रता और उसकी महत्ता के प्रति उपेक्षा भरा दृष्टिकोण कहा जायेगा । पंत ने भी गांव संस्कृति को जर्जर बताते हुए नगर सभ्यता को केवल इसलिए बढ़ावा दिया क्योंकि ग्राम सभ्यता जड़ हो

---

४६. दैवी, पृ० १०

हो गई थी जिससे उसके ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे जबकि शहर की सभ्यता व्यक्ति के महत्व को समझते हुए उसके , अपनी स्थिति का उपयोग कर रही है। महादेवी और रामकुमार के गद्य साहित्य में इस ओर विशेष प्रकाश पड़ता है जिसमें महादेवी द्वारा उल्लिखित `जरायम पेशेवाला (रेखा-चित्र) गांव का आर्थिक दृष्टिकोण से व्यक्ति की समाज में महत्ता का प्रतिवाद करते हैं। पर आलोच्य विषय के किसी भी कवि ने पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था या उससे होने वाले पूंजीवादी द्वारा श्रमिकों के शोषण का रूप अपने साहित्य में प्रस्तुत नहीं किया। जबकि उन्हीं कवियों के समकालीन प्रेमचन्द के रंगभूमि नामक उपन्यास में समाज में व्यक्ति की आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी स्वतंत्रता की महत्ता के कारण पूंजीपतियों के शोषण सम्बन्धी होने वाले परिणाम प्रकट होने लगे थे। कदाचित पंत का `ध्वंसशेष` इसी परिस्थिति की ओर संकेत करता है।

धार्मिक वैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टिकोण से समाज में व्यक्ति के विकास का महत्व जैसा कहा गया आलोच्य विषय के सभी कवियों ने स्वीकार किया। जहाँ तक राजनीतिक स्वतंत्रता की महत्ता का प्रश्न है। यह किसी न किसी रूप से धर्म विज्ञान, अर्थ के साथ हर युग में अपने युगीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति की महत्ता की ओर संकेत करता है।

छायावादी कवियों को राजनीतिक दृष्टिकोण से दो महायुद्धों की विभीषिका राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित आर्थिक स्थिति देश का आन्दोलन और तदनन्तर स्वतंत्रता देखने को मिली। केवल प्रसाद जी की ही मृत्यु (संवत् १९९४ वि०) पहले मृत्यु हो गई थी। पर प्रसाद ने भी मनु और सारस्वत देश के निवासियों के माध्यम से समाज में व्यक्ति की महत्ता ठीक वैसे ही प्रतिपादित की जैसे निराला ने " जागो, फिर एक बार"[५०]

---

५०. अपरा, पृ० ९८

पंत ने लोकायतन में --- और रामकुमार ने " अवहमें स्वतंत्र हूँ ।" ५१ के द्वारा स्वीकार की । पर राजनीतिक दृष्टिकोण से समाज में व्यक्ति की महत्ता के विषय में महादेवी का साहित्य पूर्णत् मौन ही दीख पड़ता है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि व्यक्ति के महत्व की दृष्टि से राजनीतिक परिस्थितियाँ प्रत्यक्ष रूप से उनकी रचना प्रक्रिया में सहायक न रही हों ।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य विषय के अन्तर्गत प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और राजकुमार में धार्मिक, वैज्ञानिक, आर्थिक और राजनीतिक तथ्यों के आधार पर व्यक्ति का समाज की सापेक्षता में महत्व देखा जा सकता है । यह छायावादी कवियों द्वारा प्रदत्त सामाजिक दृष्टिकोण से भी व्यक्ति की महत्ता की एक देन कही जा सकती है ।

विषयक के रूप में व्यक्ति की अनुभूतियों की महत्ता

छायावादी कवियों के साहित्य में व्यक्ति के अनुभूतियों की महत्ता दीख पड़ती है क्योंकि मानव महत्व बढ़ता जा रहा था । यह प्रवृत्ति काव्य में विशेषरूप से दर्शनीय है । व्यक्ति की सत्ता की प्रतिष्ठा हो जाने पर " व्यक्ति" काल का एक विषय हो गया था । अब ईश्वर, सामंतवर्ग, साधक , आश्रयदाता आदि प्रमुख विषय के रूप में गृहीत नहीं थे । आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने काल्पनिक ईश्वर की अपेक्षा मनुष्य की आशा , निराशा, हर्ष दुख प्रेम को विषय रूप में चुनने की अधिक रुचि दिखाई । इसका कारण अरविन्दवादी दर्शन के अनुसार पूर्ण मानव के प्रादुर्भाव की दृष्टि गोखले एवं एम०एन०राय का व्यक्ति स्वातंत्र्य का आन्दोलन डा० राधाकृष्णा का धार्मिक दृष्टिकोण से व्यक्ति स्वतंत्रता की स्वीकृति और पौवर्त्य-पाश्चात्य के सम्मिलित स्वर से व्यक्ति की महत्ता का उद्घोष

---

५१. आकाश गंगा, पृ० ८७

साहित्य में कविता की अनुभूतियों की महत्ता की अभिव्यक्ति के निमित्त प्रेरणा दे रहा था। डा० राधाकृष्णन की तो धारणा है कि —

" Even God acts with a peculiar delicacy in regard to human beings. He woos our consent but never compels. Human individuals have distinctive beings of their own which limit God's interference with their development."(The Gita lays stress on the individual freedom of choice and the way in which he excersises it. man's struggles, his sense of frustration and self-accusation are not be dismissed as errors of the mortal mind or mere phases of dialectic process) 52.

इस प्रकार न केवल साहित्यिक वरन् धार्मिक दृष्टिकोण से भी व्यक्तिवाद की ही महत्ता स्वीकृत हो रही थी। पंत की धारणा है कि मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना उसकी वस्तु-परिस्थितियों से निर्मित सामाजिक संबंधों का प्रतिबिम्ब है। यदि हम वाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन ला सकें तो हमारी आन्तरिक धारणाएं भी उसी के अनुरूप बदल जाएंगी। [५३] छायावादी कवियों में व्यक्तिवादी धारणा भी राजनीतिक दृष्टिकोण में आए व्यक्तिवाद का ही एक नवीन संस्करण था। ` उन्होंने ` मुक्त कण्ठ से अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन किया। अपनी या मानव की प्राकृतिक आकांक्षाओं या वासनाओं को वाणी देना भी अपनी आन्तरिक स्वच्छन्दता का विशेषाधिकार माना।

---

५२. द भगवद्गीता(इण्ट्रोडक्शन), पृ० ४८ (डा० राधाकृष्णन्)

५३. आधुनिक कवि -- पंत, पृ० २५

(ऐसा न करना) कला-साहित्य की स्वाभाविकता तथा स्वास्थ्य के लिए बाधक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वयं कवि के लिए घातक समझा जाने लगा । कला में जाकर ही व्यक्तिगत सुख-दु:ख का उन्नयक (Sublimation) होने लगा ।" [५४] पर आलोच्य विषय के छायावादी कवियों में व्यक्तिवाद की इस धारणा का विभिन्न स्वरदीख पड़ता है । इसमें कुछ ऐसे कवि हैं जिन्होंने स्वतंत्र रूप से अपनी जीवनगत अभिव्यक्ति की और दूसरे वे जिन्होंने स्वतंत्र रूप से अपनी वैयक्तिक प्रेम, सुख-दु:ख को वाणी देते हुए भी उस पर एक हल्का आवरण भी रखा । कदाचित इसका कारण उनके वे संस्कार थे जो परम्परागत प्रभाव के रूप में उनमें शेष था या किन्हीं कारणों से वे व्यक्ति की अनुभूतियों की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी उसे अपना कहने में संकोच करते थे ।

प्रसाद की व्यक्तिवादी धारणा उनके व्यक्तित्व और उनके सुख-दु:ख तक ही सीमित न रखकर उनके दृष्टिकोण से -- " मिटा दिया अस्तित्व व्यक्ति का " [५५] यही व्यक्तिगत होता है । उसमें ' स्व ' की केवल परोक्षता होती है, जिसे सामाजिक परिस्थितिगत या व्यक्तिगत परिस्थितियों का घात् आघात् , उत्थान-पतन वैयक्तिक स्तर के रूप में प्रकट किया जाता है । विषय के रूप में प्रसाद ने वैयक्तिक स्तर पर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त नहीं किया ऐसा नहीं कहा जा सकता । पर अधिकतर उन्होंने परोक्ष रूप से ही कहने की प्रवृत्ति मिलती है ।

व्यक्ति परक अनुभूतियों की भी वैयक्तिक स्तर पर सीधे तौर पर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त नहीं किया पर कहने की जो स्वतंत्रता काव्य, उपन्यास कहानी में है वह नाटक में नहीं । इसलिए प्रसाद के नाटकों में वैयक्तिक स्तर , अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पर कोई बलात सिद्ध करने की बात नहीं उठती ।

---

५४. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य , पृ० ३२४, ले० डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल ।

आँसू में मेरे जीवन की उलझन (पृ० ४), मैं बूझ न सका पहेली (पृ०२७), ` पाऊंगा नहीं तुम्हें जो ``मेरा भी कोई होगा ;(पृ० ३१) ` दुख क्या था तुम को मेरा ( पृ० २३ ), ` रोते हैं प्राण विकल से` (पृ० २३ ) सुख मान लिया करता था जिसका दुख का जीवन में , , जीवन में मृत्यु बसी थी ( पृ० २३),हूँ देख रहा उस मुख को ( पृ० २२ ) , मैं सिहर उठा करता था और` मुख चन्द्र चाँदनी` जन से मैं उठता था मुँह धो के` (पृ० १८) ` मेरा उसमें विश्वास घना था ,(पृ० १६) आदि कितने ही स्थल कदाचित प्रसाद के वैयक्तिक स्तर की अभिव्यक्ति की ओर संकेत करते हैं ।

निराला साहित्य के विषय रूप में व्यक्ति की अनुभूतियाँ की प्रधानता मिलती है । यह प्रवृत्ति प्रत्यक्ष रूप से उनके काव्य , कहानी और रेखाचित्र में देखी जा सकती है । पर उपन्यासों में यह प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती । कदाचित इसका कारण यह हो कि निराला ने पूर्व निर्मित कथा योजना के आधार पर लिखे गये अप्सरा, अलका, प्रभावती , आदि उपन्यासों में लेखन क्रम में ~~निराला ने~~ वैसे ही तटस्थता वर्ती है जैसे नाटककार पात्र और वस्तु योजना के अनन्तर तटस्थ हो जाता है ।

निराला ने विषय रूप में व्यक्ति की अनुभूतियाँ की महत्ता स्वीकार की इसे सर्वप्रथम उनके काव्य के परिपेक्ष्य में ही देखना उचित होगा । तोड़ती पत्थर में इलाहाबाद के पथ पर श्रमिक रत महिला का श्रमरत रूप [५७] में अकेला [५८] में अपने जीवन की आ रही सांध्य बेला में पके अधपके बाल

---

५५. प्रेमपथिक, पृ० १७

५६. प्रेम पथिक, पृ ० १७

५७. अपरा, पृ० २६

५८. अपरा, पृ० ५५

निष्प्रभ गाल जीवन समर में पार किये नदी झरने से दुर्गम अभिमान, इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी पवित्रदीपशिखा-सी शान्त क्रूर-काल ताण्ड्य की स्मृति रेखा-सी विधवा, [५६] एक ओर हो गया व्यर्थ जीवन में रण में गया हार और दूसरी ओर समाज की स्वार्थ परकता की अभिव्यक्ति में वन बेला, [६०] दो टूक कलेजे को करता पीठ पेट मिले लकुटिया टेककर फटी-फटी पुरानी झोली को फैलाता हुआ भिक्षुक [६१] मेरे अंग-अंग को लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की ज्योतिर्मय लता-सी प्रेयसी, [६२] बंदरों को मालपुआ खिलाकर भूखे कंगाल को दुतत्कारने वाले पड़ोस के ` दानी सज्जन ` [६३] और सरोज के शैशव, बाल्य-युवावस्था के चित्र तथा पिता के समक्ष युवती पुत्री की मरण गाथा असहाय पिता का उसे कुछ भी न कर सकने का कचोट और निराला की काव्य साधना में आती नानाबाधाएं, साथ ही थके [६४] महान् साहित्यकार के मरण दृश्य[६५] और दूसरी वैयक्तिक स्तर पर रची अन्य कविताएं कवि की दृष्टि में साहित्य के लिए व्यक्ति की अनुभूतियों की महत्ता प्रदर्शित करती हैं।

निराला के कथा साहित्य में भी कथानक के रूप में लेखक के अनुभूतियों की महत्ता सुरक्षित है। चतुरी चमार के प्रति लेखक की सद्भावना चतुरी के लड़के अर्जुनवा की शिक्षा-दीक्षा का प्रयत्न, उसकेमुकदमें में आर्थिक सहायता, [६६] स्वामी शारदानन्द जी महाराज और मैं रामकृष्ण मिशन से सम्बन्धित जीवन पर प्रकाश, [६७] कलकत्ता, कानपुर, लखनऊ, प्रयाग,

---

५६. अपरा, पृ० ५७

६०. अपरा, पृ० ६२

६१. अपरा, पृ० ६७

६२. अपरा, पृ० १२३

६३. अपरा, पृ० १३१

६४. अपरा, पृ० १४३

६५. अपरा, पृ० १४३

६६. चतुरी चमार, पृ० ५

६७. चतुरी चमार, पृ० ५०

६८. चतुरी चमार, पृ० ६३

काशी में साहित्यक जीवन, [६८] सुकुल की बीबी में फुटकर कुमारी का कवि मित्र सुकुल के साथ विवाह[६९] और कवि का साहित्यिक जीवन ,[७०] `जानकी` में कवि की अध्यापिका के नाम जिज्ञासा और शंकर का उत्तर, पागली देवी पर निराला की करुणा और रजाई देने की सत्य घटना ,[७१] साथ ही कला की रूपरेखा भी सत्य घटना जिसमें उनके खान-पान में स्वच्छन्दता की झलक मिलती है। [७२] कुल्ली भाट में कुल्ली का चरित्र, लेखक के प्रति उसकी आसक्ति और कुल्ली द्वारा प्रथम पुरुष को दिया गया धोखा, सास द्वारा कुल्ली के प्रति चेतावनी और लेखक को अपने बाहुबल पर विश्वास, साथ ही अपने गांव हलमऊ के बिल्लेसुर बकरिहा का चरित्र जिस प्रकार निराला ने साहित्य में प्रस्तुत किया है वह निराला के काव्य साहित्य के अतिरिक्त कथा साहित्य में भी व्यक्त व्यक्ति की अनुभूति को यथावत अभिव्यक्ति की स्वीकार की गई महत्ता निराला के साहित्य में(पद्य-गद्य) समान रूप से दीख पड़ती है।

काव्य में यदि विषय के रूप में व्यक्ति की अनुभूतियों की महत्ता का सर्वाधिक प्रयोग प्रत्यक्ष रूप देखने को मिलता है तो निराला और पंत में । पंतने डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा , २ मार्च १९५१ के एक साक्षात्कार में यह स्पष्ट रूप से भी स्वीकार किया है कि उच्छ्वास मेरे व्यक्तिगत जीवन का सम्भवत: कुछ ओजस्वी प्रभाव के रूप में आ सका है। [७३] पर धूलि की बेटी में अनजान छिपे हैं मेरे मधुमय गान, [७४] ग्रन्थि, [७५] भावी पत्नी के प्रति, [७६] प्रणय मिलन, [७७] मोर, [७८] मौन निमंत्रण, [७९] सुख दुख, [८०] नौका विहार, [८१] में भी व्यक्तिगत अनुभूतियों की महत्ता देखी जा सकती है। उनके काव्य में विषय की दृष्टि से साधना की अभिव्यक्ति

---

६८. चतुरी चमार, पृष्ठ ६३
६९. सुकुल की बीबी, पृ० ३३
७०. देवी (जानकी) पृ० १३१
७१. देवी पृ० १
७२. सुकुल की बीबी, पृ० ५६
७३. हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० २८२
७४. पल्लविनी, पृ० ६४
७५. ग्रन्थि, पृ० १-१५
७६. पल्लविनी, पृ० १४४
७७. पल्लविनी, पृ० २४४
७८. आधुनिक कवि पंत, पृ० १
७९. ,, पृ० ३
८०. ,, पृ० ५

प्रकृति के प्रति स्नेह आकर्षण और साहित्यगत उन्हीं सामाजिक या आर्थिक अवस्था सम्बन्धी सिद्धान्तों की पुष्टि मिलती है जिनके प्रति पंत का जीवन दर्शन प्रभावित था । चाहे वह —

> तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि दिखाऊँ मैं साकार ।
> तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान ।
> तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान ।
> अपरिचित चितवन में था प्रात, सुधामय साँसों में उपचार ,
> तुम्हारी छाया में आधार सुखद चेष्टाओं में आभार ।। [८२]

की अभिव्यक्ति हो यह तीस कोटि नग्न अर्ध क्षुधित , शोषित निरस्त्र जन मूढ़, असभ्य, अशिक्षित निर्धन की गाथा अथवा मार्क्स, रवीन्द्र, गांधी अरविन्द या रमण के प्रति श्रद्धांजलि । पर यह श्रद्धांजलि भी कवि के जीवन दर्शन के प्रभाव के रूप में ही काव्य की वस्तु बन सकी इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है ।

पंतजी कहानीकार भी हैं । इस दृष्टि से उनकी एक मात्र पुस्तक है पाँच कहानियाँ । इनमें `पानवाला` [८३] की कथावस्तु पंत के जीवनगत अनुभूतियों के महत्व को प्रदर्शित करती है जिसमें उन्होंने बाल्य जीवन के एक मित्र को कथानक का आधार बनाया है ।

साहित्य में विषय के रूप में व्यक्ति की अनुभूतियों की महत्ता महादेवी भी स्वीकार करती हैं क्योंकि " जीवन का जो स्वस्थ विकास के लिए अपेक्षित है उसे पाने के उपरान्त छोटा बड़ा, लघु गुरु सुन्दर विरूप, आकर्षक, भयानक कुछ भी कला जगत् से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता ।" [८४]

---

८२. पल्लव, पृ० ९८

८३. पाँच कहानियाँ, पृ० ११

८४. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३५

महादेवी के गीतों में विषय के रूप में व्यक्ति की अनुभूतियों की सत्ता वैयक्तिक स्तर पर प्रकट हुई है। पर यह वैयक्तिकता भी दो प्रकार की है। एक अपार्थिवता के प्रति आवरण के रूप में और दूसरी पार्थिवता के प्रति। पर इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि महादेवी की दृष्टि में वैयक्तिक अनुभूतियों के स्तर पर नहीं प्रकट हुई है। `दीप मेरे जल अकम्पित,[८५] धूप सा तन दीप सी मैं,[८६] जो न प्रिय पहचान पाती,[८७] मैं न यह पथ जानती री,[८८] मैं पलकों में पाल रही, हूँ[८९] ~~इन आंखों ने देखी~~ और ~~इन आंखों~~ चाहता है पागल प्यार[९०], घायल मन लेकर सो जाती,[९१] इन आंखों ने देखी,[९२] बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ,[९३] प्रिय मैं हूँ एक पहेली,[९४] ही नहीं वरन् यामा, दीपशिखा के अधिकांश गीतों में वैयक्तिक जीवन को प्रत्यक्ष रूप से काल का विषय बनाया गया है। पर इसके अतिरिक्त कुछ गीतों में वैयक्तिकता का अभाव दीख पड़ता है। कदाचित उन्हें स्पष्टोक्ति नहीं माना जा सकता। उनके गद्य साहित्य में चाहे वह अतीत के चल चित्र` हो या `स्मृति की रेखायें` स्पष्ट रूप से उनके जीवन की अभिव्यक्ति ही की है। यह बात दूसरी है कि इन रेखाचित्रों या स्मरणों में उन व्यक्तियों की चरित्रगत प्रधानता रही जिनको उन्होंने अपने जीवन से सम्बन्धित होने के कारण पात्र रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसी परिस्थिति में भी महादेवी की अनुभूतियों की महत्ता निर्विवाद रूप से मानी जा सकती है क्योंकि वे चरित्र भी लेखिका के जीवन रेखा के भी इर्द गिर्द से सम्बन्धित हैं।

---

८५. दीपशिखा, पृ० ६७
८६. दीपशिखा, पृ० ६१
८७. दीपशिखा, पृ० ६४
८८. ,, पृ० ६६
८९. ,, पृ० १२२
९०. यामा, पृ० ११
९१. यामा, पृ० १४
९२. यामा, पृ० ६४
९३. यामा, पृ० १३९
९४. यामा, पृ० १७५

डॉ० रामकुमार वर्मा के काव्य में विषय के रूप में कवि की अनुभूति की महत्ता मिलती है उससे आत्मगत उक्ति का विस्तार से इनकार नहीं किया जा सकता है " मैं भूल गया यह कठिन राह " छिपा उर में अज्ञान " ९५ " यह आत्म समर्पण करें सदा मेरे जग का जीवन रसाल " ९६ मैं भी तो तुफान-सा हूँ विचलित" (पृ० ६) के रूप में कवि ने इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

पर काव्य के अतिरिक्त नाटकों में इस बात को इसलिए नहीं स्वीकार किया जा सकता है कि उसमें लेखक की अपेक्षा कथा, पात्र और समय पर संवाद अभिव्यक्ति की योजना अधिक निर्भर रही है। वहाँ स्वयं लेखक का व्यक्तित्व भी सर्वथा अलग रहता है।

व्यक्ति: कर्त्तव्य और दायित्व

व्यक्ति का जीवन सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति के अतिरिक्त इसके कर्त्तव्य और दायित्व से भी घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। यहाँ कर्त्तव्य और दायित्व में भी स्पष्ट अन्तर है। कर्त्तव्य में अनिवार्यता का बंधन रहता है और वह किन्हीं अंशों में नैतिक (Moral) और वैध दायित्व (Leagal obligation) द्वारा सामाजिक मान्यताओं से सम्बद्ध होता है। जबकि उसके दायित्व मात्र (Responsibility) में जिम्मेदारी या जवाबदेही रहती है। पर वह कर्त्तव्य के अभाव में खोखली मूल्य की द्योतक हो जाती है।

सामाजिक अंश होने के कारण व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह जैसे खुद स्वतंत्र होना चाहता है वैसे वह औरों को भी स्वतंत्रता दे क्योंकि ऐसा न होने पर वह नैतिक दृष्टि से भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

---

९५. चित्ररेखा, पृ० ८

९६. चित्ररेखा, पृ० ६

इस दृष्टिकोण से यह कर्तव्य मनुष्य के नैतिक उत्तरदायित्व का साधन है। अत: ब कर्तव्य और दायित्व में घना सम्बन्ध है क्योंकि दायित्व से प्रेरित कर्तव्य और भी गुरुतर हो जाता है। कर्तव्य उसी तरह मान्य है जिस प्रकार कि विधान का नियम (Law) मान्य होता है। पर वैधानिक कर्तव्य, वैधानिक अधिकार से सम्बन्धित होता है और नैतिक कर्तव्य नैतिक अधिकार से। इस प्रकार व्यक्ति का कर्तव्य व्यक्ति के प्रति भी होता है और समाज के प्रति भी।

जब हम सबको जीवित रहने के अधिकार को स्वीकार करते हैं तो हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने जीवन के साथ दूसरों के जीवन का भी सम्मान करें। [६७] दूसरे शब्दों में इसे अहिंसात्मक जीवन का कर्तव्य और दायित्व कहा जा सकता है।

स्वतंत्रता का सम्मान और सबको समान रूप से जीवित रहने देने के कर्तव्य के अतिरिक्त चरित्र के प्रति सम्मान व्यक्ति का तीसरा कर्तव्य कहा जा सकता है। पह उपर्युक्त दोनों कर्तव्य निषेधात्मक हैं जबकि यह विधेयात्मक है। यह कर्तव्य इस बात को प्रेरित करता है कि व्यक्ति का कर्तव्य यह है कि वह न केवल दूसरों की सुरक्षा करे वरन् उन्हें उन्नति के निमित्त प्रोत्साहित भी करे। जिससे उनका व्यक्तित्व विकास में सहायक हो सके।

सम्पत्ति का सम्मान व्यक्ति का निषेधात्मक कर्तव्य है जिसे हजरतमूसा ने अपने दस आदेशों (Ten commandments) के अन्तर्गत भी रक्खा है। Thou shalt not steal अर्थात् तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए इसमें अपहरण न करने देने का आदेश है। योग दर्शन में इसे अस्तेय के रूप में स्वीकार किया गया साथ ही विश्व के प्रत्येक स्वरूप समाज में इसे धर्म की मान्यता के अर्थ में स्वीकार किया गया।

व्यक्ति के लिए सामाजिक व्यवस्था के प्रति सम्मान करना

---

६७. मनु २।२२५-२२६, ३।४५-५०, पराशरस्मृति—४।१४—१५, महाभारत १३।१४१।२५-२६

समाज और व्यक्ति दोनों के अस्तित्व के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक प्राणी है और ऐसा होने के कारण ही उसे समाज द्वारा अधिकार और कर्तव्य प्राप्त है अत: व्यक्ति का भी दायित्व है कि वह समाज और सामाजिक संस्थाओं को संरक्षण प्रदान करता हुआ सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति सम्मान की भावना रक्खे।

सत्य के प्रति सम्मान भी व्यक्ति का कर्तव्य है। यह नैतिक क्रियाशीलता से सम्बन्धित है तथा व्यक्ति की उन्नति के लिए आवश्यक तत्व भी है। भारतीय दर्शन में इसे धर्म के साथ सम्बन्धित कर सत्य अहिंसा को एक मात्र साधन स्वीकार किया गया है जिससे समाज कल्याण का अस्तित्व है। बाइबिल में भी (Thou shalt not lie) अर्थात् इसे तुम्हें झूठ नहीं बोलना चाहिए' के रूप में स्वीकार किया गया है। ऐसे भारतीय संस्कृति भी सत्यमेव जयते' को आदर्श मानकर विकसित होती रही।

प्रगति के प्रति सम्मान भी व्यक्ति का कर्तव्य कहा जा सकता है क्योंकि जीवन की प्रवैगिकता के बिना सामाजिक आर्थिक राजनीतिक उन्नति सम्भव नहीं। पर इस प्रगति में भी " स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।" अर्थात् अपने क्षेत्र में कर्तव्य का पालन करते हुए मृत्यु प्राप्त हो जाना ही श्रेष्ठ है और किसी अन्य व्यक्ति के धर्म हस्तक्षेप करना असंगत है—की ही भावना होनी चाहिए तभी व्यक्ति अपने कर्तव्य और दायित्व के प्रति सजग हो सकेगा।

जहाँ तक छायावादी कवियों का प्रश्न है — काव्य साहित्य की अपेक्षा प्रसाद ने गद्य साहित्य में ही व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य का विवेचन किया है। उनकी धारणा है कि व्यक्ति का दायित्व है कि वह 'सर्वभूत-हित-रत होकर'[६८] 'मानव संस्कृति के प्रचार के लिए'[६६] उत्तरदायी

---

६८. कंकाल, पृ० २६१.

६६. कंकाल, पृ० २६४

हो ।" इसे स्त्री जाति के प्रति सम्मान करना सीखना होगा । [१००] "सम्मान को सुरक्षित रखने के लिए उससे संगठन में स्वाभाविक मनोवृत्तियों की सत्ता स्वीकार करनी होगी । सबके लिए एक पथ देना होगा ।" [१०१] लिंग भेद के आधार पर विभाजित अधिकारों की घोषणा अपना कोई महत्व नहीं रखती । पुरुष के साथ " नारी जाति के सुख, स्वास्थ्य और संयत स्वतंत्रता की घोषणा [१०२] करनी होगी ताकि " नारी जाति अत्याचार" [१०३] से छुटकारा पा सके । समाज में घृणित समझी जाने वाली वेश्या भी निर्दोष है उसकी सरलता और" भोली-भाली आँखें रो-रोकर कहती हैं मुझे चंचलता सिखाई गई है । मेरा विश्वास है कि उन्हें अवसर दिया जाता तो वे कितनी ही कुलवधुओं से किसी बात में कम न होती ।" [१०४]

सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के कारण व्यक्ति का यह कर्तव्य और दायित्व है कि वह" मानवता के हित में लगा .... अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सदैव युद्ध करता रहे ।" [१०५] और आधुनिक " धर्म और संस्कृति से भीतर ही भीतर निराश" [१०६] " परम अधूत । समाज की निर्दय महत्ता के काल्पनिक दम्भ का निदर्शन । छिपाकर उत्पन्न किये जाने योग्य सृष्टि के बहुमूल्य प्राणी, जिन्हें उनकी माताएं भी छूने में पाप समझती हैं, व्यभिचार की सन्तान को [१०७] भी जीवन का अधिकार है । " दीन दुखियों" [१०८] को उनके जीवनगत " बाधा, विघ्न रोग, शोक, आपत्ति [१०९] एवं सम्पत्ति की सुरक्षा पर छाई" प्रलय की छाया" [११०] को दूर करना होगा यही व्यक्ति का कर्तव्य और दायित्व है अन्यथा उनके काव्य साहित्य के मनु की तरह सपथ च्युत होकर पश्चाताप के शब्दों में साहस छूट गया है मेरा, निस्संबल भग्नाश पथिक हूँ । मैं दुर्बल अब लड़ न सकूँगा । [१११] कहने के अतिरिक्त कुछ भी शेष न रहेगा ।

---

१००. कंकाल, पृ० २६१
१०१. कंकाल, पृ० २६३
१०२. कंकाल, पृ० २६१
१०३. कंकाल, पृ० २६०
१०४. कंकाल, पृ० १६३
१०५. कंकाल, पृ० १४४
१०६. तितली, पृ० १२८
१०७. तितली, पृ० २३३
१०८. झरना, पृ० ६३
१०९. इरावती, पृ०८८,
११०. लहर, पृ० ५६, १११. कामायनी, पृ० २७१

' निराला ' व्यक्ति के अधिकार की जितनी अपेक्षा करते थे उतनी ही उसके कर्तव्य के दायित्व के प्रति भी । यही कारण है कि उनके साहित्य में व्यक्ति के प्रति उसके कर्तव्य और दायित्व की विस्तृत विवेचना मिलती है । निराला की धारणा के अनुसार व्यक्ति के कर्तव्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है पर वह अपने कर्तव्य और दायित्व को तभी समझ सकेगा जबकि वह सही अर्थों में शिक्षित हो । ' शिक्षा ' [११२] अपनी प्रगति में दूसरी शिक्षाओं का सहारा लेती है, तब हर मनुष्य... सापेक्ष होकर दूसरे मनुष्य का मूल्य समझेगा और भिन्न वर्णों के प्रति इस प्रकार घृणा का भाव न रह जायगा ।" [११३] यही कारण है निराला ने अपने साहित्य में ऐसे लोगों को भी सामाजिक श्रेय[११४] प्रदान किया जिन्हें अब तक समाज ने अमानवी भावों ~~के० से प्रेरित होकर~~ कर्तव्य और दायित्व से प्रेरित भी होकर कुछ देने की आवश्यकता ही न महसूस की थी । इस दृष्टि से चतुरी चमार , सुकुल की बीबी, कनक[११५] देवी, भिक्षुक और तोड़ती पत्थर की उस श्रमिक महिला का विशेष महत्व कहा जा सकता है जिसके माध्यम से निराला ने कर्तव्य बोध दिया ।

व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज में दूसरों के जीने की भी सुविधाएं प्रदान करें । इस दृष्टिकोण से ' आश्रय हीन बालिका और तरुणी विधवाएं" [११६] उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी ग्रहण करती हैं, चिर-संचित सतीत्व धन से हाथ धोती हैं । इस घोर सामाजिक अंधकार में पथ परिचय का.... प्रकाश" [११७] देना भी व्यक्ति का

---

११२. अलका, पृ० ७२

११३. प्रभावती, पृ० १३४

११४. सुकुल की बीबी, पृ० ६१

११५. अप्सरा, पृ० १८१

११६. अप्सरा, पृ० ५७

११७. अलका, पृ० ४१

कर्त्तव्य है क्योंकि 'जीवन चिरकालिक क्रन्दन[११८] नहीं । कर्तव्य प्रेरित कर्म जिसने किया है ' उसी ने जीवन भरा है ।'[११९] अत: कर्तव्य और दायित्व की भावना की ओर इंगित करता हुआ कवि व्यक्ति को ' जागो फिर एक बार '[१२०] की ही संज्ञा से सम्बोधन करता है क्योंकि ऐसा न होना ही ~~मुख्य~~ हमारी (व्यक्तिगत) पराधीनता के मुख्य कारणों में से[१२१] एक होगी ।

पंत भी व्यक्ति के कर्तव्य और दायित्व को मानवता के उद्धार के निमित्त ही मानते हैं । उनके अनुसार मध्ययुगों की अन्न वस्त्र पीड़ित, असभ्य निर्बुद्धि पंक में पलित जनता का इस वाष्प, विद्युतगामी युग में सम्पूर्ण जीर्णोद्धार न करना ।'[१२२] कृतघ्नता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ।' निद्रा, भय, मैथुनाहार--ये पशु-लिप्साएं चार'[१२३] में डूबे व्यक्तियों को उनके जीवन का बोध देना ही व्यक्ति का कर्तव्य कहा जा सकता है । ' तीस कोटि नग्न तन , क्षुधित, शोषित, निरस्त्र,मूढ़, असभ्य और निर्धनों,[१२४] का बिना' मनुजोचित साधन',[१२५] उपलब्ध किये समाज को कर्तव्यगत दायित्व की पूर्णता कैसे मिल पायेगी ?

व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह ' जन मंगल हित '[१२६] ' भू के पापों का विषम भार'[१२७] उतारे,' नव मानवता को संदेश' के[१२८] द्वारा ' सत्य'[१२९] धर्म, नीति, सदाचार,[१३०] ' शिक्षा'[१३१], कला'[१३२] की स्थापना कर' जीवन के घन अंधकार '[१३३] को नष्ट करे ताकि ...

---

११८. अपरा, पृ० ७१
११९. अपरा ' मरण को जिसने वरा है, पृ०१४३
१२०. अपरा, पृ० १६
१२१. अपरा पृ ० १६८
१२२. आधुनिक कवि पंत, पृ० ४०
१२३. आधुनिक कवि पंत, पृ० ७६
१२४. आधुनिक कवि पंत, पृ० ८५

१२६. चिदंबरा, पृ० २११
१२७. ,, पृ० २१०
१२८. ,, पृ० २०५
१२९. ,, पृ० १५६
१३०. ,, पृ० ४८
१३१. ,, पृ० ६६
१३२. ,, पृ० ४७

मानवता की जय हो,[१३४] और आदर्श समाज की स्थापना हो सके। तभी व्यक्ति का कर्तव्य और दायित्व पूरा हुआ कहा जा सकता है।

महादेवी के काव्य साहित्य में व्यक्ति के कर्तव्य और दायित्व पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता पर अपने गद्य साहित्य में उन्होंने इस विषय में पर्याप्त निर्देश किया है। उनकी दृष्टि में कर्तव्य और दायित्व का भार पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों से विशेष रूप से सम्बन्धित रहा। उनके अनुसार स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार का एक ही कारण है वह यह कि पुरुष स्त्री के प्रति अपना कर्तव्य और दायित्व नहीं निभाता। कदाचित ऐसा होने में उसकी अन्य प्रवृत्ति का हाथ हो पर समाज ने स्त्री की मर्यादा का जो मूल्य निश्चित किया है केवल वही उसकी गुरुता का मापदण्ड नहीं।[१३५] व्यक्ति का दायित्व है कि वह समानधिकार की भावना से प्रेरित हो नारी का सम्मान करे ताकि बिन्दा,[१३६] सबिया,[१३७] भाभी,[१३८] बिट्टो,[१३९] बेटी,[१४०] घीसा की माँ,[१४१] अनामी वेश्या,[१४२] रधिया,[१४३] लछमा,[१४४] भक्तिन,[१४५] बिबिया,[१४६] और गुंगिया,[१४७] जैसी निरीह स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार का प्रतिकार हो सके। ऐसे समाज की वर्तमान स्थिति में नारी जीवन की उस करुण कहानी का इससे घोरतर उपसंहार और हो ही क्या सकता है।[१४८] यद्यपि कुछ अधिक तर्कशील पुरुषों का कहना है कि स्त्रियों को स्वयं अपनी रक्षा करने से कौन रोकता है?"[१४९] पर युगों की कठोर यातना और निर्मम दासत्व ने स्त्रियों को अपनापन भी भुला देने पर विवश न किया होता तो क्या आज ये अपने सम्मान की रक्षा में समर्थ न हो पातीं?[१५०]

---

१३४. चिदंबरा, पृ० ८६
१३५. अतीत के चलचित्र, पृ० ५१
१३६. ,, पृ० ४०
१३७. ,, पृ० ४३
१३८. ,, पृ० ३१
१३९. ,, पृ० ५७
१४०. ,, पृ० ६६
१४१. अतीत के चलचित्र, पृ० ७६
१४२. ,, पृ० ८५
१४३. ,, पृ० १०३
१४४. ,, पृ० १२४
१४५. स्मृति की रेखाएं पृ० ७ ६
१४६. ,, पृ० ११६
१४७. ,, पृ० १५१
१४८. शृंखला की कड़ियां पृ० ३८
१४९. ,, पृ० ३६
१५०. ,, पृ० ३६

अत: समाज की उन्नति के निमित्त पुरुष का कर्तव्य और दायित्व है कि वह नारी का सम्मान करता हुआ सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक रहे और स्त्रियों का कर्तव्य और दायित्व है कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहकर अपने सामाजिक कर्तव्यों की भी पूर्ति करें।

अन्य छायावादी कवियों की तरह रामकुमार में भी व्यक्ति के कर्तव्य के प्रति सजगता मिलती है। पर यह सजगता व्यक्तिवादी मूल्य तक सीमित है या समाजवाद तक इसकी विवेचना अन्यत्र की जायेगी। पर इतना तो स्पष्ट है कि कवि "बन्धनमय अधिकारों कर से मुक्ति प्राप्त"[१५१] कर मानवीय स्वतंत्रता की प्राप्ति चाहता है। व्यक्ति के "नींद के संसार में जागरण की ज्योति"[१५२] भरना अपना कर्तव्य समझता है क्योंकि "जबकि जीवन में विकलता या विवशता,"[१५३] छाई है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी दासता के त्रस्त स्वर में "सुख न है संसार में, वह है दुखों की एक विस्मृति" की संवेदना ग्रहण कर रहा है ऐसी अवस्था में उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह समाज का "जीवन दीन न"[१५४] बनने दे साथ ही विश्वबन्धुत्व की भावना से प्रेरित होकर "प्रेम का परिहास"[१५५] न होने दे। व्यक्ति के सम्मुख कर्तव्य पथ विस्तृत[१५६] है। इसीलिए कवि ने कर्तव्य की भावना से प्रेरित हो उन सारे बन्धनों को तोड़ दिया है जिनमें जीवन संकीर्ण[१५७] बन गया था, और जिससे कि व्यक्ति "स्वतंत्रता" के मूल्य को समझ सके। अत: कर्तव्य और अधिकार की चेतना और दासता से मुक्ति छायावादी कवियों की दृष्टि में व्यक्ति का सर्वप्रथम उद्देश्य है।

---

१५१. आकाश गंगा, पृ० १
१५२. आकाश गंगा, पृ० ५
१५३. ,, पृ० १३
१५४. ,, पृ० १६
१५५. ,, पृ० ४६
१५६. ,, पृ० ५४
१५७. ,, पृ० ८७

व्यक्ति : जीवन के अन्तरंग रूप के उद्घाटन का आग्रह

छायावाद से पूर्व साहित्य की मनोवृत्ति लेखक के व्यक्तिगत जीवन के अन्तरंग रूप के उद्घाटन की ओर न थी । इसका कारण यह था कि कुछ तो सामंती दृष्टिकोण के कारण रचनाकार का व्यक्तिगत जीवन प्रत्यक्ष रूप से साहित्य का विषय नहीं बन सकता था और कुछ व्यक्तिगत जीवन के अंतरंग पक्षों का समान्य रूप से उद्घाटन अच्छा भी नहीं समझा जाता था। पर यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रारंभ से रीतिकाल तक मिलती है । भारतेन्दु और द्विवेदी काल के लोक जीवन में भी समाज का महत्व स्थापित हुआ । व्यक्तिगत स्तर पर लेखक को कुछ भी कहने सुनने का अधिकार न था । फिर भी विदेशी साहित्य, विचारधारा और आर्थिक सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों के कारण स्वतंत्रता, समता और विश्व बन्धुत्व के मूल्य से परिचय हो रहा था । साथ ही दृष्टिकोण के परिवर्तन की पृष्ठ-भूमि बनती जा रही थी । पर व्यक्ति की दृष्टि कर्तव्य प्रधान ही थी । समाज में व्यक्ति की सत्ता महत्वपूर्ण न थी ।

पर व्यक्ति के स्वतंत्र दृष्टिकोण से व्यक्ति के मूल्यगत प्रतिष्ठा होने में छायावाद संधिकाल और प्रथम काल का द्योतक है कहा जा सकता है ।

आलोच्य काल में व्यक्तिवाद के महत्व की प्रतिष्ठा के कारण छायावादी कवियों में यदाकदा व्यक्तिगत जीवन को भी साहित्य का विषय बनाने में संकोच नहीं हुआ । यही कारण है कि आलोच्य छायावादी कवियों को अपने व्यक्तिगत जीवन के अंतरंग पक्षों के उद्घाटन का भी आग्रह दीख पड़ता है जिसे ~~आत्मकथन~~ (कि महा.) देखना ही अभीष्ट ~~होगा~~ होगा ।

प्रसाद ने व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित पक्षों पर प्रत्यक्ष रूप से अधिक नहीं लिखा पर इसका कारण कदाचित —

तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती ।
तुम सुनकर सुख पाओगे देखोगे — यह गागर रीति ।

सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की ?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएं आज कहूँ ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे — मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नहीं -- थकी सोई है मेरी मौन व्यथा ? [१५८]

पर उन्हीं के द्वारा कालान्तर में रचित आँसू में —

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति - सी छायी
दुर्दिन में ~~स्मृति~~ आँसू बन कर
वह आज बरसने आयी । [१५६]

और तदनन्तर " मेरे क्रन्दन में बजती " [१६०]

और रो रो कर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुणा कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी । [१६१]

उपर्युक्त कविताओं में प्रसाद का व्यक्तिगत चरित्र कितना अपना यह विवादास्पद हो सकता है पर —

" परिरम्भ कुम्भ की मदिरा, निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से, मैं उठता था मुँह धोके के साथ"

प्रथम पुरुष में रचित खण्डकाव्य आँसू के वैयक्तिक स्तर पर इतनी गहरी संवेदना की अभिव्यक्ति है कि इसे कदाचित प्रसाद के सम्पूर्ण वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित न करने पर भी किन्हीं अंशों में व्यक्तिगत

---

१५८. लहर, पृ० ११
१५६. आँसू, पृ० १४
१६०. ,, पृ०,१४

जीवन के अंतरंग रूप के उद्घाटन का अग्रसर आग्रह माना जाय तो कदाचित अत्युक्ति न होगी ।

पंत के काव्य में भी उनके वैयक्तिक जीवन के कुछ अंतरंग पक्षों पर प्रकाश पड़ता है इसे ग्रन्थि में देखा जा सकता है । बच्चन के शब्दों में कवि ने" अपने हृदय की कसक, निकाली है"[१६२]

एक झील में नाव डूबने पर युवक बेहोश होता है । आंख खुलने पर वह एक सुंदरी युवती के जंघे पर अपना सिर पाता है जो उसकी ओर देख रही है पर उनका प्रेम व्यापार समाज सहनकर युवती का गठबंधन दूसरे पुरुष से कर देता है । " पं० रामचन्द्र के शब्दों में यही ग्रन्थिबन्धन उस युवक या नायक के हृदय में एक ऐसी विषाद ग्रन्थि डाल देता है जो कभी खुलती ही नहीं ।"[१६३] स्वयं पंत ने भी यह स्वीकार किया है कि जैसे" ग्रन्थि के असफल कथानक ने मेरे भावी जीवन के विषय में भविष्यवाणी कर दी गयी। " नारी रूप" में घने लहराते रेशम के बाल धरा है सिर पर मैंने देवि ।[१६४] भी पंत की वैयक्तिकता ही प्रकट करती है ।

पल्लविनी में ही भावी पत्नी के प्रति ,[१६५] जिस प्रकार जिज्ञासा व्यक्त की गई उससे कवि की उत्सुकता का पता लगता है । " नौका विहार"[१६६] के " कालाकांकर का राज भवन सोया जल में निश्चित प्रमन , पलकों में वैभव स्वप्न सघन, तथा युगवाणी की कविताएं पंत और कलाकांकर के एक विशेष संदर्भ को प्रकट करती है । पर पंत के वैयक्तिक जीवन के अंतरंग पक्षों पर जो प्रकाश उनके लोकायतन पर पड़ा वह उनके अन्य किसी भी काव्य में नहीं । उन्होंने बचपन में व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का भी

---

१६२. पल्लविनी—भूमिका, पृ० १८

१६३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६४१

१६४. पल्लविनी, पृ० २८

१६५. ,, पृ० १४४

१६६. आधुनिक कवि पंत, पृ० ५७

स्पष्ट वर्णन किया है । [१६७]

`पानवाला` [१६८] शीर्षक कहानी पंत के मित्र पिताम्बर का चरित्र चित्रण भी पंत के बचपन के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है ।

आलोच्य विषय के कवियों के अन्तर्गत व्यक्तिगत जीवन के अन्तरंग रूप के उद्घाटन का सर्वाधिक आग्रह दीख पड़ता है तो वह निराला में। कविता हो या कहानी, रेखाचित्र सब में उनके व्यक्तिगत जीवन की झलक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मिल ही जाती है ।

जब भी निराला के व्यक्तिगत जीवन के अंतरंग रूप पर प्रकाश डालने वाली कविता की बात होगी सरोज स्मृति का स्थान सबसे आगे होगा क्योंकि अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखे गए `सरोज स्मृति` शीर्षक लम्बी कविता में उनके जीवनगत अनेक पक्षों का उद्घाटन होता है । पत्नीकी मृत्यु सरोज का नानी के घर पालन - पोषण, कान्यकुब्ज में कन्या के विवाह की जटिल समस्या, सरोज का विवाह और उस विवाह में पिता द्वारा सामाजिक आडम्बरों को तोड़ना, साहित्य साधना में रत निराला की मुक्त छंद की अबाध रचना और संपादकगण द्वारा रचनाओं का अनादर, कवि पत्नी की मृत्यु के अनन्तर शादियों के आते प्रस्ताव और कवि द्वारा उनका ठुकराया जाना , सरोज की मृत्यु और कवि के जीवनगत विश्वास का टूटना, तथा असमर्थ पिता की पुत्री के हित में कुछ न करने की असमर्थता और लगातार दुःखों से घिरे रहने पर` दुःख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कही । [१६९] कह कर एक आत्म संतोष की भावना और साथ ही विषमता में -

हो गया व्यर्थ जीवन, मैं रण में गया हार` [१७०]

भी निराला के व्यक्तिगत जीवन के रहस्य का उद्घाटन करती है ।

---

१६७. लोकायतन, पृ० ५८

१६८. पाँच कहानियाँ, पृ० २१

१६९. अपरा, पृ० १४६

१७०. ,, बनबेला - ६२

उनके गद्य साहित्य में इस बात का- " तब मैं लगातार साहित्य -समुद्र मंथन कर रहा था । पर निकल रहा था केवल गरल । पान करने वाले अकेले महादेव बाबू (मतवाला संपादक) — शीघ्र रत्न और रंभा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे । यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी फिर भी मुझे आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है । [१७१] और कला की रूपरेखा में स्टेशन पर बायल्ड, हाफ बायल्ड या पोच , समय रहा तो आमलेट , अंडे बत्तख के नहीं मुर्गी के [१७२] — खाना निराला के संपान काल के कठिनाइयों के साथ आमिष खाना- पान के विषय में भी संकेत करता है । साथ ही ' देवी ' [१७३] कहानी में दारागंज में एक पगली को रजाई दान तथा निराला की उस निरीह पर आत्मीयता की दृष्टि साथ ही चतुरी चमार ' [१७४] को व्यक्तिगत रूप से किये गये मदद, चिरंजीव को नाई के साथ भेजकर [१७५] अर्जुन की रक्षा निराला के व्यक्तिगत जीवन का चरित्र उद्घाटन करते हैं ।

जहाँ तक महादेवी वर्मा के साहित्य का प्रश्न है उनके साहित्य में पद्य की अपेक्षा गद्य में व्यक्तिगत जीवन के अन्तरंग रूप के उद्घाटन का आग्रह काव्य की अपेक्षा गद्य साहित्य में विशेष रूप से देखा जा सकता है । स्मृति की रेखाएं और अतीत के चलचित्र में महादेवी का जीवन चरित्र प्रत्यक्ष रूप से आ गया है । यद्यपि इन रेखा चित्रों में मात्र संकलित होने से एक दूसरे रेखाचित्रों में एक गहरा अन्तराल देखा जा सकता है ।

फिर भी घरबार छोड़ कर रात दिन महादेवी के साथ रहने वाली भक्तिन, [१७६] सिस्तर के वास्ते ई लाता है कहने वाला चीनी फेरी वाला, [१७७] बद्रीनाथ की यात्रा पर सामान ढोने वाले जंग बहादुर और धनीया [१७८] मन्नू और उसकी माँ, तथा अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाओं (रेखाएं)

---

१७१. सुकुल की बीबी, पृ० ६
१७२. ,, पृ० ६१
१७३. देवी पृ० १०
१७४. देवी, पृ० २३
१७५. देवी, पृ० २६
१७६. स्मृति की रेखाएं, पृ० ३१
१७७. ,, पृ० १६
१७८. ,, पृ० ३३

के घीसा, अलोपी, बदलू, रधिया, कल्पवास के समय घासफूस की भोपड़ी में बिना बुलाये मेहमान , बीबिया और रमई, गुगिया, रामा, भाभी (विधवा) बिन्दा, सबिया, बिट्टो—इन सब का वर्णन करने में महादेवी की चरित्रगत दया, क्षमा, करुणा , ममता, स्नेह परोपकार का तथा समाज में स्त्रियों की स्थिति के प्रति उनका व्यक्तिगत क्षोभ और गांव की निरक्षरता को दूर करने वाले प्रयत्न का भी पता चलता है । साथ ही महादेवी के व्यक्तिगत प्रयत्न और समाज सुधार के प्रति एक विद्रोहात्मक दृष्टि और इन सबके प्रति लेखिका की क्रिया-प्रतिक्रिया के साथ उनके व्यक्तिगत जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है ।

डॉ० रामकुमार वर्मा के साहित्य में जीवनगत वैयक्तिकता का उद्घाटन इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि उनकी धारणा है कि —

तुम हृदय की बात हो तो मैं तुम्हें क्यों कंठ स्वर दूँ ?
इस नयी पहचान में क्यों दूसरों की दृष्टि भर दूँ ?
मैं नहीं यह चाहता हूं
प्रेम का परिहास हो । [१७६]

यही कारण है उनके एकांकी साहित्य , काव्य, खंड काव्य और एकलव्य जैसे महाकाव्य में भी तटस्थ रूप से इनका चरित्र नहीं उभर पाया । पर अपवाद रूप में मयूर-पंख की भूमिका में लेखक पात्र की जो अवतारणा की गयी उससे रामकुमार जी के व्यक्तिगत जीवन की झलक मिलती है । साथ ही अनुशीलन के मृत्यु का अनुभव नामक एक संस्मरण में घी के साथ शहद आ लेने पर हुई मृत्यु पीड़ा का अनुभव उनके व्यक्तिगत जीवन के पक्ष को ही उद्घाटित करता है ।

रामकुमार जी के साहित्य में व्यक्तिगत जीवन के अन्तरंग रूपके उद्घाटन का आग्रह विशेष नहीं दीख पड़ता । इसका कारण यह है कि काव्य में उनकी प्रवृत्ति रहस्यात्मक रही है और नाटक में पात्र के अतिरिक्त स्वयं की अभिव्यक्ति का प्रश्न नहीं उठता । अत: छायावादी कवियों में प्रसाद के अतिरिक्त रामकुमार वर्मा ही ऐसे कवि हैं जिनके साहित्य में व्यक्तिगत जीवन के अंतरंग रूप के उद्घाटन का आग्रह प्रत्यक्ष रूप से विशेष नहीं दीख पड़ता ।

---

१७६. आकाश गंगा, पृ० ४६

व्यक्ति : मुक्त प्रेम

आलोच्य विषय के प्राय: सभी कवियों का मुख्य विषय प्रेम रहा है पर उनकी दृष्टि में प्रेम के सम्बन्ध में चाहे वह अलौकिक हो या लौकिक स्वकीया हो या परकीया , ऐन्द्रिक हो या आत्मिक कहे जाने वाले प्रेम में प्राय: मुक्त प्रेम की ही भावना दीख पड़ती है। छायावादी कवियों में व्यक्तिवाद की महत्ता को स्वीकार करने के कारण स्वच्छन्दता के प्रति कुछ विशेष आग्रह दीख पड़ता है। उनकी दृष्टि में प्रेम मानव मन की सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो अपनी अभिव्यक्ति में सामाजिक, मर्यादा या किसी प्रकार के कृत्रिम बन्धनों को स्वीकार नहीं करती। इस धारणा के पीछे व्यक्ति स्वातंत्र्य की वह भावना दीख पड़ती है जिसमें स्वतंत्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार माना गया है। छायावादी कवियों में स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित होने के कारण प्रेम के सम्बन्ध में एक विद्रोहात्मक रूप देखने को मिलता है क्योंकि प्रेम के सम्बन्ध में एक निश्चित नियम तथा संयम की प्रवृत्ति नहीं देखने को मिलती काव्य में भावनात्मक अतिरेकके कारण ही प्रसाद , निराला पंत महादेवी और रामकुमार वर्मा के गीतों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वैयक्तिक स्तर पर प्रेम की इतिवृत्तात्मकता मिलती है यह आँसू,ग्रन्थि, जुही की कलीके गीतों के आधार पर कहा जा सकता है। दीपशिखा और आकाशगंगा के कुछ गीतों पर भी व्यक्ति के मुक्त प्रेम की धारणा का प्रभाव देखा जा सकता है ।

छायावादी कवियों में मुक्त प्रेम के सम्बन्ध में डॉ० शम्भुनाथ सिंह की धारणा है कि " पूंजीवाद तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव के कारण मध्यवर्गीय कवियों में स्वच्छन्द सामाजिक आचार-विचारों की प्रवृत्ति जागृत हुई पर अपने यहाँ की सामाजिक रूढ़ियों के कारण उन स्वच्छन्द विचारों को साधारणतया कार्यरूप में परिणत करना सम्भव नहीं हुआ। आर्थिक परिस्थितियाँ भी सुखमय जीवन-निर्वाह के योग्य नहीं थी। इधर पुनरुत्थान - युग का मर्यादावादी नैतिक अंकुश भीस्वच्छन्द प्रेम में बाधक था। इसलिए स्वच्छन्द प्रेम की वासना दमित और अपूर्ण रह जाने से हिन्दी कविता में

प्रेम के निराशमय और कुंठापूर्ण चित्र भी बहुत अधिक आये । पंत जी की ग्रन्थि इसका सर्वोत्तम उदाहरण है । इस प्रकार की परिस्थितियों के बीच निराशा मिलने के कारण एक ओर तो वेदना, दुख और कसक का बाहुल्य दिखाई देने लगा, दूसरी ओर शारीरिक मांसल सौन्दर्य की जगह मानव के अतीन्द्रिय मानसिक और काल्पनिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, कुतूहल और रहस्यमयता की भावनाएं अभिव्यक्त होने लगीं । इस तरह प्रेम इस युग में शारीरिक से अधिक आध्यात्मिक बन गया ।[१८०]

छायावादी कवियों के मुक्त प्रेम के सम्बन्ध में शम्भूनाथ सिंह द्वारा उनकी आर्थिक परिस्थितियों से सम्बन्धित कथन ठोस आधार पर व्यक्त करता है । जहाँ तक प्रेमाभिव्यक्ति का प्रश्न है छायावादी कवियों में इस बात की भी धारणा नहीं मिलती कि लौकिक प्रेम निंदनीय है । पर इतना अवश्य है कि आलोच्य काल के कवि प्रेम सम्बन्धी सामाजिक रूढ़िता के प्रति विद्रोह की भावना रखते हुए भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए काव्य की उचित पीठिका का निर्णय न कर सके । यही कारण है कि कुछ नैतिक मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए कवि सामान्यत: व्यक्ति को ही आध्यात्मिकता के आवरण में प्रस्तुत कर प्रत्यक्ष रीति से प्रेम की अभिव्यक्ति करने लगे । जिसमें चेतन या अचेतन स्तर पर ऐन्द्रियता आने लगी । कालान्तर में तो ऐन्द्रिय प्रेम भी कवियों की दृष्टि में निंद्य नहीं दीख पड़ता । इसका कारण यह था कि सामान्य प्रेम के भी पवित्रता के दृष्टिकोण से अपनी साधनात्मक अवस्था में कम महत्व नहीं दिया गया । ऐसी अवस्था में स्वकीया या परकीया का उनके समक्ष प्रश्न नहीं उपस्थित हुआ । छायावादी कवियों के समक्ष प्रेम सम्बन्धी धारणा में व्यक्ति के इस वर्गीकरण में जाति धर्म, अमीर-गरीब या किसी प्रकार के बड़े-छोटे का भेद न था । इसे आलोच्य काल के कवियों में एक - एक कर विश्लेषण से देखा जा सकता है ।

---

१८०. छायावाद युग, पृ० ११३

प्रसाद की धारणा थी कि प्रेम में आत्मोत्सर्ग और त्याग की महत्ता है, जीवन में प्रेम की अवहेलना नहीं हो सकती। उसका प्रभाव जीवन में अव्यक्त रूप से प्रवेश करता है। विरह इसका आवश्यक तत्व है। ऐसे प्रसाद ने सफल[९८१] असफल [९८२] वासनामूलक[९८३] प्रथम दर्शन [९८४] एकांगी[९८५] और बाल प्रेम [९८६] तक को चित्रित किया पर उनकी दृष्टि में गार्हस्थ्य प्रेम आदर्श है। जीवन और प्रेम के सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि बिना

---

९८१. इरावती -- बलराज, चन्द्रगुप्त, किन्नरी-पथिक, कुसुम कुमारी -- बलवन्त सिंह, कामना, सन्तोष, गाला - मंगल, चंदा-हीरा, चन्द्रलेखा -- विश्वास, चित्रांगदा -- अर्जुन, तानसेन -- सौसन, तितली मधुबन, धीवर कुमारी -- सुदर्शन, ध्रुव स्वामिनी -- चन्द्रगुप्त, नलिनी -- नन्दलाल , नैरा-रामू, फीरोज -- अहमद, बैला-गोली, मणिमाला -- जनमेजय, मधुलिका-अरुण, लीला -- विनोद, वाजिरा, अजातशत्रु, विलासिनी -- विजय ~~मिश्रुन~~।

९८२. कल्याणी -- चन्द्रगुप्त, कामना-विलास, कोमा-शकराज, घंटी-विजय चम्पा, चन्द्रगुप्त, तारा-दामिनी, देवसेना -- स्कन्दगुप्त ,पद्मा -- रामास्वामी, पन्नादेवी, नम्बक्, मंगला -- मुरली: मदन, मृणालिनी मालिनी -- मातृगुप्त, मीना -- गुल, मोनी-नन्दू, रोहिणी -- जीवनसिंह, लैला -- रामेश्वर, विजया, विरुद्धक, शीरी -- बिसाती।

९८३. कामिनी -- राजकुमार, गुलबहार, घनश्यामदास, का नीला के लिए घंटी - विजय, तिष्य का कुणाल से, नन्द का सुवासिनी से, नरदेव का चन्द्रलेखा से, पर्वतेश्वर का अलका और कल्याणी से, माधव का घंटी से, मनु का इड़ा से, यमुना का मंगल से, रमला -- साजन, सुखदेव चौबे राजकुमारी, रामनिहाल, ~~रामचन्द्र~~ रामू-भक्ता, लालछाक-विनोद , विकटघोष राज्यश्री, विजया-स्कन्द, कपालिक और भटार्क के प्रति, विरुद्धक का मल्लिका के प्रति , शाह आलम का गुलाम के प्रति, सलीम का प्रेमा के प्रति , सुरमा का देवगुप्त शान्तिदेव के प्रति।

९८४. अलका, सिंहरण, उर्वशी-पुरुरवा, कार्नेलिया-चन्द्रगुप्त, कामना-विलास

प्रेम के व्यक्ति आत्मविस्तार भी नहीं कर सकता —

> अकेले तुम कैसे असहाय
> यजन कर सकते ? तुच्छ विचार ।
> तपस्वी आकर्षण से हीन
> कर सके नहीं आत्म विस्तार ।

लौकिक प्रेम से ही अलौकिक की सृष्टि होती है और जीवन की ठोस धरा पर वह अनन्त की ओर विकसित होता है । [१८७] क्योंकि इस दर्पण

(१८४ का शेष)

चन्द्रलेखा-विश्वास, चित्रांगद, अर्जुन मणिमाला — जनमेजय, मनु श्रद्धा, वजिरा, अजातशत्रु विजया-स्कन्दगुप्त ।

१८५. अनवरी, अशोक, कामिनी देवी, मालविका, रोहिणी, विरुद्धक, श्यामा, श्रीनाथ, सरला, सलीम ।

१८६. इरावती — अग्निमित्र, कल्याणी चन्द्रगुप्त, कामना- संतोष, किशोरी — निरंजन, तितली-मधुवन, देवसेना — स्कन्दगुप्त, सुवासिनी — चाणक्य । प्रसाद साहित्य कोश २८२

१८७. कामायनी श्रद्धा ५६, ११०,
अजातशत्रु — ४२, ४३, ४५, १-६, ७३, ६६, ६८, ११४, ११८
आँसू — ३२, ४२, ६२
एक घूंट- १५, २६, ३८, कंकाल — १२०, १४३ — ४३
कामना — १-३, १-४, १-६, २-३, २-६, २-८
करुणालय — ८, १४, २१, २८, कानन कुसुम — २६, ३१, ६५, ७८, ८५, ६३, १११, १२४, चित्राधार — १८, १६, ५८, ७३, ७४, ११०, १५६, १६२, १६५, १६८, १७३, १७४, १७५, १८१, १८३, १८४, १८६, १६०
झरना — ११, १६, २४, ३४, ३८, ४४, ४६, ८६,
प्रेम पथिक — २, १३, १६, १७, १६, २०, ३२, २३, २४, महाराणा का महत्व — १७, लहर — ४३, ७५

में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग झलकता है । [१८८] प्रसाद के गद्य साहित्य की और देखें तो तितली के इन्द्रदेव के शब्दों में " यह सत्य है कि सब ऐसे भाग्य-शाली नहीं होते कि उन्हें कोई प्यार करे पर यह तो हो सकता है कि वे स्वयं किसी को प्यार करें, किसी दुःख-सुख में हाथ बाँट कर अपना जन्म सार्थक कर लें ।" [१८९] क्योंकि " प्रेम चतुर मनुष्य के लिए नहीं, वह तो शिशु से सरल हृदयों की वस्तु है । [१९०] मनुष्य अपने त्याग से जब प्रेम को आभारी बनाता है तब उसका रिक्त कोश बरसे हुए बादलों पर पश्चिम के सूर्य के रत्न-लोक के समान चमकता है ।" [१९१] बादलों पर पश्चिम के सूर्य के कारण का यही रूप है कि " मानव-हृदय की मौलिक भावना स्नेह है । कभी-कभी स्वार्थ की ठोकर से पशुत्व की विरोध की प्रधानता हो जाती है ।... प्रेम, मित्रता की भूखी मानवता । बार-बार अपने को ठगाकर भी वह उसी के लिए झगड़ती है । झगड़ती है, इसलिए प्रेम करती है ।" [१९२] क्योंकि प्रेम स्वार्थ से परे है । प्रेम जब सामने से आए हुए तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाश पुंज उंडेल देता है, तब सामने की सभी वस्तुएं और भी [१९३] दिव्य हो जाती हैं । [१९४] इसलिए इस भीषण संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को धोखा देना सब से बड़ी हानि है ।.... दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है ।" प्रणय महान् है , प्रेम उदार है, प्रेमियों को भी वह उदार और महान् बनाता है । प्रेम का मुख्य अर्थ है," आत्म-त्याग" । [१९५] प्रसाद के शब्दों में ही व्यक्ति के मुक्त प्रेम की सार्थकता इसी में निहित है कि —

---

१८८. कामायनी, पृ० ४०, १५३, १६५, २४३, २६४, १०५, ४७

१८९. तितली, पृ० २-५

१९०. तितली इन्द्रदेव १-- ८

१९१. तितली, ३—७

१९२. तितली, ४— ३

१९३. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४२

१९४. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५२

१९५. मदन मृणालिनी, पृ० १७८

जिसके प्रकाश में सकल कर्म बनते कोमल उज्ज्वल उदार -

और —

पागल रे ! वह मिलता है कब, उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन से गिनकर, यह विश्व लिये है ऋण उधार ,
तू क्यों फिर उठता है पुकार ? — मुझको न मिला रे कभी प्यार ।[१९६]

क्योंकि यह जीवन की एक स्वाभाविक भूख है और जीवनगत आवश्यकताओं में निहित है ।

पंत जीवन की 'मधुरता के लिए[१९७] व्यक्ति में मुक्त प्रेम उसकी जीवनगत आवश्यकता मानते हैं । पंत की प्रेम सम्बन्धी धारणा बहुत व्यापक है । वह जीवन के विभिन्न सम्बन्धों के मध्य उसकी व्याप्ति दिखाकर—जन जीवन को भी उसके मधुर सम्बन्धों की अनुभूति की ओर प्रेरित करता है । जिससे प्रेम की महानता घोषित हो ।

यथा — यही है मेरे तन, मन, प्राण
यही है ध्यान, यही अभिमान,
धूल की ढेरी में अनजान,
छिपे हैं मेरे मधुमय गान ।[१९८]

साथ ही पंत का जीवन दर्शन अपनी उदात्त भावना के स्पर्श से प्रेम का श्रृंगार करता है । जिसमें वह प्रेम की पवित्रता के सौन्दर्य को विशेष रूप से समाहित करता है । भारतीय दर्शन में प्रेम मानव की चरम परिणति है । मानव हृदय प्रेम की पवित्रता के गीत सुनता है —

---

१९६. लहर, पृ० ३६
१९७. पल्लविनी — यामना, पृ० १६
१९८. पल्लविनी उच्छ्वास, पृ० ६४

एक वीणा की मृदु झंकार, कहाँ है सुन्दरता का पार ।
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि, दिखाऊँ मैं साकार ।
तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान ।
तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान ।[१९९]

यह मांसल प्रेम की उन्मुक्त अभिव्यक्ति भी प्रेम की जीवनगत अध्यात्म आस्था सी प्रेरक है । यही कारण है कि उसे `पीड़ा के हास`, ` रोग का उपचार` पाप का परिहार ` और ` एक अँधेरे संस्कार[२००] के रूप में व्यक्त किया गया है । उसके जीवन में अमर प्रेम नहीं है तो वह अपनी स्वाभाविक आवश्यकता अनन्तर के रूप में -" उतारूँ अपने उर का भार ! किसे अब दूँ उपहार "[२०१] के लिए ही विकल रहता है । वह जीवन में प्रेम की आवश्यकता मानता है । चाहे वह माँ का प्रेम हो या प्रणय का । पंत इन दोनों को भी विकासात्मक क्रम में देखने का प्रयास करता है -

अहो विश्वसृग ! पुनः गूंथ दो, वह मेरा बिखरा संगीत
माँ की गोदी का थपकी से, पला हुआ वह स्वप्न पुनीत ।[२०२]

क्योंकि सम्पूर्ण जीवन ही प्रेम से परिचालित है ।-वह " बचपन का हास , यौवन का मधुप विलास, प्रौढ़ बुद्धि, जरा का अन्तर्मन-प्रकाश, जन्म दिन का मधुप विलास, प्रौढ़ बुद्धि,जन्म दिन का हुलास हो या मृत्यु का दीर्घ निःश्वास हो ।[२०३] क्योंकि मिलन[२०४] के रूप में चित्रित हो या प्रणय मिलन ,[२०५]

---

१९९. पल्लव — ९८
२००. पल्लविनी, पृ० ६८
२०१. पल्लविनी, पृ० ७३
२०२. पल्लविनी, पृ०२५
२०३. पल्लविनी, पृ० ६२
२०४. पल्लविनी, पृ० २०५
२०५. पल्लविनी, पृ० २४४

के अथवा भावी पत्नी के प्रति [२०६] , अंतत: वह " जीवन की ही डाल होगी जिस पर प्रेम विहग का वास [२०७] होगा , जिसमें जीवन को अमरत्वदान [२०८] प्राप्त हो सकेगा । इसे पंत के उच्छ्वास, [२०९] आँसू, [२१०] सोने का गान, [२११] मुसकान, [२१२] अप्सरा [२१३] में प्रथममिलन [२१४] प्रेम नीड़ [२१५] ग्रन्थि [२१६] मुसकान [२१७] आँसू की बालिका , [२१८] में देखा जा सकता है ।

जीवन एक ऐसी कला है जिसका विकास प्रेम ही कर सकता है । [२१९] यह " रूप सत्य " [२२०] है पंत की दृष्टि में प्रेम को मूलभूत तत्व सृष्टि में नाना रूपों से सर्वत्र व्याप्त है -- साथ ही इसी एक बिन्दु पर वह एक सूत्र में ग्रन्थित है यही कारण है कि एक ही असीम उल्लास विश्व में विविधाभास [२२१] के रूप में दीख पड़ता है । चाहे वह " प्रज्ञा के सत्य स्वरूप के रूप में हो, या हृदय गत अपार प्रणय के रूप में , अथवा वह हो लोकसेवा में अविकार शिव के रूप में," [२२२] क्योंकि प्रेम मात्र शारीरिक भोग मात्र नहीं है । वह " दिव्य , " मुक्ति हृदय की [२२३] है ।"

अंतत: कवि मानव को मुक्त प्रेम और उसकी जीवनगत आस्था के विषय में यह भी संकेत करता है कि स्वर कोमल शब्दों को चुन-चुन मैं लिखता जन - जन के मन पर, मानव आत्मा का बाध प्रेम, जिस पर है जन जीवन निर्भर ।। [२२४]

---

२०६. पल्लविनी, पृ० १४४
२०७. पल्लविनी, पृ० १५३
२०८. पल्लविनी, पृ० १६७
२०९. ,, पृ० ६२
२१०. ,, पृ० ७२
२११. ,, पृ० ८७
२१२. ,, पृ० ८९
२१३. ,, पृ० १६४
२१४. ,, पृ० २४४
२१५. ,, पृ० १५३
२१६. पल्लविनी, पृ० ३६
२१७. आधुनिक कवि पंत, पृ० २६
२१८. ,, पृ० ११
२१९. चिदंबरा-अभिलाषा, पृ०२३१
२२०. ,, पृ० ५७
२२१. पल्लव , पृ० ८७
२२२. पल्लव उच्छ्वास पृ०
२२३. स्वर्ण किरण, पृ० ३८
२२४. युगवाणी , पृ० २६

निराला साहित्य में व्यक्ति के मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं तक ही नहीं वरन् उनके कहानी और उपन्यास तक में समान रूप से दर्शनीय है। निराला के प्रेम की अभिलाषा है कि वह इस जीवन संघर्ष को पार लगा दे। प्रेम उनकी दृष्टि में प्रेम का औचित्य सार्थकता है कि भौतिक संघर्षों के बीच भी जीवन की मधुर सृष्टि कर सके। यथा —

जैसे हम हैं वैसे ही रहें
लिए हाथ एक दूसरे का अतिशय सुख के सागर में बहें।
मुँदें पलक, केवल देखें उर में, सुने सब कथा परिमल सुर में
जो चाहें, कहें वे कहें।
वहाँ एक दृष्टि से अशेष देख रहा है जग को निर्भय।
दोनों ही उसकी दृढ़ लहरें सहें।[२२५]

" दान प्रथम हृदय को था ग्रहण किया हृदय ने "[२२६] और कोई भी नारी " बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु "[२२७] की नायिका जो गाँव में पूछे जाने के कारण नाव घाट पर न लगाने की प्रार्थना करती है। उसका घाट पर जल में तैर कर नहाना और एक हँसी में बहुत कुछ भंगिमाओं की उन्मुक्त अभिव्यक्ति साथ ही " मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा। "[२२८] कोई भी नहीं साथ[२२९] " उमड़ करती हो प्रेमालाप "[२३०] छायावादी युग के मानव में व्यक्ति के मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति का द्योतक है। जूही की कली में भी " नायक ने चूमे कपोल "[२३१]

---

२२५. अनामिका, पृ० ७७
२२६. ,, पृ० ७७
२२७. अपरा, पृ० १८५
२२८. ,, पृ० ५६
२२९. ,, पृ० १८५
२३० ,, पृ० १०५
२३१. ,, पृ० १५
२३२. ,, पृ० ४५

और राम की शक्ति पूजा, विदेह उपवन में हुई सीता से प्रथम दर्शन की अभिव्यक्ति कुंठा रहित मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति दर्शनीय है —

विदेह का — प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन -
नयनों का--नयनों से गोपन--प्रिय सम्भाषण--
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान- पतन -
काँपते हुए किसलय— फरते पराग-समुदाय—
गाते खग नव— जीवन-परिचय--तरु मलय-वलय —
ज्योति : प्रपात स्वर्गीय --ज्ञात छवि प्रथम स्वीय —[232]
जानकी नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।"

राम का सीता दर्शन और उस प्रथम दर्शन में हुई विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की सूक्ष्मता निराला द्वारा स्वस्थ अभिव्यक्ति के साथ व्यक्त हुई है ।

छायावादी कवियों की दृष्टि में प्रेम मानवीय मनोभावों से ही संबद्ध न था, इस विषय में" सब जीवों पर उसकी एक दृष्टि तृण-तृण पर उसकी सुधा वृष्टि[233]" ही प्रेम के विस्तार का प्रदर्शन करती है । इसमें व्यक्ति का जाति-धर्म आदि बाधक नहीं होते कदाचित इसी धारणा से प्रेरित होकर गद्य साहित्य में कनक (वेश्या)-राजकुमार ,[234] मुसलमानिन श्री पुष्पक कुमारी -, सुकुल[235] का अन्तर्जातीय विवाह और महाराज शिवस्वरूप का यमुना से एकांगी प्रेम जाति बंधन नहीं देखता। वही नये पत्ते नामक काव्य संग्रह में मैं कहारिन पर मरता हूँ किंि उक्ति में देखा जा सकता है ।

---

२३२. अपरा, पृ० ४५

२३३. तुलसीदास, पृ० ३१

२३४. अप्सरा, पृ० २३१

२३५. देवी (सुकुल की बीबी) , पृ० ४७

महादेवी के काव्य साहित्य में मुक्त प्रेम सम्बन्धी धारणा का विस्तार देखा जा सकता है। कतिपय आलोचकों ने महादेवी की प्रणयानुभूति को नितान्त अलौकिक पृष्ठभूमि से संबंधित किया है। चाहे वह प्रेम मात्र प्रणय सम्बन्धी धारणा से हो या आत्म समर्पण से। महादेवी की धारणा है कि "अलौकिक आत्मसमर्पण को समझने के लिए लौकिक का सहारा लेना होगा।"[२३७] ..... क्योंकि प्रेम में किसी उच्चतम आदर्श, भव्यतम प्रेम सौन्दर्य का पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है।"[२३८] इसका कारण यह है कि "रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमें हृदय की सीमा, एक आत्मीयता में अपनी ही अभिव्यक्ति चाहती है और हृदय के अनेक रागात्मक सम्बन्धों में माधुर्यतामूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुंचा सकता है.... माधुर्यमात्र मूलक प्रेम में आधार और आधेय का तादात्म्य अपेक्षित है और यह तादात्म्य उपासक ही सहन कर सकता है, उपास्य नहीं।[२३९] कदाचित महादेवी की दृष्टि में आराध्य से अधिक आराधक की महत्ता का प्रतिपादन है और उसके मूल की प्रवृत्ति है आराधक की वह साधना जिसके कठिन माध्यम से होकर वह अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।

जिस नये रहस्यवाद की[२४०] चर्चा यामा की भूमिका में की गई उसमें भी लौकिक प्रेम की तीव्रता को उधार लेने[२४१] की बात का समर्थन किया गया है। कदाचित यही कारण है कि लौकिक प्रेम की मुक्त अभिव्यक्ति ही अपने नाना रूप विधानों में रहस्यात्मक आवरणों के भीतर से प्रकट हो सकी।

"चाहता है यह पागल प्यार, अनोखा एक नया संसार।"[२४२]

घायल मन लेकर सो जाती मेघों में तारों की प्यास"।[२४३]

---

२३७. दीपशिखा, पृ० २६

२३८. ,, पृ० २६

२३९. ,, पृ० ३०

२४०. यामा, भूमिका, पृ० ८

२४१. यामा, भूमिका, पृ० ८

२४२. यामा, पृ० १४

२४३. ,, १४

किसी जीवन की मीठी याद..... मचलते उद्गारों से खेल" [२४४]

" किलनी रातों की मैंने" [२४५]

अन्तरतम की छाया समेट , मैं तुझमें मिट जाऊं उदार ।

फिर एक बार बस एक बार ।। [२४६]

और –

" उच्छ्वासों की छाया में, पीड़ा के आलिंगन में,

निश्वासों के रोदन में, इच्छाओं के चुम्बन में" [२४७]

सीख कर मुस्कानों की बान, कहाँ से आये हो कोमल प्राण । [२४८]

जो तुम आ जाते एक बार [२४९]

और – तुम्हें बाँध पाती सपने में, तो चिर जीवन प्यास बुझा [२५०]

के साथ अन्तर की पीड़ा " कौन तुम मेरे हृदय में " [२५१] की उन्मुक्त प्रेममय अभिव्यक्ति को उन्मुक्त अभिव्यक्ति मिली पर जिस पर शैलीगत रहस्यवाद वाह्यावस्त्र सा प्रतीत होता है ।

रामकुमार जी ने अपने काव्य साहित्य में इस विषय पर प्रकाश नहीं डाला पर उनके गद्य साहित्य से इस बात का पता चलता है कि –

साधना पक्ष में धर्म है ।" [२५२]

मैं विषयगत गहराई व्यक्त

साथ मिलकर जीवन का चित्र

र हो जाता है । इच्छा ऐसे

यामा, पृ० १३२

,, पृ० १३५

~~,, पृ०~~ चारुमित्रा, पृ० १५५

चारुमित्रा, पृ० १६१

,, पृ० १६१

अ

क

ली

ह

२

२

२

२

२

२

व्यूह में घूमकर बढ़ती है कि उसका नाम प्रेम हो जाता है। जहाँ दो निर्विकार गुण शरीर के निकट स्पर्श की मदकता में फूल की सुगंधि पर बैठ कर कोकिल के कंठ में गा उठते हैं और तब शरीर के प्रत्येक रोम की नोक पर सुख या दु:ख ध्रुवलोक की भांति स्थिर हो जाता है। और तब मुस्कान की रेखा में वसंत मचलने लगता है और कपोलों के हलके उभार की सीमा पर आँसू की रुठी हुई एक विकल बूँद में विषाद एक प्रलयंकरी वर्षा की सृष्टि कर देता है।" डॉ० वर्मा प्रेम की भावना एक आदर्शात्मक आवरण मे व्याख्यायित करते हैं कि प्रेम की भावना ऐसी होनी चाहिए कि उससे जीवन का अंत जीवन के आदि से अच्छा बन जाय।" [२५३] तो लगता है वे मुक्त प्रेम को किसी कृत्रिम वर्गीकरण में ढालने का प्रयत्न करते हैं।" क्योंकि जिस उन्मुक्त " प्रेम वर्षा इन्द्रलोक तक फैली हुई (हो), पुरंदर ने .... प्रलय क्रीड़ा के सिर नन्दन-वन के कुंजों में पुष्पों को चिरकाल खिले रहने की शिक्षा दी हो (साथ ही) घृताची और तिलोत्तमा ने अपने दृष्टि पथ पर अनंग को चलने की आज्ञा दी हो। यह इस बात का प्रमाण है कि डॉ० वर्मा की दृष्टि इस बात का समर्थन करती है कि सृष्टि के विकास और प्रसार में प्रेम ने उन्मुक्तता सर्वत्र व्याप्त है।

अत:" नैतिक बन्धनों की शिथिलता, स्वच्छन्दता के प्रति अत्यधिक आग्रह, लौकिक आवरण की प्रवृत्ति तथा लाक्षणिकता व ध्वन्यात्मकता आदि ने काव्य में स्थूल वासनात्मक उद्गारों को भी नवीन साज-सज्जा में आने का अच्छा अवसर दिया। यद्यपि शुद्ध प्रेम तथा काम में स्पष्ट अन्तर है। [२५५] यह उसके विषय और अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से वर्गीकृत किया जा सकता है पर प्रेम की इस अभिव्यक्ति में वाह्य आवरण की दृष्टि से इनमें पर्याप्त मात्रा में समानता भी मिलती है। साथ ही उन्मुक्त प्रेम के इस वातावरण में छायावादी कवि ऐन्द्रियकता बचा नहीं पाये हैं। कदाचित ऐन्द्रिकता से स्पष्ट रूप से बचना अपने प्रेम की अभिव्यक्ति में उन्हें मंजूर भी न था। यही कारण है कि कुंठित वासनात्मक उद्गारों को भी अपनी

---

२५३. वारुमित्रा, (अंधकार), पृ० १६१

२५४. ,, ,, ,, २५५. पल्लव भूमिका, पृ०

अभिव्यक्ति के निमित्त एक छायावादी मार्ग मिल गया । उनकी दृष्टि में व्यक्ति के मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति व्यक्ति और समाज दोनों के दृष्टिकोण से एक स्वस्थ मनोवृत्ति कही जा सकती है । उनका विचार था कि प्रेम की इस उदात्त भूमिका में ही व्यक्ति अपनी उदात्त भूमिका से उठता है अन्यथा व्यक्ति की मुक्त प्रेम से कुंठित प्रवृत्ति ही समाज में नाना प्रकार की कुरीतियाँ और अनैतिक प्रवृत्तियों का जन्म देती है जो किन्हीं दृष्टियों से पूरे समाज के लिए घातक होती है और व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में बाधक हो जाती हैं ।

दार्शनिक भूमिका में स्वातंत्र्य की भावना और व्यक्ति

व्यक्ति की दार्शनिक भूमिका के अनुसार स्वतंत्रता मानवीय मूल्यों का प्रतीक है क्योंकि जब कभी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बात उठती है उस समय स्वतंत्रता को " जन्मसिद्ध अधिकारों में के के रूप ही ग्रहण किया जाता है । यह सही है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को वैज्ञानिक कार्य कारण सम्बन्ध की दृष्टि से नहीं विश्लेषित किया जा सकता पर इसे इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रकृति ने भी व्यक्ति को किन्हीं अंशों में यह स्वतंत्रता दे रक्खी है कि वह अपना विकास कर सके । व्यक्ति के इस विकास का सम्बन्ध छायावादी कवियों की दृष्टि में कर्म की स्वतंत्रता है । [२५६] जीवन की स्वतंत्रता है, अधिकार और कर्तव्य की स्वतंत्रता है जिसको पालन करता हुआ व्यक्ति एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकता है जिसमें व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व का विकास कुंठित न हो सके ।

---

२५६. हम इन सत्यों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी जन जन्मत: एक समान हैं, सबको उनके सिरजनहार ने कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किए हैं जिन्हें छीना नहीं जा सकता और इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता और अपनी खुशहाली के लिए प्रयत्नशील रहने के अधिकार भी शामिल हैं । — अमरीकी इतिहास की रूपरेखा, पृ० २६.

छायावादी कवि पंत और निराला कालान्तर में मार्क्सवाद से भी प्रभावित हैं। मार्क्सवादी दर्शन में मनुष्य की स्वतंत्रता का माप यह है कि वह किस हद तक अपने वातावरण को अपने साध्यों की प्राप्ति में लगा सकता है। यह स्वतंत्रता का स्वीकारात्मक पक्ष पुष्ट करता है,.... यह स्वतंत्रता केवल नियतिवाद से ही स्वतंत्रता नहीं है वरन् प्रभावपूर्ण शक्ति के द्वारा विशिष्ट कार्य सम्पन्न करने की स्वतंत्रता है।" २५७

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा पर भारतीय दर्शन का प्रभाव हो या पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव पर सभी स्वतंत्रता का अर्थ व्यक्ति की दार्शनिक भूमिका में कर्म और मानवीय वृत्तियों के साथ अपनी स्वाभाविक अवस्था में जीवन व्यतीत करने के अर्थ में ही लेते हैं पर ऐसी अवस्था में भी इनके साहित्य से —

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।। २५८

"हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रह कर (अपनी) माया से प्राणिमात्र को) ऐसे) घुमा रहा है, मानो सभी (किसी) यन्त्र पर चढ़ाये गये हों। (इसमें) कर्मपराधीनता का गूढ़ तत्व बतलाया गया है।.... यद्यपि आत्मा स्वयं स्वतंत्र है, तथापि जगत् के अर्थात् प्रकृति के व्यवहार स्वयं स्वतंत्र है, तथापि जगत् के अर्थात् प्रकृति के व्यवहार को देखने से मालूम होता है कि उस कर्म के चक्र पर आत्मा का कुछ भी अधिकार नहीं है, कि जो अनादि काल से चल रहा है। जिनकी हम इच्छा करते, बल्कि जो हमारी इच्छा के विपरीत भी हैं, ऐसी सैकड़ों हजारों बातें संसार में हुआ करती हैं तथा उनके व्यापार के परिणाम भी हम पर होते रहते हैं।

---

२५७. मार्क्सवाद और मूल दार्शनिक प्रश्न, पृ० ६६
२५८. गीता, १८।६१

उक्त व्यापारों का ही कुछ भाग हमें करना पड़ता है। (यदि इन्कार करते हैं तो बनता नहीं है) ऐसे अवसर पर ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धि को निर्मल रखकर और सुख या दु:ख को एक-सा समझ कर सब कर्म किया करते हैं, किन्तु मूर्ख मनुष्य उनके फन्दे में फंस जाता है। इन दोनों के आचरण में यही महत्वपूर्ण भेद है।" २५६

पर दार्शनिक दृष्टिकोण की भूमिका में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्राय: जितने भी मतवादों के प्रभाव हैं उन्हें अलग अलग विश्लेषित करके ही प्रत्येक कवि के स्वतंत्रता विषयक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करना अभीष्ट होगा।

प्रसाद जी के दृष्टिकोण से उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि में यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विचार करें तो उनके साहित्य में नियतिवाद २६० का स्वर प्रखर मिलेगा। नियतिवाद में व्यक्ति को कर्म करने की स्वतंत्रता नहीं रहती नियति ही संसार की शासिका है। शैव दर्शन में यह शिव की शक्ति कही गई है और इसके अन्तर्गत शिव के वामदेव, शर्व, भव, उद्भव, वज्र-देह, प्रभु, धाता, क्रम, विक्रम और सुप्रभेद आदि दस रूपों की भी कल्पना की गई है। ये नियति के कार्य का संचालन करते हैं।

काव्य, २६१ नाटक, २६२ कहानी, २६३ उपन्यास सभी २६४ में नियति का समर्थन इस बात की ओर संकेत करता है कि प्रसाद का दृष्टि-कोण किन्हीं अर्थों में व्यक्ति की स्वतंत्रता को पूर्णत: स्वतंत्र अर्थ में नहीं

---

२५६. गीता रहस्य, पृ० ८६८ (बालगंगाधर तिलक)

२६० . प्रत्यभिज्ञ दर्शन में ३६ तत्व माने जाते हैं नियति भी इनमें से एक है। यह संसार का नियमन करने वाली शिव शक्ति है। षट् कंचुकों में इसका भी स्थान है।

२६१. नाचती है नियति नटी सी, कन्दुक क्रीड़ा सी करती।
इस व्यथित विश्व के आंगन में, अपना अतृप्त मन भरती। आँसू,५१

(अगले पृष्ठ पर देखें)

ग्रहण करता बल्कि " उमा कीट मरकट की नाईं , सबै नचावत राम गोसाईं के अर्थगत एवं परिपेक्ष में ही ग्रहण करता है । पर यह सब करना भी प्रसाद के व्यक्ति की कर्मगत स्वतंत्रता को नियतिवाद से सम्बन्धित करके भी उसे भाग्यवाद से अलग रखता है क्योंकि भाग्यवादी अकर्मण्य होकर सब कुछ भाग्य पर छोड़ कर्म पर विश्वास खो बैठता है । जबकि नियतिवादी कर्म में लीन रहता है । कर्म में उसकी आस्था रहती है और वह यह विश्वास रखता है ।

पिछले पृष्ठ का शेष--

संकेत नियति को पाकर , तम से जीवन उलझाएं । पृ० ६०

...

निर्मोह काल के काले पट पर कुछ अस्फुट लेखा । पृ० ४५

इस नियति नटी में अति भीषण, अभिनय की छाया नाच रही

......

कातरता से भरी निराशा देख नियति पथ बनी वहीं । कामायनी, १

......

उस एकान्त नियति शासन से चले विवश धीरे धीरे ।। आशा, पृ०३४

......

मनु श्रद्धा का मेल नियति प्रदर्शित करता है । साथ ही सारस्वत प्रदेश में नियति चक्र (१६३) , नियति प्रेरणा (पृ०१६५), नियति विकर्षणामयी(पृ० २००) और मूर्छित प्रजापति मनु से श्रद्धा का संपर्क भी नियतिवाद का ही द्योतक है ।

कौन उठा सकता है धुंधला, पट भविष्य का जीवन में-प्रेमपथिक नियति ने किशोरी और चमेली ऐसे सम्पन्न व्यक्तियों को विरागी बनाया ।

— प्रेम पथिक

कानन कुसुम , पृ० ११६, चित्राधार, पृ० १४२, लहर, पृ० ६७

२६२. अजातशत्रु १--४, ३--७ एक घूंट--मनुष्य, कामना--२-१ , चन्द्रगुप्त--पृ० ४-५, जनमेजय का नागयज्ञ ३-१, २-१, ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३३, ६६, स्कन्दगुप्त--१-४

२६३. कहानी (आंधी) , पृ० २१ , (मधुआ), पृ० ४७

२६४. इरावती, पृ० ७३,८७, तितली, २--१

कि उसे कर्म की स्वतंत्रता प्राप्त है । पर फलाशा की ओर उसका ध्यान नहीं रहता क्योंकि उसके विषय में वह स्वतंत्र नहीं रहता । फल को नियतिके हाथों में मानता है । अत: प्रसाद जी व्यक्ति की स्वतंत्रता को दार्शनिक दृष्टिकोण से उसे कर्म करने में स्वतंत्र मानते हैं पर जैसा उन्होंने अजातशत्रु के जीवक, मागधी, करुणालय के रोहित शुन:शेफ, कामना का विलास, जनमेजय के नागयज्ञ के जरत्कारु, जनमेजय, व्यास, उत्तंक, सरमा, माणवक, वेद, चन्द्रगुप्त मौर्य में चन्द्रगुप्त चाणक्य शकटार, सिंहरण, ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री में शांतिदेव, देवगुप्त, मधुकर, कमला, विशाख, स्कन्दगुप्तमें अनन्तदेवी, विजया, चक्रपालित, पिंगल, प्रपंच बुद्धि कमला, मातृगुप्त, के संवादों द्वारा जो विचार व्यक्त किये हैं उससे भी नियतिवाद की ही पुष्टि होती है ।

नियतिवाद गीता की भांति ही फलाशा को त्याग कर कर्म में लीन होने की प्रेरणा देता है । ऐसी स्थिति में प्रसाद के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता कर्म में है फल में नहीं ।

पंत के साहित्य को व्यक्ति की स्वतंत्रता के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो उन पर पड़ने वाले अन्य प्रभावों की ओर भी दृष्टिपात करना पड़ेगा पल्लव काल में पंत परमहंस देव तथा स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित दीख पड़ते हैं और कालान्तर में गांधीवाद से । पर सन् ३७ से सन् ४० तक उन पर मार्क्स-वाद का प्रभाव दीख पड़ता है जिसमें युगवाणी , रूपाभ, ग्राम्या का प्रकाशन हुआ । उपर्युक्त प्रभावों को पंत ने स्वयं ही चिदंबरा (पृ० १५) की भूमिका में स्वीकार किया है ।

पंत की प्रारंभिक रचनाओं में नियतिवाद का प्रभाव मिलता है जिसमें उसे `निर्दोष और अकुलसे'[२६५] की संज्ञा का संबोधन दिया गया।इसे व्यक्ति की कर्म की स्वतंत्रता की दृष्टि से` भावी पत्नी के प्रति नौका विहार,[२६६] युग उपकरण,[२६७] नव संस्कृति[२६८] में देखा जा सकता है जिससे

---

२६५ पल्लविनी (नौका विहार) पृ० १८७
२६६ चिदंबरा, पृ० ३८
२६७ ,, पृ० ३८

पता चलता है पंत व्यक्ति की स्वतंत्रता के पोषक हैं। कवि ने व्यक्ति के कर्म की स्वतंत्रता अपेक्षित की है जिससे 'जीवन' की 'रजत-धूलि उसके कर्म सिक्त जीवन के माध्यम से सुरक्षित रह सके। [२६९] कर्म का मन में तो पंत ने व्यक्ति के स्वतंत्रता विषयक कर्म का आख्यान ही कर दिया कि —

' प्रथम कर्म करता जग दर्शन
पीछे रे सिद्धान्त मन वचन । [२७०]

पर कर्म की यह व्याख्या नियतिवाद के विपरीत नहीं है।

पंत की विचारधारा का दूसरा रूप वहाँ देखने को मिलता है जहाँ वह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से व्यक्ति के स्वतंत्रता की व्याख्या करते हैं। यहाँ न उनका नियतिवाद दीख पड़ता है और न भाग्यवाद इसे मार्क्स के प्रति व्यक्ति के स्वतंत्रता विषयक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण में देखा जा सकता है —

दंतकथा वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
सम्राटों की विजय लालसा, ललन भृकुटि विलास,
दैव नियति का निर्मम क्रीड़ा चक्र न वह उच्छृंखल--
धर्मान्धता, नीति, संस्कृति का ही न मात्र समर स्थल।
साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुन्दुभि से घोषित-
प्रकृति विजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित।
विकसित हो, बदले जब-जब जीवनोपाय के साधन,
युगबदले, शासन बदले, कर गत सभ्यता समापन।
सामाजिक ~~इतिहास~~ संबंध बने नव, अर्थ भित्ति कर नूतन,
नव विचार, नव रीति नीति, नव निगम भाव, नव दर्शन।

साक्षी है इतिहास, आज होने को पुन: युगान्तर,
श्रमिकों का अब शासन होगा उत्पादन यंत्रों पर।
वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सब साधन,
पूरित होंगे जन के भव-जीवन के निखिल प्रयोजन।

---

२६९. चिदंबरा, पृ० ४३   २७०. चिदंबरा, पृ० ५३

दिग दिगन्त में व्याप्त निखिल युग युग का चिर गौरव हर,
जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर..... २७१

व्यक्ति की स्वतंत्रता की धारणा से प्रेरित होकर ही पंत ने उपर्युक्त पंक्तियों में मार्क्सवाद को स्वीकार किया। जिसमें नियतिवाद कर्मवाद और भाग्यवाद पीछे छूट जाते हैं। पंत की यही विचार-धारा उनके भूत दर्शन, साम्राज्यवाद, श्रमजीवी आदि रचनाओं में भी परिलक्षित होता है।

पर कालान्तर में पंत की विचार धारा व्यक्ति की स्वतंत्रता की दृष्टि से मार्क्सवाद तक ही सीमित नहीं रहती वरन् यह 'नव मानवता का संदेश सुनाती हुई स्वाधीन देश के नागरिकों में व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना को जगाने का प्रयत्न करती है ताकि व्यक्ति की स्वतंत्रता व्यक्तित्व के विकास को कुंठित न कर उसके पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सके।

निराला की रचनाओं में व्यक्ति स्वातंत्र विषयक धारणा में जितना परस्पर विरोधी रूप मिलता है उतना किसी छायावादी कवि में नहीं। एक ओर वे नियतिवाद की की धारणा से ओत-प्रोत हैं जिसमें 'मैं अकेला देखता हूं आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला' २७२ और 'आंधे जीवों की बन माया' २७३ खहर का अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज बन, २७४ अपनी स्थिति का सारगर्भित संकेत करता है। साथ ही तुम्हें खोजता था मैं पा नहीं सका' २७५ और अध्यात्म फल में कहीं मारे पड़ी दिल हिल गया २७६ में

---

२७१. चिदंबरा, पृ० ४८
२७२. अपरा, पृ० ५४
२७३. ,, पृ० १५४
२७४. अनामिका, पृ० २६
२७५. ,, पृ० १४७
२७६. परिमल, पृ० १००

व्यक्ति की स्वतंत्रता को कर्म करने तक ही सीमित करता है क्योंकि में का फल व्यक्ति के हाथ में नहीं ।

दूसरी ओर कालान्तर में निराला ने बिल्लेसुर बकरिहा में बिल्लेसुर का जीवन-दर्शन कर्म फल के पक्ष को मार्क्सवाद से संबंधित किया । कदाचित इसका कारण है कि स्वयं निराला के शब्दों में 'बिल्लेसुर बकरिहा' प्रगतिशील साहित्य का नमूना है ।[२७७] बिल्लेसुर के माध्यम से निराला ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अपने श्रम से बिल्लेसुर एक गरीब से अमीर कैसे बन गया । यहाँ निराला का नियतिवाद नहीं दीख पड़ता बल्कि दार्शनिक दृष्टिकोण से वे व्यक्ति के कर्म की स्वतंत्रता को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित दीख पड़ते हैं । यहाँ यह परिलक्षित होता है कि व्यक्ति को मार्क्सवादी विचार से इसके आदर्श परिमिति में जीवन की समृद्धि और सुरक्षा मानवीय सबन्धों में न्याय और हेतुवादी आधार और इन्सान की सब सर्जनात्मक शक्तियों का विकास आ जाता है ।[२७८] वहाँ बिल्लेसुर की स्वतंत्रता का अर्थ अपने आप अपने को गढ़ने में है । 'क्योंकि जब हम स्वतंत्रता की बात सोचते हैं तो हम अपने को अधिकतर विचारों की स्वतंत्रता, प्रैस की स्वतंत्रता और धार्मिक मतों की स्वतंत्रता तक सीमित कर देते हैं । जब स्वतंत्रता की सीमाएं हमें दूसरे आदमियों के विरोध के कारण विकसित जान पड़ती हैं । यह एक बहुत बड़ी गलती है । भौतिक प्रकृति की विशाल आवर्तें, इसकी लौह विधियाँ, मानव की वेदना के दृश्य का निर्माण करती हैं —जन्म और मृत्यु, ताप, शीत, भूख, बीमारी और ध्येयों की सामान्यअव्यवहारिकता, सब मानव की आत्मा को बन्दी करने के लिए अपना हिस्सा लेती हैं ।..... स्वतंत्रता का सार ध्येयों की व्यावहारिकता ही है । मानव-समाज को सबसे अधिक कष्ट उसके फैले हुए ध्येयों की अपूर्णता और असिद्धि से होता है । सच तो यह है कि कार्यों की स्वतंत्रता हमारी प्रारंभिक आवश्यकता है ।'[२७९]

---

२७७. बिल्लेसुर बकरिहा, भूमिका ।

२७८. मार्क्सवाद और मूल दार्शनिक प्रश्न, पृ० १८२, ओमप्रकाश आर्य

२७९. एडवेन्चर्स आफ आइडियाज, अल्फ्रेड नोर्थ व्हाइटहेड, पृ० ६६

जिसमें, नियतिवाद की विचारधारा को प्रश्रय नहीं मिलता क्योंकि वह नियतिवाद को अराजकता मानता है जिसे बिल्लेसुर के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया। नये-पत्ते की कुछ कविताओं में भी यही व्यक्ति-स्वातंत्र्य की व्याख्या प्रस्तुत की गई है जिसे डिप्टी साहब आये,[८०] महँगू मंहगा रहा।[८१] झींगुर डटकर बोला।[८२] में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

दासता पुरुष की हो या नारी की निराला प्रत्येक व्यक्ति को दासता से मुक्त रखना चाहते थे। ताकि वे स्वतंत्र रूप से अपना विकास कर सकें। उनकी धारणा थी कि जिस तरह स्त्रियों की गिरी दशा से उन्हें विशेष सहानुभूति थी उसी तरह गुलामों के प्रति भी। हम स्वयं गुलाम हैं उसी तरह अपनी स्त्रियों को भी गुलाम बना रक्खा है, बल्कि उन्हें दासों की दासियाँ कर रक्खा है। इस महादैन्य से उन्हें शीघ्र मुक्ति देनी चाहिए। तभी हमारी दासता की बेड़ियाँ कट सकती हैं। जो जीवन बाहरी स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर सकता, वह मुक्ति जैसी सार्वभौमिक स्वतंत्रता कब प्राप्त कर सकता है? .... उन्हें शिक्षा की ज्योति से निर्मल कर देना ही है, जिससे देश की तमाम कामनाओं की सिद्धि होगी, और स्वतंत्र सुखी जीवन से तृप्त होकर आत्मिक मुक्ति में लगेगा।[८३]

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जहाँ निराला मुक्ति की बात करते हैं वहीं वह 'हारता रहा मैं स्वार्थ समर से निराश' 'मुझ भाग्यहीन' की दुख ही जीवन की कथा रही के कारण कर्म फल पर भी वज्रपात होने के कारण हताश हो ईश्वर के शरण चला जाता है। ऐसी अवस्था में वह राम के हुए तो बने काम, विपदाहरण हार हरि हे करो पार, प्रणव से जो कुछ चराचर तुम्ही सार,[८६] मेरी सेवा ग्रहण करो,[८७] और दुख हर

---

८०. नये पत्ते, पृ० ८७
८१. नये पत्ते, पृ० ६६
८२. ,, पृ० ५७
८३. प्रबंध प्रतिमा, पृ० १३५
८४. अपरा, पृ० १६४
८५. आराधना, पृ० २०
८६. ,, पृ० २१
८७. ,, पृ० २४

दे, जल-शीतल सर दो । वरदे । पावन उर को दर दे ।"[२८८] के रूप में आत्म समर्पण की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि उसके व्यक्ति का स्वतंत्र दृष्टिकोण कर्म, फल इत्यादि सब कुछ भाग्य से प्रभावित दीख पड़ता है ।

अत: निराला दर्शन के विकास की क्रमिक रेखा स्पष्ट दीख पड़ती है । वह पहले कर्म को महत्ता देता है जहाँ नियतिवाद की प्रधानता है । कालान्तर में जब यह कर्म और फल से सम्बन्धित होता है तो वह मार्क्सवाद की ओर अग्रसर होता है । पर अंत में जब वह व्यक्ति स्वातंत्र्य की सीमा से खूब अच्छी तरह परिचित हो जाता है तो उसे लगता है कि अब तक का संघर्ष गत सत्य का फल व्यर्थ था । यही वह भाग्यवादी हो जाता है । यहाँ निराला के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है और वह भाग्य के हाथ का खिलौना मात्र रह जाता है ।

महादेवी व्यक्ति की स्वतंत्रता को समाजगत दृष्टिकोण से अधिक देखती हैं पर यह बात केवल गद्य के लिए सत्य है । पद्य में इनमें भी नियतिवाद का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है ।

" मैं न यह पथ जानती री और अलि विरह के पंथ में मैं तोअन इति अथ मानती री[२८९] तथा मैं क्यों पूछूं यह विरह निशा कितनी बीती क्या शेष रही ? [२९०] महादेवी के व्यक्ति की स्वातंत्रता विषयक नियतिवाद पर प्रकाश डालता है । क्योंकि उसे स्वयं ही अपना आदि, अन्त, गन्तव्य या गतिविधि का पता नहीं । व्यथा की घड़ियाँ कितनी बीतीं इसे पूछने से लाभ ही क्या ? यदि गन्तव्य या लक्ष्य को पाना होगा तो वह स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा । पर यहाँ नियतिवाद का अर्थ प्रसाद के नियतिवाद से भिन्न कोई अपना अलग अर्थ नहीं रखता । पर इतना अवश्य है कि यह स्थिति गद्य में नहीं की जा सकती ।

---

२८८. आराधना, पृ० २८

२८९. दीपशिखा, , पृ० ६६

२९०. ,, पृ०११४

महादेवी के गद्य में व्यक्ति की स्वतंत्रता अपनी जन्मजात अधिकार की मांग करती है। इनके लेख, रेखाचित्र, या संस्मरण साहित्य में पद्य साहित्य के नियतिवाद के विपरीत समाज में व्यक्ति के स्वतंत्रता की विवशता पर एक रोष दीख पड़ता है क्योंकि यह स्वतंत्रता उनकी दृष्टि में आधुनिक समस्याओं के दृष्टिकोण से पुरुष की उतनी नहीं है जितनी नारी की। पर जब उसके मूल कारण पर विचार करते हैं है बौद्धिक प्रक्रिया में इनका नियतिवाद में विश्वास उठ-सा गया लगता है। वह समाज के यथार्थ मिश्रित ठो धरातल पर स्त्री के लिए ऐसे सामाजिक अधिकारों की मांग करती है जो किसी दार्शनिक मतवाद से सम्मत हो या न हो पर आधुनिक परिस्थितियों में मानवोचित अवश्य है। उनकी दृष्टि समाज में स्त्री--द्वारा प्राप्त अधिकार--उसकी वैयक्तिक उपेक्षा साथ ही वैचारिक दृष्टिकोण से आज के बौद्धिक परिपेक्ष में असंतुलित सामाजिक व्यवस्था का द्योतक है।

'बिबिया' [२६१] जिसे समाज ने वैयक्तिक दृष्टिकोण से जीने की स्वतंत्रता नहीं प्रदान की गई थी। भक्तिन, [२६२] भी समाज में ऐसी ही नारी की प्रतीक है जिसे समाज के स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकारों की कौन कहे जीवन सम्बन्धी अधिकार भी सुविधा पूर्वक नहीं मिले। 'विस्मय' विजड़ित चाँदनी का मार खाते-- मन से ही नहीं, शरीर से भी बेसुध हो जाना चिन्दा[२६३] पर नयी अम्मा के अत्याचार की कहानी, [२६४] विचारी बिट्टो को ५४ वर्ष वाला पति [२६५] यदि सामाजिक कुरीतियों की नियति ही है तो महादेवी की आस्था एक बार सारी नियतिवाद को भी अस्वीकार कर देना चाहती है। लगता है वह प्रत्येक प्राणी को कर्म ही नहीं उसके फल सम्बन्धी अधिकार भी देना चाहती है। पर असफल विद्रोह की तरह स्त्रियों के स्वतंत्रता मात्र खीझ की तरह अभिव्यक्ति होकर रह जाती है। वे स्वतंत्रता के पाश्चात्य विचारधारा को ग्रहण करते-करते पुनः नियति-

---

२६१. स्मृति की रेखाएं, पृ० १०६

२६२. ,, पृ० ३

२६३. अतीत के चलचित्र, पृ० ३३

वाद पर लौट आती है क्योंकि हर रेखाचित्र , हर संस्मरण के अन्त में नियतिवाद की विवशता दीख पड़ती है जैसे — तब न जाने किस अनिष्ट सम्भावना से "[२९६] पूर्व कहे गये धर्माचार्यों द्वारा उसे " असत्य प्रमाणित कर कुम्भीपाक में विहार करने की इच्छा"[२९७] भले ही न हो पर" नियति के व्यंग से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने"[२९८] के साथ व्यक्ति को यदि" आज भी अभिजात्य का गर्व"[२९९] हो और आज भी समाज द्वारा मिले भलाई-बुराई के प्रमाण पत्रों पर विश्वास हो ;[३००] उसे व्यक्ति स्वतंत्रता में नियति के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ।

पर रामकुमार वर्मा न नियतिवाद से प्रभावित हैं न मार्क्सवाद से । उनके दृष्टिकोण से व्यक्ति की "प्रवृत्ति में ये चार बातें मुख्य हैं — अतीत के प्रति आस्था, अच्छी लगनेवाली वस्तुओं का अनुकरण, आत्म-सन्तोष से आनन्द की अभिव्यक्ति और उस अभिव्यक्ति में कौतूहल ।[३०१] इनमें से चारों ही दार्शनिक पृष्ठभूमि में व्यक्ति की स्वतंत्रता सम्बन्धी दृष्टिकोण से संबंधित किये जा सकते हैं क्योंकि डॉ० वर्मा मूलत: कबीर दर्शन से प्रभावित हैं ।

कबीर दर्शन में ब्रह्म-जीव अलग सत्ता नहीं रखते पर दोनों में ही माया द्वारा अन्तर भासित होता है । माया को दूर करने में साधना की आवश्यकता है[३०२] और यही साधना के निमित्त ही व्यक्ति स्वतंत्र है । इस स्वतंत्रता के प्रति उसकी आस्था उपयुक्त चार बातों के कारण ही होती है ।

---

२९६. अतीत के चलचित्र, पृ० ३४
२९७. ,, पृ० ९६
२९८. ,, पृ० १००
२९९. ,, पृ० ८७
३००. ,, पृ० ८७
३०१. दीपदान , पृ० ७
३०२. अनुशीलन , पृ० ७८

पर कतिपय स्थलों में कुछ ऐसी भी विचारधारा मिलती है जैसे -" अब अपना काम पूरा करके चला जाना ही है। [303] " हमारे भाग्य का विधान नहीं है। [304] और अंतत: माया द्वारा " पुरुष और स्त्री दोनों माया से निर्मित होंगे किन्तु उनमें जो मर्यादा रेखा होगी उनमें व्यवस्थित होंगे।" [305] साथ ही प्रजापति द्वारा सृष्टि के निर्माण की सूचना कदाचित व्यक्ति की भाग्यरेखा के ही विश्वास को ईंगित करता है। [306] " उत्सर्ग में आपरेट्स तोड़ देने के कारण मृत्यु के रहस्य का अंतत: उद्घाटन न होना कदाचित अंधकार में ही निर्माण कार्य होगा " की पुष्टि करता है। अत: डॉ० वर्मा कबीर से प्रभावित होने के कारण विद्या और अविद्या माया द्वारा व्यक्ति के धर्म को भी स्वतंत्र नहीं देखते क्योंकि सब कुछ माया द्वारा ही संचालित होता है।

दार्शनिक भूमिका में मोक्ष और व्यक्ति

प्राय: सभी धर्मों में मृत्यु सम्बन्धित कुछ अपनी धारणाएं निश्चित मिलती है जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के बाद से होता है। इस धारणा से यह परिलक्षित होता है कि मृत्यु के अनन्तर जीव की क्या गति होती है। मृत्यु की स्थिति को विभिन्न नामों से संबोधित किया गया जिसे मोक्ष, निर्वाण, लय भी कहते हैं। पर कतिपय ऐसी दार्शनिक मान्यताएं मिलती हैं जो व्यक्ति की मृत्यु के अनन्तर किसी स्थिति की सत्ता को स्वीकार नहीं करतीं। इस विषय में आलोच्य विषय के छायावादी कवियों की मोक्ष विषयक धारणा को प्राय: देखना ही अभीष्ट होगा।

---

३०३. ऋतुराज ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया, पृ० १२८
३०४. मयूरपंख, (शहनाई की शर्त), पृ० २७०
३०५. चारुमित्रा(अधिकार), पृ० १४६
३०६. ,, (उत्सर्ग) पृ० ६३

प्रसाद साहित्य में मोक्ष संबंधी धारणा पर शैवागम का प्रभाव दीख पड़ता है। कामायनी के अन्त में मनु और श्रद्धा की परिणति —

> इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
> दिव्य अनाहत मिल-लय-थे पर निनाद में [३०७]

के रूप में दिखाया है। साथ ही जीवन में समन्वय तथा समरसता की ओर संकेत किया है। यह संकेत कामायनी के अंतिम चार सर्ग निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द में प्रतिपादित शैव दर्शन के प्रभाव के रूप में दीख पड़ता है।" शैव सिद्धान्त में ज्ञान अथवा कर्म को मुक्ति का साधन न मानकर `क्रिया` को मुक्ति का साधन बताया गया है। मल को दूर करने का साधन अनुगृह शक्ति है। अनुर्गह शक्ति द्वारा जीव संसार के बन्धन से मुक्त हो सकता है। [३०८] कामायनी में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि व्यक्ति अपने ज्ञान और क्रिया से भिन्न होने से अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता। वह ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की " [३०९] के अनन्तर यह लक्ष्य तभी प्राप्त होता है जब" इच्छा क्रिया ज्ञान तीनों का लय हो। तभी दिव्य अनाहत निनाद में तन्मय [३१०] की स्थिति आती है। पर यदि मोक्ष को शैवागम की दृष्टि से देखें तो व्यक्ति या साधक के ऊर्ध्वगामी विकास की अवस्था के सम्बन्ध में उसमें ` पृथिवीतत्व` से लेकर `प्रकृति तत्व` पर्यन्त तो.... सांख्य के समान ही तत्वों का विचार है। यही `प्रकृति` विशुद्ध होकर` मायातत्व` में लीन हो जाती है।` माया` के पांच कंचुक परम शिव के सभी गुणों को संकुचित कर देते हैं। इसलिए`पुरुष-तत्व` में आकर परमशिव की शक्ति संकुचित हो जाती है।

इन तत्वों से परे जब सूक्ष्मतर तत्व में साधक प्रवेश करता है,

---

३०७. कामायनी, पृ० २७३
३०८. सर्वदर्शन संग्रह, पृ० ६ (माधवाचार्य)
३०९. कामायनी, पृ० २७२
३१०. ,, पृ० २७३

तब `पुरुष` अपने को सूक्ष्म प्रपंच, जो स्थूल प्रकृति का सूक्ष्म रूप है, के बराबर का समझने लगता है। इस अवस्था में मैं - यह हूँ, इस प्रकार की प्रतीति उल्लसित होती है। इसमें `मैं` चैतन्य है और `यह` प्रकृति है। यहाँ `मैं` और `यह` दोनों बराबर महत्व के होते हैं। अभी भी द्वैत-भान स्पष्ट है। इसके अनन्तर, वह `पुरुष` सूक्ष्म प्रपंच के साथ तादात्म्य-बोध करने लगता है और `यह = मैं हूँ` ऐसी प्रतीति उसके विमर्शशक्ति में भासित होने लगती है। इस परिस्थिति में `यह` अंश को प्रधानता मिलती है। इस अवस्था को `ईश्वरतत्व` कहते हैं।

धीरे धीरे `यह अंश` `मैं` में लीन हो जाता है और `मैं हूँ` इतनी ही प्रतीति रह जाती है। किन्तु फिर भी द्वैतभाव स्पष्ट है। `मैं` और `हूँ` ये दोनों स्वरूप-विमर्श में भासित होते हैं। इस अवस्थाको `सदाशिव` सत्य कहते हैं।

अब इस हूं को भी दूर करना उचित है। पश्चात् इससे भी सूक्ष्म भूमि में जब साधक प्रवेश करता है तब उसे केवल `अहं` की प्रतीति होने लगती है। इसे शक्ति-तत्व कहते हैं। यही `परम शिव` की `उन्मीलना-वस्था` है। इसी अवस्था में साधक `परमशिव` के स्वरूप को समझ सकता है। यही आत्मा के आनन्दस्वरूप का प्रथम बार भान देता है। यही `शक्ति` और `शक्तिमान` की युगल मूर्ति है। यह अवस्था भी एक प्रकार से `द्वैत` की ही है, किन्तु वस्तुत: कहना कठिन है कि द्वैत है या अद्वैत`। यह `द्वैत` भी है और `अद्वैत` भी है। यह अवस्था अन्त में `परम-शिव` में लीन हो जाती है। यही `शिवतत्व` है।

यहां पहुंचकर जिज्ञासु अपने अस्तित्व को परम शिव में लीन कर देता है, किन्तु परम शिव में लीन होने पर भी कोई तत्व अपने स्वरूप को नष्ट नहीं करता। सभी तत्व `परम शिव` में लीन होकर `चिन्मय` हो जाते हैं। यही मनुष्य-जीवन तथा दर्शन का चरम लक्ष्य है। यहाँ शुद्ध अद्वैत है। चिन्मय `शिवत्व` में सभी `चिन्मय` हो जाते हैं। वस्तुत: शिवत्व के `सामरस्य` की अवस्था तो यही है। अतएव यथार्थ में `अद्वैत` तत्व का ज्ञान यही होता है।

जीवितावस्था में स्थूल शरीर को धारण किए हुए यदि यह ज्ञान होता है तो उसे `जीवन मुक्ति` कहते हैं। इस अवस्था में भी अविचल रूप में उह चित् ही रहता है। संविद्रूपा शक्ति इस अवस्था में भी रहती है, अतएव चिदानन्द का लाभ जीवन मुक्त को भी होता है। शरीर के पतन के पश्चात् वह `परमशिव` में ही प्रविष्ट और उसी में लीन हो जाता है।" [३११]

कामायनी में भी मनु अपने इन्हीं स्थितियों से अग्रसर होते हुए चेतना एक विलसती आनन्द अखंड घना था की स्थिति में मोक्ष से तादात्म्य कर लेते हैं।

जीवन के प्रति निराला का दृष्टिकोण जिस प्रकार आस्था-मूलक था ठीक उसी प्रकार मृत्यु के सम्बन्ध में `स्वर्ग`[३१२] गमन के रूप में भी—

अन्त भी उसी गोद में शरण
ली, मूंदे दृग वर महामरण,[३१३]

के रूप में मिलता है कदाचित इस आस्था का कारण —

मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु मैं, आई हूई न हरो।" [३१४]

ही है क्योंकि कर्मगत जीवन में " मरण को जिसने वरा है, उसी ने जीवन भरा है।" [३१५] अन्यथा मरण का अन्त अपनी सार्थकता में वह नहीं है जिसे— बाट जोहते हो तुम मृत्यु की, अपनी सन्तानों से बूँद भर पानी को तरसते हुए ?" [३१६] कहा जाता है। निराला की धारणा है कि संसार कर्म स्थल है और " कर्मों से प्राप्त मृत्यु से हमें सांसारिक " दुःख से मुक्ति[३१७] मिल जाती है। ऐसे यहाँ अपने भविष्य की रचना में सभी चल रहे हैं। [३१८]

---

३११. भारतीय दर्शन, पृ० ३८७ (डॉ० उमेश मिश्र)

३१२. अपरा, पृ० १४६

३१३. ,, पृ० १५८

३१४. ,, पृ० १४२

३१५. अपरा, पृ० १४३

३१६. अपरा, पृ० १३४

३१७. अपरा, पृ० ११८

३१८. अपरा, पृ० ६२

निराला में परलोक[३१९] के प्रति विश्वास है और उनका विश्वास है यह एक अध्यात्म-फल [३२०] है। जो जगत् के इस अधिवास[३२१] को छूटने पर ही प्राप्त किया जा सकता है। कभी कभी मुक्ति पर उसे अविश्वास भी होता है कि "मर कर क्या जीतोगे जीवन" [३२२] पर मन की आस्था डिगने नहीं पाती और वह "मन का समाहार करो विश्वाधार" [३२३] कहता हुआ "हरि भजन करो भू-भार हरो, भव सागर निज उद्धार तरो।" [३२४] की टेक लिये "मरण" ३२५ के अनन्तर मुक्ति की कामना करता है। निराला के अनुसार "आत्मवाद" या मुक्ति ही भारत के जातीय जीवन का लक्ष्य है। मुक्ति प्रवाह या माया के अधिकारों से अलग है। बिना मुक्त हुए जीव स्वतंत्र नहीं हो सकता। मुक्ति पद पर पहुँचने के लिए जो उपाय कहे गये हैं वही साधन मार्ग हैं। साधन से सिद्धि तक का रास्ता प्रवाह जीवन के ही भीतर है। किन्तु वह माया या अविद्याकृत नहीं। वह विद्याकृत है। मुक्ति साधना प्रारम्भ करते ही यथार्थ विद्या या सत्य ज्ञान का भी आरम्भ हो जाता है और ब्रह्म या आत्म-दर्शन में सत्यज्ञान की पूर्णता प्राप्त होती है। [३२६] तुलसी भी --"भव भव, विभव, पराभवकारिणि, विश्व विमोहिनि स्ववश विहारिणि" द्वारा "शक्ति मानते हैं विश्व को चलाने वाली शक्ति को और उससे भी बढ़कर पूर्ण अवस्था में ब्रह्म लीन होकर पूर्णत्व की प्राप्ति करते हैं, जहाँ न संसार है, न हैं, और न तुम, है बस सच्चिदानन्द ब्रह्म। [३२७] इसी ब्रह्म में मिलना मुक्ति है अन्यथा जीव "मरा हूँ हजार मरण" [३२८] के निमित्त आवागमन के चक्कर में रहता है। निराला में मृत्यु और मोक्ष सम्बन्धी धारणा पर वेदान्त का प्रभाव देखा जा सकता है। साथ ही

---

३१९. परिमल, पृ० ६३
३२०. ,, पृ० १००
३२१. ,, पृ० १२४
३२२. आराधना पृ० ४६
३२३. ,, पृ० ४६
३२४. आराधना, पृ० ५१
३२५. ,, पृ० ६६
३२६. संग्रह (निराला), पृ०१४
३२७. ,, पृ० २६
३२८. आराधना, पृ० ६

रामकृष्णा और विवेकानन्द का भी ।

पंत ने मृत्यु को भी बड़े मसृण ढंग से-" मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर "[३२९] मुंदती नयन मृत्यु की रात",[३३०] मृत्यु गति क्रम का ह्रास"[३३१] और " निर्णयोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप शिखोदय[३३२] के द्वारा मृत्यु सम्बन्धी धारणा को व्यक्त किया है। पंत की धारणा है कि सांसारिक कर्मों की" मुक्ति " जीवन बंधन"[३३३] से मुक्ति है।

पर पंत जहाँ मार्क्सवाद से प्रभावित है वहाँ" मुक्त जहां मन की गति जीवन में रति"[३३४] मानने लगते हैं। मुक्ति के प्रति अनास्था या अविश्वास का भाव" मार्क्स के प्रति"[३३५] " भूत दर्शन "[३३६] साम्राज्यवाद[३३७] में दीख पड़ता है, क्योंकि मार्क्सवादी पूर्वजन्म, मोक्ष इत्यादि की धारणा में विश्वास नहीं करता वह इसे मात्र एक मनोवैज्ञानिक विराम लगता है जिस पर भ्रमात्मक सिद्धान्तों द्वारा एक काल्पनिक सत्य की सृष्टि होती है। मार्क्सवादियों के दृष्टिकोण से मोक्ष नितान्त काल्पनिक है।

कालान्तर में मनुज धरा को छोड़ कहीं भी स्वर्ग नहीं संभव, यह निश्चय" द्वारा पंत के दृष्टिकोण में मानवतावादी विचारधारा का उदय हुआ और वे कर्म का नया दृष्टिकोण प्रतिपादित करते दीख पड़ते हैं। यहाँ मार्क्सवादी विचारधारा का कोई प्रभाव नहीं दीख पड़ता क्योंकि ऐसी स्थिति में" बापू के लिए उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि" आत्मा के उद्धार के लिए आए तुम अनिवार्य।"[३३८] गुंजन का पंत मुक्ति की अपेक्षा विश्व के प्रति ही अधिक आकर्षित दीख पड़ता है — यथा —

---

३२९. आधुनिक कवि पंत, पृ० ३६
३३०. ,, पृ० ४१
३३१. ,, पृ० ४३
३३२. ,, पृ० ८३
३३३. पल्लविनी पृ० २२०
३३४. ग्रिंबरा पृ० ३६
३३५. युगवाणी, पृ० ३८
३३६. ,, पृ० ३६
३३७. ,, पृ० ४०
३३८. ,, पृ० १४

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, तरु, पशु,पक्षी, नर, सुरवर,
सुंदर अनादि, शुभ सृष्टि उभर अमर । [३३९]

मानवता के उत्थान के प्रति आकर्षित पंत भी यह स्वीकार करते हैं कि -- " ईशावास्य मिदं सर्व " द्रष्टा ऋषि कहते हैं यह जगती के निमित्त उपनिषदों की अक्षय निधि है । भगवत् सत्ता जग की निखिल वस्तुओं में समाहित है । सभी ईश्वरमय हैं यही सत्य है , यही सार है ।" [३४०] कालान्तर में पंत ने भी जीवन की मुक्ति को परोक्ष रूप से स्वीकार किया है क्योंकि गांधीवाद के प्रभाव में आने पर उनकी धारणा बन गई थी कि" साधन बन सकते नहीं सृष्टि गति में बन्धन" । [३४१] और मृत्यु के अनन्तर मोक्ष की स्थिति में पुनर्जन्म नहीं होगा । पंत की विचारधारा पर" उपनिषद, गीता, योगवाशिष्ठ, रामायण, पतंजलि, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ, मार्क्स, रस्किन, टालस्टाय, कार्लायल, थौरो इमरसन" [३४२] आदि का प्रभाव देखा जा सकता है । इसे उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है । जहाँ तक मोक्ष का सम्बन्ध में उन्होंने मोक्ष की स्थिति का समर्थन किया है भले ही वह "लोक मुक्ति ही ध्येय प्रकृति का मनुज करे जगजीवन निर्मित" के रूप में ही क्यों न हो ।

महादेवी पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव देखा जाता है जिसे उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है (३४३ " क्षणदा" करुणा के संदेश वाहक) उन्होंने मृत्यु को प्राणों के अन्तिम पाहुन ।" [३४३] के रूप में सहज स्वीकार किया है । " लौटेंगे सौ-सौ निर्वाण" [३४४] के द्वारा पुनर्जन्म की भी झलक

---

३३९. गुंजन, पृ० २६

३४०. शिल्पी, पृ० १०५

३४१. ग्राम्या, पृ० ६६

३४२. साठवर्ष : एक रेखांकन, पृ० ३६ (पंत)

३४३. रश्मि, पृ० ६८

३४४. नीहार, पृ० ६

उनकी दृष्टि में " कभी न खोलने के लिए आँखें मूँद" [३४५] लेना ही मृत्यु है। जो इस शरीर के बन्धन से " मुक्ति कहानी" [३४६] की ओर संकेत करता है। " पथ मेरा निर्वाण बन गया" [३४७] और " आज मरण का दुख तुम्हें छू मेरा पाहुन प्राण बन गया" [३४८] और कदाचित उस साधना की ओर संकेत करता है जिसकी प्राप्ति के अनन्तर मृत्यु मोक्ष में परिणति हो जाती है। यही कारण है कि महादेवी की धारणा है कि मृत्यु भी एक सौन्दर्य है " [३४९] कदाचित इस सौन्दर्य का कारण निर्वाणगत जीवन की स्थिति है " जिसे हम अर्हत्-लोग सत्य मार्ग के अनुसरण से प्राप्त करते हैं। इसका कोई कारण नहीं है यह स्वतंत्र सत्य और नित्य है। इसका चित्त और चैतसिक से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अभिधर्मकोश (२-३५-३६) में इसे" सोपधिशेषनिर्वाणधातु" की प्राप्ति कहा गया है। यह ज्ञान का आधार है। सभी भेद इसमें विलीन हो जाते हैं। अतएव कहा गया है" [३५०] निर्वाणं शान्तम्।" [३५१] निर्वाण असंस्कृत धर्म नहीं हो सकता क्योंकि यह "मग्ग" के द्वारा उत्पन्न होता है और यह असत् है अर्थात् यह क्लेशों का अभावस्वरूप तथा काषायों का सब नाश स्वरूप है। दीपक के निर्वाण के समान यह भी निर्वाण है। इस अवस्था में धर्मों का अनुत्पाद रहता है। इस पद पर पहुंचकर साधक इस आश्रय की प्राप्ति करता है जिसमें न कोई क्लेश हो और न कोई नवीन धर्म की प्राप्ति हो। [३५२]

जहाँ तक कर्म का प्रश्न है कर्म का सिद्धान्त सभी बौद्ध दार्शनिकों को मान्य है किन्तु निर्वाण की अवस्था में कर्म और पुनर्जन्म का लोप हो जाता है। भगवान् ने स्वयं कहा है, " राध ! विमुक्त का अर्थ है निर्वाण।" [३५३]

यद्यपि बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद और अनीश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया है पर अंगुत्तरनिकाय (१२, १३५) के अनुसार जान पड़ता है काला-

---

३४५. अतीत के चलचित्र, पृ० ३५
३४६. दीपशिखा, पृ० १४७
३४७. स्मृति की रेखाएं, पृ० ९८
३४८. आधुनिक कवि महादेवी, पृ० ८६
३४९. शृंखला की कड़ियां, पृ० १४६
३५०. अभिधर्मकोश, २-३५-३६
३५१. भारतीय दर्शन (डा० उमेश) पृ० १५
३५२. "निर्विषया चित्सन्तातिं सौत्रान्त्रिका मुक्तिमाहु:" २६ पदार्थ धर्म संग्रहसेतु पद्मनाभ मिश्ररचित
३५३. संयुक्त निकाय जिल्द: तीसरी पृ० १८७

न्तर में बुद्ध और उनके क्षत्रिय अनुयायियों द्वारा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया क्योंकि ऐसा न होने पर भिक्षुओं के ब्रह्मचर्य के पतन का भय था जिसे प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वारा दूर किया गया । कदाचित महादेवी के सों-सों-निर्वाण में प्रतीत्यसमुत्पाद के पूर्व जन्म की झलक मिलती है ।

दार्शनिक मान्यताओं के रूप में डॉ० रामकुमार वर्मा कबीर से प्रभावित हैं । इसे उन्होंने सत्य भी स्वीकार किया है -- पर जहाँ तक मोक्ष की धारणा का प्रश्न है `आकाश-गंगा` में निर्वाण` [३५४] शब्द का प्रयोग किया गया है पर उस निर्वाण का अर्थ बौद्धों के शाब्दिक प्रयोग `निब्बाण` से किंचित भिन्न है क्योंकि बौद्ध दर्शन का रामकुमार वर्मा पर कोई प्रभाव नहीं दीख पड़ता ।

जीवन के अन्त व के सम्बन्ध में रामकुमार जी की धारणा है कि " मै तुमसे मिल गया प्रिये । यह है जीवन का अन्त" [३५५] " भावना की मुक्ति मुझको दे सकोगी स्वामिनि," [३५६] क्योंकि जिस शक्ति से " स्त्री और पुरूष का निर्माण " [३५७] होता है वह अपने परमतत्व में विलीन होने में सदा अग्रसर होती रहती है । " ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया" नामक एकांकी में कबीर द्वारा कहे गये अंश इस जीवन-मृत्यु सम्बन्धी धारणा पर प्रकाश डालते हैं कि " अब तो दूर देश को जाना है । रहीम खाँ, गम न करो । यह तो सबके साथ होता है । बहुत बरस तो जिया । अब अपना काम पूरा करके चला जाना ही है ।" [३५८]

परमात्मा के संयोग में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है । जब आत्मा परमात्मा में लीन होती है तो उसके चारों ओर एक दैवी वातावरण की सृष्टि हो जाती है और आत्मा परमात्मा की उपस्थिति अपने समीप ही

---

३५४. आकाश गंगा , पृ० २५

३५५. आधुनिक कवि, रामकुमार वर्मा, पृ० ६१

३५६. ,, ,, पृ० ६०

३५७. चारुमित्रा, पृ० १७६

३५८. ऋतुराज, पृ० १२८

अनुभव करने लगती है। परमात्मा संसार से परे है और आत्मा संसार से आबद्ध[३५९] है। पर यह संयोग की अवस्था है जो मोक्ष से अपनी स्थिति में भिन्न है। कबीर के अनुसार मोक्ष में "आत्मा परमात्मा की सत्तात्मक हो जाती है।"[३६०] जिसे उन्होंने —

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।। तथा

"मरतां मरतां जग मुवा, मुवै न जाना कोइ।
दास कबीरा यौं मुवा, ज्यौं बहुरि न मरनां होइ।।[३६१]

में व्यक्त किया है। यही लय की स्थिति ही मोक्ष है। क्योंकि लय' फना' 'निर्वाण' अथवा 'मुक्ति' की दशा वस्तुत: एक ही बात को अपने-अपने ढंग से प्रकट करती हुई जान पड़ती हैं और इन तीनों में कोई तात्त्विक अंतर नहीं है।"[३६२]

---

३५९. कबीर का रहस्यवाद, पृ० १०२
३६०. कबीर का रहस्यवाद, पृ० १०५
३६१. कबीर ग्रन्थावली, डॉ० पारसनाथ तिवारी, पृ० २०६
३६२. रहस्यवाद, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ५७

खण्ड २

अध्याय १२— नर-नारी —

(नारी की सामाजिक स्थिति, समाज में नारी का स्थान, विधवा, समाज में पुरुष की स्थिति, नर-नारी की सापेक्षिक महत्ता ।)

नर-नारी

नारी की सामाजिक स्थिति

नारी चित्रण की दृष्टि से छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है । आलोच्य कवियों की दृष्टि में नारी विषयक धारणा को विश्लेषित करें तो उसकी सामाजिक स्थिति सतत् उर्ध्वमुखी दीख पड़ती है । पर यह दृष्टि " यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रम्यते यत्र देवता [१] से भिन्न कही जा सकती है ।

ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में देखें तो रीतिकाल में वह मात्र श्रृंगार विलास और वासना की पुतली दीख पड़ती है । भारतेन्दु और द्विवेदी काल में नारी के विषय में एक सजगता की स्थिति दीख पड़ती है । उपर्युक्त दोनों ही कालों में नारी का एक निरीह रूप प्राप्त होता है । साथ ही कवियों द्वारा उनके प्रति उपदेशात्मक दृष्टिकोण मिलता है । वह कवियों के लिए सहानुभुति की पात्र है ।

पर आलोच्य कवियों की दृष्टि में समाज में नारी का स्थान अपने परंपरागत नारी से भिन्न एक ऐसे धरातल पर प्रतिष्ठित होना चाहता है जहां वह पुरुषों के समकक्ष है । समाजगत नारी के इस स्थिति के निर्माण में छायावादी कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है जिन्हें क्रमशः विश्लेषित करना ही अभीष्ट होगा ।

समाज में नारी का स्थान

प्रसाद के काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी साहित्य में व्यक्ति यदा-कदा स्पष्ट रूप से लिखे गये मन्तव्य प्रसाद के समाज में विषयक धारणा की पुष्टि करते हैं ।

---

१. मनु ३।५५-६०

प्रसाद साहित्य में दो प्रकार की नारी का चित्रण मिलता है। एक तो वह जो परंपरागत आदर्श नारी का --" नारी तुम केवल श्रद्धा हो, पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में "[२] चित्रित किया गया है जिसमें क्षमा, दया, करुणा, श्रद्धा, ममता आदि गुणों के साथ परिवार एवं स्वजनों के निमित्त अपने को बलिदान करने की भावना मिलती है। यह भारतीय नारी का समर्पित रूप है।

समाज में नारी का जो दूसरा रूप चित्रण किया है वह है उसका अपनी दयनीय सामाजिक स्थिति के प्रति जागरूकता का। इस वर्ग की नारियों में वर्तमान समाज के अनुरूप ही अपने अधिकार के प्रति चेतना मिलती है। वे समाज में महत्वपूर्ण स्थान की प्राप्ति में प्रयत्नशील हैं साथ ही संघर्षशील भी पर प्रसाद ने इस प्रकार की नारी अवतरित की, उसका एक कारण सामाजिक पक्ष से भी सम्बन्धित है और वह है तत्कालीन समाज में नारी की गिरी हुई स्थिति। स्त्रियाँ भी समझ गई हैं कि " पुरुष उन्हें उतनी ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते हैं, जितना उनके स्वार्थ में बाधक न हो। घरों के भीतर अन्धकार है, धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है, और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियों की।[३] यह सब उन्हें सामाजिक अधिकारों पर आवरण डालने के लिए ही है ताकि वे यथार्थ स्थिति के ज्ञान से वंचित रहें।

प्रसाद की धारणा थी कि पुरुष वर्ग अपने स्वार्थों की सुरक्षा के लिए नारी को कुचल देना चाहता है। उसने नारी के समत्व के अधिकारों को एक भुलावे के रूप में रख छोड़ा है। पर अब सदियों से परिस्थितिगत विडम्बना को झेलती हुए स्त्रियाँ भी समाज में अपना पूर्ववत् स्थान पाने की ओर अग्रसर हैं। युगीन परिस्थिति में अब वह स्थिति के यथार्थ को कुछ समझ गई हैं कि (यमुना के शब्दों में)" कोई समाज और धर्म्म स्त्रियों का

---

२. कामायनी, पृ० ११६

३. कंकाल, पृ० २५८

नहीं बहन । सब पुरुषों के हैं । सब हृदय को कुचलने वाले क्रूर हैं । फिर भी मैं समझती हूं कि स्त्रियों का एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना । दुर्दैव के विधान ने उनके लिए यही पूर्णता बना दी है । यह उनकी रचना है ।"[४]

इतना ही नहीं समाज में वेश्यावृत्ति नारी जीवन के लिए एक घृणित एवं जघन्य पाप है । पर पुरुष ने अपने स्वार्थ से इसे भी पोषित किया है । "वेश्याओं के (ही) देखो—उनमें कितनों के मुख सरल हैं, उनकी भोली, भाली आँखें रो-रोकर कहती हैं मुझे पीट-पीटकर चंचलता सिखाई गई है । मेरा विश्वास है कि उन्हें अवसर दिया जाता, तो वे कितनी ही कुलवधुओं से किसी बात में कम न होतीं ।[५]

कामायनी की इड़ा अपने नारीत्व की सुरक्षा के लिए और स्कन्दगुप्त नाटक की देवसेना देश के मान, स्त्रियों की प्रतिष्ठा[६] की रक्षा करने को तत्पर है । विजया अपना अधिकार पाने को तत्पर है । भटार्क की माँ कमला समाज और देश द्रोही भटार्क को फटकारती है ।[७] ध्रुवस्वामिनी में नारीत्व की युगीन चेतना दीख पड़ती है जो रामगुप्त के मद्यराजोचित आज्ञा के विरुद्ध प्रकट हुई थी ।[८] इसका कारण भी स्पष्ट है कि "स्त्रियों को उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण जब हम उसे स्नेह करने के लिए बाध्य करते हैं, तब उनके मन में विद्रोह की सृष्टि भी स्वाभाविक है । प्राचीन काल में स्त्री-धन की कल्पना हुई थी किन्तु आज उसकी जैसी दुर्दशा है जितने कांड उसके लिए खड़े होते हैं, वे किसी से छिपे नहीं ।[९] वे समाज में नारी की दयनीय स्थिति को प्रकट करते हैं ।

---

४. कंकाल , पृ० २५५
५. ,, पृ० १६३
६. स्कन्दगुप्त, पृ० ४२
७. ,, पृ० १०६
८. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २८
९. तितली, पृ० १४७

प्रसाद की धारणा है कि समाज में स्त्रियों को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा और इसके लिए स्त्री-जाति के प्रति सम्मान करना सीखना होगा ।[१०]

प्रसाद ने स्त्रियों की सामाजिक उन्नति से प्रेरित होकर कंकाल में 'भारत संघ' की भी स्थापना कर दी । उनकी धारणा है कि 'व्यर्थ के विवाद हटाकर, उस दिव्य संस्कृति -(आर्य मानव संस्कृति)[११] के निमित्त चाहिए यह कि समाज' नारी जाति पर अत्याचार करने से विरत हो ।[१२] उन्होंने यह स्पष्ट प्रदर्शित किया कि नारियों में यह चेतना घर कर रही है जिससे प्रेरित होकर ' लतिका देवी ने अपना स्वस्व दान किया है । उस धन से स्त्रियों की पाठशाला खोली जायगी, जिसमें उनकी पूर्णता की शिक्षा के साथ वे इस योग्य बनायी जायंगी कि घरों में पर्दों में दीवारों के भीतर नारी जाति के सुख, स्वास्थ्य और संयत स्वतंत्रता की घोषणा करें । उन्हें सहायता पहुंचाएं, जीवन के अनुभवों से अवगत करें । उनमें उन्नति सहानुभूति क्रियात्मक प्रेरणा का प्रकाश फैलाएं ।'[१३]

समाज में स्त्रियों की गिरी अवस्था में सुधार से ही प्रेरित होकर प्रसाद ने गोस्वामी जी - मंगलदेव संवाद में यह कहलाया है कि ' जहां स्त्रियां सताई जायं, मनुष्य अपमानित हों, वहां तुमको अपना दम्भ छोड़कर कर्तव्य करना होगा ।.... तुम अबलाओं की सेवा में लगो । भगवान् की भूमि भारत में स्त्रियों को पतित बनाकर बड़ा अन्याय हो रहा है ।... स्त्रियां विपथ पर जाने के लिए बाध्य की जाती हैं, तुमको उनका पक्ष लेना पड़ेगा ।'[१४]

---

१०. कंकाल, पृ० २६४

११. ,, पृ० २६०

१२. ,, पृ० २६०

१३. ,, पृ० २६१

१४. ,, पृ० १४४-१

समाज में नारी का स्थान

निराला के काव्य और कथा साहित्य में नारी विषयक धारणा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उनके साहित्य में नारी अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ण्य-विषय रही है।

निराला के शब्दों में आधुनिक समाज की दृष्टि से" अब वह समय नहीं रहा कि हम स्त्रियों के सामने वह रूप रखें, जिसके लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने" चित्र-लिखे कपि देखि डेराती" [१५] लिखा (फिर भी) समाज ने उन्हें एक छोटी सी सीमा में बांध रखा है। यह कार्य सीमा पुरुष की स्वार्थ सीमा है।

पर जब कभी हम समाज में उनकी गिरी हुई स्थिति पर विचार करते हैं तो गिरी हुई स्त्रियों की इस अवस्था का कारण बहुत कुछ अशिक्षा ही दीख पड़ती है।" निराला ने भी इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि स्त्रियों के समाज में समकक्षता का स्थान दिलाने, उनकी स्थिति के सुधार के लिए" आवश्यक साधन है शिक्षा। हमारे देश में स्त्रियों की शिक्षा के अभाव से जैसी दुर्दशा हो रही है उसकी वर्णना असंभव है। .... प्राचीन सीमा ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की ही तरह घेर रखा है। पर घर की छोटी सी सीमा में बंधी हुई स्त्रियां आज अपने अधिकार, अपने गौरव देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य, सबकुछ भूली हुई हैं। उनके साथ जो पाशविक अत्याचार किये जाते हैं उनका कोई प्रतिकार नहीं होता। वे चुपचाप आंसुओं को पीकर रह जाती हैं। उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन रहा है। उन्हें जो शिक्षा दी जाती है कि तुम्हें अपने पुरुष के सिवाकिसी दूसरे पुरुष का मुख नहीं देखना चाहिए, यह उनके अंधकार जीवन की टार-पेटिंग है। सिर झुकाए हुए ही उन्हें तमाम जीवन पार

---

१५. प्रबंध प्रतिमा, पृ० १३०

कर देना पड़ता है इस उक्ति का का यथार्थ तत्व उन तक नहीं पहुंचता । फल यह होता है कि उन पर हमला करने के लिए गुंडों को काफी सुयोग मिलता है । उनका स्वास्थ्य उनके अवरोध के कारण क्रमश: क्षीण ही होता रहता है शिक्षा से यह सब दूर होगा । स्त्रियां अपना दिव्य रूप पहचानेंगी । उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान होगा । [१६] .... उनका जो स्थान संसार की स्त्रियों में है, उसे प्राप्त करेंगी । राष्ट्र की स्वतंत्रता की उपासना में उनके जो अधिकार हैं, उन्हें ग्रहण कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगी । बच्चों की पीड़ा से उन्हें तड़पना न होगा । समाज की नृशंसता जो प्रति-दिन बढ़ती जा रही है, उन पर अपना अधिकार जमा सकेंगी । पति के विदेश जाने पर मकान में उनकी जो दुर्दशा होती है, उससे बची रहेंगी । जरूरत पड़ने पर स्वयं उपार्जन करके अपना निर्वाह कर सकेंगी ।... वे अनेक प्रकार के भोजन पकाने की विधियां सीख लेंगी, और संसार में रह संसार के यथार्थ सुखों का अनुभव करेंगी । कहा है, संसार में जितने प्रकार की प्राप्तियां हैं, शिक्षा सबसे बढ़कर है । शिक्षा में शब्द-विद्या का स्थान और उच्च है । यही विद्या ज्ञान की धात्री कहलाती है । जितने प्रकार के दैन्य हैं, जितनी कमजोरियां हैं, उन सबका शिक्षा के द्वारा ही नाश हो सकता है । अशि-क्षित अपढ़ होने के कारण ही हमारी स्त्रियों को संसार में नरक-यातनाएं भोगनी पड़ती हैं --उनके दु:खों का अंत नहीं होता । [१७] अत: इसमें सुधार करना होगा ।

तत्कालीन समाज में शहर की अपेक्षा स्त्रियों की अशिक्षा की स्थिति गांवों में और भी दयनीय कही जा सकती है । "कन्याप्येवं पाल-नीया शिक्षणीयातियत्नत:" मनु के इस कथन और निराला के स्त्री शिक्षा के दृष्टिकोण का पूर्ण साम्य है । पर समाज में ऐसा न होने के तीन कारण अपनी दृष्टि में हैं जो विशेष रूप से गांव से भी सम्बन्ध रखते हैं ।

---

१६. बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३१

१७. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३२

स्त्रियों की अशिक्षा के कारण

(१) इसका बहुत कुछ कारण देश का दैन्य ही है, पर पुरुषों की अश्रद्धा भी कहीं कम नहीं। [१९] जिनकी दृष्टि में शिक्षा देना पाप है।

(२) समाज के लोग रूढ़ियों के ऐसे गुलाम हैं कि जीते जी उन्हें छोड़ नहीं सकते, और इससे समाज का पहिया जरा भी आगे नहीं बढ़ने पाता। [२०]

(३) गांवों की अपेक्षा शहरों में लड़कियों के पढ़ाने के अनेक साधन हैं। [२१] पर उसका यथोचित उपयोग नहीं होता।

निराला की तो धारणा है कि " हर गांव से प्रतिदिन जितनी भीख निकलती है, यदि उतना अन्न रोज एकत्र कर लिया जाय, तो गांव में ही एक छोटी-सी पाठशाला खोल दी जा सकती है। एक शिक्षक की गुजर उससे हो जायगी। [२२] पर तत्कालीन भारतीय समाज की दृष्टि किसी वस्तु की उपयोगिता से अधिक धर्म और रूढ़िवादिता पर अधिक निहित थी। उसकी ओर भी अपने गद्य में निराला जी ने संकेत किया है कि " आज घर के कोने में समाज की साधना नहीं हो सकती। जमाने ने रूख बदल दिया है। हमारे देश की लड़कियों पर बड़े बड़े उत्तरदायित्व आ पड़े हैं। उन्हें वायु की तरह मुक्त रखने में ही हमारा कल्याण है। तभी वे जाति धर्म तथा समाज के लिए कुछ कर सकेंगी।" [२३]

निराला ने पद्य में तो नहीं पर गद्य में विशेष कर अपने लेखों में परदा प्रथा का विरोध प्रकट किया है—उन्होंने कहा स्त्रियों को दबाव के कारण इस देश के लोग अपने जिस कल्याण की चिंतना की है, वह कल्याण कदापि नहीं, प्रत्युत निरी मूर्खता ही है। आज तक जितने

---

19. प्रबन्ध प्रतिमा - 132
१९. प्रबंध प्रतिमा, पृ० १३२

२०. ,, पृ० १३३

२१. ,, पृ० १३३

२२. ,, पृ १३३

२३. ,, पृ० १३३

अत्याचार हुए , बलात्कार आदि हुए हैं, वे सब पर्दानशीन स्त्रियों पर ही हुए हैं पर्दे के भीतर जितनी तीव्रता से दृष्टि प्रवेश करना चाहती है, खुले मुख पर उतनी तीव्रता से नहीं आक्रमण करती । पाशविक प्रवृत्तियां अंधकार में ही प्रबल वेग धारण करती हैं । अत: स्त्रियों में पर्दा प्रथा के हटने के साथ स्त्रियों में स्वालम्बन आना चाहिए । निराला की धारणा है कि स्वाव-लम्बन कोई पाप नहीं है । हमारे देश के लोग इस समय आधे हाथों से काम करते हैं । उनके आधे हाथ निष्क्रिय हैं । जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जायेंगे, कार्य की सफलता हमें तभी प्राप्त होगी ।" [२४]

विवाह के सम्बन्ध में नारी की स्थिति पर निराला साहित्य में एक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण मिलता है । नारियां अपने इस अधिकार के प्रति पर्याप्त सजग दीख पड़ती हैं । वे जातिगत बंधनों को तोड़कर भी प्रेम विवाह कर लेती हैं । श्यामा और बंकिम, [२५] अप्सरा की वेश्या पुत्री कनक और राजकुमार, सुकुल की बीबी पुखराज और सुकुल आदि के नाम उदाहरण-स्वरूप लिए जा सकते हैं ।

निराला की समस्त नारियां प्रबुद्ध , प्रगतिशील और विद्रोहिणी भी हैं फिर भी निराला ने उन्हें भारतीय नारीत्व की दृष्टि को बिसरने नहीं दिया है । जाते,यमुना, कनक, अलका, प्रभावती, निरुपमा, पद्मा, चमेली, तारा, कमला, ज्योतिर्मयी, श्यामा, सुकुल की बीबी, श्रीमती गजा-नन शास्त्रिणी का नाम इसके उदाहरण स्वरूप लिये जा सकते हैं । प्रेम के सम्बन्ध में स्त्रियां सामाजिक समानाधिकार के पक्ष में दीख पड़ती हैं । यद्यपि 'चोटी की पकड़' की मुन्ना बांदी निराला की नारी विषयक धारणा की अपवाद हैं, किन्तु वह एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करती हैं, सामान्य नारी की नहीं ।

---

२४. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३३

२५. लिली, पृ० ८१

समाज में नारी का स्थान निर्धारित करते समय निराला की नारी पर दृष्टिपात करते समय हम नारी के " तोड़ती पत्थर " के श्रमिक नारी रूप को भी नहीं भुलाया जा सकता जिसमें नारी की श्रमिक शक्ति की ओर भी संकेत किया गया । यह निराला की दृष्टि में जीवन यापन करने का समानाधिकार था ।

निराला स्त्रियों का सामाजिक स्तर ऊँचा उठाना चाहते थे । यही कारण है कि उन्होंने सती प्रथा , बाल विवाह, बहु विवाह, दहेज, पर्दा तथा वेश्यावृत्ति का विरोध किया । साथ ही विधवा विवाह, अन्त-र्जातीय विवाह, स्त्रीशिक्षा आदि पर बल दिया । वह नारी को पुरुष की समकक्षता में समान स्थिति-देना चाहते थे । लेकिन यह तभी संभव था जब शदियों से नारी अपनी परंपरागत बंधनों को तोड़ दे । जिसमें कवि ने स्वयं आह्वान किया है कि —

तोड़ो- तोड़ो- तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर,
गंगा-जल-धारा ।
गृह-गृह की पार्वती ।
पुनःसत्य-सुन्दर-शिवं को संवारती
उर उर की बनो आरती । —
भ्रान्तों की निश्चल ध्रुव-तारा।—
तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा । [२६]

समाज में नारी का स्थान

यदि पंत के दृष्टिकोण से समाज में नारी का स्थान निर्धारित किया जाय तो उनकी दृष्टि नारी की ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्तियों की ओर ही रही है । पंत ने नारी को" स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति , और

---

२६. अनामिका, पृ० १३७

आज की अभिशप्त सभ्यता में " कर रही मानवी के अभाव की ... पूर्ति करने वाली अग्रजा नागरी " [२६ अ] के रूप में ही देखने का प्रयास किया है ।

कवि के अनुसार अब वह युग नहीं रहा कि नारी के लिए " पैर की जूती , जोरू । न सखी सखा, दूसरी पाली " [२७] की उक्ति चरितार्थ हो । या उनका कार्य क्षेत्र ---

मां कहती --रखना संभाल कर ,
मौसी--धनि लाना गोदी भर,
सखियां--जाना हमें मत बिसर । [२८]

तक सीमित कर समाज के उसके अधिकृत अन्य स्थानों से वंचित कर दिया जाय । आलोच्य काल में " स्त्री स्वातंत्र्य सबंधी हमारी भावना का विकास वर्तमान युग की आर्थिक परिस्थितियों के विकास के साथ ही हो रहा है । स्त्रियों का निर्वाचन अधिकार संबंधी आन्दोलन बुर्ज्वा संस्कृति एवं पूंजीवादी युग की आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है ।" [२९]

" सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित ,
पूतयोनि वह: मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित ।
वह समाज की नहीं इकाई --शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन मान, मान पर नर के है अवलंबित ।
योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित ,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ।" [30]

के रूप में उसे देखा जा सकता है ।" यद्यपि " हमें यह (भी) नहीं भूलना

---

२६ अ . ग्राम्या, पृ० २१
२७. ,, पृ० २५
२८. ,, पृ० ३६
२९. आधुनिक कवि पंत, पृ० २६
३०. ,, पृ० २६

चाहिए कि संसार अभी सामंत युग की क्षुद्र नैतिक और सांस्कृतिक भावनाओं ही से युद्ध कर रहा है, पृथ्वी पर अभी यंत्र-युग प्रतिष्ठित नहीं हो सका है। आने वाला युग मनुष्य की क्षुधा-काम की प्रवृत्तियों में विकसित सामाजिक सामंजस्य स्थापित कर हमारे सदाचार के दृष्टिकोण एवं सत्यं शिवं सुन्दरम् की धारणाओं में प्रकारांतर उपस्थित कर सकेगा। [३१]

पंत ने यह स्वीकार किया है कि समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि उर के भीतर" [३२] पर जहां तक आधुनिक नारी का प्रश्न है कवि की दृष्टि में वह परंपरागत नारी से भिन्न है जिसे उसने " आधुनिका में व्यक्त किया है कि अगर " मात्र सौन्दर्य प्रसाधन ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है तो —

आधुनिके तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।" [३३]

यद्यपि कवि को क्षोभ भी हुआ कि" मानवी हाय मानवी रही न नारीलज्जा से अवगुंठित [३४] पर जब उसने युगानुरूप नारी की क्रियाशीलता प्रदर्शित की तो वह सहर्ष कह उठा —

स्त्री नहीं, आज मानवी बन गई तुम निश्चित,

जिसके प्रिय अंगों को छू अनिलातप पुलकित।

क्योंकि अब समाज की उन्नति में कर्तव्य रत नारी ने—

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,

चिर जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ,

जो बंटा रही जग जीवन का काम काज

तुम प्रिय हो मुझे : छूती तुमको काम लाज। [३५]

अत: स्पष्ट है नारी की सामाजिक स्थिति उसकी सृजनशीलता में ही निहित है जिसे उसने प्राप्त कर लिया है और अब वह अपने समाज को उन्नति शील

---

३१. आधुनिक कवि पंत, पृ० ३०

३२. ग्राम्या, पृ० ८२

३३. ,, पृ० ८३

३४. ,, पृ० ८५.   ३५. ग्राम्या, पृ० ८५

बनाने में सहायता दी इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

पंत ने नारी को " देवी ! मा ! सहचरि ! के रूप में प्रतिष्ठा दी । उनकी दृष्टि में ये चार रूप समाज के नारी की महत्ता के पोषक हैं और समाज के निर्माण में भी उसकी महत्ता उपेक्षित नहीं की जा सकती ।

नारी की सामाजिक स्थिति को महादेवी के दृष्टिकोण से देखें तो उनके अनुसार " आज की परिस्थितियों में अनियन्त्रित वासना का प्रदर्शन स्त्री के प्रति क्रूर व्यंग ही नहीं जीवन के प्रति विश्वास घात भी है । नारी जीवन की अधिकांश विकृतियों के मूल में पुरुष की यही प्रवृत्ति मिलती है, अत: आधुनिक नारी नये नामों और नूतन आवरणों में भी इसे पहचानने में भूल नहीं करेगी । उसके स्वभाव में, परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढाल लेने का संस्कार भी शेष है और उसके जीवन में, अनुदिन बढ़ता हुआ विद्रोह भी प्रवाहशील है । यदि वह पुरुष की प्रवृत्ति को स्वीकृति देती है तो जीवन को बहुत पीछे लौटा ले जाकर एक श्मशान में छोड़ आती है और यदि उसे अस्वीकार करती है तो समाज को बहुत पीछे छोड़ शून्य में बहुत आगे बढ़ जाती है । स्त्री के जीवन के तार-तार को जिसने तोड़ कर उलझा डाला है, उसके अणु अणु को जिसने निर्जीव बना दिया है और उसके सोने के संसार को जो धूल के मोल लेती रही है, पुरुष की वही लालसा, आज की नारी के लिए, विश्वस्त मार्ग दर्शिका न बन सकेगी ।

महादेवी के अनुसार छायायुग की नारी चाहे अपने व्यक्तिगत जीवन के लिए विशेष सुविधाएं न प्राप्त कर सकी हो, पर उसकी शक्ति ने पुरुष की वासना-व्यवसायी दृष्टि को एक दीर्घ काल तक जहां का तहां ठहरा दिया इसी से आज का उल्लासमययथार्थवादी पुरुष उस पर आघात किये बिना एक पग बढ़ने का भी अवकाश नहीं पाता ।[३६]

छायायुग की नारी पुरुष के सौन्दर्यबोध , स्वप्न, आदर्श आदि

---

३६. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० १८५

का प्रतीक है। आज पुरुष के सौन्दर्य बोध, स्वप्न, आदर्श आदि का प्रतीक है। आज पुरुष यदि उस प्रतीक को जीवन की पीठिका पर प्रतिष्ठित करने की क्षमता नहीं रखता तो क्षम्य है। परन्तु अपनी ही आर्थिक मूर्ति को पैरों तले कुचलने के लिए यदि वह जीवित नारी को अपनी कुत्सा में समाधि देना चाहे, मधु-सौरभ पर पली हुई अपनी ही सृष्टि को आत्मसात् करने की इच्छा से नारी के अस्तित्व के लिए क्रव्याद बन जावे तो उसका अपराध अक्षम्य हो उठेगा।" [३७]

"भारतीय पुरुष जीवन में नारी का जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ वह नहीं हो सकता। [३८] फिर भी यथार्थ के नाम पर नारी का क्रूर चीरहरण होता रहे, [३९] साथ ही वह अब तक सजग न हो सके तो यह स्थिति की विडम्बना ही कही जायेगी, क्योंकि शब्दगत सार्थकता के साथ "नारी केवल मांसपिण्ड की संज्ञा नहीं है। आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सरल बनाकर उसके अभिशापों और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर मानवी ने जिस व्यक्तित्व चेतना और हृदय का विकास किया है उसी का पर्याय नारी है।...... जागृत युग के आदर्शवादी कवि ने मलिनता में मिली पुरानी मूर्ति के समान उसे स्वच्छ और परिष्कृत करके ऊंचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित तो कर दिया परन्तु उसे गतिशीलता देने में असमर्थ रहा। छायायुग ने उस कठोर अचलता से शापमुक्त होने के लिए नारी को प्रकृति के समान ही मूर्त और अमूर्त स्थिति दे डाली। [४०]

जहां तक स्थिति का प्रश्न है वह आज इतनी संज्ञाहीन और पंगु नहीं कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य और गति के सम्बन्ध में निश्चय कर ले। हमारे राष्ट्रीय जागरण में उसका सहयोग महत्वपूर्ण और बलिदान

---

३७. दीपशिखा, पृ० ९८

३८. ,, पृ० १९

३९. ,, पृ० १९

४०. ,, पृ० ९८

असंख्य है । समाज में वह अपनी स्थिति के प्रति विशेष सजग और सतर्क हो चुकी है । साहित्य को कुछ ही वर्षों में उसकी सजीवता का जैसा परिचय मिल चुका है वह भी उपेक्षणीय नहीं । इसके अतिरिक्त इस संक्रान्ति काल में सभी देशों की नारी अपने अपने कठिन त्यागों से अर्जित गृह, सन्तान तथा जीवन को अरक्षित देखकर और पुरुष की स्वभावगत पुरानी बर्बरता का नया परिचय पाकर सम्पूर्ण शक्ति के साथ जाग उठी है । भारतीय नारी भी इसका अपवाद नहीं है ।

ऐसे ही अवसर पर यथार्थवाद ने एक ओर नारी की वैज्ञानिक शव-परीक्षा प्रारम्भ की है और दूसरी ओर उसे उच्छृंखल विलास का साधन बनाया है ।"[४१]

सच तो यह है कि समाज में नारी ऐसा यन्त्रमात्र नहीं जिसके सब कल पुर्जों का प्रदर्शन ही ज्ञान की पूर्णता और उनका संयोजन ही क्रियाशीलता हो सके । पुरुष व्यक्ति मात्र है परन्तु स्त्री उस संस्था से कम नहीं, जिसके प्रभाव की अनेक दिशायें हैं और सृजन में रहस्यमयी विविधता रहती है ।..... नारी भी स्थूल से सूक्ष्म तक न जाने कितने साधनों से जीवन और जाति के सर्वतोन्मुखी निर्माण में सहायक होती है ।[४२] अत: समाज में नारी का स्थान निर्धारित करने के लिए वास्तव में हमें पूर्ण विकासशील सहयोग को प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि ही नहीं हृदय का वह संस्कार भी अपेक्षित रहेगा जिसके बिना मनुष्य का कोई सामाजिक मूल्य नहीं ठहरता।[४३] नारी और समाज पर विचार करने पर हमें लगता है " हमारी दीर्घकालीन पराधीनता में भी नारी ने अपने स्वभावगत गुण कम खोये हैं, क्योंकि संघर्ष में सामने रहने के कारण पुरुष के लिए जितना आत्महनन और विवश

---

४१. दीपशिखा, पृ० १८

४२ ,, पृ० १८

४३ ,, पृ० १८

समफ़ौता अनिवार्य हो जाता है, उतना नारी के लिए स्वाभाविक नहीं । पर दुर्बल पराजित पुरुष को अपने स्वत्व-प्रदर्शन के लिए नारी के रूप में एक ऐसा जीवन मिल गया जिस पर वह विपक्षी से मिली पराजय की फुंफलाहट भी उतार सकता है और अपने स्वामित्व की साध भी पूरी कर सकता है । ऐसी स्थिति में भारतीय नारी के लिए पुरुष-हृदय का विलास और निष्क्रिय जीवन का दम्भ दोनों का भार वहन करना स्वाभाविक हो गया, क्योंकि एक ने उसे कम मूल्य पर खरीदा और दूसरे ने उसके लिए ऊंचा से ऊंचा आदर्श स्थापित किया । [४४]

" शुद्ध उपयोगितावाद की दृष्टि से भी नारी श्रमिकवर्ग के समान ही दलित पीड़ित पर महत्वपूर्ण है । उसमें समष्टि चेतना का अभाव-सा है, पर व्यक्तिगत चेतना की दृष्टि से भी नारी ने इस प्रवृत्ति में अपमान का भी अनुभव किया है । [४५]

इसी अपमान और सामाजिक अधिकारों के प्रति सजग दृष्टि में " निश्चय किया कि वह उस भावुकता को आमूल नष्ट कर डालेगी ।" [४६] जिसने उसे मात्र रमणी और भार्या रूप दे रक्खा है ।

समाज में नारी की अच्छी स्थिति न होने के जो मूल कारण हैं वे महादेवी की दृष्टि में दो ही हैं । पहला है आर्थिक परतंत्रता और दूसरा है घर में निहित उसका क्षेत्र महादेवी स्त्री को न केवल घर की सीमित चहारदीवारी में बांधना चाहती हैं और न उनकी दृष्टि में वही नारी जिसने पारिवारिक दायित्वों को उपेक्षित रक्खा है । नारी के आधुनिक होने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसका रमणीत्व नष्ट हो" [४७] क्योंकि ऐसा कोई

---

४४ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२५

४५. ,, ,, पृ० ~~१२५~~ १२२

४६. श्रृंखला की कड़ियां पृ० ४२

४७. ,, पृ० ४३

त्याग या बलिदान नहीं जिसका उद्गम नारीत्व न रहा हो, अत: केवल त्याग के अधिकार को पाने के लिए अपने आपको रूग्ण बना देने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । [४८] जो कि उसके आधुनिक रूप में प्रकट होता है ।

आज भी हमारा स्त्री समाज कितने रोगों से जर्जर हो रहा है उसकी सन्तान कितनी अधिक संख्या में असमय ही काल का ग्रास बन रही है [४९] यह एक चिन्ता का विषय है । बिना इन कमियों को पूरा किये नारी को समाज में समुचित स्थान नहीं प्राप्त हो सकता ।

विवाह की समस्या भी नारी के लिए चिंता का विषय हो गया है । पुरूष प्राय: उच्चशिक्षा प्राप्त स्त्रियों से भय खाते हैं । [५०] तिलक के सम्बन्ध में भी नारी पक्ष को ही झुकना पड़ता है । [५१] "पत्नीत्व को व्यवसाय की तुला पर तोला[५२] जाता है । अपनी इस विवशता के कारण ही नारी पुरूष की सहयोगिनी नहीं समझी जाती । [५३] ऐसी अवस्था में समाज नारी का त्याग, साहस[५४] और वह सब कुछ भुला दिया जाता है जिन गुणों के कारण समाज में उसका स्थान है । सच तो यह है समाज ने उसके लिए सभी मार्ग रूद्ध कर दिये हैं । पत्नीत्व के वास्तविक अर्थ से तो निर्वासित थी ही जीविका के अन्य साधनों को भी अपनाने की स्वतंत्रता न पा सकी । [५५]

स्त्रियों को समाज में उचित स्थान प्राप्त कराने के निमित्त उनकी शिक्षा को उचित महत्व देना पड़ेगा । व्यवसाय के क्षेत्र में भी उनकी स्वतंत्रता उनका सामाजिक अधिकार कहा जा सकता है । वे अधिकार पक्ष से

---

४८. श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ० ५१
४९. ,, ,, पृ० ५७
५०. ,, ,, पृ० ६८
५१. ,, ,, पृ० ७८
५२. ,, ,, पृ० ७९
५३. श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ० ८०,९८
५४ ,, ,, पृ० ९७
५५. ,, ,, पृ० ९२

सार्वजनिक जीवन का भार भी संभाले साथ ही कर्तव्य पक्ष से गृह व्यवस्था को[५६] भी उपेक्षित न छोड़ें। समाज द्वारा लगाये गए उनके स्वावलंबन की उच्छृंखलता सम्बन्धी धारणा[५७] नितान्त भ्रामक है। समाज में स्त्रियों की अपनी महत्ता है।" ऐसा कोई त्याग या बलिदान नहीं जिसका उद्गम नारीत्व न रहा हो।[५८] नारी की इस महत्ता को भुलाया नहीं जा सकता। अब समाज को इस बात को भूल जाना चाहिए कि" उसे जीने की कला नहीं आती, केवल युग युगान्तर से चले आनेवाले सिद्धान्तों का भार लेकर वह स्वयं ही अपने लिए भार हो उठी है।"[५९] घर और बाहर का सामंजस्य स्थापित कर नारी समाज में अपना खोया हुआ महत्व पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है और महादेवी की दृष्टि में समाज की कुरीतियाँ एवं नाना बाधाओं को दूर कर शिक्षा, आर्थिक, स्वतंत्रता एवं खोये हुए सामाजिक स्थान को प्राप्त करते हुए भावी समाज में अपना महत्व पूर्ण स्थान बना लेगी ऐसी धारणा है।

रामकुमार जी ने अपने काव्य साहित्य में तो नहीं परन्तु गद्य साहित्य में इस ओर दृष्टिपात किया है। उनकी दृष्टि में नारी का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल की वह स्थिति जिसमें नारियों का जीवन आंसुओं के सिवाय और रह क्या गया ?[६०] या समाप्त हो गया है।" उनमें भी जागृति आ गई है। वे अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक हैं। दूसरी ओर उनकी धारणा है कि समाज की उन्नति भी नारी के जीवन (गत) .... संतोष[६१] ही आश्रित है क्योंकि बिना उसके समाज का भी पतन सम्राट बृहद्रथ की तरह हो जाता है।

समाज के निर्माण और उसके विकास में नारी जीवन का महत्वपूर्ण

---

५६. शृंखला की कड़ियाँ, पृ० ५६
५७. ,, पृ० ८३
५८. ,, पृ० ५१
५९. ,, पृ० १५०
६०. ऋतुराज, पृ० ५२
६१. ,, पृ० ४३

स्थान उपेक्षित नहीं किया जा सकता । यही कारण है कि उन्होंने शिवाजी के माध्यम से गौहरबानू का सम्मान दे अपनी विचारगत मान्यता की पुष्टि की है ।[६२] साथ ही नारी पात्र बानू के माध्यम से नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला है कि खुदा की खिलकत में क्या औरत इतनी गई बीती चीज की गई कि वह पत्थरों और कंकड़ों की भाँति लूट ली जाय ? बेजान चीजों के साथ इन्सान को बाँध लेना जिन्दगी की सबसे बड़ी तौहीनी है और यह सब भी है ।[६३]

आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों ने नारी की दयनीय सामाजिक स्थिति पर असंतोष व्यक्त करते हुए उसकी सामाजिकस्थिति में सुधार का संकल्प रक्खा । उनका विश्वास था कि बिना नारी जागरण के समाज की उन्नति नहीं हो सकती । उन्होंने तटस्थ स्थिति से नारी की दयनीय स्थिति के कारणों को देखा और उसमें सुधार का दृष्टिकोण रक्खा । अत: नारी जागरण की पृष्ठभूमि का निर्माण छायावादी कवियों की उपलब्धि कही जा सकती है ।

विधवा

परलोकवादी और भाग्यवादी विचारधारा का प्राधान्य कारण भारतेन्दु से पूर्व साहित्यकार के लिए विधवा चिन्ता का विषय नहीं थी । इसी कारण आदर्श या यथार्थ किसी भी समस्या के रूप में इसे साहित्य में स्थान नहीं मिल सका किन्तु भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की स्थिति सभी दृष्टियों से पूर्ववर्ती स्थिति से सर्वथा भिन्न थी । दोनों युग में कवियों ने विधवा की सामाजिक दशा पर चिन्ता प्रकट की, साथ ही वैधव्य को नारी जीवन का अभिशाप घोषित किया ।

---

६२. शिवाजी, पृ० ५०

६३. शिवाजी, पृ० ५०

छायावाद युग में विशेष सामाजिक मान्यताओं के साथ दलित एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति एक सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण मिलता है। छायावादी कवियों में, प्रसाद निराला पंत, महादेवी और रामकुमार वर्मा ने क्रमश: अपने काव्य एवं गद्य साहित्य में विधवा के सम्बन्ध में जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में लिखा है उससे उसकी सामाजिक स्थिति स्पष्ट होती है साथ ही कवियों का विधवा सम्बन्धी दृष्टिकोण भी पता चलता है। अत: विश्लेषणात्मक दृष्टि से उपर्युक्त सभी कवियों को क्रमश: देखना ही अभीष्ट होगा।

प्रसाद ने अपने काव्य में "चिर तृषित कंठ" [६४] "दुराशामयी विधवा" [६५] को जिस ढंग से प्रस्तुत किया उससे पता चलता है कि "हिन्दू-विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है।" [६६] "दिव्य राग.... छीना सुहाग" [६७] भी उसी तरह है जैसे गन्धविधुर अम्लान फूल।" [६८] पर तुलनात्मक दृष्टि से विधवा की अपेक्षा समाज में "विधुर" [६९] की स्थिति अच्छी कही जा सकती है। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए उसे ऐतिहासिक पीठिका में ही देखना अधिक उपयुक्त होगा।

प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में विधवाओं के पुनर्विवाह का उल्लेख मिलता है। साथ ही इस विवाह से सम्बन्धित सामाजिक मान्यताएं भी प्रतिष्ठितथीं। स्मृतियों तथा अन्य ग्रंथों में भी बड़ी उदार दृष्टिकोण

---

६४. लहर, पृ० ३४
६५. ,, पृ० ५२
६६. (ममता)-आकाशदीप, पृ० ममता कहानी से
६७. कामायनी, पृ० २४०
६८. ,, पृ० २४६
६९. लहर पृ० २७

मिलता है ।७०

---

७०. तैत्तिरीय संहिता, ६-६-४, ऐतरेय ब्राह्मण ३-१२ के अतिरिक्त अथर्ववेद के आधार पर भी कही जा सकती है । वशिष्ठ ने तो स्त्रियों के पुनर्विवाह के बहुत उदार नियम बनाये कि अपने मृत पति के साथ केवल मन्त्र-पाठ द्वारा विवाह हुआ और यौन संभोग द्वारा विवाह निष्पन्न न हुआ हो, तो उसका दूसरा विवाह किया जा सकता है । बौधायन-४-१-१७-१८ । अमितगति के धर्म परीक्षा (१०१४ ई०) के अनुसार " यदि एक बार स्त्री का विवाह हो भी गया हो और दुर्भाग्य से उसका पति मर जाए तो उसका दुबारा विवाह संस्कार कर देना चाहिए, किन्तु शर्त यह है कि मृत पति से यौन संभोग न हुआ हो । महर्षि व्यास ने भी ऐसी ही धारणा व्यक्त की है ।

एकदा परिणीतापि विपन्ने दैवयोगत:
भर्त्यक्षतयोनि: स्त्री पुन: संस्कारमर्हति
प्रतीक्षताष्ठ वर्षापि प्रसूता वनिता सति
अप्रसूता च चत्वारि प्रोषिते सति भर्तरि
पंचस्वेष्ठ गृहीतेषु कारणे सति भर्तृषु
न दोषो विद्यते स्त्रीणां, व्यासादीनामिदं वच:

--सर आर०जी०भण्डारकर के संकलित ग्रन्थ खंड २(१९०८)पृ०३१३

साथ ही पराशर ने भी विधवा विवाह से सम्मति प्रकट की ।

मनु-- " पुन: विवाहित विधवा से उत्पन्न (पुनर्भव) ब्राह्मण पिता का पुत्र ब्राह्मण नहीं हो जाता यद्यपि उसे व्यापारजीवी ब्राह्मण के समकक्ष माना जाएगा । ३--१८१

गौतम विधवा विवाहों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं क्योंकि वह विधवाके पुत्र को जो दूसरे पति से उत्पन्न हुआ हो, वैध उत्तराधिकारियों के अभाव में अपने पिता की एक चौथाई सम्पत्ति उत्तराधिकार में पाने का अधिकार देते हैं । विशिष्ठ, विष्णु की दृष्टि में भी विवाहितविधवा के दूसरे पति से उत्पन्न पुत्र का उत्तराधिकार की दृष्टि से वह गोदलिए पुत्र की अपेक्षा अच्छा माना गया है । बुलर स्मृति ग्रन्थ, २९-८, १७-१८, १५-७ । वशिष्ठ १७--५५-५६ और बौधायन २-२-४-७-९ के अनुसार विधवा को छ: मास जमीन पर सोना चाहिए । धार्मिक कृत्य करते हुए जमीन पर सोए और धार्मिक कृत्य करती रहे.... उसके बाद उसका पिता उसको मृत पति के सन्तान उत्पन्न करने के कार्य में नियुक्त करेगा ।

पर विधवाओं के पुनर्विवाह सन् ३०० ई० पूर्व से लेकर सन् २०० ई० के बीच की अवधि में अलोकप्रिय हो गए । यद्यपि उस समय भी बाल विधवाओं को पुनर्विवाह करने की अनुमति थी ।[७१] अलबेरूनी के अनुसार तो विधवाओं का पुनर्विवाह समाज द्वारा निषिद्ध था और यह निषेध बढ़ाकर बाल-विधवाओं पर भी लागू कर दिया गया था । जबकि पुरुषों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध न था । भक्तिकाल की विधवाओं की गिरीदशा का सहज अनुमान मीरां के साथ होने वाले अत्याचारों से लगाया जा सकता है । समाज इसके लिए उत्तरदायी है ।

छायावादी कवि प्रसाद के अनुसार विधवाओं की स्थिति सामाजिक दृष्टिकोण से नितान्त हेय थी । इस हेय स्थिति को स्पष्ट रूप से कंकाल और तितली में देखा जा सकता है । अनेक स्थलों पर ऐसे प्रसंग आए हैं जिसके अनुसार समाज में प्रतिष्ठित सुखदेव जैसे लोग भी थे जो विधवा राजकुमारी के आर्तनाद " मुझे सब तरफ से मत लूटो । मेरा मानसिक पतन हो चुका है । मैं किसी और की नहीं रही तो तुम्हारी भी न हो सकूंगी मुझे घर पहुंचा दो [७२] --पर पर ध्यान न देकर शेरकोट के खंडहरवाले पर भी " खोल दो राजो । दो बातें करके चला जाऊंगा --[७३] कह कर बेचारी विधवा को बदनाम करने से बाज नहीं आते । धामपुर बाजार के मंदिर के महन्त एक विधवा स्त्री पर ताक लगाये " पाशव भीषणता से उस पर आक्रमण कर "[७४] बैठता है । कंकाल का तांगेवाला भी बालविधवा घण्टी पर आंखें गड़ाये " मुझे तो वह कुल ही मिल जानी चाहिए [७५] कहता है, तो विजय को सोचना

---

७१. शान्तिपर्व, पृ० ७२--१२

७२. तितली, पृ० १५६

७३. ,, , पृ० १६०

७४. ,, पृ० १८३

७५. ,, पृ० १३५

आवश्यक हो जाता है कि " सचमुच घण्टी एक निस्सहाय युवती है, उसकी रक्षा करनी ही चाहिए । [७६]

विधवा स्त्री की समाज में एक निर्जीव देह की तरह स्थिति थी जिसे खुद को भी संवारने बनाने का अधिकार न था । विधवा होकर " राजो ने यह सब " अधिकार खो दिया था । वह बिन्दी लगाकर पंडित दीनानाथ की लड़की के ब्याह में नहीं जा सकती थी । यही कारण था कि दुःख से उसने बिन्दी मिटाकर चादर ओढ़ ली । [७७] इतना ही नहीं समाज में विधवा का पर पुरुष के साथ बात करना भी बुरा था । इसी कारण वृन्दावन में विजय और घण्टी की बदनामी होती है । [७८] ऐसी स्थिति में धर्मी स्त्री चन्दा द्वारा रखे गए " विधवा-विवाह सभा में चलकर हम लोग [७९] विवाह कर लें-के प्रस्ताव पर यदि श्रीचन्द्र अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को देखते हुए यह कहे कि " मैं यदि तुमसे विधवा-विवाह कर लेता हूं तो इस सम्बन्ध में अड़चन भी होगी और बदनामी भी [८०] तो प्रसाद द्वारा विश्लेषित " अनाथा विधवा " [८१] की सामाजिक स्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है कि उसे समाज में लांछित होकर जीवन बिताना पड़ता है ।

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य साहित्य में विधवा और उसकी समस्या का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है पर उनके गद्य साहित्य में इस समस्या को जिस रूप में उभारा गया है उससे इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है ।

तीन भाइयों में अकेली बहिन का बचपन में विवाह होने और वैधव्य भी आ[८२] पड़ने पर " जब पहले-पहल भाभियों ने पति की मृत्यु का दोषी उसी को ठहराया और पड़ोसिनों ने उसके किसी अज्ञात अभाव को लक्ष्य कर व्यंग-वर्षा की, तब उसका हृदय पीड़ा की अनुभूति के साथ वैसे ही चौंक पड़ा जैसे सोता हुआ व्यक्ति अंगारे के स्पर्श से जग जाता है । [८३] फिर

---

७६. कंकाल, पृ० १३५
७७. तितली, पृ० १५४
७८. कंकाल, पृ० ११०
७९. ,, पृ० १५५
८०. कंकाल, पृ० १५६
८१. प्रेम पथिक, पृ० २०
८२. अतीतके चलचित्र, पृ० ५६
८३. ,, ,, पृ० ५६

विधवा के इस अंधमय जीवन को " अतएव पुण्य फल से ५४ वर्ष के बाबा ने उद्धार का बीड़ा उठाया" [८४] यह समाज की विडंबना ही कही जायेगी ।

विधवा स्त्री परिवार में त्याज्य समझी जाती थी कदाचित उसके मूल में यह धारणा थी कि " उसी अनाचारिणी के कारण उनके पुत्र को जीवन से हाथ धोना पड़ा । [८५] यही कारण है कि अभागी स्त्री की इतनी एकान्त साधना भी उसके पति को..... न बचा सकी (पर) अंतिम क्षणों में पुत्र का मुख देखने जो पिता आये थे उन्होंने अनाहार से दुर्बल, अनेक रातों से जगी हुई, बधू की ओर भूल कर भी दृष्टिपात नहीं किया । [८६]

१६ वर्षीय विधवा युवती भी कितनी दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत करती है । हर तरफ जाने से निषेध रेखा के भीतर जब अपने एकाकीपन से ऊबती क्षण भर टाट के पर्दे के पीछे खड़ी होती" जहां से कुछ मकानों के पिछवाड़े और एक-दो आते जाते व्यक्ति ही दीख पड़ते थे, परन्तु इतना ही उसकी चंचलता का ढिंढोरा पीटने के लिए पर्याप्त था ।" फिर अबोध बालिका द्वारा युवती विधवा के सिर पर रक्खी गई रंगीन" लम्बी चौड़ी ओढ़नी को समाज कैसे बर्दाश्त करता । " छलबुद्धि से ससुर मानों गिरने से बचने का [८७] सहारा लेते हैं और क्रोध से जलते अंगारे जैसी आंखों वाली, खुली तलवार सी कठोर ननद [८८] द्वारा यंत्रणाओं से" अब तो वह तब सकी जब मन से ही नहीं, शरीर से भी बेसुध हो गई । [८९] आदि बातें समाज में विधवा की स्थिति की दयनीयता ही प्रदर्शित करती हैं ।

जहां तक विवाह का प्रश्न है विधवा विवाह का उल्लेख किन्हीं न किन्हीं अंशों में छायावादी कवियों द्वारा रचित साहित्य में मिल जाता है यह युग की वैचारिक उपलब्धि कही जायेगी । महादेवी जी के अनुसार —
" अब तो विधवा विवाह होने लगे हैं । बेचारी बिट्टो का भी विवाह कर दिया जाय तो कैसा हो ?" [९०] कहकर भाभियां इसलिए सद्भाव प्रकट करती हैं क्योंकि

---

८४. अतीत के चलचित्र, पृ० ५८

८५. ,, पृ० ८६

८६. ,, पृ० ८६

८७. अतीत के चलचित्र, पृ० ३०

८८. ,, पृ० ३२

८९. ,, पृ० ३३

९०. ,, पृ० ५७

" उसके भाई सतयुग के हैं, नहीं तो कौन एक निठल्ले व्यक्ति को बैठे बैठे खिला सकता है ।" ६१ यद्यपि उपर्युक्त कथन इस बात का साक्षी है कि विधवा विवाह प्रचलित था पर इस विवाह के प्रति समाज की अच्छी धारणा न थी । यही कारण है विधवा लछमिन" भक्तिन के भरे खेत, मोटी ताजी गाय भैंस और फलों से लदे पेड़ देख कर जेठ जिठौतों के मुंह में पानी भर आता है । ..... पर इन सबकी प्राप्ति तभी सम्भव थी जब भयाहू दूसरा घर कर लेती ।" ६२ किन्तु इस बात का प्रस्ताव आने पर वह फटकार कर कह देती है" हम कुकुरी-बिलारी ना होयं ।" ६३ यह कथन विधवा की दृढ़ आत्मिक शक्ति को भी प्रकट करता है । उपर्युक्त सन्दर्भ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महादेवी ने समाज की विधवा समस्या को पर्याप्त गहराई से विश्लेषित करने में अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता पायी है ।

निराला ने विधवा वर्ग को अपनी पूरी सहानुभूति देकर युगों से समाज में चली आ रही उसकी हेय स्थिति का प्रतिकार किया है । क्योंकि यह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी`६४ पवित्र है । अन्तर में उठी हुई भावनाओं की कचोट सहकर भी वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन दीख पड़ती है क्योंकि " क्रूर काल-ताण्डव` द्वारा प्रदत्त दु:खों के आवरण में लिपटी टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन"" दलित भारत की ही विधवा है । जिसकी जिन्दगी " व्यथा की भूली हुई कथा है क्योंकि" अबला हाथों का एक सहारा था वह भी अब न रहा । अब तो उस अनन्त पथ से करुणा की धारा में इसकी आंखें भीगती रहेंगी । वह" अति छिन्न हुए भीगे अंचल में" अपने को समेटे दुख-रूखे सूखे अधर—त्रस्त चितवन को" दुनियां की नजरों से दूर बचाकर अस्फुट स्वर में रोती रहेगी । उसे धीरज कौन देगा , समाज में उसे रोने तक का भी अधिकार नहीं । उसके दु:ख का भार कौन ले सकेगा ? दु:ख भी वह

---

६१. अतीत के चलचित्र, पृ० ५७
६२. ,, ,, पृ० ७
६३. ,, ,, पृ० ७
६४. परिमल, पृ० १२६

जिसका कुछ और छोर नहीं है।" समाज द्वारा किया गया उसकी दयनीय स्थिति पर उपेक्षा का यह अत्याचार भी कितना घोर और कठोर है, यही कारण है कि उन्होंने विधवा विवाह के समर्थन में ज्योतिर्मयी का विजय से विवाह करा दिया। [६५] जिससे युवती विधवाओं का प्रतिदिन बढ़ता आँसुओं का प्रवाह रुक सके। [६६]

पंत की विधवा विषयक दृष्टि निराला से सर्वथा भिन्न है। उन्होंने विधवा स्त्रियों की धार्मिकता पर आस्था प्रकट करते हुए गंगा तट पर बगुलों सी विधवाएं जप ध्यान में मग्न " है [६७] की उपमा दी। यह उपमा उनके श्वेत वस्त्र धारण करने तथा विवशता पूर्वक धार्मिक वृत्ति ग्रहण करने की द्योतक है जिसमें कृत्रिम जीवन के प्रति व्यंग्य भी निहित है। पर ऐसे त्याग, जप, तप, संयम, उपवास —के साथ जीवन व्यतीत करते हुए भी विधवा की धर्म साधना इस भू पर कठिन है। [६८] क्योंकि समाज में विधवा को 'परित्यक्त' लांछित और अनाथ संज्ञा से विभूषित किया जाता है। यही कारण है कि समाज द्वारा उपेक्षित वह निष्प्राण जीवन व्यतीत कर रही हैं। पंत को वैधव्य पंत को वैधव्य अपनी प्राण हीनता के कारण विशेष हेय दिखायी दिये।

रामकुमार वर्मा ने भी एक स्थल पर विधवा मीरा की भक्ति के प्रति अपनी आस्था प्रकट की पर उससे विधवा की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक अवस्था पर कोई भी प्रकाश नहीं पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकुमार वर्मा को छोड़ कर प्रसाद निराला, महादेवी और पंत ने विधवा सम्बन्धी यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत करते हुए उसकी दयनीयता के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। प्रसाद और महादेवी ने इसे एक सामाजिक जटिल समस्या के रूप में माना तो निराला ने

---

६५. लिली, पृ० ३६
६६. चतुरी प्रबंध प्रतिमा (बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां), पृ० १३१
६७. संध्या के बाद, पृ० ८६ (विवरण)
६८. लोकायतन, पृ० ३१७

उस उपेक्षित विधवा के प्रति अपनी पवित्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उसे सामाजिक प्रतिष्ठा देने का प्रयत्न किया । ~~पंत-ने-भ~~ इसके लिए विद्रोहात्मक स्वर अपनाया एवं उसे व्यावहारिक आदर्श के रूप में भी ग्रहण किया । प पंत ने मात्र एक उपमा के माध्यम से विधवाओं की बाह्यारोपित धार्मिक वृत्ति के आन्तरिक सत्य पर प्रकाश डाला ।

छायावादी काव्य साहित्य में निराला की विधवा[100] कविता उन्हें भारतेन्दुकाल और द्विवेदी युग से सीधे संपृक्त करती है, क्योंकि उन युगों में विधवा काव्य का एक प्रमुख विषय बनी । उसके प्रति विशेष सहा-नुभूति व्यक्त की गयी । पर द्विवेदी युगीन दृष्टिकोण सुधारवादी था और उसमें उपदेशात्मकता थी जो निराला की उक्त कविताओं में नहीं मिलती क्योंकि यह प्रवृत्ति छायावादी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं थी । छायावादी युग की चेतना दया प्रदर्शन और सुधारोपदेश के स्तर से ऊपर उठ चुकी थी और उसमें सहानुभूतिमय आत्मीयता पूर्ण भूमिका पर आधारित क्रान्ति की भावना का जन्म वैचारिक स्तर पर हो चुका था जोकि वास्तविक रूप से प्रतिफलित होने के लिए व्यग्र था ।

छायावादी कवियों द्वारा चित्रित विधवा की उपेक्षित और गिरी अवस्था का एक कारण बहुत कुछ उसकी आर्थिक स्थिति से और उसके सामाजिक अधिकारों से सम्बन्धित है । क्रमिक विकास की दृष्टि से विधवा समस्या को प्राचीन संदर्भ में भी देखा जाय तो हिन्दू परिवारों में वैदिक युग और उसके काफी समय बाद तक विधवा को भी कोई साम्पत्तिक अधिकार न थे किन्तु नियोग प्रथा द्वारा पुत्रोत्पत्ति के लिए सामाजिक समर्थन प्राप्त था । पर इस प्रथा के बन्द होने पर जब समाज में विधवा व की संख्या बढ़ने लगी तो याज्ञवल्क्य, विष्णु, बृहस्पति, कात्यायनादि स्मृतिकारों ने उसके साम्पत्तिक स्वत्वों का प्रबल समर्थन किया, १२०० ई० तक विधवा के ये सब अधि-कार मान्य हो गये ।[100] यद्यपि १२०० ई० से १६०० ई० तक इन अधि-

---

१०० ~~हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० ६०२ (हरिदत्त वेदालंकार~~)
अपरा · पृ- ५५-५६

कारों में बराबर परिवर्तन होते रहे । १९३७ ई० के हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्ति कानून द्वारा तो विधवा उत्तराधिकारी के लिए संयुक्त विभक्त परिवार का भेद भी समाप्त कर दिया गया । वैदिक युग में विधवा के निमित्त प्रयुक्त नियोग को आज घृणित समझाजाता है । छायावादी कवियों ने भी इस ओर कोई रुचि नहीं दिखाई । क्योंकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे कोई उल्लेख नहीं मिलता है जहां तक समाज सुधार का प्रश्न है स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसके लिए सम्मति प्रकट की पर आर्य-समाज ने नियोग की अपेक्षा विधवा विवाह श्रेयस्कर समझा । जिसे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजाराम मोहनराय ने १८५६ में वैधानिकता दिलाई । इन विचारों का प्रभाव छायावाद युग तक सक्रिय रहा । छायावादी कवियों में प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा द्वारा उनके साहित्य में चित्रित विधवा के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सम्पत्ति और अधिकार मिल जाने पर भी सदियों से ठुकराई विधवा की सामाजिक स्थिति पूर्णत: हेय रही । पर इनके अपने अधिकारों के सम्बन्ध में सजगता बनी रही जोकि उनकी जीवन गत चेतना और स्थिति के सुधार का परिणाम है ।

जहां तक विधवा विवाह का प्रश्न है प्रस्तुत विषय में छायावादी कवियों की विचारधारा के सम्बन्ध में डा० जगदीश गुप्त के शब्दों में ही कह सकते हैं कि "उनके साहित्य में मूल प्रश्न विधवा विवाह का नहीं था ।" यह समस्या विवाह की अपेक्षा प्रेम से सम्बन्धित है, बंधन की अपेक्षा मुक्ति से सम्बन्धित है ?

विधवा पर लगाये जाने वाले तत्कालीन सामाजिक बंधनों को देखते हुए ही उनसे मुक्ति के निमित्त विधवा विवाह या नारी स्वतंत्रता का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया जोकि वास्तव में व्यापक रूप से नारी स्वतंत्रता का अंग ही कहा जा सकता है ।

---

१०१. हिन्दू परिवार मीमांसा, हरिदत्त वेदालंकार, पृ० ८८

समाज में पुरुष की स्थिति

यदि छायावादी कवियों के साहित्य के आधार पर समाज में पुरुष की स्थिति का निर्धारण किया जाय तो पता चलता है कि छायावादी कवियों ने पुरुष की सामाजिक स्थिति में दयनीयता नहीं दिखाई । यद्यपि सत्ययुग (प्रारंभ से ६०० ई० पूर्व) गुरु युग (६०० ई० पूर्व से २०० ई० पूर्व) और देवता युग (२०० ई० पूर्व से १६०० तक)[१०२] की संभावना समाप्त हो गई थी और समाज में पुरुष मात्र पुरुष शब्द की सार्थकता ही व्यक्त करता था जिसका सामाजिक स्तर भारतेन्दु, द्विवेदी युग के अनन्तर छायावादी कवियों की दृष्टि में नारी के सामाजिक स्तर से समान था । शकुन्तला ५।२६ उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी अर्थात् स्त्रियों पर पति सर्वतोमुखी प्रभुता[१०२अ] के ~~अधि-~~ अधिकार की भावनायें अंत हो गया था ।

जहाँ तक आलोच्य विषय के कवियों के दृष्टिकोण से समाज में पुरुष की स्थिति का प्रश्न है इन्हें क्रमश: विश्लेषित करना ही अभीष्ट होगा ।

यदि प्रसाद जी की पुरुष विषयक सामाजिक धारणा पर विचार किया जाय तो कवि की दृष्टि में अवयव की दृढ़ मांस पेशियां, ऊर्जस्वित ... वीर्य अपार , स्फीत शिराएं, स्वस्थ रक्त" [१०३] और अधिकार सुख...... नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा [१०४] तथा महत्वाकांक्षा का मोती बर्बरता की गोद में पलता है ।" [१०५] जैसी सद्विचारधारा से प्रेरित पुरुष समाज अपने अधिकार और स्थिति के प्रति सतत् सजग दीख पड़ता है । उनकी धारणा है" जो विलासी न होगा वह भी क्या वीर है ? जिस जाति में जीवन न होगा वह ~~भी-क्या-वीर-है~~ विलास क्या करेगी ? जागृत राष्ट्र में ही विलास और कलाओं का आदर होता है ।"[१०६]

---

१०२. हिन्दु परिवार मीमांसा, ले० हरिदत्त वेदालंकार, पृ०
१०२ अ शाकुन्तलम् , कालिदास , ५।२६
१०३ कामायनी, पृ० ४
१०४. [illegible]
१०५. स्कन्दगुप्त त्रि०, पृ०६१
१०६. ,, पृ०६१

प्रसाद की दृष्टि में पुरुष की सामाजिक स्थिति का सम्बन्ध उसकी क्रियाशीलता से है। यह क्रियाशीलता उसे समाज में स्वेच्छाचारी बनने की ओर भी प्रवृत्त करती है जो एक प्रवृत्ति ही कही जा सकती है। यह मनु, विजय और चन्द्रदेव में देखने को मिलती है। पुरुष महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर भी भिखमंगा पेट के लिए अपने बेटे के पैर में बेड़ी भी डाल सकता है।[१०७] पर पुरुष की इस सामाजिक स्थिति का बहुत कुछ कारण उसके पुरुषत्व से भी सम्बन्धित है जिसकी प्रेरणा से अकेले मनु ने सारस्वत प्रदेश की सेना से और (उसके गद्य साहित्य में) नलराज ने[१०८] तुर्कों की सेना से भी युद्ध किया तथा उपन्यास में, मधुवन(नाटक में) चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त जीवन के अंतिम दिनों तक संघर्ष से जूझते रहे।

प्रसाद की दृष्टि में समाज में पुरुष अपने स्थान का अधिकारी तभी है जबकि वह कर्मशील हो। अपने आश्रितों की रक्षा कर सकता है। स्वजन और परिजन के भरण पोषण का प्रबन्ध कर सकता हो और समाज में न्याय की स्थापना में समर्थ हो, अन्यथा 'निर्लज्जता का दायित्व क्लीब कापुरुष[१०९] ' प्रवंचना के पुतले' स्वार्थ के घृणित प्रपंच[११०] में सने रामगुप्त से व्यक्ति का उसकी दृष्टि में समाज में कोई स्थान नहीं दीख पड़ता।

पंत की दृष्टि में समाज में पुरुष की स्थिति अपने पूर्व सामाजिक दृष्टियों से कुछ भिन्न है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि मनुष्य की युगीन सांस्कृतिक चेतना उसकी वस्तु-परिस्थितियों से निर्मित सामाजिक संबंधों का प्रतिबिम्ब है।[१११]

---

१०७. आँधी, पृ० ६१

१०८. ,, पृ० ७४

१०९. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६०

११०. ,, पृ० ५६

१११. आधुनिक कवि पंत, पृ० २५

कवि की धारणा है कि सामाजिक क्रियाशीलता से अधिक आज के पुरुषवर्ग में " प्रमाद " की मात्रा ही अधिक भरी है। स्वार्थ लू से उसमें मनुजत्व की भावना का नाश हो गया है। "[११२] " दिन-रात वह नितान्त अपने तक ही सीमित रहने का प्रयत्न करता है।[११३] यही कारण है आज के संघर्षमय जीवन में " अन्न-वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित[११४] व्यक्ति " अकाल वृद्ध.... यौवन[११५] को प्राप्त समाज में अपने से ऊंचा कोई स्थान नहीं बना पाता।" घर-घर के बिखरे पन्नों में नग्न क्षुधार्त कहानी"[११६] से पुरुषत्व की टूटी आस्था उसे " नियति कर्म के, नियति कर्म फल-जीवन चक्र सनातन"[११७] में विश्वास करने को विवश करती है। मध्यवर्गीय मानव सामाजिक चिन्ताओं से अधिक यशकाम, व्यक्तित्व प्रसारक, पर हित निष्क्रिय[११८] मानव पशु "[११९] बन समाज में आज वह निद्रा, भय, मैथुनाकार[१२०] बना अपने पुरुषत्व की सक्रियता खो रहा है।

पर पुरुष को अपनी वस्तु स्थिति का ध्यान तब आया जब उसका सामाजिक पतन एक सीमा तक पहुंच गया और उसके पुरुषत्व ने ही उसे लांछित किया।[१२१] अब उसका जागृत पुरुषत्व एक नये समाज की सृष्टि चाहता है जिसमें " जात-पांत, कुल-वंश का आडम्बर, विवाह-सम्बन्धी पुश्तैनी रीति-रस्म, और परदा... घृणा की वस्तु है वह कुछ रीति-रिवाजों के डैने तोड़-मरोड़कर समाज के जीर्णवृक्ष की ठूठी टह-नियों से उनकी उलूक बस्तियों को जड़ से उखाड़ फेंक देना अपना कर्तव्य समझा

---

११२. ग्राम्या, पृ० ३०
११३. ,, पृ० २८
११४. ,, पृ० १६
११५. ,, पृ० १३
११६. ,, पृ० १४
११७. ,, पृ० १५
११८. चिदंबरा, पृ० ५१
११९. ,, पृ० ५४
१२०. ,, पृ० ४१
१२१. ,, पृ० १६६

है ।[१२२] कवि भी ऐसे समाज की सृष्टि[१२३] में पुरुषत्व से उचित दिशा चाहता है ।

निराला ने समाज में पुरुष की स्थिति को उसकी व्यक्तिगत सत्ता के रूप में ही अधिक विश्लेषित किया है अर्थात् उनके साहित्य में समाज के सामान्य पुरुष की सामाजिक स्थिति से साहित्यकार पुरुष की सामाजिक स्थिति पर अधिक प्रकाश पड़ता है । पर यह स्थिति व्यक्तिगत रूप से विश्लेषित की गई होने पर भी एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है इसमें संदेह नहीं किया जा सकता ।

पुरुष संघर्षशील रहा है । अपनी अभिमान प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ही समाज में उसने महत्वाकांक्षा की प्राप्ति की है । महत्वाकांक्षा की मात्रा नारी वर्ग से पुरुष वर्ग में अधिक है । यही कारण है कि पुरुष समाज में अपने स्वार्थ से प्रेरित हो जघन्य कर्म करने की ओर भी प्रवृत्त हो उठता है ।

निराला की दृष्टि में समाज में पुरुष जीवन संघर्षमय है । और इस संघर्ष की प्रवृत्ति ने ही उसे सहनशीलता की आदत डाल दी है यथा —

जब कड़ी मारें पड़ीं दिल हिल गया ,
पर कभी चूं भी न कर पाया यहां ।[१२४]

क्योंकि दुःख हृदय का क्षोभ लिए जगत की ओर ताककर[१२५] कुछ न कहने की ही आवश्यकता दीख पड़ी । क्रूर यहां शूर कहलाते हैं पर स्वार्थ की दृष्टि ही उन्हें ओछे परार्थ करने को प्रेरित करती है ।[१२६] यह पुरुष वर्ग की दुर्बलता है और ऐसी मनोवृत्ति से समाज के उत्थान की कौन कहे स्वयं पुरुष वर्ग ही उससे अवनति की ओर अग्रसर होता जा रहा है ।

---

१२२. पांच कहानियाँ(पंत) , पृ० ६१
१२३. ग्राम्या, पृ० १०२
१२४. अपरा, पृ० १५८
१२५. ,, पृ० ११३
१२६. अपरा, पृ० ११४

पर शायद ऐसी मनोवृत्तियों का कभी न अंत होगा । [१२७] इसे सिर्फ एक उन्माद की संज्ञा दी ।

आज उसे सांस्कृतिक गौरव और उत्थानगत परम्परा का ध्यान नहीं रहा ।

वाट जोहते हो तुम मृत्यु की

अपनी सन्तानों से बूंद भर पानी को तरसते हुए का कथन चरितार्थ करते हैं ।

अत: आज पुरुष वर्ग जिस स्थिति से समाज में गुजर रहा है वह न उसके उत्थान में बाधक है वरन् घृणित भी है यही भावना निराला के गद्य साहित्य में (कहानी साहित्य) चतुरी चमार और (उपन्यास) ' प्रभावती ' के ' महराज ' [१२६] में देखा जा सकता है ।

डा० रामकुमार वर्मा के काव्य साहित्य से तो नहीं पर गद्य साहित्य से पुरुष की सामाजिक स्थिति का पता चलता है । पुरुष की सामाजिक स्थिति का निर्माता उसकी कर्मशीलता है । परिस्थितियों पर वह विजय करता हुआ अपनी सामाजिक स्थिति का निर्माण करता है ।

" पुरुष बाध्य नहीं किया जा सकता है । " [१३०] कठिनाइयों को वह साहस के साथ भेलता है । डा० वर्मा की दृष्टि में पुरुष की सामाजिक स्थिति नारी के समकक्ष है । पर पुरुष की महत्वाकांक्षा ही उसे सामाजिक स्तर से च्युत करने में सहायक है जिसे करुणा के शब्दों में " जिस स्कूल या कालिज में मुझे काम मिला उसके अधिकारी और मैनेजर मुझे ऐसी दृष्टि से देखते थे कि मैं सम्मान के साथ वहां नहीं रह सकती थी । नौकरी पाने के कुछ दिन बाद ही मुझे नौकरी छोड़ देनी पड़ती थी । ये पढ़े-लिखे लोग इतने पतित होते हैं यह मैं नहीं जानती थी । [१३१]

---

१२७. ध्वनि, पृ० ११०

१२८. अपरा, पृ० ११२

१२६. प्रभावती, पृ० ७७

१३० बालमित्र, पृ० १५७

१३१. मयूरपंख, पृ० २६८

उपर्युक्त वाक्य से पुरुषवर्ग की लोलुपता और उसकी कर्त्तव्यहीनता पर भी प्रकाश पड़ता है और साथ ही पुरुष की क्रियाशीलता के पतन का भी । आज यह भूल गया है कि उसके इस शब्द की सार्थकता क्या है और "ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में ब्रह्म भावना में पुरुषत्व "१३२ की है ।

महादेवी के काव्य या गद्य साहित्य से पुरुष वर्ग की सामाजिक स्थिति पर प्रत्यक्ष रूप से प्रकाश नहीं पड़ता । पर यह अवश्य है कि उन्होंने पुरुष को सत्ताधारी उस वर्ग के रूप में देखने का प्रयास किया है जो कि स्त्रियों की गिरी हुई अवस्था का मूल कारण है ।

इतना अवश्य है कि महादेवी की धारणा में पुरुष वर्ग महत्वाकांक्षा के अधिकार वर्ग से सम्बन्धी कुछ ऐसी विशेष रेखाएं खींच दी हैं जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है । पुरुष स्थित महत्वाकांक्षा के बावजूद भी वह समाज में स्थित अपनी संस्कृति गौरव-गरिमा को सुरक्षित करने में सक्षम न हो सका । यही कारण है कि समाज में पुरुष की वह स्थिति नहीं रही जो जीवन के लिए स्तुत्य कही जा सकती है । उसमें नाना कुरीतियां घर कर गई हैं ।

नारी पुरुष की सापेक्षिक महत्ता

सापेक्षिक दृष्टि से यदि नारी पुरुष की महत्ता पर सम्यक दृष्टि डाली जाय तो छायावादी कवियों के दृष्टिकोण परम्परागत पुरुष और नारी के कर्मक्षेत्र में स्पष्ट अन्तर दीख पड़ता है ।

प्राचीन भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में तो पुरुष का कार्यक्षेत्र घरेलू कार्य तक सीमित था । इस वर्गीकरण का आधार था प्रकृति पुरुष का पुरुषत्व और नारी का नारीत्व । जिसमें पुरुष शक्ति, श्रम, ओज कर्मठता संघर्ष, साहस, और बल का प्रतिनिधित्व करता है और नारी मृदुता

---

१३२. वारुमित्रा, पृ० १५३

करुणा, क्षमा, दया, गृह व्यवस्था, सहनशीलता और संतोष की [१३३] ।
पुरुष आर्थिक पक्ष का विधायक है और नारी उसकी अंतरंग व्यवस्था का ।
स्त्री -पुरुष की सहचारी मात्र है । अर्धांगिनी और सहधर्मिणी नाम से
सम्बोधित की जाती है । पहले धार्मिक आयोजनों में नारी पुरुष की समकक्षता
में थी । कालान्तर में स्थिति बदलने लगी समाज की विभिन्न परिस्थितियों के
कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में एक गिराव आता गया । फिर भी
निर्णयामृत के अनुसार तो —

भार्यां पत्युव्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिव्रतम् ।
धर्मशास्त्र भी ' नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो—

नव्रतं नाप्युपोषितम ।
पतिं शुश्रूयते येन तेन स्वर्गे महीयते ' ।

की संज्ञा से विभूषित किया । केशवदास के अनुसार तो धर्म कर्म कछु की गई ,
सफल तरुणि के साथ । ता बिन जो कछु की गई, निस्फल सोई नाथ ।। [१३४]
दोनों की सापेक्षिक महत्ता पर प्रकाश डालता है ।

जहां तक प्रसाद के दृष्टिकोण का प्रश्न है कवि ने अपने पात्रों द्वारा
यह संकेत किया है कि किन सापेक्षिक वृत्तियों को अपनाने से व्यष्टि और समष्टि
दोनों का कल्याण हो सकता है जिसमें उन्होंने श्रद्धा द्वारा " एक आदर्श नारी
का चित्र प्रस्तुत किया है । " [१३५] और पुरुष रूप में मनु का ।

प्रसाद जी की स्त्री पुरुष की अन्योन्याश्रित सापेक्षिक दृष्टि के
कारण ही —

---

१३३. कामायनी, पृ० ६७
१३४. केशव कौमुदी, पृ २।२३६

कहाँ ले चली हो अब मुझको
श्रद्धे ! मैं थक चला अधिक हूं ,
साहस छूट गया है मेरा
निस्संबल भग्नाश पथिक हूं " [१३६]

के द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि पुरुष और नारी की जीवनागत स्थिति अन्योन्याश्रित है । जब पुरुष थकता है तो उसे नारी से ही संबल प्राप्त होता है ।

काव्य के अतिरिक्त गद्य साहित्य में भी यही दिखाया गया है कि पुरुष कर्मक्षेत्र के अन्तर्गत अन्तत: स्त्री के समक्ष ही विश्राम पाता है चाहे वह तितली के मधुवन की तरह हो या एक कंकाल के रूप में । यथा -- " तितली उतने ही से तो नहीं रुकी उसने और भी देखा , सामने एक चिरपरिचित मूर्ति ! जीवनयुद्ध का थका हुआ सैनिक मधुवन विश्राम शिविर के द्वार पर खड़ा था [१३७] और" मंगल ने देखा-- एक स्त्री पास ही मलिन वसन में बैठी है । उसका घूंघट आंसुओं से भीग गया है । और निराश्रय पड़ा है एक --कंकाल !" [१३८]

अत: मनु हो या श्रद्धा मधुवन हो या तितली, कंकाल का विजय का थका व्यक्तित्व भी नारी की ही स्नेहपूर्ण छाया में ही विश्राम , पाता है । इसे इनकार नहीं किया जा सकता ।

काव्य और उपन्यास साहित्य में तो परोक्ष रूप से पर अजातशत्रु नामक नाटक में इस बात की ओर प्रत्यक्ष संकेत किया है -- यथा --

" विश्व भर में सब कर्म सबके लिए नहीं है इसमें कुछ विभाग है अवश्य । सूर्य अपना काम जलता-बलता हुआ करता है और चन्द्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है । क्या उन दोनों से परिवर्तन हो सकता है ? मनुष्य कठोर

---

१३६. कामायनी, पृ० २७१

१३७. तितली, पृ० २७०

१३८. कंकाल, पृ० २८०

परिश्रम करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है । और वह, स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना के अभय-वरदहस्त का आश्रय, मानव-समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एक मात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है । उसे छोड़ कर असमर्थता, दुर्बलता प्रकट करके इस दौड़-धूप में क्यों पड़ती हो देवि ! तुम्हारे राज्य की सीमा विस्तृत है और पुरुष की संकीर्ण । कठोरता का उदाहरण है पुरुष, और कोमलता का विश्लेषण है — स्त्री जाति । पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है — जो अन्तर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं । इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मन-मोहक आवरण दिया है — रमणी का रूप । संगठन और आधार भी वैसे ही हैं । उन्हें दुरुपयोग में न ले आओ । क्रूरता अनुकरणीय नहीं है, उसे नारी-जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा । फिर कैसी स्थिति होगी, यह कौन कह सकता है ।[१३६]

इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री पुरुष की दासता स्वीकार करे, क्योंकि ऐसा स्वीकार करने पर प्रसाद स्त्री-पुरुष की सापेक्षता सम्बन्धी दृष्टिकोण से हम अलग हो जायेंगे । वस्तुत: उन्होंने यह स्वीकार किया है कि दोनों की स्वतंत्र सत्ता है । उनके कार्यक्षेत्र अलग अलग हैं पर दोनों की स्थिति अन्योन्याश्रित है । उनकी सापेक्षिक महत्ता से ही जीवन के क्रिया-कलाप संतुलित रीति से चल सकते हैं । अन्यथा नहीं ।

जहां तक निराला की विचारधारा का प्रश्न है उन्होंने नारी पुरुष की सापेक्षिक महत्ता को दृष्टिगत करते हुए अपने निबंध साहित्य में स्पष्ट लिखा है कि "प्राचीन क्षीणता ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की ही तरह घेर रक्खा है । घर की छोटी-सी सीमा में बंधी हुई स्त्रियां आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य, सब कुछ भूली हुई हैं । उनके साथ जो पाशविक अत्याचार किए जाते हैं, उनका कोई

---

१३६. अजातशत्रु, पृ० १२५

प्रतिकार नहीं होता । वे चुपचाप आंसुओं को पीकर रह जाती हैं । उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन रहा है । उन्हें जो यह शिक्षा दी जाती है कि तुम्हें अपने पुरुष के सिवा किसी दूसरे का मुख नहीं देखना चाहिए, यह एक अन्धकार जीवन की टार-पेंटिंग है । [१४०]

इतना ही नहीं" हम यह देखते हैं कि किसी कारण पुरुष से एक दीर्घकाल के लिए विच्छेद हो जाने पर स्त्री बिलकुल निस्सहाय हो जाती है, अपने घर का काम नहीं संभाल पाती, अनेक प्रकार की असुविधाएं आ जाती हैं, बदमाशों की उन पर दृष्टि पड़ती है, मन ही मन वे डरी रहती हैं, घर उन्हें जेल से भी बढ़कर हो जाता है, यह सब न होगा । पुरुष के अभाव में स्त्री स्वयं उसका स्थान ग्रहण करेगी ।" [१४१] क्योंकि स्त्री-पुरुष की सापेक्षिक महत्ता के दृष्टिकोण से निराला की धारणा है कि समाज में स्त्री की गिरी दशा का उत्कर्ष अनिवार्य है । दोनों की महत्ता एक दूसरे, पर आश्रित है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं ।" अब आवश्यकता है, कि एक मनुष्य के पुतले में, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, कोमल और कठोर दोनों भावों का विकास हो । दोनों के लिए एक ही धर्म होना चाहिए । पुरुष अभाव में स्त्री हाथ समेटकर निश्चेष्ट बैठी न रहे । उपार्जन से लेकर संतान-पालन , गृह-कार्य आदि वह संभाल सके, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए । पहले दोनों के भाव और कार्य अलग-अलग थे, अब दोनों के भाव और कार्यों का एक ही में साम्य होना आवश्यक है । इस तरह गार्हस्थ्य धर्म में स्वतंत्रता बढ़ेगी । [१४२] साथ ही समाज में स्त्रियों की गिरी हुई अवस्था में सुधार होगा और तब स्त्री व० पुरुष की नारी पुरुष की सापेक्षता का उचित मूल्यांकन हो सकेगा ।

---

१४०. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १३१
१४१. ,, पृ० १३१
१४२. ,, पृ० १३०

पंत ने भी स्त्री-पुरुष की सापेक्षिक महत्ता को स्वीकार किया है। अब वह युग नहीं रहा' जो स्त्री का यौवन टुकड़ों में क्रय कर सकता।" [१४३] " सामंत युग के स्त्री-पुरुष संबंधी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यंत संकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदंड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बालविधवा अपनी छाती से चिपकाए हुए हैं और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या।" न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति' के उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं और वह पुरुष की संपत्ति समझी जाती रही है।... सामंत युग की नारी नर की छाया मात्र रही है।" [१४४] अब वह उस रूप से विद्रोह कर चुकी है जिसमें —

जर्जर हो जाता उसका तन।
ढह जाता असमय यौवन धन।
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हंस खेला कुछ क्षण।। [१४५]

यही कारण है कि आज वह इस रूप में प्रतिष्ठित हो सकी जिसमें कवि ने यह स्वीकारा किया कि —

पृथक् न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के संग उसने पग। [१४६]

और कवि ने युवक युवती समान। [१४७] की सापेक्षिक महत्ता स्वीकार करते हुए उसे कमकर्षिणी नरों की [१४८] संज्ञा दी क्योंकि — एक ओर

---

१४३. रजतशिखर, पृ० १७
१४४. आधुनिक कवि, पृ० २६
१४५. चिदंबरा, पृ० ६६
१४६. स्वर्णकिरण, पृ० ११३
१४७. ,, पृ० ८४
१४८. ग्राम्या, पृ० ८३

उसने----

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ
जो बटा रही तुम जग जीवन का काम काज।" १४६

पर पंत का जीवनदर्शन जितना 'लोकायतन' में अभिव्यक्त है उतना इसके पूर्व नहीं। इसमें भी उन्होंने नर-नारी की सापेक्षिक स्थिति पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है।

बाह्य परिवेश से इस बात का स्पष्टीकरण होता है कि प्रकृति-पुरुष द्वारा नर-नारी को एक-मंगल पूरित घट दिया जिससे इस सृष्टि का विकास हुआ। कवि सृष्टि का हर सुख नर नारी[१५१] के निमित्त ही मानता है। पर काव्य भी वह बल इस बात का भी स्पष्ट निर्देश करता है कि नर नारी का संबंध केवल प्रणय और मोहा[१५२] के निमित्त ही नहीं है। वरन् उनकी सार्थकता कुटुम्ब निर्माण और उसके पालन-पोषण में है। जिसे स्वयं कवि ने शोभा में साकार, सत्य, ईश्वर[१५३] तथा नव मानवता के रूप में भी स्वीकार किया है। [१५४]

काव्य की अपेक्षा महादेवी ने इस विषय पर गद्य साहित्य में स्पष्ट निर्देश किया है। अत: उपर्युक्त विषय पर महादेवी वर्मा के दृष्टिकोण को देखें तो कहा जा सकता है कि महादेवी जी की दृष्टि स्त्रियों को पुरुषों से किसी भी मात्रा में कम की महत्ता स्वीकार नहीं करती। वह दोनों को समान महत्ता से देखती हुई वर्तमान स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को देखकर असंतुष्ट दीख पड़ती है। उनकी धारणा है कि नारी को समाज में उचित स्थान न मिलने में पुरुष का भी हाथ रहा है।" पुरुष ने.... केवल

---

१४६. ग्राम्या, पृ० ८४
१५०. लोकायतन, पृ० २
१५१. ,, पृ० ४६२
१५२. ,, पृ० ४७८
१५३. ,, पृ० ५००
१५४. ,, पृ० ५०३

मनोरंजन के लिए जीवित, रहनेवाली, नारी के प्रेयसी भाव को और अधिक मधुर बनाने के लिए उसे भावोद्दीपक कलाओं की आराधना का अधिकार दिया। ..... पुरुष ने उसे कल्याण के लिए स्वीकार ही नहीं किया, वरन् बाह्य संसार के संघर्ष तथा शुष्कता से क्षण भर अवकाश पाने के लिए मदिरा के से क्षण भर अवकाश पाने के लिए मदिरा के समान उसके साहचर्य का उपयोग किया।"[१५५] उनकी धारणा है —"भारतीय पत्नी देश के लिए गरिमा की वस्तु रही होगी, परन्तु आज तो विडम्बना मात्र है।"[१५६] यह एक भूल है कि "यदि कन्याओं को स्वावलम्बिनी बना देंगे तो..... अराजकता उत्पन्न हो जायगी।[१५७] अपनी विवशता के कारण ही वे किसी पुरुष की सहयोगिनी नहीं समझी जातीं।"[१५८] पर अब "स्त्री ने सभी कार्य-क्षेत्रों में पुरुष के समान ही सफलता पा ली। यह अब तक प्रत्यक्ष हो चुका है कि वह अपनी कोमल भावनाओं को जीवित रख कर भी कठिन से कठिन उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकती है, दुर्वह से दुर्वह कर्तव्य का पालन कर सकती है और दुर्गम से दुर्गम कर्म-क्षेत्र में ठहर सकती है। शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की शक्तियों में ऐसा सामंजस्य है, जो उसे कहीं भी उपहासात्मक न बनने देगा।[१५९]

पुरुष अब तक जिस वातावरण में सांस लेतारहा है वह स्त्री को दो ही रूपों में बढ़ने दे सकता है, माता और पत्नी।[१६०] नारी जाति केवल रूप और वय का पाथेय लेकर संसार यात्रा के लिए नहीं निकली।"[१६१] यह एक भ्रम है यही कारण है कि भारतीय स्त्री भी एक दिन विद्रोह कर ही उठी। उसने भी पुरुष के प्रभुत्व का कारण अपनी कोमल भावनाओं को समझा और उन्हीं को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। अनेक सामाजिक रूढ़ियों और परम्परागत संस्कारों के कारण उसे पश्चिमीय स्त्री के समान न सुविधाएं मिलीं और न सुयोग, परन्तु उसने उन्हीं को अपना मार्ग प्रदर्शक बनाना निश्चित किया।"[१६२] इतना ही नहीं स्त्री की स्थिति के विषय

---

१५५. शृंखला की कड़ियाँ, पृ० ८६
१५६. ,, पृ० ८५
१५७. ,, पृ० ८३
१५८. ,, पृ० ८०
१५९. ,, पृ० ६०
१६०. शृंखला की कड़ियाँ, पृ० ७४
१६१. ,, पृ० ४४
१६२. ,, पृ० ४५

में कुछ भी निश्चित होने के पहले पुरुष को अपनी स्थिति को निश्चित कर लेना होगा । समय अपनी परिवर्तनशील गति में उसके देवत्व और स्त्री के दासत्व को बहा ले गए हैं अब या तो दोनों को विकासशील मनुष्य बनाना होगा या केवल यन्त्र । [१६३] " भारतीय पुरुष जीवन में नारी का जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ नहीं हो सकता [१६४] । साथ ही जहाँ तक " स्थिति का प्रश्न है वह आज इतनी संज्ञाहीन और पंगु नहीं कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य और गति के सम्बन्ध में सोच ले । [१६५]

अत: स्पष्ट दीख पड़ता है कि महादेवी ने स्त्री-पुरुष की सापेक्षिक महत्ता को स्वीकार करते हुए स्त्री कोसमाज में उचित स्थान दिलाने का विचारिक निष्कर्ष रक्खा जिसे साथ ही अब तक स्त्री के प्रति किये गए अधिकार या महत्व सम्बन्धी अत्याचारों पर क्षोभ - व्यक्त किया । उन्होंने यह निर्देश किया कि स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं और वे स्त्री-पुरुष की सापेक्षिक महत्ता को संतुलित रखने के लिए प्रयत्नशील भी हैं ।

डा० रामकुमार वर्मा ने काव्य साहित्य में तो नहीं पर गद्य साहित्य में अवश्य इस विषय पर प्रकाश डाला है । उनकी दृष्टि में पुरुष और नारी [१६६] की महत्ता सापेक्षिक दृष्टिकोण से मूल्यांकित की गयी है । प्रकृति ने दोनों को अन्योन्याश्रित पूर्णता के निमित्त ही निर्माण किया और दोनों के प्रकृतिगत गुणों का विभाजन भी इसी दृष्टि से किया है । " पुरुष इसलिए कठोर है कि वह बाहरी शक्ति से स्त्री की कोमलता की रक्षा कर सके और स्त्री इसलिए कोमल है कि वह कठोर पुरुष को पत्थर न बन जाने दे । [१६७]

आलोच्य विषय के अन्तर्गत आने वाले सभी कवियों ने नारी-

---

१६३. शृंखला की कड़ियां, पृ० ७४

१६४. ,, पृ० ५२

१६५. ,, पृ० ५०

१६६. सप्तकिरण, पृ० ४६

१६७. ,, पृ०४६

पुरुष की सापेक्षिक महत्ता को स्वीकार किया । समानता का यह स्तर न भारतेन्दु काल में था और न द्विवेदी-काल में । परन्तु दोनों ही युगों नारी की गिरी हुई सामाजिक दशा पर मात्र क्षोभ प्रकट किया था । छायावादी कवियों की दृष्टि में नारी की यह स्थिति पुरुष के विकास में भी सहायक न थी । क्योंकि समाज की उन्नति में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है फिर भी यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता का दृष्टिकोण इन कवियों में नहीं मिलता । पर इतना अवश्य है उन्होंने अपने पूर्व युगीन मनोवृत्तियों से भिन्न यह स्वीकार किया कि दोनों की स्वीकृति सापेक्षिकता जीवन के लिए अवश्य आवश्यक है । ये दोनों जीवन रूपी रथ के लिए दो पहिये के समान हैं । इसमें किसी एक को भी प्रधानता देना छायावादी कवियों की दृष्टि में संतुलन खोना और वस्तु-स्थिति की सत्यता को अस्वीकार करना होगा ।

पर उपर्युक्त पाँचों कवियों के नारी पुरुष के सापेक्षिक दृष्टिकोण में समानता के साथ विभिन्नता भी है । प्रसाद नारी पुरुष के कार्य क्षेत्र को अलग मानते हुए सापेक्षिक महत्ता को स्वीकार करते हैं, क्योंकि प्रकृतिगत संरचना ने एक दूसरे को अपूर्ण बनाते हुए दोनों में एक दूसरे के पूरक गुणों का सृजन किया है । पर निराला नारी-पुरुष की प्राकृतिक सत्ता को स्वीकार करते हुए भी नारी को मात्र गृह तक सीमित न न रखते हुए उसे अपने विकास में पुरुषोचित उन गुणों को समाहित करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जिनमें उनकी जीवन प्रक्रिया पुरुष की सत्ता का सहारा लिए बिना भी अपनी उन्नति करने में समर्थ हो ।

पंत की दृष्टि में अब नारी अपने पूर्व स्थिति से क्षुब्ध हो विद्रोह कर उठी है । उसने अपनी स्थिति का भान पा लिया है और अब अपना विकास कर नर के साथ समानता का अधिकार हर क्षेत्र में लेने को प्रस्तुत है । कवि ने तो दोनों में सत्य और ईश्वर का भी वास बताया है साथ ही उन्हें नव मानवता के सृजक के रूप में स्वीकार किया है । रामकुमार जी ने भी दोनों की सापेक्षता का आधार प्रकृतिगत विभाजन ही रखा ।

पर इस सापेक्षिक दृष्टि में नारी स्थिति की विडम्बना को लेकर जितना क्षोभ महादेवी को है उतना आलोच्य विषय के किसी कवि को नहीं। उन्होंने नारी की गिरी दशा के लिए पुरुष को ही दोषी ठहराया। महादेवी भी स्त्री पुरुष की सापेक्षिक विचारधारा को स्वीकार करती हैं पर उनकी दृष्टि में अब वह युग नहीं रहा जिसमें स्त्रियों के विकास के लिए पुरुषों का मुखापेक्षी होना पड़े। स्त्रियों ने सभी क्षेत्रों में पुरुषों की तरह ही सफलता प्राप्त की है और शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक किसी भी क्षेत्र में वह पुरुष से कम सहिष्णु नहीं है।

फिर भी नारी पुरुष की सापेक्षता अन्योन्याश्रित ही कही जायेगी। स्त्री-पुरुष की इसी सापेक्षिक महत्ता की स्वीकृति ही आलोच्य कवियों की विशेषता कही जा सकती है।

खण्ड ३

अध्याय १३—छायावादी कवियों के प्रेरक व्यक्तित्व

प्रेरक व्यक्तित्व

छायावादी काव्य युग की प्रमुख विभूतियों से प्रभावित हुआ और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस प्रभाव की अभिव्यक्ति भी हुई । प्रभाव का यह रूप धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक, राजनीतिक, नैतिक और वैयक्तिक स्तर पर ही पड़ता है ।

यहाँ आलोच्य विषय के छायावादी कवियों के उन प्रेरक व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा दर्शनीय है । जिनके प्रति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उन्होंने कृतज्ञता ज्ञापन किया है । यह कृतज्ञता उनकी नम्रता का भी परिचायक है । साथ ही इस बात का भी द्योतक है कि उन्होंने साहित्य समाज और रूढ़ि संस्कृति से भी विद्रोह करके भी परम्परागत सांस्कृतिक उपलब्धियों को नकारा नहीं, वरन् सांस्कृतिक उपलब्धि के प्रतीक धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय साहित्यिक व्यक्तित्वों के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं । जिन्हें आलोच्य विषय के कवियों के अनुसार देखना क्रमशः अभीष्ट होगा ।

अपने काव्य साहित्य में प्रसाद ने धार्मिक तत्वों के प्रतीक रूप में कृष्ण[१] जमदग्नि,[२] कण्व,[३] युधिष्ठिर[४] प्रेम के आदर्श रूप में पुरूरवा[५] उर्वशी,[६] दुष्यन्त,[७] शकुन्तला,[८] वीरता के रूप में भीष्म,[९] अर्जुन,[१०] बभ्रुवाहन[११] प्रतापी राजा के रूप में इक्ष्वाकु[१२] अशोक[१३] महाराणा प्रताप,[१४]

---

१. चित्राधार, पृ० ७५
२. ,, पृ० ७७
३. ,, पृ० ६६
४. ,, पृ० १११
५. ,, पृ० १३
६. ,, पृ० १३
७. ,, पृ० ६७
८. चित्राधार, पृ० ६८
९. ,, पृ० ७७
१०. ,, पृ० ४८
११. ,, पृ० ४५
१२. ,, पृ० ५६
१३. लहर पृ० ४६
१४. लहर (पेशोला की प्रतिध्वनि) पृ५-८

रणजीत सिंह[१५] । आदर्श ललनाओं के रूप में प्रियम्वदा-अनुसूया[१६] । साहित्यिक आदर्श रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[१७] । और व्यक्तिगत प्रेम के रूप में प्रियतम[१८] के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है जो उपर्युक्त व्यक्तियों के प्रति की अगाध आस्था को व्यक्त करता है। निराला ने युग के महान व्यक्तियों के प्रति अपने काव्य साहित्य में श्रद्धा व्यक्त की क्योंकि उनकी प्रेरणा पर ही समाज का उत्थान और विकास संभव है। साथ ही उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक,वैयक्तिक तथा मातृभूमि की उन तथाकथित पवित्र वस्तुओं के प्रति भी श्रद्धा व्यक्त की है जो राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी महत्ता रखती हैं। श्रद्धा का यह रूप उन सब के प्रति भी दीख पड़ता है जो सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक थे, जिन्होंने अतीत को गौरवान्वित किया, साथ ही त्यागी, तपस्वी जीवन बिता कर देश के आदर्शों का प्रत्यक्ष रूप प्रस्तुत कर सके रहे थे। इसमें उन्होंने उन राजनीतिक नेताओं का भी उल्लेख किया जिनकी बात देश की जनता ही नहीं वरन् विदेशी भी बड़े ध्यान से सुन रहे थे।

श्रद्धा अभिव्यक्ति का रूप-

धार्मिक दृष्टिकोण से निर्गुण ईश्वर[१६] राम,[२०] सीता,[२१] कृष्ण,[२२] सरस्वती,[२३] ~~धार्मिक-दृष्टिकोण-से-निर्गुण-ईश्वर~~ भगवान् बुद्ध,[२४] संतरविदास,[२५] परमहंस रामकृष्ण देव,[२६] स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज,[२७] स्वामी

---

१५. लहर, पृ० ५१
१६. चित्राधार, पृ० ६४
१७. ,, पृ० १६६
१८. भरना, पृ० ४२
१६. आराधना, पृ० २१
२०. अपरा, पृ० ३७, आराधना, पृ० ६०, अनामिका, पृ० १४८
२१. परिमल, पृ० २३७
२२. आराधना, पृ० ७०
२३. अनामिका, पृ० ३२, नए पत्ते, गीतिका, पृ० १
२४. अपरा, पृ० १८७
२५. अणिमा, पृ० २५
२६. नए पत्ते, पृ० ७६
२७. अणिमा, पृ० ६८

ब्रह्मानन्द,[२८] वस्तुओं में मातृभूमि,[२९] भारती,[३०] गंगा,[३१] यमुना,[३२]सामाजिक टाइप के रूप में विधवा,[३३] भिक्षुक,[३४] मजदूरिन,[३५]साहित्यिक व्यक्तित्वके रूप में तुलसी,[३६] हिन्दी साहित्य- के सुमनों के प्रति[३७] जयशंकर प्रसाद,[३८] रामचन्द्र शुक्ल,[३९] महादेवी वर्मा,[४०]राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप में — शिवाजी,[४१] अष्टम एडवर्ड,[४२] जवाहरलाल नेहरू,[४३] विजयलक्ष्मी पंडित,[४४] व्यक्तिगत रूप से प्रेयसी,[४५] मित्र,[४६]पुत्री सरोज[४७]और कमरे में श्रद्धाभाव से लगा महात्मा गांधी[४८] का चित्र उनके प्रति निराला की श्रद्धा ही व्यक्त करता है।

पंत ने भी भारतीय संस्कृति के प्रतीक आदर्श चरित्रवाले उन सभी व्यक्तियों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है जो धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक उत्थान में सहायक हैं। ~~साथ ही~~ उन्होंने सांस्कृतिक आस्था के प्रतीक स्थान एवं पवित्र नदियों तक में अगाध विश्वास व्यक्त किया है। साथ ही यह भी कहा जा सकता है - व्यक्तिगत स्तर पर जितने अधिक लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की है उतनी किसी अन्य कवि ने नहीं।

---

२८. अनामिका, पृ० १७३
२९. अपरा, पृ० २२
३०. ,, १
३१. अर्चना, पृ० ६६
३२. अपरा, पृ० १०१
३३. परिमल , पृ० १२६
३४. ,, पृ० १३३
३५. अनामिका, पृ० ७६
३६. तुलसीदास, पृ०
३७. अनामिका, पृ० ११४
३८. अणिमा, पृ० २७
३९. अणिमा, पृ० २६
४०. अणिमा, पृ० ५३
४१. अपरा, पृ० ८०,परिमल,२१५
४२. अनामिका, पृ० ९८
४३. बेला, पृ० ४६-४७
४४. अणिमा, पृ० ५०, ५१, ५
४५. अनामिका, पृ० १
४६. ,, पृ० १०
४७. अपरा, पृ० १६८
४८. साहित्य चिंतन, पृ० १२९

उपर्युक्त कथन के आधार रूप में यह देखा जा सकता है कि धार्मिक रूप में ईश्वर,[४८अ] राम,[४९] सीता,[५०] कृष्ण,[५१] सरस्वती,[५२] युधिष्ठिर,[५३] बुद्ध,[५४] अरविन्द,[५५] रामकृष्ण परमहंस[५६]। सामाजिक व्यक्तित्व के रूप में — विवेकानन्द,[५७] बापू[५८]। राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप में कार्ल मार्क्स[५९] जवाहरलाल नेहरू[६०]। सांस्कृतिक उत्थान की पवित्रता के लिए — भारत-माता,[६१] प्रयाग,[६२] गंगा,[६३] यमुना,[६४] सरस्वती,[६५] विन्ध्याचल[६६] और गीता[६७]। साहित्यिक व्यक्तित्व के रूप में — कालिदास,[६८] भोज,[६९] माघ,[७०] भारवि,[७१] भवभूति,[७२] जयदेव,[७३] कवीन्द्र,[७४] आचार्य द्विवेदी,[७५] प्रसाद,[७६] निराला,[७७] महादेवी[७८]।

व्यक्तित्व रूप में— " छलकती आँखें उन्हें प्रिय फिर कभी भेंट देंगी कर कमल में आपके [७९] की श्रद्धा या आस्था कवि की वैयक्तिक मनोभूमि पर आधारित है, क्योंकि पंत ने स्वीकार किया है कि ग्रन्थि के कथानक को दुखान्त बनाने की प्रेरणा देकर जैसे विधाता ने युवावस्था के आरम्भ से ही

४८अ- लोकायतन, पृ० २३३, २३४, २४२,
४९. चिदंबरा, पृ० १९७
५०. स्वर्णकिरण, पृ० १४७, लोका०, १०
५१. लोकायतन, पृ० ५८४
५२. ,, पृ० ५
५३. ,, पृ० ३४१
५४. वाणी, पृ० ११७
५५. चिदंबरा, पृ० १९६, स्वर्णकि०, ९०
५६. साठवर्ष एक रेखांकन, पृ० ७
५७. पल्लविनी, पृ० १०
५८. युगपथ, पृ० ५६, युगवाणी, १, ग्राम्या, ५२ स्वर्णकि०, ३५, खादीके फूल १ से १५, आधुनिक कवि, पृ०८३, लोकायतन, पृ ०५७, ७०
५९. युगवाणी, पृ० २६, चिदंबरा, पृ०४८, लोका० पृ० ५७, ३७६
६०. स्वर्णकिरण, पृ० ३६
६१. वाणी, १८७, ग्राम्या, ४८
६२. युगपथ, पृ० १५५
६३. युगपथ, १५६, आधु०२-५६
६४. ,, १६२
६५. ,, पृ०१५८
६६. चिदंबरा, पृ० १८४
६७. ,, पृ० १८४
६८. लोकायतन, पृ०३३९
६९. ,, पृ०३४१
७०. ,, पृ० ३४३
७१. ,, पृ० ३४३
७२. ,, पृ० ३४३
७३. ,, पृ० ३४३
७४. वाणी, १२९, चिदंबरा, ११
७५. युगवाणी, पृ०८१, ८२
७६. युगवाणी, पृ०८०
७७. लोकायतन, पृ०३३
७८. युगपथ, पृ०५५
७९. ग्रन्थि पृ५०

मेरे जीवन के बारे में भविष्यवाणी कर दी थी ।[८०] इसके अतिरिक्त गंगा-दत्त पंत,[८१] माधो,[८२] शंकर,[८३] वंशी,[८४] अजित[८५] हरि[८६] तथा मेरी[८७] पासी की लड़की[८८] अतिमा,[८९] कुसुम,[९०] श्रद्धा[९१] और श्री[९२] के प्रति कवि ने अपनी सहानुभूति व्यक्त की है ।

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य साहित्य में तो नहीं पर साहित्यिक व्यक्तित्व के रूप में अपने गद्य साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर[९३] मैथिलीशरण गुप्त,[९४] सुभद्राकुमारी चौहान,[९५] निराला,[९६] जयशंकरप्रसाद,[९७] सुमित्रा-नन्दन पंत,[९८] को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की । साथ ही अन्धा अलोपी,[९९] रामा,[१००] चीनी,[१०१] जंगबहादुर सिंह[१०२] के अतिरिक्त विधवा भाभी,[१०३] बिन्दा,[१०४] सबिया,[१०५] बिट्टो,[१०६] वृद्ध की पौती,[१०७] अभागी स्त्री,[१०८]

---

८०. शिल्प और दर्शन, पृ० १४१
८१. लोकायतन, पृ० (भूमिका)
८२. ,, पृ०३३१, ३३५, ४८५
८३. ,, पृ० ३०३, ३५४, ३५७, ४८५
८४. ,,
८५. ,, पृ० ४७८
८६. ,, पृ० २९६, ४८६, ४९७, ४४८
८७. ,, पृ० ६०५, ६०९,
८८. ,, पृ० २९७
८९. ,, पृ० ४६८
९०. ,, पृ० ४७७, ४८०, ४९२
९१. ,, पृ० ४९१
९२. ,, पृ० ४९९
९३. पथके साथी पृ० १
९४. ,, पृ० १७
९५. ,, पृ० ३९
९६. ,, पृ० ५५
९७. पथ के साथी, पृ० ७१
९८. ,, पृ० ८५
९९. अतीत के चलचित्र, पृ० ९३
१०१. ,, पृ० १
१०२. स्मृति की रेखाएं, पृ० १९
१०३. ,, पृ० ३३
१०४. अतीत के चलचित्र, पृ० २०
१०५ ,, पृ० ३०
१०६ ,, पृ० ३९
१०७. ,, पृ० ५९
१०८. ,, पृ० ८७

रधिया,[१०९] लछमा,[११०] भक्तिन,[१११] घुन्नू की माँ,[११२] शैहराती[११३] के प्रति कवियित्री द्वारा पर्याप्त सहानुभूति की गई है । क्योंकि समाज द्वारा प्रताड़ित घृणित और सामान्यत: जीवन के अधिकार भी इन्हें दुर्लभ हैं । वे अत्याचार के शिकार हैं । महादेवी ने उपर्युक्त साहित्यिक व्यक्तियों पर जहाँ श्रद्धा रखती हैं वहीं अन्धा अलोपी से जंगबहादुर सिंह तक, निरीह और विधवा सभी से भक्तिन तक दिये गये सामाजिक त्रास से दुखित लोगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करती है । वे समाज में नारी पर होने वाले सारे अत्याचारों से वे दुखित हैं और उनकी पूरी सहानुभूति दुखित पीड़ित निरीह नारी वर्ग के साथ है ।

प्रेरक-व्यक्तित्व—

रामकुमार वर्मा काव्य एवं साहित्य में युग के प्रेरक व्यक्तित्वों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिस प्रकार आभार प्रदर्शन साहित्य या उपलब्धियों के विवेचन के संदर्भ में उल्लेख किया है उससे उल्लेख्य व्यक्ति के प्रति कवि के श्रद्धा सम्मान, एवं वैचारिक क्षेत्र में इन पर उनके प्रभाव का परिचय मिलता है । इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर रामकुमार वर्मा ने धर्म के प्रतीक रूप में इक्ष्वाकु के उत्तराधिकारी—[११४] राम,[११५] राजरानी सीता[११६] नन्द,[११७] यशोदा,[११८] राधा,[११९] कृष्ण,[१२०] आस्त ऋषि,[१२१] बापू[१२२] ।

---

१०९. अतीत के चलचित्र, पृ० १०५
११०. ,, पृ० १२७
१११. स्मृति की रेखाएं, पृ०३
११२. ,, पृ० ५०
११३. ,, पृ० १०४
११४. साहित्य चिंतन, पृ० २५४
११५. ,, पृ०५८
११६. सप्तकिरण, पृ०
११७. साहित्य चिंतन, पृ० १०
११८. ,, पृ० १०
११९. ,, पृ० १०
१२०. ,, पृ० १०
१२१. ,, पृ० १०
१२२. ,, पृ० १०

प्रतापी राजा के रूप में – विक्रमादित्य,[१२३] शिवाजी,[१२४] वीर हम्मीर,[१२५] । आदर्श ललना के रूप में – मीरा,[१२६] जीजा बाई [१२७]महारानी लक्ष्मी बाई,[१२८] अहिल्याबाई,[१२९] आदर्श ग्रन्थ के रूप में – रामायण,[१३०] महाभारत,[१३१] कुरान,[१३२] तथा अन्य आधुनिक पुस्तकों में – आर्यावर्त,[१३३] कुरुक्षेत्र,[१३४] रश्मिरथी,[१३५] द्रोण,[१३६] कैकेयी[१३७] [illegible]णा,[१३८] हिमालय,[१३९] तथागत,[१४०] बापू,[१४१] ।

कला काल के राष्ट्र सेवी कवियों में केशवदास,[१४२] भूषण,[१४३] गोरेलाल,[१४४] बोधराज,[१४४] पद्माकर,[१४६] साहित्यिक आदर्श के रूप में कबीर[१४७] सूरदास,[१४८] तुलसीदास,[१४९] भारतेन्दु,[१५०] रवीन्द्रनाथ ठाकुर,[१५१] महावीरप्रसाद द्विवेदी,[१५२] मैथिलीशरण गुप्त,[१५३] प्रेमचन्द[१५४] प्रसाद[१५५] वृन्दावनलाल वर्मा,[१५६] नवीन,[१५७] महादेवी,[१५८] निराला,[१५९] और सुभद्राकुमारी चौहान,[१६०] सियारामशरण गुप्त,[१६१] सुमित्रानन्दन पंत,[१६२] दिनकर,[१६३]

---

१२३. साहित्य चिंतन, पृ० १०
१२४. शिवाजी, पृ० ८६
१२५. वीरहम्मीर, पृ०
१२६. आकाश गंगा, पृ० ८२
१२७. आकाश गंगा, पृ० ८२
१२८. ,, ,,
१२९. ,, ,,
१३०. ,, ,,
१३१. ,, ,,
१३२. साहित्यचिंतन, पृ० २५०
१३३. ,, पृ०७०
१३४. ,, पृ० ११
१३५. ,, ,,
१३६. ,, ,,
१३७. ,, ,,
१३८. ,, ,,

१४०. साहित्य चिंतन, पृ० ११
१४१ ,, पृ०११
१४२ ,, पृ०,७४
१४३ ,, ,,
१४४ ,, ,,
१४५ ,, ,,
१४६ ,, ,,
१४७ ,, पृ०३७,४०,४५
१४८ ,, पृ० १२७
१४९ ,, पृ० ६५१
१५० ,, पृ०८४,१०२
१५१ ,, पृ० १२४,१२७
१५२ ,, पृ० १०२
१५३ ,, पृ० ११४,१२७
१५४ ,, पृ० ११६
१५५ ,, पृ० १०४
१५६ ,, पृ० ११९
१५७ ,, पृ० १२८
१५८ ,, पृ० २२१
१५९ ,, पृ० २०४
१६० ,, पृ० १२६
१६१ ,, पृ० २५९

पाश्चात्य साहित्यकारों में शेक्सपियर, टाल्स्टाय [१६२] ।
राजनीतिक पुरुषों में- गांधी, जवाहरलाल नेहरू, [१६३] ।
पवित्र स्थान के रूप में प्रयाग, [१६४] कुरुक्षेत्र, [१६५] काशी, [१६६] रामेश्वरम्, [१६७] और आलोचकों में- धीरेन्द्र वर्मा, गुलाबराय, नन्ददुलारे वाजपेयी [१६८] को अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलोच्य सभी छायावादी कवियों ने युग के सभी प्रेरक व्यक्तित्व के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है। उन सभी व्यक्तियों का न केवल साहित्यिक वरन् धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य दूसरे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने पवित्र ग्रन्थों तथा तीर्थ स्थलों के प्रति भी अपना आदर व्यक्त किया है। यह उनकी धार्मिक मनोवृत्ति का परिचायक है।

---

१६२. साहित्य चिंतन, पृ० २००
१६३. भारतीय हिन्दी परिषद् के सभापति भाषण से, पृ०
१६४. स्नातकोत्तर हिन्दी शिक्षण शिविर रिपोर्ट, सन् १९६४
१६५. भारतीय हिन्दी परिषद् के सभापति भाषण से- पृ०५
१६६. ,, ,, ,, पृ०५
१६७. ,, ,, ,, पृ० ५
१६८. साहित्य चिंतन, पृ० २०४

खण्ड ३

अध्याय १४— साहित्यकार : समाज

साहित्यकार : समाज

संस्कृति में जब मानवीय चेतना की दृष्टि कुंठित हो जाती है तब समाज चाहे जितना प्रगतिशील हो उससे साहित्यकार का उच्चस्तरीय कृतित्व नहीं पा सकता । आलोच्यकाल विषयक कवि ` निराश्रया: न शोभन्ते पण्डित वनितालता: ` समर्थकों में से नहीं थे इसलिए उन्होंने राज्याश्रय का प्रयत्न नहीं किया यद्यपि उनके साहित्य का सम्बन्ध समाज से प्राथमिक रूप में देखा जा सकता है। जो लोग छायावादी कवियों को पलायनवादी होने का आरोप लगाते है वह उनकी समष्टिगत रचना के एक अंश या विधा के आधार पर ही ऐसा कहते हैं, पर साथ ही उन साहित्यकारों के समष्टिगत रचना प्रक्रिया में आए एकांगी व्य व्यक्तित्व और विचारधारा का ही मूल्यांकन का प्रयत्न उनके सम्पूर्ण विचार-धारा का द्योतक नहीं हो सकता ।

साहित्यकार समाज का सजग प्राणी है । यह चेतना ही उसे समाज में विशिष्ट स्थान देती है । यही कारण है कि वह समाज से इतना अभिन्न अंग से सम्बन्धित होता है कि किसी भी प्रकार वह अपने दायित्वों से अलगनहीं हो सकता । क्योंकि साहित्यकार सामाजिक जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर ही साहित्य की सृष्टि करता है ।

जयशंकर प्रसाद ने यद्यपि काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास - साहित्य की रचना की, निबन्धों द्वारा जीवनगत मान्यताओं पर लिखा पर प्राथमिक रूप से कहीं भी साहित्यकार और समाज के सम्बन्ध में प्रकाश नहीं डाला । यद्यपि इस संबंध में परोक्ष रूप से साहित्य की हर विधा में प्रकाश डाला क्योंकि साहित्यकार भी समाज का ही प्राणी है । वह समाज में जीकर ही साहित्य की रचना करता है । इस रचना में वह स्वयं को विश्लेषित करे या समाज को । पर व्यक्ति और समाज किसी-न-किसी रूप में अवश्य सम्बन्धित होगा और इस सम्बन्ध का एक माध्यम साहित्य भी है । सच तो यह है संसार को इतनी आवश्यकता किसी अन्य वस्तु की नहीं, जितनी सेवा की । देखो— कितने

अनाथ यहाँ अन्न-वस्त्र विहीन, बिना किसी औषधि उपचार के मर रहे हैं। हे पुण्यार्थियों ! इन्हें न भूलो, भगवान् अभिनय करने के लिए इसमें पड़े हैं, बहुत कुछ वह तुम्हारी परीक्षा ले रहे हैं। इतने ईश्वर के मन्दिर नष्ट हो रहे हैं। धार्मिकों ! अब भी चेतो[1]।' और समाज में इस चेतना के प्रसार का कार्य साहित्यकार ही अपने साहित्य द्वारा कर सकता है। पाप से पुण्य, शिथिलता से गतिशीलता, जीवन को उन्नति की ओर प्रेरक शक्ति का माध्यम साहित्य ही है और इस जिम्मेदारी का वहन कर्ता है साहित्यकार। चाहे उसकी दृष्टि समाज में धार्मिक साहित्य से सम्बन्धित हो या समाजसुधार अथवा मानवीय गुणों के प्रचार से। प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य इस कथन की पुष्टि करता है।

महादेवी ने साहित्यकार और समाज के सम्बन्ध में प्रकाश डाला तो निराला ने उस स्रष्टा के साथ होते अत्याचारों पर। निराला की धारणा थी कि समाज अपने इस वर्ग के प्रति उदार नहीं है यही कारण है कि सारा जीवन समाज को अर्पित करके भी साहित्यकार आर्थिक दृष्टिकोण से भी अपने को स्वतंत्र नहीं बना पाता अन्यथा निराला को अपनी पश्चात्ताप की मुद्रा में--

'धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।'[2]

न कहना पड़ता।

पर 'स्वार्थ समर हारता हुआ भी' साहित्यकार की चेतना सतत् ऊर्ध्वमुखी रहती है और लेखक उसे समाज में मिली उपेक्षा पर ' सोचा हैनतब हो बार बार -- यह हिन्दी का स्नेहोपहार, यह नहीं हार मेरी, भास्कर'। पर सृजक को अपनी शक्ति पर भरोसा है कि उसकी दी हुई जीवनगत आयामों पर नई दृष्टियां समाज के उत्थान में सहायक होंगी। यही कारण है कि पूर्ण आस्था के साथ-- कहता है --

अन्य था जहां है भाव शुद्ध
साहित्य कला-कौशल प्रबुद्ध,
है दिए मेरे प्रमाण।'

---

१. कंकाल, पृ० २७६ २. अपरा, पृ० १४७

और-

" देखें वे, हँसते हुए प्रवर जो रहे देखते सदा समर

एक साथ जब शत घात घूर्ण, आते थे मुझ पर तुले तूर्ण

देखता रहा मैं खड़ा अपल ।" मैं भी साहित्यकार की अविचलित आस्था ही उसे जीवित रखती है । संपादक वर्ग से भी उसे प्रोत्साहन नहीं देता । पर" उस उदास लौटी रचना से उसके जीवन में नयी प्रेरणा से प्रवेश मिलता है ।[3]

समाज में साहित्यकार की आर्थिक विपन्नता का कारण भी है और वह है प्रकाशकों द्वारा उनका निहित स्वार्थ। वह लेखक द्वारा सृजित पुस्तक पर चाहे जितना लाभ उठाये पर उससे यही कहता है कि" हमारे यहाँ ८) फार्म से अधिक मौलिक पुस्तक के लिए देने का नियम नहीं, रुपया पुस्तक प्रकाशित होने के तीन महीने बाद से दिया जाना शुरू होता है ।" और" हम कोई लेख बिना पुरस्कार का नहीं छापते, अवश्य नए लेखकों को २) रुपये ही प्रति लेख देने का नियम है, पर आपको हम १।।) पृष्ठ देंगे ।" कहकर वह एहसान जताने की कोशिश करता है । यदि लेखक यह सुझाये कि" आप लोग पुस्तकें बेचने के विचार से ५० और ६० प्रतिशत कमीशन बेचने वाले को देते हैं -यह आपकी साहित्य सेवा नहीं, अर्थ सेवा हुई । यदि लेखकों को अधिक देने लगें, तो किताबें अच्छी अच्छी लिखी जायें, और साहित्य का उद्धार भी हो..... तो प्रकाशक आँखें मूँद कर" कह देता है कि साहित्य का उद्धार हम आपसे ज्यादा समझते हैं ।[4]

फिर भी साहित्यकार समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझते समाज और परिस्थितियों की प्रताड़णाओं को सहते हुए भी युग का जागरूक प्रतिनिधि होने के नाते अपने साहित्य कर्म में व्यस्त रहता है क्योंकि उसे सृजन करना है और सृजन का मूल्य बलिदान और त्याग से ही चुकाया जा सकता है । इसे आलोच्यकाल के कवियों ने चुकाया भी , भले ही जीवन के अंत में उन्हें यह कहना पड़ा, दुख ही जीवन की कथा रही ,

क्या कहूं आज जो नहीं कही ।"[5]

---

३. अपरा, पृ० १५८
४. चतुरी चमार, पृ० ६३
५. अपरा, पृ० १५८

पर इसके लिए उन्हें क्षोभ नहीं था क्योंकि वे साहित्य समाज और सृजन के मूल्य से भिज्ञ थे। और उनकी धारणा थी कि समाज एक ऐसा शब्द है जो अपने अर्थ से उत्तम प्रगति सूचित करता है, और प्रगति कर एक मनुष्य-समुदाय के लिए आवश्यक है यदि वह संसार में रहता है।"[६] साहित्यकार समाज का विशिष्ठ प्राणी है। इसलिए समाज की उन्नति में उसका भी महत्वपूर्ण दायित्व है। इसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

पंत की धारणा है कि साहित्यकार और समाज का घनिष्ट संबंध है।" साहित्यकार निर्माता होता है और स्वयं स्वप्न द्रष्टा या निर्माता वही हो सकता है जिसकी अंतर्दृष्टि यथार्थ के अंतस्थल को भेदकर उसके पार पहुंच गई है, जो उसे सत्य न समझ कर केवल एक परिवर्तनशील अथवा विकासशील स्थिति भर मानता हो।.... मनुष्य की चेतना उन जटिल दुरूह मूल्यांकनों को आर-पार न भेद सकने के कारण उन्हीं की परिधि के भीतर घूमकर उनकी बालू की सी चका-चौंध में खो जाती है। किन्तु जीवन के मूल इन सब से परे हैं। वह अपने ही में पूर्ण है, क्योंकि वह सृजनशील और विकसनशील है। मनुष्य द्वारा अनुसंधित्सु समस्त नियम तथा जीवन की अभिव्यक्ति के बनते मिटते हुए पदचिन्ह भर हैं। वह आत्म-सृजन के आनन्द तथा आवेश में अपनी अभिव्यक्ति के नियमों को अति-क्रम कर अपनी सांप्रत पूर्णता को निरन्तर और भी बड़ी पूर्णता को परिणत करता है।[७] और यही समाजगत जीवन की पूर्णता को जागृत करने का कार्य ही साहित्यकार का है। उसका गंभीर दायित्व " यदि केवल यथार्थ की ही छाया को घनीभूत होने देगा तो वह यथार्थ के भीषण बोझ से दबकर उसी की तरह कुरूप तथा बौना हो जाएगा। यदि वह आदर्श और यथार्थ को दो आमूल भिन्न, स्वतंत्र तथा कभी न मिल सकने वाली इकाइयां मानेगा तो वह उनके निर्मम पाटों के बीच पिस जाएगा। यदि वह यथार्थ को आदर्श के अधीन रख कर उसे आदर्श के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करेगा तो वह यथार्थ पर विजयी होकर

---

६. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ३४२

७. गद्य पथ, पृ० १८०

मानव जीवन के विकास में सहायता पहुँचा सकेगा ।[८] आलोच्यकाल का साहित्य-कार समाज के प्रति काफी सजग हो गया है ।

उनके शब्दों में प्रत्येक युग का साहित्यिक अथवा कवि अपने युग की समस्याओं को महत्व देता रहा है और उनसे किसी न किसी रूप में प्रभावित होता रहा है । आज का युग भी इसका अपवाद नहीं है । आज का युग अनेक दृष्टियों से कई युगों का युग है । आज मनुष्य जीवन में बहिरन्तर क्रान्ति के चिह्न प्रकट हो रहे हैं । आज वह पिछले संचय को नवीन रूप से सँजोने का प्रयत्न कर रहा है । एक ओर समाज के जीर्ण-शीर्ण ढाँचे को बदल रहा है और दूसरी ओर जीवन की नवीन मान्यताओं को जन्म दे रहा है । आज उसे भीतर ही भीतर अनुभव हो रहा है कि वह सभ्यता के विकास की एक नवीन भूमिका पर पदार्पण करने जा रहे हैं । ऐसे संक्रान्तिके युग में ध्वंस और निर्माण साथ -साथ चलते हैं । शिव और ब्रह्मा विष्णु के नवीन रूप को प्रकट करने में सहायक होते हैं । पौरा-णिक शब्दों में आज का युग कलियुग और सतयुग का सन्धिस्थल है । ऐसे युग में साहित्य या कवि का उत्तरदायित्व कितना अधिक बढ़ जाता है, और कौन साहित्यिक उसे निभाने में कहाँ तक सफल हो पाता है, इस पर निर्णय केवल इतिहास का आनेवाला चरण ही दे सकता है, जबकि वर्तमान समस्याएँ अपना समाधान प्राप्त कर नवीन व्यक्तित्व धारण कर चुकेंगी । "[९]

साहित्यकार का समाज से घनिष्ट संबंध है । महादेवी की धारणा है कि जहाँ तक उसके जीवनगत आस्था का प्रश्न है वह जीवन की सहजात चेतना के विकासक्रम में ही निर्मित होती चलती है ।[१०] साथ ही समष्टि की इकाई होने के कारण साहित्यकार के जीवन-दर्शन और आस्था का निर्माण भी समाज विशेष और युग विशेष में होता है । पर साहित्यकार की सृजन आस्था की धरती से इतना रस ग्रहण करता है कि उसे अस्वीकार करके वह स्वयं अपने

---

८. गद्य पथ, पृ० १८१

९. शिल्प और दर्शन, पृ० १५२

१०. साहित्यकार की आस्था, पृ० २५

निकट असत्य बन जाता है ।"[१२] आज के साहित्यकार को अपने सामाजिक समस्याओं का ध्यान रखते हुए अपनी आस्था में विराट मानव का कर्त्तव्य संभालना पड़ता है । विज्ञान ने भू-खण्डों को एक दूसरे के इतना निकट पहुंचा दिया है कि यह हर व्यक्ति को प्राप्त हो गया है । ध्वंस और निर्माण दोनों ही के लिए पहले अधिक संख्या की आवश्यकता थी । आज देश विशेष के ध्वंस के लिए उद्जन बम को ले जाने वाला कोई भी एक व्यक्ति पर्याप्त है । पर इसी प्रकार उसे रोकने के लिए भी कोई एक पर्याप्त हो सकता है । यह एक समष्टि का कोई भी व्यक्ति हो सकता है । परिणामत: समय के आवाहन का उत्तर देने के लिए समष्टि को एक व्यक्ति की तरह तैयार रहना पड़ता है । ऐसी स्थिति में साहित्यकार का कर्त्तव्य कितना गुरु हो सकता है इसका अनुमान सहज है ।[१३] क्योंकि" मनुष्यता का सर्वांगीण विकास मनुष्य के जीवन की दु:ख दैन्य रहित गरिमा, शिवता और सौन्दर्य ही हमारा लक्ष्य है ।"..... साहित्यकार की आस्था का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, पर यह व्यापकता उसे समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष कर उन्हें लक्ष्योन्मुख बना लेने की शक्ति दे रही है ।"...... साहित्यकार को विस्तृत मानव परिवार को ममता देती है ।" जो किन्हीं अंशों में साहित्यकार और समाज के संदर्भ में साथ ही "आस्था सृजन की दृष्टि से व्यक्तिगत, पर प्रसार की दृष्टि से समष्टिगत ही रहेगी ।"[१४]

"अनेक सम्बन्धों में बँधा हुआ सामाजिक व्यक्ति एक ही रहता है "[१५] हर युग के साहित्यकार के समक्ष युग की समस्याएं रहती हैं –" इस युग के कवि के सामने जो विषम परिस्थितियां हैं"[१६] उसे वह अपने साहित्य में किसी न रूप से समाधान करने का दायित्व वहन करेगा ही ।

डा० रामकुमार वर्मा साहित्यकार को समाज के लिए अर्पित नागरिक

---

१२. साहित्यकार की आस्था, पृ० २७
१३. ,, पृ० २८
१४. ,, पृ० २६
१५. "(साम्प्रयिक समस्या) पृ० १७८
१६. "(,, ,,) पृ० १६४

मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय साहित्य का यह लक्ष्य रहा है कि वह मानव-मात्र के लिए कल्याणकार हो। उसमें शिवत्व की भावना सर्वोपरि हो।' [१७] इनकी धारणा है कि समाज की रुचि परिष्कृत करने के लिए साहित्यकार ऐसे साहित्य का निर्माण करे + जिसमें उदात्त भावना में वे समस्त गुण हैं, जिनसे मानवता त्राण पा सके और समाज में न्याय पक्ष समर्थित हो।' [१८] क्योंकि 'समाज को परिष्कृत करना भी साहित्य का ध्येय रहा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज और साहित्य का पारस्परिक सम्बन्ध सृजन से ही आरंभ होता है और यह सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। जहाँ साहित्य समाज की दृष्टि लेकर चलता है वहाँ समाज भी अपनी प्रवृत्तियाँ साहित्य में प्रतिबिम्बित करता चलता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया।' [१९]

डा० वर्मा की धारणा है' समाज की 'परिस्थितियाँ भी साहित्य के विकास में सहायक होती हैं। यदि इंगलैण्ड में 'एलिजाबेथ' का शासन न होता, तो संभवत: शेक्सपियर को नाटक लिखने की स्फूर्ति प्राप्त न होती, अथवा जयपुर में यदि मिर्जा राजा जयसिंह शासक न होते तो महाकवि 'बिहारीलाल' सतसई की रचना न करते। इस प्रकार कै अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परिस्थितियाँ प्रेरणा देती हैं और साहित्य निर्मित होता है। चाहे ये परिस्थितियाँ क्रियात्मक रूप में हों अथवा प्रतिक्रियात्मक रूप में।' [२०]

साहित्यकार समाज के निमित्त साहित्य का सृष्टा है। जातियों के उत्थान और पतन में युग की सृष्टि होती है अथवा धार्मिक क्रान्तियाँ युग का सूत्रपात करती हैं। हमारे साहित्य के इतिहास में चारण युग, भक्ति युग ~~कङ~~ शृंगार युग और आधुनिक का निर्धारण इन्हीं क्रान्तियों से हुआ, चाहे ये भौतिक रही हों, चाहे मानसिक। इसी भाँति अंग्रेजी साहित्य में रैनेसां ने साहित्य को विकास का एक नया मोड़ दिया। [२१]

---

१७. साहित्यशास्त्र, पृ० ३९ (रामकुमार वर्मा)
१८. ,, पृ० ४० ,,
१९. ,, पृ० ४० ,,
२०. ,, पृ० ४१ ,,
२१. ,, पृ० ४१ ,,

अत: आलोच्य विषय के सभी कवियों ने साहित्यकार और समाज का सम्बन्ध निर्धारण करते हुए एक ओर उसे समाज सुधारक तथा नव-समाज के निर्माता के रूप में देखा तो दूसरी ओर उसे उसी समाज के सदस्य के रूप में भी । एक सजग प्राणी होने के नाते साहित्यकार का समाज में विशिष्ट स्थान है । वह सम सामयिक समाज की गर्हित परिस्थितियों में सुधार कर अपनी सृजनात्मक शक्ति से आदर्श रूप की प्रतिष्ठा करता है । कुप्रथाओं एवं बाह्याडम्बरों को दूर करने में साहित्यकार जितना प्रभावशाली माध्यम रहा उतना समाज सुधारकों के थोथे भाषण नहीं । यह बात पूर्व युगों में जितनी सत्य थी उतनी आज के लिए भी कही जा सकती है । छायावादी कवि साहित्यकार के सामयिक दायित्वों से परिचित थे । उन्होंने समाज की रूढ़ियों को मिटाने में पर्याप्त सक्रियता दिखाई और इसके अनन्तर नवमानवतावाद की स्थापना की ।

खण्ड ३

अध्याय १५- साहित्यकार : दायित्व

साहित्यकार: दायित्व

साहित्यकार का दायित्व एक ऐसा गम्भीर प्रश्न है जिसमें साहित्य, साहित्यकार और समाज तीनों एक लक्ष्य में समाहित हो जाते हैं। समाज के बिना साहित्य और साहित्यकार की स्थिति शून्य है और साहित्यकार के बिना समाज का संश्लिष्ट रूप। ये बहुत कुछ अन्योन्याश्रित कहे जा सकते हैं।

आलोच्य विषय के कवियों में रामकुमार जी के अनुसार साहित्यकार और साहित्य का दायित्व "जीवन की किसी महत्वपूर्ण स्थिति के ऐसे प्रस्तुतीकरण में है, जिसमें उसे एक रागात्मक रूप प्राप्त हो सके। ..... वह "स-हित" होने के कारण ही साहित्य है।"[1] पर साहित्य के दायित्व के सम्बन्ध में आलोच्य विषय के कवियों को क्रमश: देखना ही अभीष्ट होगा।

प्रसाद जी ने सीधे तौर से साहित्य के दायित्व के विषय में कुछ नहीं लिखा। पर उनकी दृष्टि में काव्य हो या नाटक, उपन्यास हो या कहानी, साहित्य का दायित्व जीवन की व्याख्या या समालोचना प्रस्तुत करना ही है। "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, (जो) .... प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह गुण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सचाइयों और अनुभूतियों को व्यक्त किया गया हो[2] यह जीवन की आलोचना है।"[3] प्रेमचन्द की उपर्युक्त विचारधारा का प्रसाद साहित्य से समर्थन प्राप्त होता है। प्रसाद ने अपने साहित्य के दायित्व की गम्भीरता को समझते हुए "स्वच्छन्दता की माप है मलिनता, सुख की कसौटी है दु:ख"[4] के रूप में व्यक्त किया है क्योंकि स्वयं साहित्य भी जीवन की कसौटी है।

---

१. साहित्य शास्त्र, पृ० १६

२. कुछ विचार, पृ० ६

३. ,, पृ० ७

४. स्कन्दगुप्त पृ० ४८

प्रसाद के साहित्य में समाज में साहित्य का दायित्व सत्य की स्थापना ही है। कहीं भी उन्होंने असत्य की विजय नहीं दिखाई। अगर असत्य है तो कालान्तर में उसका पतन और सत्य की विजय आवश्यक है जिसे रामगुप्त की मृत्यु[५] मधुलिका के प्राप्य[६] तितली, मधुवन के जीवन[७] और कामायनी में मनु के चरित्र ~~[illegible]~~ जीवन, संघर्ष और जीवन के रूप में भी देखा जा सकता है।

पंत की दृष्टि में साहित्य का दायित्व इसलिए भी अत्यन्त गंभीर और महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समस्त मानव मूल्यों से सम्बन्ध रखता है। " साहित्य के मर्म को समझने का अर्थ है वास्तव में मानव जीवन के सत्य को समझना। साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गम्भीर व्याख्या है। ..... उसमें मानव-सभ्यता के युगव्यापी संघर्ष का प्रच्छन्न इतिहास तथा मनुष्य के आत्मविजय का जीवन-दर्शन अनेक प्रकार के आदर्शों अनुभूतियों, रीति नीतियों तथा भावनाओं की सजीव संवेदना निहित रहती है।[९] क्योंकि उनकी दृष्टि में साहित्य का दायित्व तभी सफल है जबकि उसके द्वारा " मनुष्य - जीवन को संचालित करने वाली शक्तियाँ तथा उनके विकास की दिशा को[१०] इंगित मिल सके। उसका अर्थ यह नहीं वह मात्र उपदेशात्मक हो क्योंकि ऐसा समझना सबसे बड़ी भूल होगी। पंत की धारणा है कि उसके उपर्युक्त दायित्व को दृष्टिगत करते हुए - " साहित्य को मनुष्य-जीवन के सनातन संघर्ष से कोई विभिन्न वस्तु न समझें, बल्कि उसे जीवन के दर्शन अथवा जीवन के दर्पण के रूप में देखें। उस दर्पण में जहाँ आप आत्मचिन्तन द्वारा अपने गुण को पहचानना सीखें, वहाँ अपनी सहानुभूति को व्यापक तथा गम्भीर बनाकर उसके द्वारा अपने विश्व-रूप की अथवा मानव के विश्वदर्शन की भी रूपरेखा का आभास"[११] साहित्य का दायित्वकहा जा सकता है। "

---

५. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६४
६. आंधी, पृ० १५६
७. तितली, पृ० २७०
८. कामायनी, पृ०
९. शिल्प और दर्शन, पृ० २१२
१०. ,, पृ० २१२
११. ,, पृ० २१२

साहित्य का दायित्व ही " साहित्यकार की आस्था, के वैयक्तिक और सामाजिक आयामों से कहीं महत् एवं श्रेय है, जो अपनी अन्तर्दृष्टि से मानव-व्यक्तित्व, मानव-समाज तथा मानव-जगत् को अतिक्रम कर उन्हें सुन्दर से सुन्दरतम् मंगल से मंगलतर तथा पूर्ण से पूर्णतर की ओर ले जाकर उनका पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्निर्माण कर सकती है ।[१२]

निराला की दृष्टि में साहित्य के दायित्व का प्रश्न" शिक्षा तथा संस्कृति का प्रश्न है" । साथ ही " आत्मा के उस स्थायी प्रकाश" का प्रश्न है जिनके खुलने पर राष्ट्र के अज्ञान के कारण होने वाले सभी छल-छिद्र खुल जायेंगे क्योंकि" दुष्कर्मों का सुधार भी साहित्य में है और उसी पर अमल करना हमारे इस समय के साहित्य के लिए नवीन, काय नई स्फूर्ति, भरने वाला, नया जीवन फूंकने वाला है । [१३] निराला ने साहित्य : दायित्व धर्म एवं सीमित क्षेत्रीय मानवता से सम्बन्धित नहीं किया । उनकी दृष्टि में "साहित्य में बहिर्जगत् संबंधी इतनी बड़ी भावना भरनी चाहिए जिसमें.... सम्पूर्ण पृथ्वी आ जाय[१४] क्योंकि साहित्य की प्रेरणा से" जब व्यक्ति हर व्यक्ति को अपनी अविभाजित भावना से देखेगा, तब विरोध में संड क्रिया होगी ही नहीं । यही आधुनिक साहित्य का ध्येय और दायित्व है । जिससे सम्पूर्ण मानव जाति को जागरण की वह चेतना मिल सके जिससे वह जाति वर्ग से दूर जीवन्त समाज की नये मानव मूल्यों के आधार पर नयी सामाजिक सृष्टि कर सके । साहित्य इस महान दायित्व को वहन करने में तभी सफल होगा जब साहित्य के हृदय से दिगंत व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा[१५] उत्पन्न होगी ।

महादेवी ने भी साहित्य के दायित्व को स्वीकार किया है कि किसी भी युग में साहित्य का दायित्व कम नहीं रहा । क्योंकि साहित्यकार

---

१२. साहित्यकार की आस्था, पृ० १६३

१३. प्रबंध-पद्म, पृ० १४२

१४. ,, पृ० १५०

१५. ,, पृ० १५४

का सृजन आस्था की धरती से इतना रस ग्रहण करता है कि उसे अस्वीकार करके वह स्वयं अपने निकट असत्य बन जाता है।" [१६] "जीवनगत आस्था किसी अन्य कर्म व्यापार के परिणाम को प्रभावित कर सकती है, परन्तु साहित्य को तो वह स्पन्दित दीप्त जीवन देती है। साहित्य जीवन का अलंकार नहीं है वह स्वयं जीवन है।" [१७] जीवन देता है। इसलिए "साहित्य में हम जीवन के अनेक गहरे अपरिचित स्तरों में मनोवृत्तियों के अनेक अज्ञात छायालोकों में जीवित होकर अपने जीवन को गहराई और चिन्तन की व्यापकता देकर उसे समष्टि से आत्मीय सम्बन्धों में जोड़ते हैं।" [१८] क्योंकि समय के आवाहन का उत्तर देने के लिए समष्टि को एक व्यक्ति की तरह तैयार रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में साहित्यकार का कर्तव्य कितना गुरु हो जाता है इसका अनुमान सहज है। [१६] फिर भी आज के साहित्य और साहित्यकार की आस्था का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, पर यह व्यापकता उसे समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष कर उन्हें लक्ष्योन्मुख बना लेने की शक्ति दे सकती है। क्योंकि कोई भी जाति अपने देशकालगत यथार्थ के निरीक्षण और परीक्षण के बिना वर्तमान का मूल्यांकन नहीं कर पाती और सम्भाव्य यथार्थ की कल्पना के बिना भविष्य की रूपरेखा निश्चित करने में असमर्थ रहती है। यह कार्य साहित्य .... के क्षेत्र में जितना सहज, सुन्दर और संप्रेषणीय रूप पा लेता है उतना जीवन के अन्य क्षेत्रों में संभव नहीं। [२१] इसलिए साहित्य का दायित्व अन्य सभी वस्तुओं से अधिक हो जाता है।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार साहित्य का दायित्व भारतीय मतानुसार जीवन की अनुभूति के प्रत्येक अंश से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्धित है। भारतीय मतानुसार जीवन की अनुभूति अनन्त है पश्चिम के साहित्य ने तो

---

१६. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० २७
१७. ,, ,, पृ० २७
१८. ,, ,, पृ० २७
१६. ,, ,, पृ० २८
२०. ,, ,, पृ० २६
२१. ,, ,, पृ० १६०

केवल कल्पना और भावना के आश्रय से जीवन की समीक्षा को ही साहित्य की संज्ञा दे दी, किन्तु हमारे साहित्य का मूल जीवन की अनन्त संभावनाओं में है जो कल्पना और भावना से परे है। इसका कारण यह है कि हमारे साहित्य ने अपने सृजन में 'रस' का माध्यम प्राप्त कर लिया है। यह रस लोकोत्तर अनुभूति है और ब्रह्मानन्द सहोदर है। लोकोत्तर अनुभूति में हमारा अंतर्जगत समस्त भौतिक प्रतिबन्धों को पार कर गया है।[२२]

'मनुष्य की भावात्मकता स्थूल जगत् की भौतिकता से अधिक महान् है।'[२३] और वह जीवन के समस्त अनुभवों को साहित्य की परिधि में समेट लेता है। 'जीवन के विस्तृत क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण चाहे वह 'युग संभूत हो या.... चिरंतन, स्थायित्व साहित्य की एक मान्यता कही जा सकती है। इस युग संभूत या चिरंतनता से सम्बन्धित होने के कारण ही साहित्य का दायित्व और भी बढ़ जाता है।' भारतीय साहित्य के निर्माण का यह लक्ष्य रहा है कि वह मानव-मात्र के लिए कल्याणकार हो। उसमें शिवत्व की भावना सर्वोपरि हो।[२४] डा० वर्मा की धारणा है कि अपने दायित्वों के प्रति सजग साहित्यकार साहित्य को प्रतिक्षण जीवन की सीमाओं को तोड़ कर उसे असीम बनाने में प्रयत्नशील है। साहित्य में न तो देश काल की सीमा है और न वस्तु जगत् की ही संकीर्ण परिधि है।[२५] अत: छायावादी साहित्यकार भी साहित्य के दायित्वों के प्रति पूर्ण सजग हैं।

---

२२. साहित्य शास्त्र, पृ० २५

२३. साहित्य शास्त्र, पृ० २३

२४. साहित्य शास्त्र, पृ० २५

२५. साहित्य शास्त्र, पृ० ३६

खण्ड ४

अध्याय १६ - उपसंहार

(छायावादी कवियों का विचारक व्यक्तित्व, पूर्ववर्ती युग की तुलना में वैचारिक प्रगति, असंगतियां आरोपित विचार, निष्कर्षों का निष्कर्ष)

उपसंहार

एक ओर आलोचकों ने छायावादी कवियों की प्रतिष्ठा की तो दूसरी ओर छायावादी काव्य पर अनेक प्रकार की भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं का आरोप भी लगाया । यद्यपि इनका समय-समय पर खंडन किया गया, फिर भी तत्कालीन आलोचक इससे मुक्त न हो सके । उन्होंने कवियों पर बंगला साहित्य का रोमांटिसिज्म का और फ्रान्स की राज्यक्रान्ति से उत्पन्न व्यक्तिवाद का युगवत प्रभाव माना और इनकी मौलिकता की अपेक्षा वाह्य प्रभाव पर ही अधिक बल देने के कारण इनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण की उपेक्षा की ।

छायावाद के अनन्तर आकस्मिक रीति से प्रगतिवाद का उदय हुआ और कालान्तर में प्रयोगवाद एवं नयी कविता का । पर इस संक्रान्ति काल में भी कतिपय छायावादी कवियों की लेखनी साहित्य के गद्य-पद्य दोनों रूपों की समृद्धि में सक्रिय रही साथ ही उनकी विचार धारा में विकास , होता गया, पर जीवन दर्शन के क्षेत्र में उनकी मूल स्थापनाओं में विशेष परिवर्तन नहीं दीख पड़ता क्योंकि परवर्ती प्रभाव ~~कोई~~ विशेष स्थायित्व नहीं ग्रहण कर सके ।

विचारक व्यक्तित्व--

आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों में कवि व्यक्तित्व के अलावा उनका विचारक व्यक्तित्व भी स्पष्ट दीख पड़ता है ~~क्योंकि~~ यद्यपि विचारक शब्द मानव इतिहास में बहुत बड़े अर्थ में प्रयुक्त होता है तथापि भारतीय विचार परम्परा के संवहन की एक महत्वपूर्ण कड़ी होने के (कारण) उनकी वैचारिक उपलब्धियों के आधार पर उन्हें कवि और विचारक की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । उनके साहित्य पर उनके विचारक व्यक्तित्व की झलक निश्चित रूप से मिलती है जिसे विश्लेषित करना अभीष्ट होगा।

छायावादी कवियों ने वैचारिक प्रक्रिया के माध्यम से निर्माण-युग की चेतना जागृत की । यही कारण है कि द्विवेदी युग के कवियों में

जिन वैचारिक मूल्यों के बीज मिलते हैं वे कालान्तर में छायावादी कवियों के विचारक व्यक्तित्व का स्पर्श पा निर्माण युग की चेतना से युक्त हो गये । कदाचित निर्माण युग की चेतना की आधारशिला पर ही इन कवियों द्वारा तत्कालीन जर्जरित भारतीय समाज के ध्वंस या सुधार के अनन्तर नये विश्व जीवन की प्रतिष्ठा और नव मानवतावाद की स्थापना हो सकी । गर्हित स्थितियों, जर्जरित रूढ़ियों तथा गलित मान्यताओं की उपेक्षा कर आलोच्य विषय के कवियों ने नये कला-बोध, नयी चेतना एवं नये जीवन की साग्रह प्रतिष्ठा की । कतिपय आलोचकों ने छायावादी कवियों पर प्रकृति प्रेमी अतएव पलायनवादी होने का आरोप लगाया है । पर वस्तुत: यह प्रकृति की ओर कवियों का विशेष आकर्षण था जो राग और रहस्य तक पहुँचने की ओर उन्मुख रहा । पलायन में उस वस्तु का बराबर बोध रहता है जिससे पलायन किया जाता है किन्तु छायावादी प्रकृति काव्य अधिकतर ऐसा प्रतीत नहीं होता । प्रकृति प्रेम कवियों की मनोवृत्ति का वास्तविक अंग रहा है । उसके पीछे निश्चित विचारधारा भी निहित है । उन्होंने ऐसा कर तत्कालीन यथार्थवादी स्थिति से पलायन नहीं वरन् उसके गर्हित सामाजिक जीवन की उपेक्षा एवं उसके प्रति विद्रोह ही प्रदर्शित किया । जिसे कतिपय उन्हीं छायावादी कवियों ने प्रगतिवाद की विचारधारा ग्रहण करने पर उसे प्रत्यक्ष रूप से अपने यथार्थोन्मुखी आदर्श की खोज के रूप में व्यक्त किया और जर्जरित सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रत्यक्ष रूप से विद्रोह का वैचारिक स्वरूप रक्खा ।

भक्ति एवं रीति कवियों की तरह छायावादी कवियों में एक ही वैचारिक परिवेश की सीमा नहीं मिलती । इसके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने जर्जरित कुंठाओं को तोड़कर व्यक्ति की महत्ता की स्थापना कर भारतेन्दु और द्विवेदी, काल के कवियों से भी आगे जो वैचारिक भूमि प्रदान की उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।

यह सत्य है कि आलोच्य विषय के सभी छायावादी कवियों ने

प्रारंभ में काल्पनिक परिवेश को प्राथमिकता दी पर यह स्वप्न नवमानवतावादी दृष्टि को उद्घाटित करने वाला एक नया पक्ष था जिसे पंत ने स्वयं भी स्वीकार किया है कि[1] छायावादी कल्पना के पास, -जो उसकी दुर्बलता मानी जाती है- निश्चय ही नयी वास्तविकता के स्वप्नदर्शी नये आयाम थे । जिसके माध्यम से उन्होंने मध्य युग के सामंती आवरण से निकलकर नवमानवतावादी जीवन दर्शन, एवं वैचारिक अभिव्यक्ति के भविष्योन्मुखी सांस्कृतिक वैभव की परिकल्पना की । जिसमें धरा पर पूजित आदर्श, उच्च एवं चैतन्य उपकरणों सज्जित संस्कृति की अवतारणा का संकल्प रक्खा गया । यही अवतारणा कालान्तर में कतिपय छायावादी कवियों के प्रगतिवाद ग्रहण करने में भी दीख पड़ती है । पहिले अन्तर्मूल्य व्यक्तिवाद में निहित थे पर कालान्तर में वे ही बहिर्मुखी होकर सामाजिक यथार्थ में स्पष्ट दीख पड़ते हैं । इस प्रकार छायावाद के उत्तरांश में व्यक्ति और समाज दोनों के बीच एक सामंजस्य लाने का प्रयत्न किया गया । जो अनेक असंगतियों के बावजूद भी बहुत दूर तक सफल रहा ।

इनके काव्य साहित्य में विशेष रूप से मानवीय मूल्यों की ओर सतत आगे बढ़ती हुई चेतना परिलक्षित होती है । आरंभिक अवस्था में छायावादी कवियों में भावुकता का अंश अधिक दीख पड़ता है, जो बाद में ~~मानवता का अंश अधिक दीख पड़ता है, जो बाद में~~ मानवतावादी मूल्यों के विकास में सहायक हुआ । व्यापक सामाजिक स्तर पर जो बातें संभव नहीं हो सकीं उन्हें कल्पना के स्तर पर जीने का साहसपूर्ण प्रयत्न भी विकास क्रम में निरर्थक नहीं कहा जा सकता । कालान्तर में छायावादी कवियों में भावुकता का अंश शनैः शनैः कम होता गया और ये यथार्थ के वैचारिक धरातल पर उतरते गये ।

कवियों ने नारी की हीन सामाजिक स्थिति के उद्धार पक्ष का सहारा लिया और उसे नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया किन्तु विभिन्न पक्षों पर न्यूनाधिक बल देने के कारण उनकी पारस्परिक विचारधारा में किंचित अन्तर परिलक्षित होता है । प्रसाद और रामकुमार वर्मा

१, छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० २६

ने जिसे चिर श्रद्धा की अधिकारिणी के रूप में देखा उसे पंत ने नरों के साथ कंधे से कंधा मिलाकार्य करते आधुनिका के रूप में । पर निराला ने जिस सशक्त निर्माण-रत नारी का रूप चित्रित किया है वह महादेवी साहित्य में चित्रित नारी के अशक्त और सहिष्णु रूप की खीफ भरी अभिव्यक्ति का पूरक है और एक दूसरा पक्ष प्रस्तुत करता है । भावात्मक

भावात्मक एवं वैचारिक स्तर पर इन कवियों ने प्रेम की अभिव्यक्ति की । यह प्रेम पहले वैयक्तिक स्तर पर दीख पड़ता है पर कालान्तर में व्यापक रूप ग्रहण कर लेता है और इसी की आधार-शिला पर नव-मानवतावादी मूल्यों के विकास प्रसार की भावना व्यक्त की गयी । यह कहना उचित नहीं होगा कि छायावादोत्तर कविता में जो मानव मूल्य प्रतिष्ठित हुए उन सभीका आधार छायावादी काव्य में पहले से ही मिलता है किन्तु इतना अवश्य सत्य है कि उनकी धारणा आधुनिक मानवतावादी दृष्टि से तत्वत: भिन्न नहीं थी क्योंकि उन्होंने मध्यकालीन पारलौकिक आधार छोड़कर लौकिक भूमि पर ही अपने को स्थिर किया जो रहस्य और अध्यात्म का वातावरण प्राचीन परम्परा की अनुगूंज के अवशेष की तरह उनके काव्य में मिलता है । उसे प्रगतिवाद ने भौतिकवादी यथार्थ के आघात से ध्वस्त कर दिया । छायावादी कवियों द्वारा उसके पुनर्प्रतिष्ठा का प्रयत्न उतना प्रेरक सिद्ध नहीं हुआ जितना उनका प्रथम उन्मेष ।

पूर्ववर्ती युग की तुलना में वैचारिक प्रगति--

मध्यकाल तथा भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग की सापेक्षता में छायावादी कवियों की वैचारिक प्रगति को उनके साहित्य के आधार पर क्रमश: देखना अभीष्ट होगा ।

सर्व प्रथम धर्म की ओर दृष्टिपात करें तो कहा जा सकता है कि धर्म की व्यापक धारणा मध्यकाल में उत्तरोत्तर संकीर्ण होती गयी और आधुनिक युग तक आते-आते धर्म अधिकतर सम्प्रदाय का पर्याय होकर रह गया ।

भारतेन्दु और द्विवेदी युग के कवियों ने धर्म को अधिकतर सम्प्रदाय विशेष के अर्थ में ग्रहण किया । छायावादी कवियों ने संकीर्णता के कारण उसमें आयी हुई विकृति का परिष्कार करना चाहा । उन्होंने धर्म को मूल व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया और उसकी विकृति को अस्वीकार किया । उसमें युगानुरूप सुधार एवं परिष्कार कर मानव धर्म की स्थापना की । उनकी धर्म सम्बन्धी धारणा पर उपनिषदों का प्रभाव देखा जा सकता है ।

भक्ति और रीतिकाल में आधुनिक अर्थ में समाज की कल्पना नहीं थी । समाज सुधार का उद्घोषक साहित्यकार न होकर शासनकर्ता था या ईश्वर जिसकाप्रतिनिधि धर्माचार्य माना जाता था । भारतेन्दु और द्विवेदी काल में यद्यपि समाज सुधार के सम्बन्ध में सजगता दीख पड़ती है, पर उपर्युक्त दोनों ही युगों में समाज की गिरी दशा का कारण विदेशी सरकार को मानते हुए भी कवि उसके सुधार के लिए ईश्वर से ही कामना करते दीख पड़ते हैं । पर छायावादी कवियों ने समाज को व्यक्ति की समष्टि मानते हुए उसमें व्यक्ति के माध्यम से ही सुधार का संकल्प रक्खा ।

धर्म एवं समाज सुधार के अनन्तर राष्ट्रीयता और राजनीतिक परिस्थिति के प्रति भी देखना अभीष्ट होगा । मध्यकाल में राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जागरण का स्वरूप नहीं मिलता क्योंकि " कोउ नृप होउ, हमहिं का हानी " की उक्ति चरितार्थ थी । साथ ही राष्ट्रीयता और देश भक्ति का भी सीमित स्वरूप था । राजनीति भी सीमित वर्ग से सम्बन्धित थी और वे अपनी दयनीय अवस्था को ईश्वर प्रदत्त मानकर संतोष करते थे । पर भारतेन्दु और द्विवेदी युग में देश दुर्दशा, राजनीतिक परिस्थिति एवं राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा में पर्याप्त चेतना दीख पड़ती है । उन्होंने एक ओर विदेशी सरकार की कुरीतियों की निन्दा की तो दूसरी ओर उनके प्रति राजभक्ति भी प्रदर्शित की । उनकी राजभक्ति के पीछे मध्यकालीन संस्कार

और आर्थिक चेतना के पीछे आधुनिक संस्कार सक्रिय थे । यह छायावादी कवियों में देखने को नहीं मिलता । इन्होंने भारतमाता के विराट रूप की कल्पना की और जिस स्वाधीन राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की वैचारिक रूप-रेखा प्रस्तुत की वह उनकी विशेष उपलब्धि ही की जायेगी । उनकी दृष्टि में अतीत के सांस्कृतिक गौरव के मद में फूले रहने की अपेक्षा देश की वर्तमान परिस्थिति में सुधार अधिक आवश्यक है । छायावाद तक आते-आते राजभक्ति की प्रवृत्ति समाप्त हो गयी । उन्होंने देश की दयनीय स्थिति का मूल कारण विदेशी सरकार को माना और स्वराज्य होने पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की ।

स्त्री सम्बन्धी अधिकार समस्या और उसकी सामाजिक स्थिति के संदर्भ में भी छायावादी कवियों की वैचारिक उपलब्धि पर्याप्त महत्व रखती है । इसे पूर्व के युगों से तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति युग में इसे रोढ़ा, या जंजाल और रीति युग में इसे भोग्या के रूप में देखा गया। पर भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग में नारी की हीन सामाजिक स्थिति के प्रति सजगता दीख पड़ती है । यही सजगता छायावादी कवियों में पूर्ण रूप से विकसित हुई । उन्होंने उसे सामाजिक स्थिति में पुरुष वर्ग की समकक्षता दिलाई । अब वह दीन- हीन न होकर सकामता की प्रतीक हो गई । जीवन में व्यक्ति की महत्ता की स्थापना छायावादी कवियों ने ही की । इसे पूर्व के युग से तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखें तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है । भक्ति और रीति युग में व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व मान्य नहीं था । भारतेन्दु और द्विवेदी युग के कवियों ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज की महत्ता स्वीकार की, पर आलोच्य विषय के कवियों ने व्यक्ति की महत्ता स्थापित करते हुए उसे समाज का महत्वपूर्ण अंग बताया क्योंकि व्यक्ति की समष्टि से ही समाज की सृष्टि होती है ।

इस प्रकार उपर्युक्त संदर्भों में पूर्व युगों की अपेक्षा छायावादी कवियों की वैचारिक उपलब्धि भक्ति, रीति, भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग के अनन्तर की

धारणा प्रगति की परिचायक है ।

असंगतियाँ, आरोपित विचार--

आलोच्य छायावादी कवियों की विचारधारा में कुछ आरोपित विचार, असंगतियाँ और अन्तर्विरोध भी देखने को मिलता है, जिन्हें विश्लेषित करना यहाँ अभीष्ट होगा ।

विषयवस्तु के दृष्टिकोण से उनके साहित्य के गद्य-पद्य दोनों रूपों में भेद देखने को मिलता है । प्रसाद के गद्य साहित्य में जितनी यथार्थ परक जीवन की अभिव्यक्ति हो सकी है उतनी काव्य साहित्य में देखने को नहीं मिलती । यही बात महादेवी के सम्बन्ध में कही जा सकती है । उन्होंने काव्य में जीवन की समस्यामूलक स्थिति को नहीं व्यक्त किया जबकि उनके रेखाचित्र और संस्मरण में ठोस सामाजिक जीवन की प्रतिक्रिया देखने को मिलती है । रामकुमार वर्मा के काव्य और उनके गद्य साहित्य की विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में भी यही अन्तर स्पष्ट है । एक ओर उनके एकांकी समाज की आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक,दार्शनिक, तथा अन्य सामाजिक परिपेक्ष्यों से युक्त हैं वहां दूसरी ओर काव्य साहित्य में सामाजिक जीवन के ठोस धरातल से बच सकने का यथा सम्भव प्रयत्न है । पर पंत और निराला साहित्य के इन दो रूपों में विषय वस्तु की दृष्टि से अन्तर नहीं है । जिन समस्याओं को पद्य में उठाया गया है उन्हें ही प्रकारान्तर से गद्य में बल्कि, ~~पद्य में भी उठाया गया है~~। समाज की यथार्थ भावभूमि उनके काव्य साहित्य में अपेक्षाकृत गद्य से अधिक शक्तिशाली ढंग से व्यक्त हुई है । कदाचित प्रसाद, (मृत्यु सं० १९९४) महादेवी और रामकुमार वर्मा के काव्य साहित्य में यथार्थ परक भावभूमि का अपेक्षाकृत अभाव इसलिए भी दीख पड़ता है कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति, काव्य साहित्य में छायावाद युग तक ही सीमित

रखी । पर पंत और निराला में सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन के साथ उनके काव्य साहित्य में भी दृष्टिकोण एवं युग बोध का परिवर्तन स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है ।

कवियों ने स्वयं कतिपय ऐसी व्याख्याएं प्रस्तुत कीं जो न केवल छायावादी पाठकों वरन् आलोचकों को भी भ्रमात्मक साबित हुईं । कतिपय कवियों में यह प्रवृत्ति छायावाद काल में तो थी ही और प्रगतिवाद की विचार-धारा ग्रहण करने के अनन्तर भी दीख पड़ती है । यथा– पंत के शब्दों में – 'कल्पना ही ..... काव्य का प्राण है ।'[2] पंत का यह दृष्टिकोण पाश्चात्य रोमांटिक कवियों से अनुप्रेरित है । यदि कल्पना को अर्थ विस्तार में देखें तो उसे 'अनुभूति--ग्राहिणी' तथा 'रूप विधायिनी' शक्ति तक तो माना जा सकता है पर वह काव्य का प्राण है कल्पना संगत नहीं दीख पड़ता क्योंकि वह साधन हो सकती है, साध्य नहीं । साहित्य यथार्थ अनुभव को संप्रेषित करता है वह केवल कल्पना जन्य नहीं होता । बिना यथार्थ परक जीवन दर्शन के साहित्य में काल्पनिक मूल्य अपनी महत्ता नहीं रखते । कल्पना का यथार्थ जीवन से सम्बन्धित होना आवश्यक है बिना इसके वह जीवन और साहित्य सांस्कृतिक मूल्य की स्थापना नहीं कर सकती । अत: कल्पना को काव्य का प्राण कहना किसी तथ्य पर प्रकाश डालने की अपेक्षा कवि के मात्र उसके प्रति रुझान को व्यक्त करता है ।

महादेवी की भी एक ऐसी ही स्थापना दृष्टव्य है । डॉ० जगदीश गुप्त के शब्दों में उन्होंने– 'अपने विवेचनात्मक गद्य में ही छायावाद को जागरण युग की सृष्टि और उसके अध्यात्म को बौद्धिक तथा रूढ़िग्रस्त अध्यात्म से भिन्न स्वीकार किया है ।'[3] उन्होंने यह भी निश्चित रूप से

---

२. छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० २८

३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ५४, ६०, ११२, ६६

माना कि जिस सूक्ष्म को छायावाद ने अभिरुचि के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की वह स्थूल से बाहर कहीं अस्तित्व ही नहीं रखता ।

मनुष्य का 'व्यक्त सत्य' 'स्थूल' है और 'अव्यक्त सत्य' अर्थात् कुछ होने की भावना ही सूक्ष्म है ।[४] साथ ही यह 'सूक्ष्म' स्थूल का ही दूसरा रूप है । यह भी उन्होंने अस्वीकार नहीं किया कि छायावाद ने युगों से प्रचलित सस्ती भावुकता और वासना के विकृत चित्र देने के स्थान पर उच्चतर रूप में परिष्कृत (वासना) वैयक्तिक उल्लास- विषाद की सफल अभिव्यक्ति की ।[५] इतना सब कुछ मान लेने के बाद भी उनकी रहस्यानुभूति तथा उनके सर्ववाद और अध्यात्मवाद में क्या शेष रह जाता है जिसके प्रतिपादन के लिए उन्हें इतना श्रम करना पड़ा । किसी भी तरह तटस्थ विचारक को यह स्पष्ट हो जायगा कि महादेवी जी यद्यपि छायावाद की वास्तविक भूमि से पूर्णतया अवगत हैं तथापि उसे वैसे स्वीकार न करके अध्यात्मवाद अथवा सर्ववाद का अनावश्यक आवरण चढ़ाकर स्वीकार करने में उन्हें संकोचहीनता तथा संतोष का अनुभव होता है जो वैसा कदाचित न होता । इस प्रकार काव्य के प्रयुक्त किये जाने के मौलिक कारण वही हैं ~~जिसने~~ जिन्हें छायावादी कविता में व्यक्त मानवीय भावनाओं का रूप दिया । छाया शब्द का अर्थ महादेवी जी को भी अग्राह्य नहीं है ।[६] महादेवी जी केवल अपनी व्याख्या को अपने काव्य तक ही सीमित रखतीं तो इतने विस्तार में उस पर विचार करने की आवश्यकता न होती परन्तु उन्होंने अपने विचार छायावादी काव्य के सम्बन्ध में व्यक्त किये हैं[७] जो कि युक्ति संगत नहीं दीख पड़ता ।

रहस्यवाद कविता का छायावाद से नितान्त अलग रखकर उसकी

---

४. विवेचनात्मक गद्य, पृ० ६७

५. ,, पृ० ६८,६७

६. आधुनिक कवि, महादेवी, पृ० ६०

७ हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां, पृ० २४

विवेचना का भ्रम कतिपय छायावादी द्वारा ही आरंभ हुआ क्योंकि रहस्य-वाद के साथ आध्यात्मिकता की गरिमा जुड़ी हुई थी । इसके कुछ कुछ अपवाद भी हैं । डॉ० केशरीनारायण शुक्ल ने " छायावाद और रहस्यवाद में कोई तात्त्विक भेद नहीं देखा क्योंकि " दोनों के मूल में एक ही प्रकार की भावनाएं हैं । "[८] पर इनकी रहस्यवादी कविताओं की तुलना मध्ययुग के साधक कवियों की रचनाओं ~~की तुलना में~~ नहीं की सकती क्योंकि उनमें साधनात्मक रहस्यवाद का अन्तर्भाव नहीं मिलता, न हि छायावादी 'कवि व्यक्तिगत जीवन में साधक की संज्ञा से अभिहित किये जा सकते हैं । यद्यपि साधना शब्द उन्हें बहुत प्रिय रहा । उनमें लौकिकता के प्रति विरक्ति का आत्यन्तिक अभाव मिलता है । किसी ने भी मध्यकालीन कवियों की तरह आत्म-ग्लानि प्रदर्शित नहीं की ।

रामकुमार वर्मा का भी एक वक्तव्य दृष्टव्य है । यथा—
" आज जब मैं कविता लिखने बैठता हूँ तो जैसे पूजा की पवित्रता मेरी लेखनी की नोक पर आ बैठती है । संभवत: यही कारण है कि मैं भौतिक और शृंगार की कोई कविता नहीं लिख सका । या जीवन की उन बातों पर प्रकाश नहीं डाल सका जो पार्थिव जीवन के क्रोड़ में अपनी दैनिक गति से घटित होती रहती है । "[६] इससे दो बातों की पुष्टि होती है । उनकी कविता की भावभूमि दैनिक जीवन की गति से अलग है वह भौतिक जीवन से मेल नहीं रखती और उनकी ~~पूजक~~ सारी कविताएं पूजा की पवित्रता, लेखनी पर महसूस करते हुए ही लिखी गईं । पर उन्हीं की कविताओं में उपर्युक्त कथन का विरोध देखा जा सकता है । अपार्थिव जीवन से सम्बन्धित होने पर भी अपनी कला-कृति को इस विश्व में अमर करने की कामना की गई है ।[१०] ~~जबकि~~ जबकि वह यह भी मानते है कि " सुख न है संसार में यह है

---

८. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० १७६

६. अनुशीलन, पृ० १६४

१०. आकाश गंगा, पृ० १४

दुखों की एक विस्मृति । यह दृष्टव्य है कि उन्होंने इस संसार को दु:खमय माना, हर वस्तु की अथ- इति स्वीकार की । फिर सृष्टि के परिवर्तन-शील नियम को स्वीकार करके भी अपनी कलाकृति के अमर होने की कामना का दृढ़ आत्मविश्वास पार्थिव पृष्ठभूमि के बिना निरर्थक लगता है ।" [१०]
१४ अगस्त की रात्रि में" [११] जैसी राष्ट्रीय घटनाओं से सम्बन्धित अन्य कवितायें भी अपार्थिवता से सम्बन्धित नहीं कही जा सकतीं । अत: उक्त कथन को आरोपित विचार ही कहना अधिक युक्ति संगत होगा । ऐसी विसंगति प्रसाद और निराला में अपेक्षाकृत कम देखने को मिलती है पर पंत में ऐसे अन्तर्विरोध प्राय: देखने को मिलते हैं ।

छायावादी कवि पहले कवि हैं बाद में विचारक इसीलिए उनके भावानुप्रेरित कथन बहुधा आपस में वैचारिक संगति नहीं रखते, किन्तु यह कहना अनुचित होगा कि वे प्रेरणा रहित रूप से लिखे गये । कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि छायावादी काव्य का विकास विचारों को कवच बनाकर हुआ इसलिए जैसी परिस्थिति उत्पन्न हुई कवच का रूप वैसा ही बदलता गया ।

आलोचकों द्वारा कीगई व्याख्यायें-

प्राय: आलोचकों ने छायावादी कवियों पर पलायनवादी होने का आरोप लगाया । साथ ही यह भी आरोप लगाया कि वे समाज के यथार्थ जीवन से कटकर प्रकृति की शरण में गये । पर वस्तुत: छायावादी काव्य पलायनवादी नहीं है । कवियों की जागरूक विकासोन्मुख सांस्कृतिक विचारधारा इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती है । ऐसा करके उन्होंने गर्हित सामाजिक स्थिति की उपेक्षा ही व्यक्त की है क्योंकि उनकी दृष्टि जीवन के मूलभूत प्रश्नों की ओर थी, उसकी तत्कालिक सामाजिक अभिव्यक्ति के प्रति ही सीमित नहीं थी । यही कारण है कि प्रगतिवाद की विचारधारा ग्रहण करने पर कतिपय कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से समाज के अशिव पक्ष की भर्त्सना कर नये समाज के निर्माण की रूपरेखा प्रस्तुत की और तात्कालिक जीवन की समस्याओं से भी सम्पर्क व्यक्त किया ।

यह भी कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद की ओर उनका झुकाव रहस्यमयता द्वारा हुई क्षतिपूर्ति के रूप में हुआ ।

प्रकृति पर चेतना का आरोप या मानवीकरण भी उन्होंने समाज के संशोधित रूप के प्रस्तुतिकरण के निमित्त ही किया, साथ ही शृंगारिकता के आवरण को इसीलिए प्राथमिकता दी क्योंकि विचारों का यह रूप द्विवेदी युगीन कोरी नैतिकता के निर्मम आवरण में ही कुंठित न हो जाय और उसे वैयक्तिक आन्तरिकता प्राप्त हो सके ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को एक ओर हिन्दी साहित्य के विकास के एक सहज स्वाभाविक रूप में माना है । दूसरी ओर उनकी दृष्टि में " छायावाद के पहले नए-नए मार्मिक विषयों की ओर हिन्दी कविता प्रवृत्त होती आ रही थी । कसर थी तो आवश्यक और व्यंजक शैली की, कल्पना और संवेदना के अधिक योग की । तात्पर्य यह कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था.... ।"[१२] उस पर " कलावाद और अभिव्यंजनावाद पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई ।... दूसरा प्रभाव यह देखने में आया कि अभिव्यंजना प्रणाली या शैली की विचित्रता ही सब कुछ समझी गई । नाना अर्थभूमियों पर काव्य का प्रसार रुक सा गया ।[१३] उपर्युक्त कथन को सम्यक दृष्टि से देखें तो कहा जा सकता है कि यद्यपि उन्होंने छायावाद को भारतीय परम्परा का विकास माना पर उसे मात्र एक काव्य शैली के रूप में देखा , विचारधारा के रूप में नहीं,जो उचित नहीं है । बाद के कवियों का आलोचकों ने इसका प्रतिवाद भी किया । आचार्य शुक्ल ने छाया-

---

१२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५६६

१३. ,, ,, पृ० ६०२

वादी कवियों के आधार वैचारिक मूल्यों की ओर दृष्टिपात न करके ब्रह्म समाज के माध्यम से यौरप के 'छाया' (फैंटसमाटा) का और रवीन्द्र साहित्य का प्रभाव छायावादी कवियों पर माना । प्रभाव पर अधिक बल देने के कारण ही उन्होंने छायावादी कवियों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत न कर उसे अभिव्यंजना, प्रतीकवाद आदि की तरह छायावाद को भी एक शैली मात्र मान लिया । इसका कारण वस्तु-सत्य न होकर कदाचित शुक्ल जी के दृष्टिकोण की सीमा ही थी । जिसकी ओर डॉ० नगेन्द्र आदि परवर्ती आलोचकों ने स्पष्ट संकेत किया । अन्य आलोचकों की स्थिति शुक्ल जी से भिन्न दिखाई देती है ।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छायावाद को रोमांटिक भावधारा की देन माना क्योंकि "छायावाद की कविता लिखने वालों की मूल प्रेरणा इंगलैण्ड के रोमांटिक भावधारा की कविता से प्राप्त हुई ।"[१४] पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार अंग्रेजी के सम्पर्क में आ जाने से वहां की लाक्षणिकता की ओर बंगला के साहचर्य से मधुर पदावली के विधान की ओर तथा उर्दू के लगाव से उसकी शायरी की बन्दिश एवं वेदना की प्रवृत्ति की ओर कवि लोग स्वभावत: आकृष्ट हुए ।[१५] बाह्य प्रभाव की अधिकता या दूसरी भाषाओं की नकल मानकर भी छंद[१६] भाषा[१७] व्यक्तिवाद[१८] आदि की दृष्टि से छायावादी कवियों की संतुलित और तर्क की दृष्टि से खरी आलोचना नहीं की गई ।[१९] छायावाद पर मात्र प्रभाव का आग्रह मानने वाले श्री इलाचन्द्र जोशी का मत भी द्रष्टव्य है । उनके अनुसार -" वैष्णव कवियों तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं से उधार लिए गए ललित शब्दों तथा सुकुमार वाक्यों व्यंजनाओं का ऐसा जाल हमारे मूल छायावादी कवियों ने

---

१४. अन्तिका (काव्यालोचन) जनवरी, १९५४ , पृ० २११

१५. वाङ्मय विमर्श , प्र०सं०,मार्गशीर्ष, सं०, १९९९, पृ० ३२८

१६. सरस्वती, जनवरी-जून , भाग ३४, खण्ड १, पृ० १९३३, पृ० १५२

१७. ,, ,, ,, पृ० १६९

१८. ,, पौष, भाग २८, खण्ड १, १९२७, पृ० ५२६

१९. ,, जनवरी, १९२७, (पौष) भाग २८, खण्ड १, १९२७,पृ०५२६

हिन्दी साहित्य संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला दिया कि जितनी दूर तक दृष्टि जाती थी, उसके अतिरिक्त और कुछ नजर ही नहीं आता।' [20] साथ ही उन्होंने यह भी माना कि 'नकल के लिए भी अक्ल की आवश्यकता होती है, और इस अक्ल की कोई कमी मैंने छायावादी कवियों में नहीं पाई है। [21] उपलब्धि के सम्बन्ध में' छायावादी कवियों ने हमें दिया क्या? केवल रुग्ण हृदयों की अलस रसावेशमयी भावनाओं के वासना-उद्गारों से सारे साहित्यिक वातावरण का विषमय करने के अतिरिक्त उन्होंने और किया क्या?' [22] डॉ० देवराज का कथन है' छायावाद की प्रधान कमजोरी उसका कल्पनाधिक्य है मैं आज भी दृढ़ हूँ। यह कल्पनाधिक्य एक ओर जहाँ पाठक और वास्तविकता के बीच में आकर्षक व्यवधान उपस्थित कर देता है, वहाँ इस बात का द्योतक भी है कि छायावादियों की यथार्थ की पकड़ अधूरी और नितान्त सीमित है। वे न तो वाह्य वास्तविकता का ही पूर्ण चित्र दे पाते हैं, न उपयुक्त मनोदशा को ही संक्रान्त कर पाते हैं। [23]

उपर्युक्त आलोचकों के मत को अगर सम्यक दृष्टिकोणसे देखें तो कहा जा सकता है कि डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन पर रोमांटिक कविता और पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने रोमांटिक कविता के अतिरिक्त बंगला और उर्दू का प्रभाव देखा तो दूसरी ओर श्री जोशी ने उन पर नितान्त वाह्य प्रभाव देखते हुए उनकी मौलिकता पर भी संदेह व्यक्त किया और उनकी उपलब्धि को नगण्य बताया। पर कदाचित इस भ्रम का कारण यह है कि उन्होंने व्यक्ति के भावों की उन्मुक्ति और रसावेशमयता मानते हुए भी उनकी मूल प्रवृत्ति की तह में बैठी बातों की ओर दृष्टिपात नहीं किया। पर श्री जोशी ने कम से कम छायावादी कवियों के बौद्धिक

---

२०. विवेचना, पृ० ४४

२१. विवेचना, पृ० ४५

२२. ,, पृ० ४०

२३. छायावाद का पतन, पृ० 'घ' निवेदन से

पक्ष को मान्यता प्रदान की । बाद में उनका दृष्टिकोण छायावादी काव्य के प्रति भी वह नहीं रहा जो प्रारंभ में था । पंत के विचार पक्ष की तो उन्होंने अत्यन्त व्यापक स्तर पर सराहना की है । व्यक्ति के भावों की उन्मुक्ति अपने पूर्व के कुंठित वातावरण से विद्रोह था जिससे व्यक्तिवाद की स्थापना हुई । यह छायावादी कवियों की उपलब्धि कही जायेगी । जहाँ तक रसमयी अभिव्यक्ति का प्रश्न है, वह प्रेम, सौन्दर्य और स्वप्नमय, कल्पनामय वातावरण से सम्बन्धित है जिसकी आधारशिला पर मानवतावादी दृष्टिकोण की रूपरेखा निर्मित हुई । डॉ० देवराज ने जहाँ छायावादी कल्पना को कमजोरी ठहराया है वहाँ यह भी देखना अपेक्षित है कि वस्तुत: वह कल्पना छायावादी कवियों की कमजोरी नहीं है । उनका तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण न करना पलायन नहीं है, वरन् वह उस गर्हित समाज की उपेक्षा है । इसी कल्पना के आधार पर उन्होंने कालान्तर में आदर्श सामाजिक व्यवस्था की नींव डाली और जो कुछ वे यथार्थ जगत में न पा सके उसे काल्पनिक भावभूमि पर पाने का प्रयत्न किया । उनकी यथार्थ की पकड़ कदाचित अधूरी इसलिए नहीं कही जा सकती क्योंकि उन्हीं कवियों में प्रगतिवाद की विचारधारा को ग्रहण कर पंत और निराला ने यथार्थवादी कविताओं की सृष्टि की।दूसरी ओर प्रसाद, महादेवी और रामकुमार वर्मा ने अपने गद्य साहित्य में यथार्थवादी जीवन पर ही बल दिया और वहाँ वे अपनी अभिव्यक्ति में पर्याप्त सफल दीख पड़ते हैं । उपर्युक्त आलोचकों ने छायावादी कवियों पर बाह्यारोपित प्रभाव की अधिकता, मौलिकता की कमी और सांस्कृतिक दृष्टिकोण का अभाव देखा यही कारण है कि उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण की उपेक्षा की ।

अधिकांश आलोचकों ने छायावादी काव्य के विकास को स्वतंत्र दृष्टि से न देखकर उस पर योरप के काव्य का प्रभाव बताया । उन्ही आलोचकों में डॉ० नगेन्द्र ने कालान्तर में इस भ्रम का स्पष्ट शब्दों में निवारण किया कि "यह भ्रान्ति उन आलोचकों द्वारा फैलाई गई है जो मूल-वर्तिनी विशिष्ट परिस्थितियों का अध्ययन न कर सकने के कारण- और उन अपराधियों में मैं भी हूँ — केवल बाह्य साम्य के आधार पर छायावाद को यूरोप के रोमांटिक काव्य संप्रदाय से अभिन्न मानकर चले हैं ।" २४ इससे स्पष्ट है कि आलोचकों द्वारा

२४. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० २४

वाह्य प्रभाव पर बल देने के कारण ही उन्होंने आलोच्य विषय के कवियों पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विचार नहीं किया। पर शान्तिप्रिय द्विवेदी के अनुसार जब तक अपने में कोई विशेषता नहीं रहती तब तक किसी का भी प्रभाव या छाया उद्भासित नहीं हो सकती।" [२५] अत: छायावादी कवियों पर मात्र वाह्य प्रभाव नहीं, बल्कि इस विचारधारा को जन्म देने में देश के इतिहास और तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों को भी सक्रिय मानना पड़ेगा जो कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित कर रही थीं। मात्र वाह्य प्रभाव के बल पर भाषा या साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का " स्वाभाविक और स्थायी विकास नहीं हो सकता। विशेषत: तब तक जब तक देश की ~~सांस्कृतिकता~~ संस्कृति से भी वह उद्भूत न हो।

पर कतिपय आलोचकों ने छायावादी काव्य को स्वाभाविक ~~विकास~~ विकास के रूपमें और छायावादी कवियों की उपलब्धि को तटस्थ रूप से देखा। इन आलोचकों में डॉ० केशरीनारायण शुक्ल इस तृतीय उत्थान को द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता के विरोध में मानते हैं। [२६] तो श्री गुलाबराय भी इस स्वाभाविक विकास से सहमत दीख पड़ते हैं। [२७] डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद युग' में छायावाद को 'विद्रोह युग' और छायावादी कविता को 'विद्रोह युग की कविता के आधार पर अध्ययन विभाजन किया है यह इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने साहित्य के क्रिया-प्रतिक्रिया मूलक विकास के रूप में ही छायावाद की व्याख्या की। साथ ही उन्होंने " छायावाद को सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह भी बताया।" [२८] डॉ० जगदीश गुप्त ने अपने लेख छायावाद में इसे " द्विवेदी युग की वाह्योन्मुखी अनगढ़ कविता की

---

२५. सरस्वती, जुलाई भाग ३५, खण्ड २, १९३४, पृ० ६०

२६. आधुनिक काव्य धारा, पृ० २५२

२७. काव्य के रूप, पृ० १३

२८. छायावाद युग, पृ० ४९

स्वाभाविक प्रतिक्रिया" २६ में और सोम जी ने छायावादी कवियों की "सांस्कृतिक प्रतिक्रियाएं और उसका सांस्कृतिक लक्ष्य" ३० भी स्पष्ट किया है।

सम्यक दृष्टिकोण से देखें तो इन आलोचकों ने छायावाद को इतिहास के आलोक एवं राष्ट्रीय, सांस्कृतिक परम्परा के मेल में रख कर उसे देखने का प्रयत्न किया। साथ ही उसके दार्शनिक एवं सांस्कृतिक स्रोतों पर भी प्रकाश डाला। इन्होंने छायावादी कवियों पर मात्र वाह्य प्रभाव की अधिकता और उनकी मौलिकता में संदेह नहीं व्यक्त किया। पर दूसरी ओर उन्होंने छायावादी कवियों को काव्य प्रभाव से सर्वथा मुक्त देखा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतः निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि आलोचकों द्वारा उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण की जैसी उपेक्षा प्रारंभ में की गयी वैसी बाद में नहीं। उत्तरोत्तर उसकी महत्ता को स्वीकार किया जाने लगा और उसके प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा। इससे जो गौरव छायावादी कवियों को प्राप्त हुआ उसके परिणामस्वरूप वे आत्म-सजग हो गये। उनकी परवर्ती रचनाएं उनके इस अतिरिक्त जागरूकता का प्रमाण हैं।

निष्कर्षों का निष्कर्ष –

आलोच्य विषय के छायावादी कवियों ने संस्कृति को सौन्दर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा के रूप में ग्रहण किया। उनके अनुसार यह मानव चेतना का सार पदार्थ है, जिससे जीवन पद्धति का निर्माण होता है। यह वाह्य आचार और अन्तर्जगत के प्रभाव से भी सम्बन्धित है।

संस्कृति की परिभाषा के अनन्तर आलोच्य छायावादी कवियों ने जिन सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना की उन्हें क्रमशः देखना अभीष्ट होगा। उन्होंने सारे अमानवीय मूल्यों का विरोध करते हुए नवमानवतावाद की स्थापना

---

२६. आधुनिककाव्य की प्रवृत्तियां, पृ० २१

३०. छायावाद के गौरव चिह्न, पृ० ३६

की । ये धरा के स्वर्ग बनाने की वैचारिक आस्था रखते हुए भी अध्यात्म और आध्यात्मिक जीवन का विरोध नहीं करते । वरन् धरा पर स्वर्ग की कल्पना अध्यात्मिक मूल्यों के सहयोग से ही करना चाहते हैं । इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होने के कारण नियति, धर्म-चेतना, सत्य, शिव एवं मनुजोचित शक्तियों के विकास रूप में सुन्दर की कल्पना आध्यात्मिक मूल्यों से ही सम्बन्धित होकर की गई है। पर यहाँ परलोक दृष्टि की अपेक्षा लोक दृष्टि में ही सार्थकता खोजने का प्रयत्न छायावादी कवियों की विशेषता कही जा सकती है । उन्होंने वाह्याडम्बरों के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच आ गई दूरी को पाटने का प्रयास किया ।

कवियों ने आनन्द को ही मानवता का सर्वोच्च प्राप्य बताया पर इस आनन्द में व्यक्ति और समाज के बीच पारस्परिक द्वन्द्व नहीं दीख पड़ता क्योंकि दूसरों को सुखी बनाकर स्वयं को सुखी करना ही इस आनन्द का लक्ष्य है । उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया कि नितान्त व्यक्तिवादी विचारधारा इस लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक है । दैव सृष्टि की अपूर्णताओं को भी भू-सृष्टि में पूरा करने का वैचारिक संकल्प रखते हुए पूरे विश्व को एक मानव परिवार के रूप में कल्पना की गई । यह विचार अब तक की मानवतावाद विषयक विचारधारा का उत्कृष्ट रूप होगा जिसमें संस्कृति, देश-काल, धर्म, दर्शन तथा रंग भेद गत सीमाएं मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तरमहाद्वीपीय और अन्तर-साम्प्रदायिक विचारकों की उपलब्धि के रूप में परस्पर बढ़ती हुई एकता की वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण करेंगी ।

उन्होंने परम्परागत गर्हित जाति व्यवस्था को स्वीकार न कर अपनी वैचारिक उपलब्धि के रूप में जातिहीन सामाजिक व्यवस्था पर बल दिया । जाति व्यवस्था अपने प्रारंभिक रूप में लाभप्रद भले ही रही हो पर कलान्तर में नीची-जातियों की अधिकार हीनता, ऊंची जातियों का जन्मसिद्ध अधिकार, अस्पृश्यता, तथा वाह्याडम्बर के रूप में कठोर आचार-शास्त्र और परम्परा का व्यर्थ बोझ ढोने की प्रवृत्ति से छायावादी कवियों ने अपनी पूर्णतः असहमति प्रकट की । साथ ही नव मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में रूढ़िगत व जाति व्यवस्था को आधुनिक समाज के लिए कृत्रिम एवं अनावश्यक मान, उसकी उपयोगिता पर संदेह प्रकट करते हुए

जातिहीन समाज की कल्पना की ।

छायावादी कवियों ने दूषित मनोवृत्ति की परिचायक वर्णव्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को स्वीकार नहीं किया । इसका कारण यह था कि वर्णव्यवस्था अब कर्मगत न होकर जन्मजात हो गयी । कालान्तर में इसी कारण अस्पृश्यता की समस्या भी घर कर गयी । उन्होंने वर्णव्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत माना । साथ ही रूढ़िगत वर्णव्यवस्था को आधुनिक समाज के लिए अहितकर बताया । उन्होंने निम्नवर्ण की अपेक्षाकृत अधिकारहीनता का मूल कारण राजनीतिक माना और उसे परम्परागत शासक वर्ग की स्वार्थनीति से सम्बन्धित किया । अत: वर्णव्यवस्था के वर्तमान स्वरूप की सभी छायावादी कवियों ने उपेक्षा की और उसे मानवता के विकास के लिए सामाजिक व्यवस्था के सुधार एवं प्रसार में बाधक बताया । साथ ही मानवता के स्तर पर वर्णभेद रहित राष्ट्र की कल्पना कर वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था का समर्थन किया ।

छायावादी कवियों में जीवन की अंतरंग बौद्धिक प्रक्रिया से उत्पन्न युग की राष्ट्रीयता का जो ठोस स्वरूप मिलता है उसमें उन्मुक्ति की एक आकांक्षा मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान तथा समस्त विश्व के जन समाज को एकान्वित करने वाली मानवतावादी भूमिका पर सृजित राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं । सदियों की पराधीनता की जर्जरित स्थिति के अन्त के लिए चेतना जन्म ले रही थी । अत: ऐसी स्थिति में छायावादी कवियों ने साहित्य के उद्देश्य को राष्ट्रीयता से सम्बन्धित किया और जीवन में नयी स्फूर्ति भरना उसका लक्ष्य बताया । पर आलोच्य कवियों की दृष्टि में राष्ट्रीयता मानव विकास का एक स्तर है । उसकी उन्नति का चरम लक्ष्य नहीं । उनमें व्यक्ति के विकास से राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयत के परिवेश से ऊपर उठ कर अन्तर्राष्ट्रीय मानवता और तदनन्तर नव-मानवता का समर्थन दीख पड़ता है । जिस प्रकार राष्ट्रीयता के स्तर पर धर्म, वर्ण, जाति और रंग का भेद समाप्त हो जाता है उसी प्रकार नवमानवता के दृष्टिकोण से राष्ट्रीयता भी विश्व के एक इकाई रूप में पर्यवसित हो जाती है । पर इसमें एक दूसरे

देश की राष्ट्रीयता के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं रह जाती । वरन् प्रत्येक देश की संघर्षरहित राष्ट्रीयता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है ।

कतिपय आलोचकों को यह भ्रम है कि छायावादी कवि अपने परिवेश में यथार्थ की अपूर्णताओं तथा समाज की विकृतियों का सामना करते हुए उन पर विजय नहीं प्राप्त करते वरन् कुछ समय के लिए कल्पना लोक में एकांत विश्राम की उड़ान लेते हैं वहीं उन्हें उसमें पलायनका स्वरूप दीख पड़ता है । वह वैयक्तिक एवं असामाजिक हो जाता है । पर यह विश्राम कामना स्थायी न होकर क्षणिक लगती है । सच तो यह है कि वह जर्जरित एवं रूढ़िगत समाज की उपेक्षा ही है । समग्र रूप में भी छायावादी कवियों के काव्य में पलायन नहीं दीख पड़ता वरन् कालान्तर में प्रगतिवाद के प्रभाव में कतिपय छायावादी कवियों के साहित्य में ऐसे विश्राम या उपेक्षा का स्वर लुप्त हो जाता है और वे ऐसे गर्हित समाज की भर्त्सना प्रत्यक्ष रूप से भी करते दीख पड़ते हैं जिससे राष्ट्र में जागृति फैले ।

छायावादी कवियों ने सौन्दर्यपूर्ण परिमति को ही कला माना । यह संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है , साथ ही उन्होंने यह स्वीकार किया कि संस्कृति केविकास के साथ ही कला के दृष्टिकोण में भी परिष्कार होता जाता है । कला जीवन में अखंड सत्य की खोज करती है । उन्होंने कला को जीवन की उपयोगिता परक दृष्टि से अलग नहीं देखा । वरन् कला और जीवन को अभिन्न रूप से सम्बन्धित करते हुए स्वयं जीवन को ही एक विराट कला तथा कलाकृति के रूप में परिकल्पित किया । उसमें भावना का रंग आवश्यक है, यथार्थ की नग्नता उन्हें ग्राह्य नहीं । अत: कला का भावना-मिश्रित यथार्थ रूप इन कवियों की विशेषता कही जा सकती है ।

आलोच्य कवियों ने प्रकृति पर मानव व्यक्तित्व का आरोप कर उसे यांत्रिक न मानते हुए आत्मशक्ति युक्त माना । प्रकृति के प्रति स्वतंत्र प्रेम की व्यंजना छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है । उनमें प्रारम्भ में प्रकृति से चमत्कृत होने वाला दृष्टिकोण मिलता है जोकि कालान्तर में मानवीकरण के रूप में परिवर्तित हो गया । अपनी प्रकृतिप्रियता के कारण कतिपय कवियों ने छायावादी काव्य ~~कन्व~~ को प्रकृति काव्य की संज्ञा से अभिहित किया है । उनका

प्रकृति वर्णन सौन्दर्य दृष्टि के आधार पर ही था । उन्होंने खेद भी प्रकट किया कि मानव ने यंत्र के निर्माण द्वारा प्राकृतिक शक्ति का ह्रास किया है । कालान्तर में कतिपय इन्हीं कवियों द्वारा प्रगतिवादी विचारधारा ग्रहण किये जाने पर प्रकृति को उपयोगितावादी दृष्टिकोण से भी देखा गया । इनके अनुसार सृष्टि का सुन्दरतम रूप मानव है । प्राकृतिक शक्ति के ह्रास के कारण ही मनुष्य का जीवन खोखला और जर्जर हो गया है । प्रगतिवाद के अनन्तर कतिपय कवि पुन: प्रकृति की शरण में गये और उन्होंने भौतिक सभ्यता का हल प्राकृतिक जीवन में ही बताया । इस के माध्यम से इन्होंने राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्रीय एकता का भी सफल प्रयास किया । साथ ही देश की सुन्दरता की ओर देशवासियों का ध्यान आकर्षित कर उनमें स्वाभिमान की भावना जगाई और पूरे राष्ट्र में भारतमाता के स्वरूप की परिकल्पना कर राष्ट्रीय भावना का प्रचार प्रसार किया ।

शहर और ग्राम समाज की स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया कि दयनीय आर्थिक परिस्थिति से ग्रसित हैं । गांवों में इस त्रास के कारण जमींदार हैं जो कृषक वर्ग का शोषण करते हैं और कर्ज के दलदल में निमग्न ये अशिक्षित नागरिक सूदखोरों से बचने का कोई मार्ग नहीं निकाल पाते । कवियों ने समाज की गिरी अवस्था का कारण बहुत कुछ विदेशी सरकार को बताया जिनकी नीति से देश गरीब होता जा रहा है । उन्होंने देश के विषय में बताया कि यद्यपि कुछ समाज सेवी हैं, पर अधिकांश विदेशी संस्कृति में सांस लेकर देश का सेवक कहलाने का स्वांग भरते हैं । उन्होंने भिक्षुक वर्ग को समाज का अभिशाप घोषित किया, साथ ही समाज में फैले धर्म के उस गर्हित रूप को भी, जिससे प्रेरित होकर तथाकथित धार्मिक लोग मनुष्य से भी सहानुभूति नहीं रखते । कवियों ने मनुष्य की समानता पर बल दिया साथ ही संकीर्ण प्रवृत्तियों की उपेक्षा की और मनुष्य की कार्य क्षमता में विश्वास प्रकट करते हुए आदर्श सामाजिक व्यवस्था का वैचारिक संकल्प रखा ।

उन्होंने मध्ययुगीन धर्म की उपयोगिता पर संदेह प्रकट किया क्योंकि

उस समय धर्म को नाना वर्जनाओं की परिधि में जकड़ कर धर्म और ईश्वर को भी दुरूह, अगम्य एवं उसके वास्तविक रूप को तिरोहित कर दिया गया था। यही कारण है कि धर्मों के नाना वाद, तंत्र-मंत्र, पंथों में विभाजित मानव-मानव के भी किंचित निकट नहीं आया। यह धर्म की विडम्बना ही कही जायेगी। छायावादी कवियों ने धर्म को युगानुरूप पारिभाषित करते हुए उसे किसी संप्रदाय विशेष या रूढ़िगत अर्थ में नहीं ग्रहण किया। इसी से तथाकथित संकीर्ण धार्मिक दृष्टि नहीं आने पायी है। उनमें नव मानवतावादी दृष्टिकोण से मानव धर्म का स्पष्ट रूप परिलक्षित होता है। उनकी दृष्टि में सच्चा धर्म किसी सीमा या सीमित भौगोलिक परिवेश में नहीं समाहित किया जा सकता। सभी धर्म के मूल-भूत तत्व समान हैं। यही कारण है कि एक ओर उन्होंने हिन्दू धर्म को आदर दिया तो दूसरी ओर बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम धर्म को भी। धार्मिक संकीर्णता आज के युग में कोई महत्व नहीं रखती, उनके अनुसार मानव धर्म की उपयोगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है इसी के आधार पर भारतीय समाज के संगठन की चेष्टा भी की गई। कवियों का विश्वास है कि व्यक्ति में ईश्वरांश है, साथ ही उसमें धर्म-अधर्म के विवेक की शक्ति भी। उन्होंने कर्म फल में विश्वास व्यक्त किया। साथ ही जीव के उत्थान के निमित्त धर्म-मय-कर्म की आवश्यकता बताई। उन्होंने कर्म और जीव की सत्ता भी धर्म से अलग नहीं की तथा धर्म निरपेक्ष मानव व्यक्तित्व की स्थापना कर नव मानवतावाद के रूप में आदर्श धर्म की धारणा पर प्रकाश डाला।

आलोच्य कवियों ने किसी दर्शन की स्थापना नहीं की पर दर्शन की महत्ता को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हुए उसके भेद - प्रभेदात्मक विस्तार के स्थान पर तात्विक चिन्तन पर बल दिया है।

छायावादी कवियों ने व्यक्तिवादी जिस पीठिका का निर्माण किया वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसके पूर्व व्यक्ति स्वातंत्र्य की महत्ता की स्थापना नहीं हुई थी। छायावादी युग के पूर्व से ही व्यक्ति में तेजस्विता की अभिव्यक्ति होने लगी थी और वह सामाजिक

कुंठाओं को तोड़कर उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छन्द अभिव्यक्ति करने की ओर अग्रसर हो रहा था, जिसका विकास छायावादी कवियों ने किया । इन कवियों पर फ्रान्स की राज्यक्रान्ति से उत्पन्न व्यक्ति की महत्ता का प्रभाव देखा जा सकता है । भारतीय काव्य में व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति की परम्परा नहीं थी । यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में वैयक्तिक प्रेम या, सुख दु:ख की अभिव्यक्ति नहीं दीख पड़ती। क्योंकि भारतेन्दु और द्विवेदी युग में सामाजिक मूल्यों की खोज हुई । पर उसकी पीठिका के अनन्तर ही व्यक्तिवादी चेतना का निर्माण संभव हो सका और कवि वैयक्तिक कुंठाओं को तोड़ स्वच्छन्द निर्भीक रूप से अपनी अनुभूतियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में समर्थ हो सके ।

व्यक्तिवाद की विचारधारा से प्रभावित होकर ही कवियों ने धरा पर ही स्वर्ग की सृष्टि का स्वप्न देखा और नवमानवतावाद की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हुए । इसे कवियों ने सीमित अर्थ में ग्रहण नहीं किया वरन् उनका व्यक्तिवाद , व्यक्ति की विराटता का बोध देता है जिसमें तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों का भी समाहार हो जाता है । कवि व्यक्ति के अधिकार ही नहीं वरन् कर्त्तव्य के प्रति भी सजग दीख पड़ते हैं । उनमें जीवन के अन्तरंग पक्ष के उद्घाटन का आग्रह भी दीख पड़ता है ।

नैतिक बन्धनों की शिथिलता के साथ स्वच्छन्दता से प्रेरित होने के कारण उन्होंने मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया । दार्शनिक भूमिका में स्वातंत्र्य की भावना और व्यक्ति के संदर्भ में कहा जा सकता है कि उन्होंने फल की आशा त्याग कर कर्म में लीन होने की प्रेरणा दी । साथ ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उन्होंने मोक्ष की स्थिति को भी स्वीकार किया ।

छायावादी कवियों ने दो प्रकार की नारी का चित्रण किया है । एक तो परम्परागत आदर्श नारी का रूप जिसमें वह दया, क्षमा, करुणा, श्रद्धा, ममता आदि गुणों के साथ स्वजनों के निमित्त अपने को बलिदान करने की भावना में अपनी स्थिति रखती है । यह भारतीय नारी का समर्पित रूप है । दूसरा रूप दयनीय सामाजिक स्थिति से जागरूकता का है । यह समाज में अपने अधिकारों की प्राप्ति और महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करने में भी प्रयत्नशील

है। कवियों ने इस बात का स्पष्टीकरण किया कि उनकी गिरी सामाजिक स्थिति का मूल कारण है अशिक्षा। उसको दूर करने के लिए वे अब शिक्षित होने की ओर तत्पर दीख पड़ती हैं। कवियों ने सती प्रथा, बाल, वृद्ध, अनमेल विवाह आदि के प्रति विरोध प्रकट किया और विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह पर भी बल दिया। साथ ही उसे नये और समाज के निर्माण में महत्त्व-पूर्ण योगदान देते हुए चित्रित किया है।

आलोच्य विषय के कवियों ने विधवा के प्रति अपनी विशेष सहानुभूति प्रदर्शित की। उनकी दयनीय सामाजिक स्थिति के सुधार के लिए तत्परता दिखाई साथ ही विधवा विवाह का भी समर्थन किया।

छायावादी कवियों ने पुरुष वर्ग को संघर्षशील एवं महत्वाकांक्षी रूप में चित्रित किया है। पर वह अपने स्थान का अधिकारी तभी है जब वह कर्मशील हो, समाज में न्याय की स्थापना और आश्रितों की रक्षा कर सकता हो।

नर-नारी की सापेक्षिक महत्ता की दृष्टि से उन्होंने नर-शक्ति को श्रम, ओज, कर्मठता, संघर्ष, साहस और बल का प्रतिनिधि माना तो नारी को मृदुता, करुणा, क्षमा, दया, गृह व्यवस्था, सहनशीलता और संतोष का। उन्होंने नर-नारी की सापेक्षिक महत्ता को स्वीकार करते हुए नारी को मात्र गृह तक ही सीमित न रखते हुए उसे पुरुष के समकक्ष रक्खा। साथ ही दोनों को नए समाज के निर्माण में रत दिखाया।

कवियों ने सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक साहित्यिक आदि क्षेत्रों के प्रमुख व्यक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। उन्होंने पवित्र धार्मिक स्थलों के प्रति भी अपनी आस्था व्यक्त की है जो कि उनकी धार्मिक मनोवृत्ति का परिचायक है। आलोच्य छायावादी कवियों ने अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में पर्याप्त सजगता दिखाई। साहित्यकारों द्वारा अपने कर्तव्य का सफलता पूर्वक निर्वाह करने के बाद भी उन्हें नाना त्रासों को सहना पड़ा फिर भी वे समाज के नव निर्माण में सतत् सजग दीख पड़ते हैं। यह आदर्श लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति का ही द्योतक है, साथ ही नवमानवतावाद के वैचारिक संकल्प को पूरा करने का परिचायक भी।

परिशिष्ट

आधार ग्रन्थों की सूची

सहायक ग्रन्थों की सूची ---

(हिन्दी ग्रन्थों की सूची, अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची, पत्र-पत्रिकाएं)

आधार ग्रन्थों की सूची

जयशंकर प्रसाद

नाम पुस्तक	रचनाशैली	प्रकाशक	संस्करण
अजातशत्रु	नाटक	भारती भंडार, प्रयाग,	१५ वां संस्करण, सं०२०१७
आकाश दीप	कहानी	,, ,,	पंचम संस्करण, सं०२०११
आँधी	कहानी	,, ,,	,, सं०२०१२
आँसू	काव्य	साहित्य सदन चिरगांव,	प्रथम संस्क०, सं०१९८२
एकघूंट	नाटक	भारती भंडार, प्रयाग,	दूसरा संस्करण, सं०२००४
इन्द्रजाल	कहानी	,, ,,	द्वितीय संस्करण, सं०९९७
इरावती	उपन्यास	,, ,,	प्रथम सं०, २०१८
कंकाल	उपन्यास	,, ,,	दसवां संस्क०, सं०२०१६
करुणालय	काव्य	,, ,,	तृतीय संस्क०, सं० २०११
कामना	नाटक	,, ,,	चतुर्थ संस्करण, सं० २००७
कानन कुसुम	काव्य	,, ,,	पंचम संस्क०, सं० २००७
कामायनी	काव्य	,, ,,	एकादश संस्क०, सं०२०१८
काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	निबन्ध	,, ,,	तृतीय संस्करण, सं००५
चन्द्रगुप्त	नाटक	,, ,,	नवम् संस्क०, सं० २०११
चित्राधार	काव्य	साहित्य सरोज का०, वाराणसी सिटी	द्वितीय बार, सं०१९८५
छाया	कहानी	भारती भंडार, प्रयाग	चतुर्थ संस्करण, सं०२००७
जनमेजय का नागयज्ञ	नाटक	,, ,,	छठवां
झरना	काव्य	,, ,,	छठाँ संस्क०, २००८
तितली	उपन्यास	,, ,,	बारहवां, संस्क०, २०२१
ध्रुवस्वामिनी	नाटक	,, ,,	सत्रहवां संस्क०, सं०२०१६
प्रतिध्वनि	कहानी	,, ,,	पंचम संस्क०, सं०२०११

नाम पुस्तक	रचना शैली	प्रकाशक	संस्करण
प्रेम पथिक	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	द्वितीय संस्क०, १९७०वि०
महाराणा का महत्व	काव्य	,, ,,	तृतीय संस्क०, सं०२००५
राज्यश्री	नाटक	,, ,,	चतुर्थ संस्क०, सं० १९९६
लहर	काव्य	,, ,,	,, ,, सं०२००६
विशाख	नाटक	,, ,,	अष्ठम, संस्क०, सं०२०१२
स्कंधगुप्तविक्रमादित्य	,,	,, ,,	तेरहवां संस्क०, सं०२०१५

सुमित्रानन्दन पंत

नाम पुस्तक	रचना शैली	प्रकाशक	संस्करण
अतिमा	काव्य	,, ,,	प्रथम संस्क०, सं०१९५५
अभिषेकिता	काव्य	राजकमल प्रका०, दिल्ली	,, १९६०
आधुनिक कवि पंत	काव्य	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	छठा संस्क०, सं०२०१२
उत्तरा	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	प्रथम संस्क०, सं २००६
कला और बूढ़ा चाँद	काव्य	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	दिस० १९५९
खादी के फूल	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	सं० २००५
गुंजन	काव्य	,, ,,	सातवां सं०, सं०२०१०
ग्रंथि	काव्य	,, ,,	द्वितीय सं०, सं०२००६
गद्य पथ	निबन्ध	साहित्य भ०प्रा०लि०, प्रयाग	प्रथम सं०, १९५३
ग्राम्या	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	चतुर्थ सं०, सं०२००८
चिदंबरा	काव्य	राजकमल प्रका०, दिल्ली	प्रथम सं०, १९५९
छायावाद-पुनर्मिलन पुनर्मूल्यांकन	आलोचना	ज्योत्स्ना लोक भार०प्रका०,	,, १९६५
ज्योत्स्ना	नाटक	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ	तृतीय संस्क०, सं०२००३
पल्लव	काव्य	भारतीय भंडार, प्रयाग	पांचवां, संस्क०, २००५
पल्लविनी	काव्य	,, ,,	तृतीय, संस्क०२००४
पाँच कहानियाँ	कहानी	,, ,,	चतुर्थ संस्क०, पृ १९५२
युगपथ	काव्य	,, ,,	प्रथम संस्क०, २००६वि०

नाम पुस्तक	रचना शैली	प्रकाशक	संस्करण
युगवाणी	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	प्रथम संस्क०, सं० १९९६
युगांत	काव्य	,, ,,	
रजत शिखर	काव्य	,, ,,	
रश्मिबंध	काव्य	राजकमल प्रका०, दिल्ली	प्रथम संस्क०, १९५८
लोकायतन	काव्य	,, ,,	,, १९६४
वाणी	काव्य	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,	,, १९५८
वीणा-ग्रन्थि	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	द्वितीय सं०, २००७ वि०
शिल्प और दर्शन	निबन्ध	रामना०बेनी०, प्रयाग,	प्रथम सं०, १९५१
शिल्पी	काव्य	सैन्ट्रल बुकडिपो,	सन् १९५२
साठवर्ष एवं रेखांकन जीवनी		राजकमल प्रका०, दिल्ली	सन् १९६०
सौ-वर्ण	काव्य	भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी	प्रथमसं०, १९५७ ई०
स्वर्ण किरण	काव्य	सैण्ट्रल बुकडिपो, इलाहाबाद	,, सं० २००४
स्वर्ण धूलि	काव्य	,, ,,	,, सं० २००४
हरी बांसुरी सुनहरी टेर		राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	प्रथम संस्क०

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

अर्चना	काव्य	कला मंदिर, इलाहाबाद	सन् १९५०
अणिमा	काव्य	युग मंदिर, उन्नाव	सन् १९४३
अपरा	काव्य	साहित्यकार संसद, प्रयाग	पंचम संस्करण, १९६३
अनामिका	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	द्वितीय संस्करण, १९३७
अप्सरा	उपन्यास	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ	आठवीं बार, १९६२
आराधना	काव्य	साहित्यकार संसद, प्रयाग	प्रथम सं०, सं० २०१०
कालेकारनामे	उपन्यास	केसरवानी प्रेस, प्रयाग	१९५०
कुकुरमुत्ता	काव्य	किताब महल, प्रयाग	द्वितीय संस्क०, १९५२
कुल्ली भाट	रेखाचित्र	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ	प्रथमआवृत्ति

नाम पुस्तक	रचना शैली	प्रकाशक	संस्करण
गीत गुंज	काव्य	हिन्दी प्रचारक पुस्तका,वाराणसी,सं० २०११	
गीतिका	काव्य	भारती भंडार,प्रयाग	चतुर्थ संस्क०,२०१२
चतुरी चमार	कहानी	किताब महल, प्रयाग	शक १८८२
चाबुक	निबन्ध	निरुपमा प्रका०,प्रयाग	१९६२०
चोटी की पकड़	उपन्यास	किताब महल प्रयाग	१९५८
तुलसीदास	काव्य	भारती भंडार,प्रयाग	सप्तम संस्क०,२०२१
देवी	कहानी	निरुपमा प्रका०,प्रयाग	१९६२
नए पत्ते	काव्य	हिन्दु०पब्लि०,प्रयाग	प्रथम सं०,१९५६
निरुपमा	उपन्यास	भारतीय भंडार,प्रयाग	सातवां संस्क०,१९५४
पंत और पल्लव	निबंध	गंगा ग्रन्थागार	१९४९ ई०
प्रबन्ध प्रतिमा	निबंध	भारती भंडार प्रयाग	१९४० ई०
प्रबन्ध पद्म	निबंध	भारती भाषा भ०,दिल्ली	द्वितीय सं०, सं२०११
प्रभावती	उपन्यास	किताब महल,प्रयाग	१९६३
परिमल	काव्य	गंगा ग्रन्था०,लखनऊ	छठां संस्क०,१९५४
बेला	काव्य	हिन्दु०पब्लि०,प्रयाग	प्रथम संस्क०,१९४६
बिल्लेसुरबकरिहा	रेखाचित्र	किताब महल,प्रयाग	
लिली	कहानी	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ	सं० १९६०
सुकुल की बीबी	कहानी	भारतीय भंडार,प्रयाग	तृतीय संस्क०,१९४१

महादेवी वर्मा

अतीत के चलचित्र	रेखाचित्र	भारतीय भंडार,प्रयाग	सं० २००३
आधुनिक कवि महादेवी	काव्य	हिन्दी साहित्य स०,प्रयाग	प्रथम सं०, १९४०
श्रृंखला की कड़ियां	निबंध	भारती भंडार,प्रयाग	अष्टम संस्क०,२००७
दीपशिखा	काव्य	किताबिस्तान,प्रयाग	तृतीय सं०, १९५०
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य		स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स,इलाहाबाद	
यामा	काव्य	भारती भंडार,प्रयाग	तृतीय संस्क०,२००८

नाम पुस्तक	रचना शैली	प्रकाशक	संस्करण
सप्तपर्णा	काव्य	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम संस्क०, १९६०
स्मृति की रेखाएं	रेखाचित्र	भारती भंडार, प्रयाग	द्वितीय संस्क०, २००१
साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध	निबन्ध	लोक भारतीय, प्रयाग	१९६२
निमाल्य	काव्यकासंपा०	,,	,,

'मकुमार वर्मा

अंजलि	काव्य	साहित्य भ०प्रा०, प्रयाग	
अनुशीलन	आलोचना	साकेत प्रका०, प्रयाग	
अभिशाप	काव्य	श्रीभारतबन्धु आश्रम, इलाहाबाद	१९३०
आकाश गंगा	काव्य	रामाना०, प्रयाग	१९५७
आधुनिक कवि रामकुमार वर्मा	काव्य	हिन्दी सा०स०, प्रयाग	तृतीय संस्क०, २०१०
इन्द्रधनुष	एकांकी	राजकिशोर प्रका०, प्रयाग	प्रथम संस्क०, १९५६
एकलव्य	काव्य	भारती भंडार, प्रयाग	,, सं० २०१५
एकांकी कला	आलोचना	रामनारायणलाल, प्रयाग	१९६०
ऋतुराज	एकांकी	सेण्ट्रल बुक०, प्रयाग	१९५१
कबीर का रहस्यवाद	आलोचना	साहित्य भ०, प्रयाग	१९३०
कुलललना	काव्य	गृहलक्ष्मी कार्या०, प्रयाग	प्रथम संस्क०, सं०१९८३
कौमुदी महोत्सव	एकांकी	साहित्य भ०लि०, प्रयाग	,, १९४९
चन्द्र किरण	काव्य	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ	१९३७
चारुमित्रा एकांकी	एकांकी	साहित्य सदन, प्रयाग	प्रथम संस्क०, १९४१
चार ऐतिहासिक एकांकी		साहित्य भ०लि०, प्रयाग	,, १९४९
चित्ररेखा	काव्य	हिन्दी साहित्य स०, प्रयाग	चतुर्थ, संस्क०, २००३
चित्तौड़ की चिता	काव्य	चाँद प्रेस, इलाहाबाद	१९२९
जौहर	काव्य	हिन्दी भ०अनारकली, प्रयाग	१९३९

नाम पुस्तक	रचना शैली	प्रकाशक	संस्करण
दीप दान	एकांकी	भारती भंडार,प्रयाग	सं० २०१५
ध्रुवतारिका	एकांकी	राजकमल प्रका०,दिल्ली	१९५०
निशीथ	काव्य	विश्व साहित्य ग्रन्थमाला,	१९३१
पृथ्वीराज की आँखें	एकांकी	विद्या मं०प्रका०,मुरार	सं० २०००
बापू	एकांकी	राजकिशोर प्रका०,प्रयाग	१९५५
मयूर पंख	एकांकी	साहित्य भ०प्रा०,प्रयाग	
मेरे सर्वश्रेष्ठ एकांकी	एकांकी	लक्ष्मी प्रका०,जबलपुर	द्वितीय संस्क०,१९६२
रजत रश्मि	एकांकी	भारतीय ज्ञान०,काशी	१९५२
रम्य रास्मि	एकांकी	रामना०,प्रयाग	१९५०
रिमझिम	एकांकी	किताब म०,प्रयाग	प्रथम सं०,१९५५
रूपराशि	काव्य	सरस्वती प्रेस,बनारस	१९३१
रेशमी टाई	एकांकी	भारती भंडार,प्रयाग	चतुर्थ संस्क०,२००६
विचार दर्शन	आलोचना	साहित्य निकुंज,प्रयाग	प्रयाग,प्रथम संस्क०१९५८
विजय पर्व	नाटक	रामना०,प्रयाग	तृतीय संस्क०,१९५२
विभूति	एकांकी	विद्या मं०,प्रका०,मुरार	,, ,२००४
वीर हम्मीर	काव्य	हिन्दी साहित्य प्रका०नरसिंहपुर,	१९२२
शिवाजी	एकांकी	साहित्य भ०प्रा०लि०,	१९४६
सप्त किरण	एकांकी	नैशनल इन्फा०एण्ड पब्लि० नई दिल्ली	
साहित्य चिंतन	आलोचना	किताब म०,प्रयाग	१९६५
साहित्य शास्त्र	,,	भारतीय वि०,प्रयाग	प्रथम संस्क०,१९५६
साहित्य समालोचना	आलोचना	हिन्दी भवन,प्रयाग	१९८७विक्रमी

सहायक ग्रन्थों की सूची

अमेरिकी इतिहास की रूपरेखा- फ्रांसिस व्हिटने- यूनाइटेड स्टेट्स इन्फा०सर्विस,नई दिल्ली
आधुनिक काव्य धारा- डॉ० केशरीनारायण शुक्ल,सरस्वती मं०,काशी, प्रथम सं०,२००४
आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत -डॉ०केशरीनारायण शुक्ल,सर०मं०,काशी,प्र०सं०
आधुनिक हिन्दी काव्यधारा की मुख्य प्रवृत्तियां,डॉ०नगेन्द्र, नेश०पब्लि०हा०,दिल्ली,१९५:
आधुनिक हिन्दी काव्यमें रहस्यवाद ,डॉ०विश्वनाथगौड़,नन्दकि०एण्ड०सं०,चौक,वाराणसी
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां,नामवर सिंह,लोकभा०प्रका०,प्रयाग,१९६२ ई०
कला, हंसकुमार तिवारी, मानस०प्रकाशन, गया,
कबीर ग्रन्थावली, संपा० श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२८
कबीर ग्रन्थावली, डॉ० पारसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद् प्रयाग, प्र०सं०
कुछ विचार : प्रेमचन्द , सरस्वती प्रकाशन,इलाहाबाद
गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र, बालगंगाधर तिलक,जयन्त श्रीधर तिलक,पूना,१९५६
छायावाद युग, डॉ० शम्भूनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, जतनवर,बनारस,प्र०सं०,१९५६
छायावाद का पतन, डॉ० देवराज, वाणी मंदिर प्रेस, छपरा,प्र०सं०, १९४८
छायावाद की काव्य साधना, प्रो०क्षेम,साहित्य ग्रन्थमाला कार्या०,काशी,सं० २०११
छायावाद के गौरव चिह्न,प्रो० क्षेम, हिन्दी प्रचारक पुस्तका०,वाराणसी,द्वि०सं०,
जाति सिद्धान्त एक अनुसंधान द्वारा प्राप्त निष्कर्ष, अनु०नेमिचन्द्रजैन,ओरि०लौंग०,दिल्ली
तांत्रिक वांगमय में शाक्त दृष्टि- महामहोपाध्याय डॉ०गोपीनाथ कविराज, विहार रा०भा०परि०,पटना, प्रथमआवृत्ति,
दर्शन दिग्दर्शन,राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, प्रयाग, १९४७
धर्म और समाज, डॉ० राधाकृष्णन्, अनु० विराज, राजपाल एं०सं०,दिल्ली,१९६०
धर्म:तुलनात्मक दृष्टि में,डॉ० राधाकृष्णन् ,अनु०विराज,राजपाल एं०सं०, दिल्ली,१९६३
निराला काव्य और व्यक्तित्व, धनंजय वर्मा,विद्या प्रका० मं०,दिल्ली
निराला अभिनन्दन अंक, प्रकाशक, निराला अभिनन्द ग्रन्थ स्वागत स०,कलकत्ता,१९५३
प्रकृति और काव्य,डॉ० रघुवंश , साहित्य भ० लिमिटेड, प्रयाग , २००५
प्रसाद का काव्य, डॉ० प्रेमशंकर, भारती भंडार,प्रयाग, प्रथम सं०, संवत् २०१२
प्रसाद,निराला,पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएं,वाचस्पति पाठक,लोकभा०, प्रयाग,प्र०सं०

भाषा और समाज, डॉ० रामविलास शर्मा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

भारतवर्ष में जाति भेद, आचार्य क्षितिज मोहन सेन, साहित्य भवन प्रा०लि०, प्रयाग, १९५२

भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, डा० आबिद हुसैन, अनु० महेन्द्र चतुर्वेदी, साहित्य स०चिरगांव, २०१५

भारतीय कला के पद चिह्न, डॉ० जगदीश गुप्त, भारती भं०, प्रयाग, प्रथम संस्क०

भारतीय दर्शन, डॉ० उमेश मिश्र, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

मार्क्सवाद और मूलदार्शनिक प्रश्न, श्री ओमप्रकाश आर्य, आधार प्रका०, पटना, १९६८

मानवता और शिक्षा: पूरब और पश्चिम के देशों में -(यूनेस्को रिपोर्ट) अनु० यदुवंशी--
ओरियन्टल लॉंगमैन्स, नयी दिल्ली,

महादेवी का विवेचनात्मक गद्य--सं० गंगाप्रसाद पाण्डेय, स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स, इलाहाबाद

मानव और संस्कृति- श्यामाचरण दुबे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं०, १९६० ई०

युग और साहित्य, शांतिप्रिय द्विवेदी - इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, १९५० ई०, द्वितीय संस्करण

रामचरित मानस - गोस्वामी तुलसीदास-- गीताप्रेस, गोरखपुर

रहस्यवाद - परशुराम चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र०सं०, २०१० वि०

रूपाम्बरा--सं० सच्चिदानन्द वात्स्यायन- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

विचार और अनुभूति-डॉ० नगेन्द्र--गौतम बुक डिपो, दिल्ली, प्र०सं०, १९४९

विनय और पत्रिका--गोस्वामी तुलसीदास--गीताप्रेस, गोरखपुर

विवेचना--इलाचन्द्र जोशी - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००५ वि०

सुमित्रानन्दन पंत, डॉ० नगेन्द्र, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, प्र०सं०

संस्कृति संगम--आचार्य क्षितिज मोहन सेन- द्वि०सं०, साहित्य भ०लि०, प्रयाग

संस्कृति और साहित्य--डॉ० रामविलास शर्मा किताब महल, प्रयाग

संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ० देवराज, प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथमा०, १९५०

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास--आचार्य चतुरसेन, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, संस्कृत
हिन्दी पुस्तक विक्रेता, लाहौर, प्र०सं०

हिन्दू परिवार मीमांसा--हरिदत्त वेदालंकार-भारती भंडार, प्रयाग, प्र०सं०

हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, बार०संस्करण

हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव--डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रका०, कानपुर, प्र०सं०, २०११

हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां-१९६१ संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

हिन्दी के दो प्रमुख वाद : रहस्यवाद और छायावाद - सं० प्रेमनारायण टंडन

वाङ्मय विमर्श — पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्र०सं० मार्गशीर्ष, संवत् १९९९
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी — नन्ददुलारे वाजपेयी — लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग, १९६३
हिन्दी साहित्य खंड दो । सं० धीरेन्द्रवर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा , हिन्दी परिषद्, प्रयाग, प्र०सं०
हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य — ज्ञान मं० लि०, वाराणसी

संस्कृत की पुस्तकों की सूची

छान्दोग्योपनिषद्- राजपाल एं०सं०, आर्य, पुस्तकालय, लाहौर
अभिधर्म कोश- सटीक , राहुल सांकृत्यायन — काशी विद्यापीठेन प्रकाशित, १९८८
ऐतरेय ब्राह्मणम्- सामश्रमिश्रीसत्यव्रतशर्म्मणा — कालिकाता — राजन्वत्याम, १९६६ सं०
तैत्तिरीय संहिता - भट्ट भास्कर मिश्र विरचित भाष्यसहित, राजकीय, पुस्तकालय, मैसूर, ९४
तंत्रालोक- कश्मीर संस्कृतग्रन्थावलि: प्र० महाराजा जम्मू कश्मीर, श्रीनगर, कश्मीर, सं०१९७७
धम्मपद, सं० राहुलसांकृत्यायन, बुद्ध विहार, लखनऊ , सं० १९५७
नेत्र तंत्र, भाग २, कश्मीर संस्कृति ग्रन्थावलि , हरिसिंह बहादुर महाराज, जम्मु और कश्मीर,
१९२७ ई०
प्रत्यभिज्ञा हृदयम् , सं० जगदीशचन्द्र चटर्जी , आर्कोलाजिकल और रिसर्च विभाग, कश्मीर राज्य
पराशर स्मृति, कलि मातानमय्यां शकाब्द: १८१३
महाभाष्यम (पातंजलि) श्रीनारायण शास्त्रि देवदत्त दुर्गादत्त शर्माशिरानन्द शर्मा , पंडितैश्च,
संशिता, संशोधित, मिर्जापुर, १८५५ ई०
बौद्धायन धर्मशास्त्र - सं० E. Hultzsch, Leipzig, 1884.
महाभारत (शान्तिपर्व), गीता प्रेस, गोरखपुर
ब्रह्मवैवर्त पुराण- आनन्दाश्रम मुद्रणालय, शालिवाहन शकाब्द, १८३५
माध्यमिक वृत्ति, आचार्य चन्द्रकीर्तिसं० करतचन्द्र दास, हिन्दर एण्ड कं०, लंदन
यजुर्वेद भाष्यम, परमहंस परिव्राजकाचार्य, अजमेर, सं० २०१७
विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्र० सं०, २०१८ वि०
वैजयन्ति — इति भागवता यादव प्रकाशेन विरचितायां वैजयन्त्या व्याकरणे , नानालिंगा-
ध्याये, संपा० गस्टवओपर्ट, मद्रास, १८९३ वि०
सर्वदर्शन संग्रह श्री माधवाचार्य विरचित, भाषाटीका समेत, कल्याण प्रेस, बम्बई, सं० १९८२
श्री स्वच्छन्दतंत्रम्- महामहेश्वराचार्य श्री क्षेमराज कृते उद्योताख्य टीकोपेतम् , श्रीनगर, कश्मीर

सौन्दर्य लहरी — श्री शंकराचार्य विरचिता — विश्वविद्यालय ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पब्लिकेशन्स, १९५३

संयुक्त निकाय, जिल्दतीसरी, भिक्षु जगदीश कश्यप, भिक्षु धर्म रक्षित ,महाबोधि सारनाथ वाराणसी, प्रथम संस्करण ।

ऋग्वेद भाग, १,२,३, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, प्र०संस्करण

सांख्ययोग दर्शनम् ,अर्थात् पातंजलि दर्शनम् , सं० गोस्वामि दामोदर शास्त्री, प्र० जयकृष्णदास हरिदास, गुप्त , बनारस, १९३५ ई०

पत्र-पत्रिकाएं

आलोचना

माधुरी

वीणा

सुधा

सरस्वती

सम्मेलन पत्रिका

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

इन्दु

चाँद

विशाल भारत

<u>List of English Books.</u>

Ancient Indian Culture and Civilization - K.C.Chakravarti
Vora & Publishers 1961.

Art and Society - Sidney Finkelstein - International and
Publishers, New York.

Caste and class in India - G.S. Ghurya - Popular Books
Dept. 1957.

Encyclopedia of the Social Sciences - Vol. IV - Edwin R.A.
Seligman - The MacMillan Company-
New York - 1937.

Encyclopedia of Religion and Ethics - Part.5 Edited by
Jones Hastings - Edinburgh. T. & T Clark,
38, Geore Street.

History of Dharma Sastra - Pandurang Vaman Kane- Vol. I-
Bhandarkar Oriental Research Institute,
Poona - 1930.

Indian: A Conflict of Culture - Kewal Motwani - Thacker &
Co. Ltd.

Indian Aesthetics - K.C. Ramaswami Sastri - Sri Rangam
Sri Ramvilas Press 1926.

Mysticism - E. Underhill - 17th Edition 1944.

Poets and Mystics - E.I. Watkin - First Published 1953.

Selected Works Marx - Vol. I .

Published Foreign Language Publication Moscow.

The Art and Man - Raymond S. Stities - Mc Grow - Hill

Book Company Inc. New York, 1940.

The Bhagavadgita by S. Radhakrishnan - George Allen &

Unwin , London, Fifth Impression 1958.

The Philosophy of Humanism - Corliss Lamant - Flek Book,

Great James Street London - 1958.

The World Book Encyclopedia - 1960.

Field enteoprises Educational Corporation-

Merchandise Mart Plaza Chicago - 54.

United Provinces Senses Report 1907.

Vaijayanti (Dictionary) by Gustav Oppert, Madras, 1893.